

स्कन्द पुराण

(प्रथम खण्ड)

सरल भाषानुवाद सहित

वेदमूर्ति तपोनिधि

पं० श्रीराम शर्मा त्रिपाठी

चारो वेद, १०८ उक्तिपद्, पट्ट-दशम, २० स
एव १८ पुराणा के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशकः

संस्कृति संस्थान
वरेली [उ०प्र]

विष्णोरंजो धर्मपाताः पुंथः साक्षात्स्वयं प्रभुः ।
 अन्कर्माणि भूमीणि भविष्यान्ति महात्मनः ।
 महेशाय च भक्त द्वौ कृपायेता सदा मयि ।
 ततः श्रेष्ठ च त मत्वाक्षीरोद मुनयोर्वयुः ॥
 तथ योगेश्वरः इलोक प्रवृध्यन्तममर्षतीत ।
 ब्रह्माण्डं सर्वभूतेषु परम ब्रह्मरूपिणम् ॥
 सदाशिव च वन्दे ती भवेतां मंगलाय मे ।
 तवस्ते विष्णुस्तथा विप्रा अपमृत्ययेयु पुनः ॥
 कंलासि ददुर्गु म्थाणु वदत जा प्रति ।
 एकादश्यां प्रनृत्यान्निजागरे विष्णु मेदमन्ति ॥
 सदा तपस्या चरामि प्रीत्यै हरिवेधसोः ॥

'प्राचीन काल में एक नमय नैमिषारण्य में निवाम करने वाले

ऋषि-मुनियों को यह जानने की जिज्ञासा हुई कि शिव, विष्णु, महेश
 इन तीनों देवताओं में सर्वश्रेष्ठ कौन है ? वे इसका निर्णय करने के
 विचार में ब्रह्मलोक को गये । वहाँ उन्होंने ब्रह्माजी को यह कहते सुना,
 'तुम मृत्यु (विष्णु) को नमस्को दे, जिनका अस्तित्व नहीं मिले
 मैं यह एक शिव पुराण है, पर इसमें विष्णु को सर्वोच्च भक्त पर
 नहीं है । 'वैष्णव खण्ड' में तो बंकटाचल, जगन्नाथ पुरी, वैष्णव सागर
 जयण आदि के वर्णन में विष्णु की पूजा, उपासना, स्तव आदि का
 विचित्र और विधि-विधान दिया गया है । अन्य खण्डों में भी वि
 चर्चा बराबर आई है और उनकी शिव की समानता का ही द
 ा गया है । 'काशी खण्ड' में कहा गया है ।

यथा शिवस्तथा विष्णुर्नयाया विष्णुस्तथा शिवः ।

अन्तर शिवविष्णोश्च मनागपि न विद्यते ॥

“मगधन् । सत्कार के दृश्य और अदृश्य पदार्थों में से मैं जिसको महसूस और जिसको स्थापन करूँ ? जगत में जिनकी खिन्नी है, वे सब मेरे लिए माता पार्वती के गमान हैं, और जिनने भी पुरुष हैं, उन सब ही मैं मापके (निवन्धी के) रूप में देखता हूँ । यह विवेक मैं आपके ही प्रसाद से प्राप्त किया है, इसलिए आप मुझे नरक में डूबने से बचाइये ! सर्वकर संसार-सागर में फिर न गिर जाऊँ आप इसी की शिक्षा करें । जैसे दीपक हाथ में लेकर किसी वस्तु को खोजने वाला समस्त वस्तु को पाकर अन्त साधनों की तत्काल ध्यान नहीं देता उसी प्रकार योगी को अर्थार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाने पर वह सांसारिक माया मोह को त्याग देता है । सर्वव्यापी ब्रह्म को जान कर जिनके सब अध्यात्मिक कर्म निवृत्त हो जाते हैं उसी को विज्ञान पुरुष योगी कहते हैं । मानवी के लिए ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है । ज्ञानीइन प्राप्त हुए ज्ञान को किसी प्रकार खोरेना नहीं चाहते । मैं सत्कार-बन्धन से छूटने की इच्छा रखता हूँ इसलिए मुझमें ऐसी कोई बात नहीं कहनी चाहिए जिससे इन बन्धनों के टूट होने की आशंका हो ।”

इस प्रकार स्व-द सदा 'कुमार' ही बने गये और इन्ही नाम से प्रसिद्ध हुए । उन्होंने साधना-काल में ध्याने वाली प्रतिमा आदि विद्वियों का दूर भेगा दिया और कवन निमित्त समदृष्टि को ही स्वीकार किया । इसलिये वे सदा कवन सद्गुरुओं पर ही विभ्रमी नहीं रहे, पर वाम काष्ठ, मोह आदि पड़ुरिपुत्रों का भी उनके ऊपर कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ सका ।

सत्य की प्रतिष्ठा—

‘शाक्यन’ का उपाकरण सभी सर्व पुराणों तथा ग्रन्थों में भी प्रसिद्ध है । पर ‘मन्द पुराण’ में उसे जिस रूप में दिया गया है उससे यह अस्तित्व पर सत्य की विभ्रमी का दृष्टान्त बन गया है । उसके विष

‘शिव लिङ्ग’ का वर्णन किया गया वह वास्तव में इस विश्व ब्रह्माण्ड को रचने वाली विराट परमात्म-शक्ति का ही स्वरूप है। वह शक्ति अनन्त है, उसका आदि-अन्त होना सम्भव ही नहीं है। पर जब परमात्मा के प्रतीक उस लिङ्ग के आदि-अन्त का पता लगाने के लिए ब्रह्मा और त्रिपुत्र से कहा गया, तो वे सामूहिक आदेश को शिरोधार्य करके इसका निरुपेक्ष करने के लिए आकाश और पताल की तरफ खाना हो गये। ब्रह्माजी को स्वभाव से कुछ ‘चतुर’ माना गया है, क्योंकि उनको ‘सृष्टि’ रचना में सभी तरह का टेढ़ा सीधा कार्य समझ करना मिला है। इसलिये जब उनको ऊपर के मातो लोक पार कर लेने पर भी लिङ्ग के अतिम छोर का पता न लगा तो उन्होंने विचार किया कि यहाँ तक जाँच करने तो कोई आगे नहीं बसो न मैं नूँठ-भूँठ लिङ्ग का मस्तक देलने की बात कह कर सब की ‘बाइबाइ’ हासिल कर लूँ! पर ऐसी बात को समझ दर्शन विना प्रमाणा के कैसे मान सकेंगे, इस आशका से उन्होंने मार्ग में ही तो गवाह लग ले लिये। वे थे—गुरुभी गाय और देवकी का तेड। इन दोनों ने देव और ऋषियों के समूह के पास आकर ब्रह्माजी के इस दावे का समर्थन कर दिया कि ब्रह्माजी लिङ्ग का आदि देव धार्य हैं। इसी बीच वसुजो भी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने एक स्थानुपायी की तरह कह दिया कि मैंने सारी पातलों में आगे बढ कर धूम्र से भी विण के छोर की रात्र की पर वह तो सर्वत्र इसी रूप में व्याप्त दिखाई दिया।

इस पर ब्रह्माजी की चढ वनी और वे वही ज्ञान के साथ उच्चा-मन पर विराजमान हो गये। उसी समय आकाश वाणी हुई—“गुरुभी उषा केतकी ने जो कुछ कहा है, वह सब मिथ्या है, आप इनकी बातों पर तनिर भी विश्वास मत कीजिए।” इस पर सतत देवो ने शाप दिया कि ‘आज से गाय का मुख पवित्र के बजाय अपवित्र हो जायगा और केतकी का फूल सभी शिवजी पर नहीं चढ़ाया जायगा।’ इसके

पश्चात् पुनः आकाश वाणी हुई—“हे ब्रह्मा ! आपने भूलेंतावग जो मिथ्या वचन कहे हैं, इसलिये अब तुम्हारी पूजा नहीं होगी । जिन ऋषियों और भूगु षादि पुरोहितों ने तुम्हारा समर्पण किया है, वे भी अप्रज्य और तत्त्व के न जानने वाले, मत्सररतयुक्त, बाधक, धार्म प्रगल्भ करने वाले बन जायेंगे । वे एक-दूसरे की निंदा करते हुए बलेशयुक्त जीवन व्यतीत करने वाले होंगे ।”

यह उगाहान सत्य के प्रभाव को गर्वोपरि बतलाना है । असत्य प्राण प्रह्ला जैसे महान आत्मा के लिये भी कलक मोट पतन का कारण होता है । मनुष्य समझते हैं कि अर्पण भूँठी प्रशंसा करने हम लोगों की दृष्टि में बड़े बत जायेंगे, तबतब का लाम उठा सकेंगे, धन और पदवी प्राप्त कर सकेंगे । पर परिणाम प्रायः उल्टा ही होता है । भूँठा घादमो दो-वार व्यक्तियों को बहका सकता है, पर वह सब की आँखों में धून नहीं ञ्कोन सकता । समझदार और निवृत्त मनोवृत्ति के लोग उसकी चालाकी को उसी समय समझ लेते हैं, और भएडा-भोड कर देते हैं । इस कारण जो उसके पक्ष में होते हैं, वे भी कुछ समय पश्चात्

विक स्थिति को समझ जाते हैं और भूँठे की सर्वत्र निन्दा और ना ही प्राप्त होती है । सत्य की चाहे कुछ समय तक अतकन और पश्चात्पद स्थिति में रहना पड़े, पर अन्त में उसी की विजय होती है । ऐसा कभी नहीं हुआ कि सत्य हमेशा के लिये दब जाय पयवा नष्ट हो जाय । अगर ऐसा कभी दबने में पावे तो समझ लेना चाहिए कि उस 'सत्य' में कुछ दोष है पयवा उस व्यक्ति में कुछ त्रुटियाँ ऐसी हैं जो उसके गुण को उभरने नहीं देती ।

भारत के तीर्थ—

जैना हम प्रारम्भ में ही कह चुके हैं कि 'सत्य पुराण' का एक विशिष्ट लक्षण भारत के तीर्थों का वरण करना है । इसमें इनके अधिक

तीर्थों का बर्णन है कि उन सबको महज में स्थान में भी नहीं लाया जा सकता । हमारा अनुसरण है कि इनमें से बहुसंख्यक तीर्थ तो अब काल प्रभाव से टूट पूट कर नष्ट हो हो चुके होते । हम अपने स्थितिगत अनुभव के माध्यम पर कह सकते हैं कि प्रयाग श्री मधुरा में पुराने समय में अनेक कुण्ड थे पर आज उनका नाम ही शेष है । प्रयाग में सूरज कुण्ड के स्थान पर आज नम विहारीघर बना है । मधुरा में अधिकांश कुण्ड टूट पूट कर बर्तमान नष्ट रह गए हैं और कुछ तो निकुम्भ टीले के रूप में परिवर्तित हो गए हैं । फिर भी स्वन्द पुराणकार ने जिन प्रमुख तीर्थों का उल्लेख किया है और उनका माहात्म्य, पूजा-विधि, अनुतिर्पा आदि लिखी हैं, उनमें कितनी ही बातों की जातकारी होती है । "बर्तमानकाल का मात्र तीर्थों में अधिक महत्व" शीर्षक अध्याय में भूमिका स्वरूप भारत के अधिकांश प्रमुख तीर्थों का उल्लेख किया गया है । उसमें शिवजी द्वारा स्वन्द से कहा गया है—

"हे भडानन ! परमार्थ पथ के पवित्र मनुष्यों को भगवान के बहुसंख्य नाम का निराम प्रदान करने वाले बहुत-से तीर्थ और क्षेत्र हैं । उनमें से कोई कामना के अनुसरण फल देने वाले हैं और कोई मंगलदायक हैं । मद्धा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, तपती, सिन्धु, गोमती, कोशिकी, कावेरी, ताप्तिपणी, चन्द्रभागा, महेंद्रगिरी, त्रिशूलपला, केशवनी, सरयू, सातडू, पयस्विनी, गण्डकी, वाहूदा, गन्धु, सरस्वती—ये सब पवित्र नदिमा हैं और बार-बार सेवन करने पर भोग और मोक्ष का प्रदान करने वाली हैं । अयोध्या, द्वारका, काशी, मधुरा, धवतिका (उज्जैन) कुम्भेश्वर, रामतीर्थ, काशी, पृथ्वीतम क्षेत्र (जगन्नाथ), पुष्कर क्षेत्र, वसुदेव क्षेत्र, बारह क्षेत्र, तथा अद्वैती नामक महापुरुषमय क्षेत्र सब मनीषियों के साधक उत्तम तीर्थ हैं । एक अयोध्यापुरी के दर्शन में ही मनुष्य भव पापों से मुक्त होकर भगवान का साक्षात्कृत प्राप्त करते हैं ।"

'द्वारका में साक्षात् श्रीहरि विराजमान हैं और वे अपने स्थान

को कभी नहीं छोड़ते । मोमनी में स्नान करके भगवान् कृष्ण का दर्शन करने से बिना ज्ञान के भी मुक्ति हो जाती है । वाराणसी क्षेत्र में मखि-कणिका, ज्ञान वापी, विष्णु पादोदक, पन गङ्गा में स्नान करके मनुष्य की पुनः माता के स्तनो का दूध नहीं पीना पड़ता । मधुरा में भगवान् कृष्ण के जन्म स्थान पर जाकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है । उज्जैन में वैशाख मासे पर कीर्ति तीर्थ में योग लगाने और महाकालेश्वर शिव का दर्शन करने से सर्वत्र पार नष्ट हो जाता है । कुश्नेत्र तथा राम तीर्थ में सूर्य ग्रहण पर यथाशक्ति दान करने से भोज की प्राप्ति होती है । द्विदोत्र में पादोदक तथा का स्नान मुक्तिदाता है । विष्णुकाशी में माघमास विष्णु और शिवकाशी में भगवान् शिव निवास करते हैं । पुरु-पोत्तम क्षेत्र के मार्कण्डेय सरovar में स्नान करके जन्म घटने का दर्शन करने से मनुष्य पुनः इस नश्वर जगत में नहीं जाता । कानिक पूर्णिमा की पूर क्षेत्र में स्नान करने से मृत्यु उपरान्त ब्रह्मलोक में स्थान मिलता है । माघ मास में भक्तिपूर्वक प्रयाग के त्रिवणी संगम का स्नान अनन्त पुण्यफल का प्रदाता होता है ।”

‘भगवान् विष्णु के चारों क्षेत्रों की महिमा समस्त तीर्थों से अधिक है । तप, योग, सन्तान तथा सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है वह बड़ी क्षेत्र में भली भाँति दर्शन करने से ही प्राप्त हो जाता है ।”

हम यह स्वीकार करने में कोई विरोध नहीं कि हमारे पूर्वजों ने अनेक तीर्थों की स्थापना जन कल्याण की भावना तथा सामान्य जनता में प्राथमिक रुचि की वृद्धि के उद्देश्य से की थी । सैद्धांतिक तर्क से तीर्थ वास्तव में मद्विचारों तथा पुण्य-परम्पराओं का बीज बपन करने के लिये बन रहे । इनमें एक ओर जहाँ मनुष्यों को घर के सबीलों बाधों से निरत कर विस्तृत क्षेत्र में दान और समाज की स्थिति को समझने का अवसर मिलता था, वहाँ वाम धारा और परमार्थ की प्रकृतियों को

प्रभुपुटित होने की सम्भावना भी बढ़ती थी। पर भाव स्थिति चली होती जा रही है। हमारे तीर्थ सङ्ग्रहण के चञ्चल दोषों मोर दुर्गुणों के गड बनते जाते हैं। जहाँ किसी समय तीर्थ-पत्रियों के सम्मुख स्वार्थ-नवागी मोर परोपकार वाचारी ऋषि-मुनि पुण्य परमात्म का प्रदर्शन उद्दिष्ट करत रहते थे वहाँ पात्र पण्डित, पुरोहित तथा साधु वैश्वभारी धून लोग बनकर मोर ठगे जा सपूना दित्तवाते रहने हैं। परिणाम यह हुआ कि सर्व साधारण को बड़ा तीर्थों पर न क्रमशः हटती जाती है मोर सबभ्रष्ट तथा शिथिल लोग ता उनके नाम से नाक-भी तिकाएत लगते हैं। वास्तव में यह हिन्दू-समाज का बड़ा दुर्भाग है कि उनकी एक उपयोगी संस्था का स्वरूप ऐसा विकृत हो गया और यह कल्याण के बज्र व प्रत्याण का साधन बन गई।

ऋषियों की नामावली—

'अष्टावक्र श्रद्धा स्थान वर्णन' शीर्षक अध्याय (पृष्ठ २४६) में मार्कण्डेय ऋषि द्वारा नन्दि से प्रश्न किया गया कि 'अष्टावक्र शिव की उपासना की दृष्टि से ऐमः स्थान कौन-सा है जहाँ पर सभी प्रकार के कर्णों की प्राप्ति हो सक। उन्होंने कहा कि यह जितना स्वल्प में ही नहीं है वरन् सभी ऋषि-मुनिपों की है।' इसके बाद उन्होंने सब ऋषियों के नाम किये हैं, जो लगभग १४० होंगे। इनमें सृष्टि के पारि में पकट होने वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र सनक, सनन्दन, सन्तकुमार, मरीचि, पुत्रह, पुनस्व, वशिष्ठ भृगु, ऋषि आदि में लेकर पाराशर, व्यास, मार्कण्डेय, याज्ञवल्क्य, चरक, सुश्रुत आदि तक के नाम दिये गये। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि सप्त सप्त पुराणों की विविध कथाओं में कितने नाम ऋषियों के आये हैं वे सभी एक जगह इकट्ठे कर दिए गये हैं। इनमें से सनक-सनन्दन, मरीचि आदि नाम सृष्टि प्रारम्भ होने के समय के हैं, पाराशर, व्यास आदि उपर के प्रन्तिम भाग

के हैं और चरक, सुश्रुत आदि दो-चार हजार वर्ष पुराने आयुर्वेद शास्त्र के भाष्यार्थों के हैं।

इस उदाहरण से प्रतीत होता है कि लेखक को सभी प्रसिद्ध ऋषियों की नामावली देनी थी, इसलिए जितने नाम उसे मिल सके वे सभी लिख डाले, यद्यपि पुराणों की ही वर्ष-संख्या के हिसाब से इनके समय में लाखों वर्ष का अंतर है। यह उदाहरण हमसे इस उद्देश्य से दिया है कि जो लोग इन प्राचीन ग्रन्थों में निसे प्रत्येक श्लोक को एक अकाट्य तथ्य मान लेते हैं, वे धार्मिक स्थिति को समझ सकें। जैसा हम अनेक बार बतला चुके हैं पुराणों की कथाएँ 'उपाख्यान' के रूप में लिखी गई हैं, जिसका भासाय यह होता है कि उनका मूल में कुछ सच है पर कथा का पूरा ढाँचा रचवाने अपनी कल्पना और कवित्व-शक्ति से तैयार किया है। ऐसे कवि इस बात की विमता नहीं करते कि वे दो विभिन्न कालों की घटनाओं या स्थितियों का बखान एक साथ मिला दे रहे हैं। अथवा अनन्य प्रलय दूरवर्ती स्थानों में होने वाली कई घटनाओं को जिनो एक नय स्थान से सम्बद्ध स्थित दे रहे हैं। उनका ध्यान तो मुख्य काव्य के रस का परिपक्व होने तथा छन्द-शास्त्र के नियमों का पालन करने में लगा रहता है, जिनसे उनकी रचना प्रभावशाली और आकर्षक बन सके। यदि हम इन तथ्यों को सच ही तरह समझने और तदनुसार ही उनका स्वाभाव्य करें तो उन श्लोकों की लच्छाओं में बच सकत हैं, जो प्रायः ऐसे प्राचीन तथ्य-ग्रन्थों के सम्बन्ध में पैदा हुआ करती है।

महिता-धर्म की महत्ता—

आपस्तम्ब नाम के महर्षि एक समय साधना करने के निमित्त नर्मदा और सरयु नदियों के संगम पर जल के भीतर जा कर बैठ गए। वहाँ बैठने ही मत्ताह मछली पकड़ रहे थे, उसीपक्ष वे मुनि भी

मछलियों के साथ उनके ज्ञान में कौन कर बाहर निकल पाये । उनमें इस प्रकार दिक्का देख कर मत्लाह बहुत बड़े योग-समा-प्रार्थना करने लगे । पर मुनि उस समय मछलियों का महार होना देख कर कुछ और ही सोच रहे थे । उन्होंने मत्लाहों से कहा—

“भेद-दृष्टि रखने वाले जीवों द्वारा दुःख में डाले हुए प्राणियों की योग जो लक्षण ध्यान नहीं देते उनसे बड़ कर कूर समा में घोर कौन होगा ? सही । जीव जानने प्राणियों के प्रति यह निर्दयनापूर्ण तथा स्वार्थ के लिए उनका स्वयं से वदिरान—यह कैसा पादवयं का विषय है ? जानिया म भी जो कवन ध्यान जो हिन में तरार है, वह प्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि यदि ज्ञानी पुरुष भी अपने स्वार्थ का दृष्टिगोचर रस कर ज्ञान-व्यापन में लगे रहते हैं, तो इस जगत् क दुःखी प्राणी किमकी तरण जायेगे ? जो मनुष्य प्रकृति ही शुभ भोगना च हना है उसे सुमुझ पुरुष महापापी बनना है । मेरे लिए यह कौन-सा उपाय है जिनमें मैं दुःखित चित्त वाले मनुष्यों जीवों के भीता प्रवेश करके प्रकृति ही मय के कष्टों को भोगना रहूँ । मेरे नाम जो कुछ भी पुस्तक है, वह सभी दीन-दुःखियों के पास चला जाय और उन्होंने जो कुछ दाय किया है वह मेरे पास आ जाय । इन दरिद्र, विकलांग तथा रोगी प्राणियों के कष्टों को देख कर किमके हृदय में दया उत्पन्न नहीं होगी वह मेरे विचार से मनुष्य नहीं रासम है । जो समय होकर भी प्रण-मद में पड़े हुए, मय विज्ञान प्राणियों की रक्षा नहीं करता, यह उनके बापों को ही भोषता है । मनः में इन दीन दुःखी मछलियों को दुःख से मुक्त करने का कार्य छोड़ कर मुक्ति को भी वरण नहीं करना चाहता, फिर स्वर्ग-लोक की तो बात ही क्या है ।”

मत्लाहों ने प्रापस्तम्ब ऋषि की सब बातें जाकर महाराज साम्राज्य को बतलायी । अत्र वे बटनारण्य पर प्राये तो ऋषि ने कहा कि

‘इन मत्लाहो ने मुझे जल से निकालने से बड़ा परिश्रम किया है। इस लिए मेरा जो कुछ मूल्य तुम उचित समझो वह इनको दे दो।’

राजा नाभाय भाषस्तम्ब के मूल्य के रूप में मत्लाहो को एक लाख से जग कर अपना राज्य तक देने को तैयार हो गए, पर भाषस्तम्ब ने वने पर्याप्त न समझा। इस पर राजा बहुत विचिंतित हुआ। उसी समय लीमना ऋषि वहाँ पर आये और उन्होंने कहा कि महान ज्ञानी द्विव का मूल्य रूपया और राज्य नहीं हो सकता, वान् उसका मूल्य तो गौयें हैं जो उसी की तरह जगत की हितकारिणी होती हैं। गौयों की महिमा में साय हो कहा गया है—

गावः प्रदक्षिणा कार्या वन्दनीया हि नित्यशः ।
मगला पतन दिव्या सृष्टास्त्वेताः स्वयम्भुवा ॥
अप्यागाराणि विभागो देवतायतनानि च ।
यद्गोमतेन शुद्धयन्ति किं ब्रूमो ह्यधिक तत ॥
गोमूत्र गोमय क्षीर दधि सपिस्तथैव च ।
गवा पञ्च पवित्राणि पुनान्त सकल जगत् ॥

‘इत्या जो ने गौयों को दिव्य गुणों से युक्त बनाया है। वे अत्यन्त मंगलकारिणी हैं। घन सदैव उनकी पण्डिता और वन्दना करनी चाहिये। जिन गौयों के गोबर से ब्राह्मणों के घर तथा देव-मन्दिर भी पवित्र हो जाते हैं उनसे बड़ कर और किये कहा जा सकता है? गौयों के मूत्र गोबर, दूध दही, घी—ये पाँचो वस्तुएँ पवित्र मानती गई हैं और ये सम्पूर्ण जगत को पवित्र करने वाली हैं।’

इस प्रकार भाषस्तम्ब ऋषि के प्राणियों की उपयोगिता और उनकी रक्षा तथा पालन करने का प्रतिपादन किया। निष्कन्देह किसी भी दुःखी प्राणी पर दया करके उसकी सहायता करना परम कर्म है। इससे उसके दुःखों का चाहे पूर्णतया अन्त न होवा हो, पर इस प्रकार

की भावना से मनुष्य का अपना हृदय प्रवक्ष्य उच्च और अधिक पवित्र बनता है। इस प्रकार जीव-दया और अहिंसा का व्यवहार ही मनुष्य को साधारण साधारण चराचर से उठा कर देवता की भूमिका में पहुँचा देता है। अपने लिए तो सभी जीते, पशुधर्म और कष्ट सहन करते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की अवसर बहुत बड़े महात्मा की बात नहीं है। आत्म-रक्षा और आत्म-विक्रम प्रत्येक प्राणी का स्वाभाविक कर्तव्य है, जिसे वह अपने स्वार्थ की दृष्टि में करता ही रहता है। प्रयत्न तो सभी की है कि अपने स्वार्थ का समर्थन करके दूसरों के दुःखों को मनु-भव करता और उन्हें दूर करने के लिए प्रयोग करता है।

सदाचार महिमा—

महावि शौराणिक धर्म में तोर्यं उग्र, देह-दर्शन आदि की महिमा ही विशेष कही गई है और इन्हीं को पापों से छुटकारा दिलाने का साधन बताया गया है, तो भी बीच-बीच में यह सकेत पाया जाता है कि इन सब धर्म कार्यों में सदाचार का आधार प्रवक्ष्य होना चाहिए। दूराचार में मनुष्य निरन्तर पाप-पक्ष में डूबना जाता है और सदाचार के सहारे वह उच्च चराचर पर प्रतिष्ठित होता है। इसलिए धर्म की कामना रखने वालों को सदाचार का पालन अवश्य करणीय है। इसके प्रतिपादन में 'ब्रह्म खण्ड' का निम्न उद्धरण महत्वपूर्ण है—

“घाचार ही एक महान वस्तु है। घाचार से ही मनुष्य धर्म की प्राप्ति किया करता है और उसी से सुफल प्राप्त करता है, घाचार से श्री (नन्दी) की प्राप्ति होती है। इसका विवेचन करते हुए व्यास देव ने कहा है कि ऋषि, कुमि, घबड़, पक्षी, पशु और मानव—ये क्रम से 'धार्मिक' होते हैं। इनसे विशेष धार्मिक गुरु इमा करते हैं। जो प्राणी पाप से छुटकारा पाने का प्रयत्न करते हैं वे सब 'महाभाग' बने जाते हैं। उनके श्रेष्ठ वे हैं जो बुद्धिपूर्वक साधरण करते हैं। समस्त बुद्धि वाले

प्राणिमो मे मानव श्रेष्ठ होवा है। मनुष्यो मे विप्र श्रेष्ठ होने हैं, विप्रो से विद्वान् श्रेष्ठ है, जनन श्रेष्ठ 'कृत्-बुद्धि' होते है। 'कृत् बुद्धि' से श्रेष्ठ 'कर्ता' और कर्तामो से श्रेष्ठ 'ब्रह्म तत्पर' होते है। तब और विद्या की दृष्टि से ये एक दूसरे क पूत्रनीय माने जात है। ब्रह्मा के द्वारा ही 'ब्राह्मण' की सृष्टि की गई है इसलिए वह सब प्राणियों में श्रेष्ठ और पूज्य है। तब समस्त श्रेष्ठताओं का आधार सदाचार ही है। जो सदाचार से रहित है वह उसे कुछ भी नहीं है। इसलिए ब्रह्मण को सदा आचारवान होना चाहिए। वह राग मार द्वेष न भी परे हाता है और सभी बुद्धिमान समस्त सम्मान करत है। उनके मनानुसार ऐसा सदाचार ही धर्म का मूल है। जो व्यक्ति प्र-उ प्रसार न श्रेष्ठताओं क लक्षणों से मुक्त न जान पड़े पर जो दुःख सद ताप हा और किसी न ईर्ष्या-द्वेष न रखता हो, वही सम र मनी व्यय जीवन रहन योग्य है, जिसस लक्षक द्वारा प्राणिमो का द्वित मन्वत हाता रह।"

"इमान् मनुष्यो का सर्वत्र मारधान हाकर मर चार-धर्म का पालन करना चाहिए। जिसका कुतूहल दुःखचार की मार हाता है वह लोक म मदान निन्दा का पात्र हाता है। दुःखचार व्यक्त मनक प्रकार की व्यभिचार—गोश म शरा रहता है और इस कारण उसका जीवन भी मन्व हो जात है और उद हयेत। दुःख ही भाग्य करता है। इसलिए मनुष्य का वही धर्म करना चाहिए जिसक करत से मन्वरात्मा प्रमत्त हा इसक विपरीत धर्म कर्मो नहीं करना चाहिए।"

'यत्नार' से ना एरुपाय धर्म ही सज्जी होना है। इसलिए सर्वदा इन बात को ध्यान म रखे कि धर्म म पर पीडा रूप पाव धर्म अभी न हो। विद्या, माना पुत्र, भ्र श, स्त्री और बन्धु बान्धव ता कवन पीटे समय तक धर्मन जन पटन है, धर्मका यह जीवन मरना ही भाषा और धर्मना ही जायना। धर्मन धुम धयवा धनुष धर्मो का धन भी धर्मो स्वय भोगता पटता है। इनक लिए धरनी मनाई बुधई समस्त

वाले व्यक्ति को मर्दव उत्तम पुरुषों की ही मगनि बरनी चाहिए, जिमसे श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा मिलती रहे । जिन लोगों के विचार घषमना के हों, उनको मर्दव परिश्याग करना चाहिए । इसी भाग पर चलने से 'ब्रह्मण' सब्बो श्रेष्ठता और पूज्य पद प्राप्त किया करता है और इसके विररीत चलने से वह नीचना को प्राप्त हो जाता है ।"

राम-नाम की महिमा—

यद्यपि तीनों देवों—ब्रह्मा, विष्णु, महेश की एकता का प्रतिपादन अनेक पुराणों में किया गया है और इस इस भूमिका के आरम्भ में ही राम कथा को उद्धृत कर चुके हैं, जिममें प्रकट होता है कि ये महान देवगण परस्पर एक दूसरे को बड़ कर मानते हैं । पर आगे चल कर 'ब्रह्म खण्ड' में राम नाम की महिमा का जिम रूप में वर्णन किया गया है, वह तो अभूतपूर्व है । तुलसी दासजी की 'रामायण' वर्तमान समय में 'राम' की महिमा का सबसे अधिक प्रचार करने वाला ग्रन्थ माना जाता है । उसके आरम्भ में ही शिव-पार्वती के सम्वाद के रूप में राम नाम की महिमा का वर्णन किया गया है । 'स्कन्द पुराण' के अत्रलोकन करने पर पता चलता है कि गोस्वामी जी ने उसका भाव इस पुराण में ही ग्रहण किया हो तो बुद्ध आश्चर्य नहीं । 'रामायण' में पावती जी से शिवजी से कहा है—

जो मोपर प्रसन्न सुखरामो,
जानिअ सत्य मोहि निज दासो ।
तो प्रभु हरहु सोर अग्याना,
कहि रघुनाथ कथा विधि नाना ।
सेस सारदा वेद पुराना,
सकन करहि रघुपति गुन गाना ।

तुम्हें पुनि राम-राम दिन राती,
सादर जपहुँ अनन आराती ।
जदपि जोपिता नहि आधिकारी,
दासी मन क्रम वचन तुम्हारी ।

‘स्कन्द पुराण’ में भी कहा गया है कि जब शिव-पार्वती एकात्म स्थान में बैठे थे तो पार्वती जी ने उनसे कहा—

ततः सा विश्वजननी पार्वती प्राह शङ्करम् ।
इय ते करुणा नित्यमक्षमाला महेश्वर ॥
त्वया किं जप्यते देव सन्देहयनि मे मनः ।
त्वमेकः सर्वभूतानाम् कृत्स्नकलेश्वरः ॥
त्वत्तः परतरं किञ्चिद्यत्वं ध्यायसिचेनसा ।
तन्मे कथय देवेश यद्यहं दयिता तव ॥

“उप प्रथम पर जगत जननी पार्वतीजी ने शङ्कर भगवान से कहा कि आप जी सदैव अपने हाथ में माला लेकर जप करते रहते हैं, वह क्या बात है ? मेरे मन में यही सन्देह बारम्बार उठता रहता है । आप तो समस्त प्राणियों के एकमात्र ईश्वर हैं । क्या आपके ऊपर भी कोई अन्य तात्व है, जिसका आप विसत लगा कर ध्यान करते रहते हैं ? हमका जो बुद्ध रहस्य हो वह आप मुझे प्रवश्य बतायें क्योंकि मैं आपकी प्राण-प्रिया हूँ ।”

श्री शिवजी ने उत्तर दिया — ‘मैं जिस नाम का जप और ध्यान करता हूँ वह भगवान के समस्त नामों का सार रूप है । मैं ‘राम’ नाम वाले सर्वश्रेष्ठ अवतार का ध्यान करता हूँ । जिन भगवान के सभी तक २४ अवतार हो चुके हैं, मैं उन्हीं का जप करता रहता हूँ । इन सब का सार का भी सार है यह ‘प्रणव’ नाम वाला है और वह सनातन दास

अक्षरों से संयुक्त ब्रह्म का ही रूप है । इस प्रोकार के सहित जो द्वादश अक्षरों का बीजक है, उसका जाप करने वाले के लिए तो यह इतना प्रभावशाली सिद्ध होता है कि समस्त पापों को दावाग्नि के समान तनिक देर में भस्म कर देता है । यह सब से अधिक महान् और तेजस्वी है । यह इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है और तीनों लोकों का यह भूपण है यह शुभाशुभ का विनाश करने वाला करोड़ों जन्मों में प्राप्त होना है । द्वादश अक्षर का चिन्तन करना ही परम ज्ञान है ।”

पर विधि-विधानों के कारण सब लोगों के लिए पूरा द्वादश अक्षर मन्त्र का जप भी आवश्यक नहीं है । कवल ‘राम’ का नाम लेकर ही वे अपना उद्धार कर सकते हैं । इस सम्बन्ध में शिवजी ने बतलाया—

रामेति द्व्यक्षर जपः सर्वं पापापनोदकः ।
 गच्छस्तिष्ठच्छ्रयानो वा मनुजो राम कीर्तनात् ॥
 इहनिवृत्तिमायाति प्राग्तेहरिगणो भवेत् ।
 रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्र कोटिशताधिकः ॥
 न रामादधिक किञ्चित्पठन जगती तले ।
 रामनामाश्रया ये वं न तेषां यम यातना ।
 ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहाश्रये ।
 रामनाम्नैव विलय यान्ति नात्र विचारणा ॥
 रमते सर्वं भूतेषु स्थावरं चरेषु च ।
 अन्तरात्म स्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥
 रामेति मन्त्र राजोऽयं भय व्याधि विषूदक ।
 रणे विजयदश्चापि सर्वं कार्यार्थं साधकः ॥
 सर्वं तीर्थं फल प्रोक्तो विप्राणामपि कामदः ।
 रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ।

तस्मात् त्वमपि देवेशि राम नाम सदा वद ।

रा नाम जपेद्यो वं मुच्यते सर्वं क्लिष्टिषु ॥

“ 'राम' इन दो अक्षरों का जप समस्त पापों को नष्ट करने वाला है । चलते-फिरते, बैठे हुए, लेटे हुए राम का जप करते रहने से मनुष्य निश्चय ही भव-बन्धनों से छुटकारा पा कर भगवान का सन्निध्य प्राप्त कर लेता है । यह दो अक्षरों का 'राम' नाम मन्त्र बरोडो मन्त्रो बी अपेक्षा शक्तिशाली है । यह सभी प्रकृति वालों के लिए वाप न शक कहा गया है । इस समार में राम नाम से बढ कर पढने लायक और कोई बातु नहीं है । जा केवल इस नाम का अवलम्बन लेता है उसको सम-यानना कदापि गहन नहीं करनी पडता । सभी प्रकार क दोष, विघ्न, विग्रह, विनाश करन वाले कारण राम-नाम के प्रभाव से दूर हो जाते हैं । समस्त प्राणियों में चाह वे ग्याङ्ग हो या जङ्गम श्रीराम ही सन्त-रात्मा के रूप में उपस्थित रहत ३ श्रीराम' का नाम ही मन्थराज है, जितने ससार का प्रत्येक भय और व्याधि नष्ट हो सकती है । यह मन्थ-राज सब तरह के सघर्षों में विजय प्राप्त कराने वाला और समस्त कार्यो में सिद्धि प्रदान करने वाला है । इसे समस्त तीर्थों का फल प्रदान करने वाला कहा गया है । यह विशेष क लिप भी समस्त कामनाओं का पूरा करने वाला होता है । जिस समय मूल में 'श्रीरामचन्द्र 'श्रीराम' इन अक्षरों का उच्चारण किया जाता है, तो तत्काल सब मनोरथ पूरे हो जाते हैं । इसलिए हे देवी (पार्वतीजी) आप भी 'श्रीराम' के शुभ नाम का उच्चारण किया करो, इससे समस्त पाप, दोष निश्चय ही दूर हो जाते हैं ।”

‘शिव’ नाम की महिमा—

राम-नाम की महिमा सुन कर नर्मिपारण्य के मुनियों ने शिव नाम की महिमा वर्णन करने की प्रार्थना की तो सूतजी कहने लगे—

ॐ, "श्री शिवाय नमः—मन्त्र का जप करने का फल महान बल्य-
 णकारी होता है । यह पंचाक्षरी मन्त्र अपने उपासक को निश्चय ही
 मुक्ति प्रदान करने वाला है । इसलिए मुक्ति की प्राप्ति के लिये
 सभी मुनि-ऋषियों द्वारा इसका सेवन किया जाता है । इस मन्त्र का
 माहात्म्य चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा भी नहीं कहा जा सकता । समस्त श्रुतियों,
 उपनिषदों तथा षर्म-शास्त्रों का सार इस शिव-मन्त्र में सम्मिलित है ।
 सत् चित् और आनन्द के लक्षण वाले भगवान् शिव स्वयं इसमें रमण
 किया करते हैं । इसी मन्त्रराज का ध्याय्य लेकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों
 ने परम ब्रह्म की प्राप्ति किया था । भगवान् शिव को इस प्रकार नम-
 स्कार करने से जीव, ब्रह्म-ऐक्य प्राप्त कर लेता है ।"

"भव-बन्धनों से ग्रस्त प्राणियों के उद्धार के लिये ही भगवान्
 शिव ने स्वयं इस 'श्री नमः शिवाय' मन्त्र को कहा था । यह मन्त्र जिस
 मनुष्य के हृदय वक्ष्य जाता है, फिर उसे बहुत-से अन्य जप तप, कष्ट
 सहन से क्या प्रयोजन है ? ये देहधारी तभी तक अनेक दुःखों को भोगने
 हुए इस दारुण जगत में भ्रमण किया करते हैं, जब तक इस महामन्त्र
 का उच्चारण नहीं करते । यह पंचाक्षरी मन्त्र अनेक मन्त्रराजों का भी
 राजा है । यह सम्पूर्ण वेदान्तों में शिरोमणि है, सम्पूर्ण ज्ञान का निधान
 है, मोक्ष-मार्ग का दीपक है और अविद्या-समुद्र का बहवानल है । यह
 महान् पातकों को नष्ट करने के लिए दावाग्नि के तुल्य है । मुक्ति की
 इच्छा रखने वाला व्यक्ति, चाहे वह ब्रूह, स्त्री अथवा निम्न समझी जाने
 वाली जाति का क्यों न हो, इसको बिना बाधा के धारण कर सकता है ।
 इस मन्त्रराज में न कोई दीक्षा होती है, न होम होता है, न कोई
 सम्स्कार-नर्पण आदि करना पड़ता है । इस मन्त्र का कोई विशेष काल
 भी नहीं है, न कोई विशेष उपदेश होता है । यह मन्त्र तो सदा ही शुचि
 रहा करता है । इसीलिए कहा गया है—

महापातक विच्छेदत्रं शिवइत्यक्षर द्वयम् ।

अल नमस्क्रियायुक्तो भुवतये परिकल्पते ॥
उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्त क्षेत्रेच पावने ।
सद्योयथेप्सितासिद्धि ददातीतिकिमद्भुतम् ।

'महापातकी को दूर करने के लिये 'शिव' से ही अथवा ही पर्याप्त होते हैं । जब इन दो अक्षरों में 'नम' क्रिया वाचक जोड़ दिया जाता है तो वह 'नम शिवाय' महामन्त्र मुक्ति प्रदाता बन जाता है । यदि हमका उपदेश किसी सद्गुरु से लेकर किसी पुराण क्षेत्र में हमका जप किया जाय तो वह तुरन्त ही इच्छित मनोरथ की पूर्ति करने वाली होता है, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है ।'

दूसरी प्रकार 'कृष्ण नाम' की महिमा भी उ-मुक्त भाव में बचन की गई है । भगवान विष्णु ने स्वयं ब्रह्माजी को बतलाया कि जो प्रति-दिन 'कृष्ण कृष्ण' का उच्चारण किया करता है वह कभी नकामी नहीं हो सकता —

कृष्ण कृष्णानि कृष्णोति यो मा स्मरति ति त्यस ।
जल भित्वा यथा पद्म नरकादुद्वराम्पहम् ॥

पाठक कदाचित् एकही साथ राम, कृष्ण, शिव तीनों का एक साथ महात्म्य और एक साथ प्रभाव सुन कर इस असमझ में पड़ जाय कि इन तीनों में से कौन ज्यादा ठार है, अथवा विशेष फल देने वाला है ? अनेक तर्क वितर्कवादी इस प्रकार भिन्नतायुक्त कथनों को दूर कर ही पुराणों की विपरीत पालाचना करने लगते हैं कि उनमें तो तरह तरह की परस्पर विरोधी बातें भी हुई हैं । उनको जानना चाहिए कि इस प्रकार की ध्वनि रखने वालों को समझाने के लिए ही इन तीनों का यखुंन एक साथ किया गया है । हम ऐसे सदायप्रस्त या सम्प्रदायवादी अन्वयों को बतलाना चाहते हैं कि सभी मन्त्र, जप, अनुष्ठान उत्तम हैं,

यदि उनको कुछ मन और अच्छे भाव से किया जाय । समस्त शक्ति और सिद्धि ही आपके हृदय के भीतर हैं । इसको तो इसमें कोई युगाई नहीं जान पड़ती कि यदि एक व्यक्ति राम का नाम लेता, है, दूसरा शिव का रूप करता है और तीसरा दुर्गा की उपासना करता है । कराडो क जैन-समूह से यदि सम्कार-भेद, देशभेद आदि के कारण दो बार तरह की उपासना पढ़ाविया—साधना मार्ग राम से लये लये तो इसमें कोई हानिकारक बात नहीं जान पड़ती ।

राम, शिव अथवा कृष्ण आदि नाम केवल एक सामान्य साधन मात्र है । आप हठ प्रथा और अच्छे हृदय से जिन भगवत लये यदि निरस-सर्वम पूर्वक उपासना ध्यान करते तो थोड़ा फल का प्राप्त हाना निश्चित है । उसमें किसी प्रकार के प्रमाणा, तर्क या विवाद की सुझावना नहीं । हमारे मन की शक्ति और हठ कारण होने पर अधिक प्रमाद-शाली है कि यदि हमसे सम्बन्ध निया बाय और उचित नीति से प्रयोग किया जाय, तो उनका लिए कोई बाय सम ध्य अथवा असम्भव नहीं है । विभिन्न इष्टदेवों अथवा विशिष्ट विधि विधानों की उपासना अथवा प्रशंसा से ही मय उठाना काम है, जिसकी अन्तरात्मा सभी सोचो पडी है और जिन्होंने उसे पहिचाना नहीं है । अन्यथा यदि हम आशुन करते तो दो सया एक ही प्रकार का मन्त्र हमारा बड़ा पात्र कर सकता है ।

पर इस शिवरत्न से जो मुख्य बात प्रकट होती है, वह स्कन्द-पुराणकार की निष्पक्ष साम्प्रदायिक भावना है । किसी एक इष्ट देव की मान्यता में कोई युगाई की बात नहीं है, पर यदि अपने इष्ट की प्रशंसा के लिए दूसरे की निन्दा-कुत्सा की बाय तो यह निश्चय ही एक गहित आवरण है ।

'स्कन्द पुराण' को एक प्रकार में तीर्थों की मार्गदर्शिका (गाइड) कहें तो अनुचित न होगा । इसमें अनुबन्ध रामेश्वर से बड़ीताशयण तक

घोर जगन्नाथ पुरी से लेकर उज्जैन तक के हजारों तीर्थों का वर्णन है, और उन्हीं के सन्दर्भ में हजारों कथाएँ भी दी गई हैं। दक्षिण भारत (मद्रास) के अरुणाचल और वेंकटाचल, उड़ीसा के पुरी, उत्तर प्रदेश के काशी और मालवा के उज्जैन में सम्बन्धित समस्त छोटे-बड़े मन्दिरों, देवालयों, शिवालयों का तो इसमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अयोध्या का भी वर्णन बहुत भविक है और ध्रुज का भी परिचय ठीक तरह से दिया गया है। द्वारिका-वर्णन इसमें नहीं पाया जाता, जिसका कारण सम्भवतः यह हो कि उसका महत्त्व तीन-चार ही वर्ष से ही बढ़ने लगा है।

जैसा हम लिन चुके हैं समस्त पुराणों में 'स्कन्द पुराण' अधिक लोकप्रियता वाला है। यह ग्रन्थ पन्नास वर्ष पहले जब छपा था तब १०० १५० २० में बिलता था और अब तो पगर एकाग्र प्रति मिल भी सकती है तो कीमत दस गुनी मानी जाती है। यही कारण है कि जनसामान्य जनसामान्य की कथा में इसका नाम दुनि श्रीस्कन्द पुराणों देवा रादे सुन लेन के अनिरिक्त कुछ नहीं जानते। हमने इसकी उन्ही गद्य की उपयोगी सामग्री को बड़े परिश्रम से संग्रहित किया है। हमें प्यारा है कि हमारा यह मुलम और सशोधित संस्करण पाठकों को अवश्य लाभकारी प्रतीत होगा।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

भूमिका

३

✽ महेश्वर-खण्ड ✽

१. दक्ष वृत्तान्त वर्णन	२३
२. दक्ष-यज्ञ वर्णन	४२
३. सती का दक्ष यज्ञशाला में प्रवेश	५३
४. देवताओं और शिवगणों में युद्ध	६५
५. वीरभद्र द्वारा दक्ष का शिरच्छेदन	७८
६. तिग प्रतिष्ठा वर्णन	८६
७. देवों द्वारा तिग को स्तुति	९८
८. रावणोपासना ,	१०६
९. गुरु की अज्ञानता ने इन्द्र का राज्य भंग	१२६
१०. लक्ष्मी देवी का अविर्भाव	१३८
११. अमृत विभाजन वर्णन	१४३
१२. शिवलिंग माहात्म्य वर्णन	१५५
१३. राशि-नक्षत्र निरूपण	१७४
१४. दान भेद प्रशंसा वर्णन	१८१
१५. सुतनु और नारद सम्वाद	१९८
१६. शिव-पूजन माहात्म्य वर्णन	२२३
१७. विवश शिव-क्षेत्रों का शक्ति सहित वर्णन	२३५
१८. अरुणाचल रहस्य वर्णन	२४९
१९. अरुणाचल स्थान माहात्म्य	२५३

* दीर्घाव-खण्ड *

२०. वैष्णवाचल माहात्म्य	२६५
२१. श्री वाराह मन्वाराधन विधि वर्णन	२८४
२२. रामानुजारय द्विज वृत्तान्त वर्णन	२८६
२३. श्रीवैष्णवाचल सर्वभुष्यतोर्थाधारत्व वर्णन	३०१
२४. ब्रह्मा की प्राथमता पर विष्णु का प्रकट होना	३११
२५. रथनिर्माण वर्णन	३१६
२६. रथयात्रा माहात्म्य विधि कथन	३३१
२७. भगवत् शयनोत्सव विधि वर्णन	३३७
२८. भगवत्-प्रसाद निर्मात्यादि माहात्म्य वर्णन	३३४
२९- बदरिकाश्रमस्थ सर्वतोर्थाधिपत्व वर्णन	३५२
३०. कार्तिक मास व्रत प्रशंसा वर्णन	३६४
३१. सर्वेश्वर्य मास प्रशमन तथा स्नान माहात्म्य वर्णन	३७४
३२. ज्ञान स्वप्न निष्पत्त्य	३७६
३३. वीरभ्य भक्ति निरूपण	३९३
३४. क्रियायोगाधिकारादि वर्णन	४१५

* ब्रह्म खण्ड *

३५. मंगु स्नान माहात्म्य वर्णन	४१५
३६. ब्रह्म कुण्ड प्रशंसा	४२५
३७. लक्ष्मी तीर्थ प्रशंसा	४२६
३८. गाम्भीरी सरस्वती तीर्थ प्रशंसा	४४०
३९. घर्मरिष्य माहात्म्य	४५७
४०. सदाचार वर्णन	४५२
४१. हृष्योवाख्यान वर्णन	४७८
४२. कति धर्म वर्णन	४९२
४३. धनुर्मान स्नान महत्त्व वर्णन	४९६

१. स्कन्दपुराण ॥

॥ माहेश्वर खंड ॥

१—दक्ष वृत्तान्त वर्णन

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
यस्याज्ञया जगत्स्रष्टा विरिञ्चिः पालको हरिः ।
सहस्रां कालसदाश्विनमस्तस्मिन्पिताकृते ॥२॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणां श्रेष्ठमुत्तमम् ।
तत्रैव नैमिषारण्ये ग्रीनकाद्यास्तपोधनाः ॥
दीर्घसत्रं प्रकुर्वन्तः सत्रिणः क्रमं चैतदाः ॥३॥
तेषां सत्सु नोत्सुक्यादागतो हि महातपाः ।
व्यासशिष्यो महाप्राज्ञो लोमशो नामनामतः ॥४॥
तत्रागतं ते ददृशुर्मुनयो दीर्घसत्रिणः ।
उत्सुष्युर्गुणवत्सर्वे सार्वभृहस्ताः समुत्सुकाः ॥५॥
दत्त्वाऽऽर्घ्यपाद्यं सत्कृत्य मुनयो वीतकल्मषाः ।
तं पप्रच्छुर्महामागाः शिवधर्मसंविस्तरम् ॥६॥

जगदान श्री नारायण की सेवा में नमस्कार समर्पित करके नरों में उत्तम नर को प्रणाम करके तथा देवी सरस्वती की वन्दना करके इसके पश्चात् जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए ॥१॥ जिसकी आज्ञा से विरिञ्चि इस जगत का सृजन करने वाला है—हरि (श्री विष्णु) इस जगत के पातक हैं और काल सदाश्व संहार किया करते हैं उन

मगवान विनाकी के लिए नमस्कार है ।२। वहीं पर नैमिषारण्य में जो समस्त तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ उत्तम तीर्थ है तथा सम्पूर्णा क्षेत्रों में सर्वोत्तम क्षेत्र है शौनक आदि तपोवन जो कर्म करने में विद्यमान थे तथा सत्र करने वाले थे दीर्घ सत्र कर रहे थे ।३। उन समस्त तपस्विणों के दर्शन करने की उत्सुकता से महान् तपस्वी, महान् मनीषी, व्यासजी के शिष्य सोमना नामधारी आ गये थे ।४। उन दीर्घ सत्र करने वाले महामुनियों ने वहाँ पर समागत हुए उनका दर्शन किया था । ज्यों ही उन्होंने लोमश मुनि को देखा था वे सबके नव बडे ही समुत्सुक होते हुये मध्यं पात्र हाथों में ग्रहण करके एक साथ उठकर खड़े हो गये थे । उन मुनियों ने लोमश महर्षि का मध्यं-पात्र समर्पित करके तथा उत्कार करके अपने समस्त कल्पों को नष्ट करते हुए महान् भाग वाले उन मुनियों ने उन सोमश ऋषि से मगवान सत्र के कर्म को विस्तार के सहित पूछा था ।२।६।

कथयस्व महाप्राज्ञ ! देवदेवस्य घूलिनः ।
 महिमानं महाभागध्यानाचनसमन्वितम् ।७।
 सम्मार्जने किं फलं स्यात्तथारङ्गावतीषु च ।
 प्रदाने दंपत्यास्याश्वतथा वै चामरस्य च ।८।
 प्रदानं च वितानस्य तथा धारागृहस्य च ।
 दीपदाने किं फलं स्यात्पूजाया किं फलमवेत् ।९।
 कानि कानि च पुष्पानि कथ्यतां शिवपूजने ।
 इतिहासपुराणानि वेदाध्ययनमेव च ।१०।
 शिवस्याग्ने प्रजुवंशितकारयन्त्यथवानराः ।
 किं फलं च नृणां तेषां कथ्यतां विस्तरेण हि ।
 दावाद्यानपरो लोके त्वत्तो नान्योऽस्ति वै मुने ! ।११।
 ज्ञातं यत्त्वा वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
 उवाच ध्यासद्युष्योऽशौ शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।१२।

ऋषिगण ने कहा—हे महाप्राण ! अब प्राण कृपाकर शूली देवों के देव की महाभाग ध्यान और धर्चन से संयुक्त महिमा का वर्णन कीजिए । ७। संमार्जन करने में क्या पुण्य फल होता है—तथा रंगवली प्रादि करने में क्या फल होता है और दर्पण के प्रदान में एवं चामर के प्रदान में क्या पुण्य-फल हुआ करता है ? वितान के तथा धारा-ग्रह के समर्पण करने में क्या पुण्य होता है और दीपदान करने में एवं पुजा करने में क्या पुण्य फल हुआ करता है । हे भगवान ! यह बतलाइये कि भगवान शिव के पूजन में कौन-कौन से पुण्य हुआ करते हैं ? जो कोई मनुष्य भगवान शिव के भागे इतिहास पुष्टियों का पाठ-जाप तथा वेदों का अध्ययन क्रिया करते हैं प्रथवा विप्रों से कराते हैं उन मनुष्यों को क्या पुण्य-फल होता है—इस सम्पूर्ण विषयों का प्राप हमारे सामने पति विस्तार के सहित वर्णन कीजिये । ७। ८। ९। १०। हे मुनिवर ! लोको में भगवान शिव के आरुघान करने में प्रायके सिवाय अन्य कोई भी महा पुण्य नहीं है । ११। उन भावित भातप्राप्तो वाले मुनियों के इस वचन का श्रवण करके व्यासजी के शिष्य लोमश महामुनि ने उत्तम शिव के माहात्म्य को कहा था । १२।

अष्टादशपुराणेषुगीयते वै परः शिवः ।

तस्माच्चिद्वस्वमाहात्म्यं वक्तुं कोऽपि न पार्थते । १२।

शिवेति दशसरनामव्याहरिष्यन्ति ये जनाः ।

ते पांस्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यति न चाप्यथा । १३।

उदारो हि महादेवो देवानां पतिरीश्वरः ।

येन सर्वं प्रदत्तं हि तस्मात्सर्वं इति स्मृतः । १४।

ते घर्षास्ते महात्मानो ये भजन्ति सदाशिवम् । १५।

विना सदाशिवो हि संसारं तनुं मिच्छति ।

स मूढो हि महापापः शिवद्वेषी न संशयः । १७।

भक्षितं हि गरं येन दक्षयज्ञो विनाशितः ।

कालस्य दहनं येन कृतं राक्षः प्रमोचनम् । १८।

यथामरं भक्षितं च यथायज्ञो विनाशितः ।
 दक्षस्य च तथा ब्रूहि परं कीदृहयं हि नः ॥१६॥
 दाक्षायणी पुरादत्ता शङ्कराय महात्मने ।
 वचनाद्ब्रह्मणो विप्रा दक्षेण परमेष्ठिना ॥२०॥

महापि सोमय ने कहा—शठारह पुराणी मे भगवान शिव को पर बताया जाता है । इस कारण से भगवान शिव के माहारम्य को बतलाने में कोई भी समर्थ नहीं है । "शिव"—इस दो मक्षरी वाले नाम को जो मनुष्य कहेंगे उनको निश्चय ही स्वर्गलोक और मोक्ष होगा—इसमें तनिक भी शक्यता शर्पात् शक्य नहीं है ॥१३॥१४॥ समस्त देवगण का स्वामी ईश्वर महादेव परम सदा है जिसने सभी कुछ दे दिया है इसीलिए तो वे 'सर्व' इस नाम से कहे गए हैं । वे महान् आत्मा वाले पुण्य परम पुण्य एवं भाग्यशाली हैं जो भगवान सदाशिव का भजन किया करते हैं ॥१५॥१६॥ जो कोई भी पुरुष सदाशिव धनु की कृपा के बिना ही इस और सत्कार से पार होना चाहता है शर्पात् शिव की शारापन न करके ही सासारिक बन्धन से छुटकारा पाकर परम गति को प्राप्त होना चाहता है वह महान् मूर्ख है, महान पापी है और भगवान शिव का द्वेषी है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है जिसने गरल का मक्षण किया था और दक्ष प्रजापति के दक्ष का विनाश किया था । जिसने काल का दहन किया था और राजा का प्रमोचन किया था । ॥१७॥१८॥ ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! जिस प्रकार से गरल का मक्षण किया था और जिस तरह यज्ञ का विनाश किया था जोकि प्रजापति दक्ष ने शारम्य किया वह सभी आप हमको बतलाइये । हमारे हृदय में इसका बड़ा कीदृहल हो रहा है ॥१९॥ सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! पहिले ब्रह्मर्षी के वचन से परमेष्ठी दक्ष ने महारमा शङ्कर के लिये दाक्षायणी को प्रदान किया था ॥२०॥

एकदाहि स दक्षो चै नैमिषारण्यमागतः ।

यद्वच्छावशमापन्न ऋषिभिः परिभूजितः ॥२१॥

स्तुतिभिः प्रणिपातैश्चतयासर्वैः सुरासुरैः ।

तत्र स्थितो महादेवो नाम्युत्थानाभिवादनैः ।

चकारास्य ततः क्रुद्धो वक्षो वचनमब्रवीत् ॥२२॥

सर्वं च सर्वे हि सुरासुरा भृशं नमस्ति मां विप्रवराः समुत्सुकाः

कथं ह्यसौ दुर्जनकामहात्मा भूतादिभिः प्रेतपिशाचमुक्तः ॥

एमशानवासी निरपत्रवो ह्ययं कथं प्रणामं न करोति

मेऽधुना ॥२३॥

पाषण्डिनो दुर्जनाः पापशीला विप्रं दृष्ट्वा बोद्धता सन्मदाश्च ।

बध्यास्तथाज्याः सद्भिर्भरेवंविधा हि तस्मादेतं क्षापितुं बोधतो-

ऽस्मि ॥२४॥

इत्येवमुक्त्वा स महातपास्तदा दयाम्बितो रुद्रमिदं वभाषे ॥२५॥

शृण्वन्त्वमी विप्रतमा ! इदानीं यवो हि मे कर्तुं मिहार्हं धै-

वत् ।

रुद्रो ह्ययं यज्ञबाह्यो वृत्तो मे वर्णतितो पर्णपरो यतश्च ॥२६॥

नन्दीनिशम्यतद्वाक्यं जलादोहिष्पान्वितः ।

अब्रवीत्त्वरितोदक्षं क्षापदत्तमहाप्रभाम् ॥२७॥

यह इच्छा से वक्षीभूत होकर एक बार वही प्रजापति दक्ष नेमिप
अरण्य में भा गया था और वहाँ पर ऋषियों के द्वारा पूजा की गई थी
सभी ने जितमें सुर एवं असुर भी मे तनकी स्तुति की थी एवं भली-
भाँति दृष्टिपाठ भी किया था । वही पर महादेव भी संस्थित थे किन्तु
उन्होंने दक्ष को न तो गानोल्या न ही किया और न अभिवादन किया
था । इसे देखकर प्रजापति दक्ष की बहुत ही क्रुद्धा हुए थे और यह
वचन बोले थे— ॥२१॥२२॥ मुझको सभी जगह पर सभी सुर-असुर और
विप्र वर बढ़े ही उत्सुक होकर अत्यधिक नमस् किया करते हैं फिर
यह महान भात्मा वाणा भूत मादि से मुक्त और प्रेत तथा पिशाचों के
सहित रहने वाला एक दुर्जन की भाँति मुझे देखकर भी बैठा रहा है ।

यह इमशान में निवास करने वाला नितोज्ज्व मुझे इस समय मे प्रणाम
 क्यों नहीं करता है ।२३। ओ पाखण्डी हैं, दुर्जन हैं, पापों के करते के
 स्वभाव वाले हैं, विष को देखकर उड़न रहते हैं तथा उन्मद हैं उन्हे
 सत्पुरुषों को त्याग देना चाहिए और वे तो बध करने के योग्य हैं । इस-
 लिए मैं तो इसको सब क्षाप देने को उद्यत हो रहा हूँ ।२४। इस प्रकार
 से इतना कहकर वह महान तपधारी उस समय में क्रोध से संयुक्त होकर
 भगवान् रुद्र से बोला—।२५। हे प्रियतमो ! आप जो महीं हैं ये सब सुन
 लेंगे । इस समय मे जो भी मेरा वचन है उसे आप सब उसी भाँति
 करने के योग्य होते हैं । यह रुद्र यज्ञों से बहिष्कृत किया गया है ऐसा
 मुझे सम्मत है क्योंकि यह बर्णितोत और वर्ण पर एव यत्त है ।२६।
 नन्दी ने दस के इस वाक्य का श्रवण करके वह शैलाद बहुत ही क्रोधित
 हुआ और बड़ी शीघ्रता के वंश गत होकर उस क्षाप देने वाले महा
 प्रभा सम्पन्न दस से बोला ।२७।

यज्ञबाह्यो हि मे स्वामीमहेशोऽयंकृतः कथम् ।
 यस्य स्मरणमात्रेण यज्ञाश्चसफनाह्यमी ।२।
 यज्ञो दानं तपश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।
 यस्य नाम्ना पवित्राणि सोऽयं शत्रोऽधुना कथम् ।२६।
 वृथा ते ब्रह्मचापत्याच्छत्रोऽयंदस दुर्मते ।
 येनेदं पालित विश्वं सर्वेण च महात्मना ।
 शत्रोऽयं स कथं पाप ! रुद्रोऽयं ब्राह्मणाघम ! ।३०।
 एवं निर्भत्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापतिः ।
 नन्दिनश्चशपाय दक्षोरोयसमन्वितः ।३१।
 यूय सर्वे ब्रह्मरा वेदबाह्याश्च वै भृशम् ।
 शप्ता हि वेदमार्गैश्च तथात्यक्ता महर्षिभिः ।३२।
 पाखण्डवादसंयुक्ताः शिष्टाचारबहिष्कृताः ।
 कपालिनः पानरतास्तथा कालमुखाह्यमी ।३३।

इतिशप्तास्तदातेन दक्षेण शिवकिकराः ।

तदा प्रकुपितो नन्दी दक्षं शप्तुं प्रचक्रमे ॥३४॥

नन्दी ने कहा—मेरे स्वामी भगवान् महेश को यज्ञों से बहिष्कृत कैसे या क्यों किया है । जिस महाप्रभु शर्व ने इस सम्पूर्ण विश्व को पालित किया है । महेश का तो वह प्रभाव है कि जिसके केवल स्मरण भर कर लेने से ही ये समस्त यज्ञ सफल हुआ करते हैं ॥२८॥ यज्ञ, दान, तप, तीर्थ जो कि अनेक हैं ये सभी जिसके नाम से ही पवित्र हुआ करते है उसी महाप्रभु को इस समय में क्यों शाप दिया गया है ? ॥२९॥ हे दुष्ट बुद्धि वाले दक्ष ! आपने ब्रह्म की चपलता से वृथा ही इनको शाप दे दिया है । जिसने इस सम्पूर्ण विश्व को पालित किया है । हे ब्राह्मणों में नीच ! हे महापापी ! यह भगवान् छद्र हैं उनको क्यों शाप दिया गया है ? ॥३०॥ उस नन्दी ने इस प्रकार से उस प्रजापति को फटकारा और रोप में भरकर दक्ष ने नन्दी को शाप दिया था ॥३१॥ तुम सभी छद्र वर अस्यन्त ही वेद वाह्य ही और वेदों के मार्ग वाले महर्षियों के द्वारा परित्यक्त एवं शप्त हैं । आप सभी पापण्डवादि में रति रखने वाले, शिष्टों के भाचार से बहिष्कृत, कपालधारी, पान करने में निरत तथा काल मुक्त हैं । इसी कारण उस समय में उस दक्ष ने वे शिव के सब किकरों को शाप दिया था उसी समय में प्रकुपित होते हुए नन्दी ने दक्ष को शाप देने की तैयारी की थी ॥३२॥३३॥३४॥

शप्ता वयं त्वया विप्र साधवः शिवकिकराः ।

वृथैव ब्रह्मचापल्यादहं शापं ददामिते ॥३५॥

वेदवादरता ययं नान्यदस्तीति वादिनः ।

कामात्मनः स्वर्गपरा लोभमोहसमन्विताः ॥३६॥

वैदिकश्च पुरस्कृत्य ब्राह्मणाः शूद्रयाजकाः ।

दरिद्रिणो भविष्यन्ति प्रतिग्रहरताः सदा ॥३७॥

दक्ष ! केचिद् भविष्यन्ति ब्राह्मणाः ब्रह्मराक्षसाः ।

विप्रास्ते शापितास्तेन नन्दिना कोपिना भृशम् ॥३८॥

अथाकर्ण्येश्वरो वाक्यं नन्दिनः प्रहसन्निव ।

उवाच वाक्यं मधुरं बोधयुक्तं सदाशिवः ।३६।

कोपं नार्हसि वै कस्तुं ब्राह्मणाप्रिन्त वै सदा ।

ब्राह्मणाः गुरुबोह्ये ते वेदवादरताः सदा ।४०।

वेदोमन्त्रमयः साक्षात्तथासूक्तमयो भृशम् ।

सूक्ते प्रतिष्ठितो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।४१।

तस्मात्तस्मिन् विदो निन्द्या आत्मं वाहं नचेतरः ।

कोऽयं कस्तं वव चाहं वै कस्माच्छ्रमा हि वै द्विजाः ।४२।

हे विप्र ! हम परम साधु स्वभाव वाले शिव के सेवकों को आपने शाप दे दिया है । यह वृथा ही ब्रह्म चातन्य के होने के कारण ही दिया है । अच्छा, अब मैं तुमको भी शाप देता हूँ ।३६। आप लोग वेदों के वाद करने में रति रखने वाले हैं और दूसरा कोई नहीं है—ऐसा कहने वाले हैं । आप लोग कामात्मा और स्वर्ग परायण हैं तथा लोभ और भीह से मग्नचित्त रहते हैं । ब्राह्मण लोग किसी एक वैदिक की भांगे करके शूद्रों को यजन कराने वाले तथा सदा प्रतिग्रह प्रदान करने में ही रति रखने वाले दरिद्री हो जायेंगे ।३६। हे दत्त ! कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्म राशन होंगे । लोमश मुनि ने कहा—इत प्रकार से कोप करने वाले नन्दी ने पर्यन्त ही अधिक उन ब्राह्मणों को शाप दे दिया था । इसके अनन्तर सदाशिव ने जो ईश्वर हैं इस नन्दी के वाक्य को सुनकर हँसते हुये बोध से युक्त परम मधुर वाक्य कहा— ।३७।३८।३९। श्री महादेव ने कहा—हे नन्दी ! इन ब्राह्मणों के प्रति कोप करने के योग्य तुम नहीं होते हैं । ये ब्राह्मण तो सदा ही गुरु हैं और वेदवाद में अनुरक्त रहा करते हैं । वेद साक्षात् मन्त्रमय हैं और पर्यन्त अधिक सूक्तमय होता है । सूक्त में आत्मा प्रतिष्ठित है जो कि सभी देहधारियों का होता है । इसलिये आत्मा के जातियों के आलापण निन्दा करने के योग्य नहीं होते हैं क्योंकि मैं आत्मा ही हूँ अन्य नहीं

हूँ । यह कौन है, कौन उसको घोर कहा मैं हूँ । कंसे ब्राह्मणों को पाप
दिया है । ४०।४१।४२।

प्रपञ्चरचनां हित्वा बुद्धो भव महामते ! ।

तत्त्वज्ञानेन निर्वृत्यंस्वस्थः क्रोधादि वर्जितः । ४३।

एवं प्रबोधितस्तेन शम्भुना परमेष्ठिना ।

विवेकपरमो भूत्वा शैलादो हि महातपाः ।

शिवेन सह संगम्य परमानन्दसम्प्लुतः । ४४।

दक्षोऽपि हि रूपाविष्टाः परिवारितः ।

यगोस्थानस्वकं तत्र प्रविवेशरूपान्वितः । ४५।

श्रद्धां विहाय परमां शिवपूजकानां ।

निन्दापरः स हि बभूव नराधमश्च । ४६।

सर्वे महर्षिभिरुपेत्य स तत्र शर्वं देव ।

निनिन्द व बभूव कदापि शान्तः । ४७।

इस प्रपञ्च की रचना का त्याग करके हे महामति वाले !
तुमको प्रबुद्ध हो जाना चाहिये । तत्त्वज्ञान से निर्वृति प्राप्त कर स्वस्थ
एवं क्रोधादि से रहित हो जाइये । इस प्रकार से उन परमेष्ठी शम्भु के
द्वारा प्रबोध दिये गये शैलाद जो कि महान तपस्वी थे विवेक परम
होकर भगवान शिव के साथ जाकर परमानन्द से सम्प्लुत हो गये थे
। ४३।४४। प्रजापति दक्ष भी रीष के आदेश में मरे हुये महर्षियों से
चारों ओर घिरे हुए अपने स्थान को चले गये थे और वहाँ पर क्रोध से
युक्त रहते हुए ही उनसे प्रवेश किया था । ४५। उस प्रजापति दक्ष ने
अपनी परम श्रद्धा का एकदम त्याग कर दिया था और वह मनुष्यों में
महान अधम शिव की पूजा करने वालों की निरन्तर निन्दा करने में ही
तत्पर हो गया था सब महर्षियों के साथ वह उपस्थित होकर भगवान
शर्वदेव की निन्दा किया करता था और उसे कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं
हुई । ४६।४७।

२—दक्षयज्ञवर्णन

एकदा तु तदा तेनयज्ञः प्रारम्भितो महान् ।
 तत्राऽऽहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेनतपस्विना ।१।
 ऋषयोविविधास्तत्रवशिष्टाद्याः समागताः ।
 अग रयः कश्यपोऽग्निश्चावामदेवस्तथाभृगुः ।२।
 दधीचो भगवान्ध्यासो भरद्वाजोऽथ गीतमः ।
 एते चान्ये च बहवः समाजग्मुर्महर्षयः ।३।
 तथा सर्वे सुरगणालोकपालास्तथाऽपरे ।
 विद्याधराश्चगन्धर्वाः किन्नराप्सरसागणाः ।४।
 सप्तलोकात्समानीतो ब्रह्मालोकपितामहः ।
 वैकुण्ठाच्च तथाविष्णुः समानीतोमत्स्यप्रति ।५।
 देवेन्द्रो हि समानीतइन्द्राण्यासह सुप्रभः ।
 तथा चन्द्रो हि राहिण्यावरुणः प्रियमासह ।६।
 कुबेर पुष्पक हृदो मृगारुढोऽथ मासतः ।
 वस्तारुढः पावकश्च प्रेतारुढोऽथ निःश्रुतिः ।७।

महर्षि सोमश जी ने कहा - एक समय मे उस महान् तपस्वी
 दक्ष ने एक महान् यज्ञ का आरम्भ किया उस समय में उस दक्ष ने सभी
 को समाहन किया था । उस यज्ञ मे अनेक ऋषिगण वशिष्ठ आदि वहाँ
 पर समागत हुए थे । उन समागत हुए ऋषियों में अगस्त्य, कश्यप,
 अग्नि, कामदेव तथा भृगु थे । दधीच, भगवान् ध्यास, भरद्वाज, गीतम
 ये सब और अन्य भी बहुत महर्षिगण वहाँ पर आये थे ।१।२।३। तमस्त
 सुरगण, सभी लोकपाल, विद्याधरगण, किन्नर, अप्सरागण वहाँ पर
 समागत हुए थे ।४। सप्तलोक से ब्रह्मलोक के पितामह ब्रह्माजी को लाया
 गया था—वैकुण्ठ से भगवान् विष्णु को उस महायज्ञ मे बुलाया गया था
 और उस महान् यज्ञ मे उसको सम्मिलित किया गया था । देवो के इंद्र
 के भी इन्द्राणी के साथ वहाँ पर लाया गया था । रोहिणी के सहित

सुन्दर प्रभा से सम्पन्न मन्द्रदेव तथा मपती प्रिया के साथ वरुण देव वहाँ पर बुलाये गये थे । १५। ६। पुष्पक विमान पर समारोहण करने वाले कुवेर, मृग पर भ्राह्मण मारुत देव, वस्तारुद्र अग्निदेव और प्रेत पर सवारी करने वाले निरृति देव वहाँ पर उक्त महान यज्ञ में समागत एवं समाहूत हुये थे । ७।

एते सर्वे समायातायज्ञवाटे द्विजन्मनः ।
 ते सर्वे सत्कृतास्तेन दक्षेण च दुरात्मना । ८।
 भवनानिमहार्हाणि सुप्रभाणि महान्ति च ।
 त्वष्ट्राकृतानि दिव्यानि कौशल्येन महात्मना । ९।
 तेषु सर्वेषु धिष्ण्येषु यथाजोषं समास्थिताः । १०।
 वर्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तथा ।
 ऋत्विजश्च कृतास्तेन भृग्वाद्याश्च तपोधनाः । ११।
 दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमङ्गलः ।
 भार्यया सहितो विप्रैः कृतस्वस्वयमभृशम् । १२।
 रेजे महत्त्वेन तदा सुहृदिभः परितः सदा ।
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् । १३।

ये सब द्विजन्मा उक्त यज्ञ वार में भाये थे । उस दुरात्मा दक्ष ने उन सब समागत महानुभावों को सत्कृत किया था । वहाँ पर सुन्दर प्रभा से सुसम्पन्न, परम विशाल और बहुमूल्य वाले भवन थे जिनको अपने बड़े ही कौशल से त्वष्टा ने निमित्त किया था और जो अत्यन्त दिव्य एवं उत्तम थे । उन सबमें जो बहुत ही उत्तम थे उन सबको बहुत ही शान्ति पूर्वक समास्थित किया था । ८। ९। १०। उस कनखल तीर्थ में जो वर्तमान महान् यज्ञ हो रहा था उसमें भृगु आदि तपोधनों को उस प्रजापति दक्ष ने ऋत्विज नियुक्त किया था । ११। उस समय में दक्ष ने उस यज्ञ का सम्पादन करने के लिये दीक्षा ली थी और कौतुक मंगल किया था । विप्रों के सहित उसने अपनी भार्या को साथ में लेकर बहुत ही अधिक स्वस्वयम किया था । १२। उस अवसर पर - वह सदा सुहृदों

विराजमान है । लोको के पितामह ब्रह्माजी सर्वलोक से यहाँ पर भाये हुए हैं जिनके साथ सब वेद, उपनिषद् और माग्य भी भाये हुये हैं । १२२।२३। उसी समस्त सृष्टी के समुदाय के साथ सृष्टी को राज भी स्वयं यहाँ पर भाये हुए हैं । और मांर कल्पों से रहित ऋषिगण भी यहाँ पधारे हुए हैं । जो भी यज्ञ में भाये के लिये समुक्ति प्राप्त हैं तथा परम पान्त हैं वे-वे सभी यहाँ पर समागत हो गये हैं । मांर लोग सभी वेद और वेदार्थ के तत्त्वों के ज्ञाता और हृड बल वाले हैं । १२८।२५। यहाँ पर हृपको हृड से भी क्या प्रमोदन रह गया है । हे विप्रगण ! ब्रह्मा के कथन से ही मैंने उसकी सपत्नी कन्या का प्रदान किया है । हे विप्रगण ! यह सदा विषी की तष्ट करने वाला, तष्ट और मकुनीना है तथा भूत, प्रेत और पिशाचों के पति हैं एव दुरतम है । १२९।२७।

आत्मसम्भावितो मूढः स्तब्धो मीनो समस्वरः ।
 कर्मण्यस्मिन्नयोग्योऽप्यो नानीतो हि ममाऽधुना । २८।
 तस्मात्त्वया न वक्तव्यं पुनरेवंवचोद्विज ! ।
 सर्वैर्भवद्भिः कर्तव्यो यज्ञोमे सफलोमहान् । २९।
 एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधौविवाक्यमश्रवीत् । ३०।
 सर्वेषामृषिवर्षाणामुराणां भवितात्मनाम् ।
 अनयोऽयमहाश्चातोविनातेन महारमना । ३१।
 विनाशोऽपिमहान्सद्यो ह्यनस्थानामविष्यति ।
 एवमुक्तवादधीचोऽभावेकएवविनिर्गतः । ३२।
 यज्ञवाटाञ्च ददास्यत्वरित्तव्याश्रममयौ ।
 भुनी विनिर्गते दशः प्रहमसिदमयश्रीव । ३३।
 गतः शिवप्रियोवीरोदधौचिर्नागनामतः ।
 आविष्टचित्तामश्वाञ्च मिथ्यावादरताः सखाः । ३४।
 वेदवाह्या दुराचारात्तमाज्यास्ते ह्यनकर्मणि ।
 वेदवादरता यूयं सर्वेविष्णुपुरीषमाः । ३५।

यज्ञं मे सफलं विप्राः कुर्वन्तु ह्यचिरादिव ।

तदा ते देवयजनं चक्रः सर्वे महर्षयः ।३६।

यह रुद्र आत्म सम्भावित, मूढ, स्तब्ध, मौनी और मात्सर्य से संयुक्त है। ऐसा यह इस हमारे कर्म में अयोग्य है इसीलिये मैंने उसे यहाँ पर नहीं बुलाया है ।३८। हे द्वित्र ! इस कारण से फिर इस प्रकार से आपको नहीं बोलना चाहिये आप सबके द्वारा ही मेरे इस महान यज्ञ को सफल बनाना चाहिये ।३९। इस दक्ष के द्वारा कहे हुये वचन को सुनकर महर्षि दधीचि ने यह वाक्य कहा था — ।३०। दधीचि ने कहा— समस्त ऋषिवर्यों का और भावितारमा सुरों का एक उस महात्मा के बिना महान अनय (अन्याय) उत्पन्न हो गया है। दधीचि ने कहा कि यहाँ पर रहने वालों का तुरन्त ही महान् विनाश भी हो जायगा। ऐसा कहकर वह दधीचि अकेले ही वहाँ से निकल गये थे। ऐसा कहकर वह उस दक्ष के यज्ञवाद से शीघ्रता से समन्वित होकर अपने आश्रम को चले गये थे। उस मुनि के विनिर्गत हो जाने पर प्रजापति दक्ष हँसते हुये यह बोले— ।३१।३२।३३। शिव का प्यारा वीर दधीचि नाम वाला चला गया। जो भी आवेश से मरे हुये चित्त वाले, मन्द, मिथ्यावाद में अनुराग रखने वाले हैं, खल हैं, वेद से वहिष्कृत और बुरे आचार वाले हैं वे सब इस कर्म में त्याज्य ही हैं। आप लोग सब वेदवाद में रत विष्णु पुसङ्गामी हैं। हे विप्रगण ! शीघ्र ही मेरे इस यज्ञ को सफल बनायें। उसी समय में उन सब महर्षियों ने देवों का यज्ञ किया था ।३४।३५।३६।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पर्वतेगन्धमादने ।

घारागृहे विमानेन सखीभिः परिवारिता ।३७।

दाक्षायणीमहादेवी चकारविधिघास्तदा ।

क्रीडाविमानमप्यस्थाकन्दुकाद्याः सहस्रशः ।३८।

क्रीडासक्ता तदा देवोददर्शास्थिमहासती ।

यज्ञं प्रयान्तं सोमश्च रोहिण्यासहितंभुम् ।३९।

ऋगमिष्यतिचन्द्रोऽप्यंविजये पृच्छसत्त्वरम् ।
 तयोक्ताविजयादेवीतंप्रचक्षयथोचितम् ॥४०॥
 कथितं तेनतासर्वदक्षस्यवमखादिकम् ।
 तच्छ्रुत्वा त्वरिता देवीविजया जातसम्भ्रमा ।
 कथयामास तस्मै यदुक्तं शशिना भृशम् ।४१।
 विमृश्य कारणं देवी किमाह्वानं करोमि न ।
 दक्षः पिता मे माता च विस्मृता मा कुतोऽधुना ।४२।

इसी बीच में वहाँ गन्ध मादन पर्वत पर धारा गृह में विमान
 के द्वारा सखियों से परिवारित होती हुई उस समय में महादेवी वाता-
 यणी विमान के मध्य में स्थित होकर कन्दुष घादि सहस्री अनेक
 क्रीड़ाये कर रही थीं । उस समय में वह क्रीडा में न्यासक्त रहने वाली
 देवी जोकि महा सती को देखा था कि सोम देव प्रभु धरणी परती
 रोहिणी के साथ वन में प्रयाण कर रहे थे । यह चन्द्र देव कहीं
 जायेंगे — हे विजये । यह तीव्र बूझो ऐसा महा सती ने विजया से कहा
 था । इस तरह कहने पर विजया देवी ने उसके पथोचित पूछा था । उसने
 दक्ष के पत्न मादि के विषय में सती कुछ कह दिया था । यह सुनकर
 वह विजया देवी सम्भ्रम उत्पन्न हो जाने वाली होकर बहुत ही पीडित
 से वापिस घाई थी और उसने वह सभी कुछ कह सुनाया था जो चन्द्र-
 देव ने बारम्बार कहा था । उस समय में देवी ने कारण की विचार कर
 सोचा था क्या हमारा आह्वान नहीं किया गया है ? इस लो मरे पिता
 हैं — मेरी माता ने भी मुझे इस समय में क्यों भुना दिया है । ३७-४२।

पृच्छामि शङ्करं चाऽद्य कारणं कृतनिश्चया ।
 स्थापयित्वा सर्वोस्तत्र आगता शङ्करमप्रति ।४३।
 ददसं तं समामन्त्रे त्रिलोचनमवस्थितम् ।
 गणैः परिपृत सर्वैश्चण्डमुण्डादिभिस्तदा ।४४।

गणोभृङ्गिस्तथानन्दोशलादोहिमातपाः ।
 महाकालो महाचण्डोमहामुण्डो महाशिराः ॥४५॥
 घूम्राक्षो घूम्रकेतुश्च घूम्रपादस्तथैवच ।
 एतेचान्ये च बहवो गणा रुद्रानुवर्तिनः ॥४६॥
 केचिद् भयानका रौद्राः कवन्धाश्च तथा परे ।
 विलोचनाश्च केचिच्च वक्षोहीनास्तथा परे ॥४७॥
 एवं भूताश्च शतशः सर्वे ते कृत्तिवाससः ।
 जटाकलापसम्भूताः सर्वे रुद्राक्षभूषणाः ॥४८॥
 जितेन्द्रिया वीतरागाः सर्वे विषयवैरिणः ।
 एभिः सर्वैः परिवृतः शङ्करो लोकशङ्करः ।
 दृष्टस्तथा उपाविष्ट वासने परमाद्भुते ॥४९॥

निष्प्रय करने वाली होती हुई प्राज्ञ भगवान् शङ्कर से इसका कारण पूछें—यह विचार कर अपनी सखियों को वहीं पर स्थापित करके वह सती देवी शङ्कर के समीप में आ गई थीं ॥४३॥ उस समय में उसने भगवान् त्रिमोहन को समा के मध्य में समस्त चण्ड मुण्ड आदि गणों से परिवृत्त होकर समवस्थित हुए देखा था । वहाँ पर उस समय में क्षुद्र देव के अनुवर्त्ती बहुत से गण उपस्थित थे । उनके नाम ये हैं— मृङ्गिगण, महात् तपस्वी शैलाद नन्दी, महाकाल, महाचण्ड, महामुण्ड, महाशिरा, घूम्राक्ष, घूम्रकेतु, घूम्रपाद, ये सभ तथा अन्य भी अनेक गण थे ॥४४॥४५॥४६॥ उन गणों में कुछ तो बहुत ही भयानक थे—कुछ बड़े रौद्र रूप वाले थे, कुछ केवल कवच के स्वरूप वाले थे, कुछ तीन नेत्रों वाले और वक्षः स्थल से रहित थे ॥४७॥ इस प्रकार के वे सब सैकड़ों थे जो कि अग्नि (धर्म) का वसन धारण करने वाले थे । सभी जटा कलाप से युक्त और रुद्राक्ष के भूषणों वाले थे । सब इन्द्रियों को जीतने वाले, राग की त्याग देने वाले और विषयों से वैर रखने वाले थे । इन सबसे लोक के कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर घिरे हुए

ये । इस भाँति से परम ब्रह्मणु आमन पर विराजमान भगवान् शङ्कर को देखा या १४८।४६।

आक्षिप्तचित्ता सहसा जगाम शिवसन्निधिम् ।
 शिवेन स्थापिता स्वांके प्रीतियुक्तेन वल्लभा १५०।
 प्रेम्णोदिता वचोभिः सा बहुमानपुरः सरम् ।
 किमागमनकार्यं मे वद शीघ्रं सुमध्यमे १५१।
 एवमुक्ता तदा तेन उवाचासितलोचना १५२।
 पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते ।
 गमन देवदेवेश ! तत्तमयं कथय प्रभो १५३।
 मुहुदामेष वै धर्मः मुहुद्भिः सह सङ्गतिम् ।
 कुर्वन्ति यस्महादेवमुहुदां प्रीतिवधिनीम् १५४।
 तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन अनाहूतोऽपि गच्छ मोः ।
 यज्ञवाटं पितुर्मोक्षं वचनान्मे सदाशिव १५५।
 तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा यभापे सूनृत वचः ।
 त्वया भद्रे न गन्तव्यं दक्षस्य यजनं प्रति १५६।

महापत्नी उस समय में समाक्षिप्त चित्त वाली होनी हुई सहसा शिव के समीप में चली गई थी । प्रीति से समन्वित भगवात् शिव ने अपनी प्रिया को अपनी मोह में स्थापित कर लिया था । शिव ने सती से बहुमान पूर्वक प्रेम के साथ वचनों के द्वारा पूछा था—हे सुमध्यमे ! इस समय में यहाँ पर आपके भागमन का क्या कारण है ? मुझे शीघ्र बतलाओ । जब इस प्रकार से तनी से कहा गया था तो वह असित लोचनी वाली बोली १५०।१५१।१५२। सती ने कहा—हे प्रभो ! आप तो देवों के देव के भी ईश हैं । मेरे बिना के इस महा यज्ञ में किस कारण से आपको अच्छा नहीं लगना है ? यह सभी मुझे माय बतलाइये १५३। मुहुदों का यह धर्म है कि मुहुदों के साथ सङ्गति की जावे । जो महादेव मुहुदों की प्रीति के बढ़ाने वाली तद्गति

को किया करते हैं । इस लिये हे प्रभो ! सभी प्रयत्नों के द्वारा बिना बुलाये हुए भी आप वहाँ पर जाइये । हे सदा शिव ! आज तो मेरे पिता के यज्ञ ग्रह में अवश्य ही जाइये । उस सती के इस वचन का ध्यान करके भगवान् शिव परम सूतृत वचन बोले—हे भद्रे ! तुमको इस दक्ष के भजन अर्थात् यज्ञ की ओर नहीं जाना चाहिए । १५४।१५५।१५६।

तस्य ये मानिनः सर्वे ससुरासुरकिनराः ।
 ते सर्वे यजनं प्राप्ताः पितुस्तव न संशयः । १५७।
 अनाहूताश्च ये सुभ्रू गच्छन्ति परमन्दिरम् ।
 अपमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं ततः । १५८।
 परेषां मन्दिरं प्राप्त इन्द्रोऽपिलघुतां व्रजेत् ।
 तस्मात्त्वया न गन्तव्यं दक्षस्य यजनं शुभे । १५९।
 एवमुक्त्वा सती तेन महेशेन महात्मना ।
 सवाच रोपसंयुक्तं वाक्यं धावयविदां वरा । १६०।
 यज्ञो हि सत्यलोकेत्वं स त्वं देववरेभ्यः ।
 अनाहूतोऽसितेनाऽद्य पित्रामेदुष्टचारिणा ।
 तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि तस्य भावं दुरात्मनः । १६१।
 तस्माद्वाऽद्यैव गच्छामियज्ञवाटं पितुर्मम ।
 अनुज्ञां देहि मे नाथ देवदेव ! जगत्पते ! । १६२।
 इत्युक्त्वा भगवान् द्रुस्तथा देव्याशिवः स्वयम् ।
 विज्ञाताखिलदृष्टष्टा भगवान्भूतभावनः । १६३।

उसके जो भी मानी गए हैं वे सब सुर-प्रसुर और किन्नर उस यज्ञ में पहुँच गए हैं जो कि तेरे पिता ने यज्ञ का समारम्भ किया है—इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है । हे सुभ्रू ! किन्तु जो लोथ बिना बुलाये के पराये मन्दिर में चले जाया करते हैं वे मृत्यु से भी अधिक अपमान को प्राप्ति किया करते हैं । दुपरो के मन्दिर में बिरा बुलाये हुए चले जाने वाला इन्द्र भी लघुता को प्राप्त हो जाया

करता है घन्ट की तो घाट ही क्या है । हे मुझे ! इनोलिए इस दस के यज्ञ में तुमको नहीं जाना चाहिए । इस प्रकार से उन महान् भारता वाले महेश के द्वारा कही गयीं सती ने रोद से मरा हुआ बचन कहा क्योंकि बचनों के ज्ञान रखने वालों में वह परम श्रेष्ठ थीं । यज्ञ सत्य स्वस्व है और भाव वही है जो कि लोक में देवों में श्रेष्ठों के भी स्वामी हैं । इस समय में दुष्ट आवरण वाले मेरे पिता ने मासको नहीं बुलाया है तो उस दुष्ट आत्मा जाने की समस्त इन दुर्भावना को जानना चाहती है । ५७।२८।२९।३०।३१। इनी में भाव ही मेरे पिता ने उस यज्ञ वाट जाने की इच्छा रखती है । हे देवों के भी देव ! हे नाथ ! हे जगद् के स्वामिन ! भाव मुझे अपनी प्राज्ञा प्रदान कर दीजिए । इस प्रकार से उस देवी सती के द्वारा कहे गये सुन्द गिव स्वयं विज्ञात थे क्योंकि सम्पूर्ण होने वाली बात के देखने वाले एव ज्ञाता थे । जूतो पर दया करने वाले भयवान् गिव परम दयानु हैं । ६२।६३।

म तामुवाच देवेशो महेशः सर्वसिद्धिद ।

गच्छ देवि ! त्वरायुक्तावचनाग्ममनुव्रते । ६४।

एव नन्दिनमारुह्य नानाविधगरान्विता ।

गणाः पष्टिसहस्राणिजम्बू रोद्राः शिवाज्ञया । ६५।

तैर्गणैः संवृता देवी जगाम पितृमन्दिरम् ।

निरीक्ष्यतद्बलसर्वं महादेवोऽर्धतविस्मिन । ६६।

भ्रूषणानि महार्हाणि तेभ्यो देव्ये परन्तपः ।

प्रेषयामास चाभ्यग्री महादेवोऽनुपृष्टनः । ६७।

देव्या गतं वं स्वपितृगृहं तदा विमृश्य सर्वं भगवान् महेशः ।

दाक्षायणी पितृवमानिता सती न यास्यतीति स्वपुरं पुनर्जगौ । ६८।

सगुरों किट्टियों के प्रदान करने वाले देवों के ईश महेश उस सती से बोले—हे देवि ! हे कुपते ! मेरी प्राज्ञा है अब भाव बहुत ही भीमता से युक्त होकर जाये । इस तरह से नन्दी मर समारोहण

करके अनेक गरुणों से समन्वित होकर जाइये । शिव की आज्ञा है । उससे साठ सहस्र रौद्र गण जायें । उन समस्त गरुणों से संपृक्त हुई देवी अपने पिता के मन्दिर में चली गयी थी । उसके बल को देख कार महादेव स्वयं चत्वरुत ही विस्मित हो गये थे । फिर परन्तप महादेव ने पीछे से अच्यप होकर उन सबके लिये घोर देवी के लिए महा मूल्य वाले भूषण भेजे थे । ६४।६५।६६।६७। उस समय में देवी ने अपने पिता के घर में गमन किया था । उसी समय में भगवान् महेश ने सब कुछ होने वाली घटना का विचार करके पिता के द्वारा उपमानित हुई दाक्षायणी सती पुनः अपने पुर में नहीं आयी—यह ज्ञान दिया था । ६८।

३—सती का दक्ष-यज्ञशाला में प्रवेश

दाक्षायणी गतातत्र यत्र यज्ञो महानभूत् ।
 तत्पितुः सदनं गत्वा नानाश्रयममन्वितम् ।१।
 द्वारिस्थितातदादेवीभवतीर्यं निजासनात् ।
 नन्दिनोहि महाभागा देवलोकं निरीक्ष्य च ।२।
 मातरं पितरं दृष्ट्वा सुहृत्सवन्धिवान्धवान् ।
 अमिवाद्यैव पितरं मातरं च मुदान्विता ।३।
 वमापे वचनं देवी प्रस्तावसदृशं तदा ।
 अनादृतस्तया कस्माच्छम्भुः परमशोभनः ।४।
 येन पूतमिदं सर्वं समग्रं सुचराचरम् ।
 यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञाङ्गो यज्ञदक्षिणः ।५।
 द्रव्यं मन्त्रादिकं सर्वं हव्यं कर्णं च यन्मयम् ।
 विना तेन कुतं सर्वमपवित्रं भविष्यति ।६।
 शंभुना हि विना तात कथं यज्ञः प्रवर्तते ।
 एते कथं समायाता ब्रह्मणा सहिताः पितः ।७।

हे भृगो ! त्वं न जानासि हे कश्यप महामते ।
 अत्रैवशिष्ट एकस्त्वं शक ि कृतमद्यते ।८।
 हे विष्णो त्वं महादेवं जानासि परमेश्वरम् ।
 ब्रह्मन् किं त्वन्न जानासि महादेवस्य विक्रमम् ।९।

महापि लोमश ने कहा—दासायणी वहाँ पर पहुँच गयी थी जहाँ पर यह महान् यज्ञ हो रहा था । फिर वह अपने पिता के गृह में गयी थी जो अनेक आश्चर्य युक्त वस्तुओं से समन्वित था । उस समय में देवी ने द्वार पर स्थित होकर अपने आसन से अवतरण किया था जो कि नन्दी पर समाह्वित हो रही थी । फिर उस महान् भाग वाली ने सम्पूर्ण देव लोक का निरीक्षण किया था । सती ने अपने माता-पिता-सुहृत्-सम्बन्धी और सम्पूर्ण बन्धुओं को देखा था । फिर बहुत ही आनन्द में समुक्त होकर अपने अपने माता और पिता का अभिवादन किया था । प्रणाम करने के ही अनन्तर उस देवी ने उसी समय में प्रस्ताव के अनु-रूप वचन बोना था—उमने परम शोभा सम्पन्न भगवान् शम्भु का वयो अनादर किया है । वे तो स्वयं ही यज्ञ स्वर्ूप हैं, यज्ञों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ हैं, यज्ञ के यज्ञ हैं और यज्ञ की रक्षिता वाले हैं । यह सम्पूर्ण द्रव्य मन्त्रादिक और सभी हृद्य-कव्य शिवमय हैं । उसके बिना किया हुआ यह सभी अरविध हो जायगा ।१।२।३।४।५।६। हे तात् ! भगवान् शम्भु के बिना यह यज्ञ आपने कैसे प्रवृत्त कर दिया है ? हे पिता जी ! ब्रह्माजी के साथ सभी लोग कैसे यहाँ पर समागत हो गये हैं ? हे भृगो ! क्या आप नहीं जानते हैं ? हे महान् प्रति वाले कश्यप ! हे अत्रे ! हे वशिष्ठ ! क्या आप यह नहीं जानते हैं ? हे शक ! आप अकेले ही इस यज्ञ के भाग का कैसे ग्रहण कर रहे हैं । हे विष्णो ! आप तो स्वयं परमेश्वर महादेव की अज्ञो भाँति जानते हैं हे ब्रह्मन् ! क्या आप महादेव के विक्रम को नहीं समझते हैं ।७।८।९।

पुरा पञ्चमुखो भूत्वा गवितोऽसितदाशिवम् ।
 कृतश्रुतुर्मुखस्तेनविस्मृतोऽसितदद्भुतम् ॥१०॥
 मिखाटनकृतयेन पुरा दाख्वने विभुः ।
 शप्तोऽयं भिक्षुको रुद्रो भवद्भिः सखिभिस्तदा ॥११॥
 शप्तेनाऽपि च रुद्रेण भवद्भिर्विस्मृतं कथम् ।
 यस्यावयवमात्रेण पूरितं सचराचरम् ॥१२॥
 लिङ्गभूत जगत्सर्वं जातं सत्क्षणमेवहि ।
 लयनात्लिङ्गमित्याहुः सर्वे देवाः सवासवाः ॥१३॥
 सर्वे देवाश्च सम्भूता यतो देवस्य शलिनः ।
 सोऽसौवेदान्तगोदेवस्त्वयाज्ञातुं नपार्यते ॥१४॥

पहिले आप स्वयं पांच मुख वाले होकर सदा शिव से भी अधिक शक्ति करने वाले हो गये थे फिर उन्हीं भगवान सदाशिव ने आपको चार मुखों वाला बना दिया था । क्या उस परम अद्भुत घटना को आप अब भूल गये हैं ? ॥१०॥ पहिले प्राचीन समय में जिसने दाखन में मिखाटन किया था । उस समय में आप सखा लोगों ने यह रुद्र भिक्षु कहें—ऐसा आप दिया था और रुद्र के द्वारा भी जो शक्त थे, उन भगवान रुद्रदेव को आप लोग इस समय में कैसे भूल गये हैं जिसके अवयव मात्र से यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् पूरित हो रहा है । उसी क्षण में यह समस्त जगत् लिङ्गभूत हो गया था । सब देवगण और इन्द्र लयन होने से ही लिंग—ऐसा कहते थे । जिन शूलधारी देव से ये सभी देवगण समुत्पन्न हुए हैं वही वेदान्तगामी देव आपके द्वारा नहीं जाना जा सकता है ॥११-१४॥

तस्यावचनमाकर्ष्य रुद्रः कूटोऽब्रवीद्वचः ।

किं त्वया बहुनोक्तेन कार्यं नास्तीह साम्प्रतम् ॥१५॥

गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे ! कस्मात्त्व हि ममागता ।

अमंगलो हि मर्ता ते अशिवोऽसौ सुमध्यमे ॥१६॥

अकुलीनो वेदवाह्यो भूतप्रोतपिशाचराट् ।
 तस्मान्नाकारितो भद्रे यज्ञार्थं चाहभाषिणो ॥१०॥
 मया दत्ताऽसि सुश्रोणिपापिनामन्दबुद्धिना ।
 रुद्रायाविदितार्थाय उद्धताय दुरात्मने ॥११॥
 तस्मात्कार्यं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ।
 दक्षेणोक्ता तदा पुत्री सा सती लोकपूजिता ॥१२॥
 निदायुक्तं स्वपितर विलोक्य रुपिताभृशम् ।
 चितयन्तीतदा देवी कथयास्यामि मन्दिरे ॥२०॥
 शङ्कर द्रष्टुकामाऽहं किं वक्ष्येतेनपृच्छिता ।
 योनिर्दत्तमहादेवनिद्यमानं शृणोतियः ।
 तावुभो नरके याता यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥२१॥

सती देवी के इस वचन का श्रवण करके प्रजापति दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह वचन बोला—इस समय पर यहाँ पर बहुत अधिक तुम्हारे द्वारा कहने का क्या प्रयोजन है । यहाँ इस कथन का कुछ भी काम नहीं है । हे मद्र ! तुम जाओ प्रथवा रहो तुम यहाँ पर क्यों समागत हो गई हो ? हे सुमध्यमे ! तुम्हारी जो स्वामी है वह शिव नहीं अशिव स्वरूप और अमञ्जल है ॥१५॥१६॥ वह अकुलीन, वेदों से बहिष्कृत और भूत प्रोत तथा पिशाचों का राजा है । हे मद्र ! तुम तो बहुत सुन्दर भाषण करने वाली हो । मैंने अपने इस महान् यज्ञ में इन्हीं कारण से उनको नहीं बुलाया है । हे सुश्रोणि ! मन्द बुद्धि वाले पापी मैंने पूरा समाचरण न जानने के कारण ही उस उद्धत दुरात्मा रुद्र के लिए तुमको उस समय में दे दिया था । इस कारण से कार्य का परित्याग करके हे शुचिस्मित वाली ! तुम अब स्वल्प एवं शान्त हो जाओ । इस समय में दक्ष के द्वारा कही गई उस पुत्री सती ने जो सम्पूर्ण लोको की परम पूजित थी बहुत ही अनुचित समझा था । और शिव की निन्दा से युक्त अपने पिता को देखकर उसको अत्यन्त अधिक क्रोध आया था । उस समय में देवा यही चिन्ता करने लगी थी कि मैं अब अपने मन्दिर में

कैसे क्या मुँह लेकर जाऊँगी । मैं भगवान शङ्कर के दर्शन करने की इच्छा रखती हूँ किन्तु जब वे मुझ से पूछेंगे तो मैं क्या कहूँगी । जो महादेव की निन्दा करता है और निन्दा करने वालों के वचनों का श्रवण किया करता है वे दोनों ही नरकगामी हुए करते हैं और जब तक संसार में ये चन्द्र और सूर्य विद्यमान रहते हैं तब तक नरकों की पातनायें भोगते हैं । १७-२१।

तस्मात्प्रवक्ष्याम्यहं देहं प्रवक्ष्यामि हुताशनम् । २२।
 एवंमीमांसमानासाशिवहृद्रेतिभाषिणी ।
 अपमानाभिभूतासाप्रविवेशहुताशनम् । २३।
 हाहाकारेण महता व्यासमासीद्दिगन्तरम् ।
 सर्वे ते मन्त्रमारूढाः शस्त्रैर्व्याप्तानिरन्तराः । २४।
 शस्त्रैः स्वर्जघ्नुरात्मानं स्वानि देहानि चिच्छिदुः ।
 केचित्करतले गृह्यन् शिरांसि स्वानि चोत्सुकाः । २५।
 नीराजयन्तस्वरिता भस्मीभूताश्च जज्ञिरे ।
 एवमूचुस्तदा सर्वे जगज्जु रतिभीषणम् । २६।
 शस्त्रप्रहारैः स्वाङ्गानि चिच्छिदुश्चातिभीषणाः ।
 ते तथा विलयं प्राप्ता दाक्षायण्या समन्तदा । २७।
 गणास्तवायुतेद्वे च तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
 ते सर्वे ऋषयो देवा इन्द्राद्याः समरुद्रगणाः । २८।
 विश्वेऽश्विनी लोकापालास्तूर्ण्णी भूतास्तदाऽभवन् ।
 विष्णुं वरेण्यं केचिच्च प्रार्थयन्तः समन्ततः । २९।

इसलिए मैं इस अपने देह का ही त्याग कर दूँगी और हुताशन से नहूँगी । २२। इस प्रकार से विचार करने वाली देवी उसने 'हा शिव-हा हृद्रे !'—इस तरह मापण करते हुए अत्यन्त अधिक अपमान से अभिभूत होकर अग्नि में प्रवेश कर लिया था । २३। उसी समय में महाद् हाहाकार से समस्त विश्वों व्याप्त हो गई थी । वे सभी जो मन्त्रों पर

समारूढ हो रहे थे शस्त्रों से व्याप्त हो गये थे तथा निरन्तर वहाँ पर
 दाखाघात प्रारम्भ हो गया था । उन्होंने शस्त्रों के द्वारा
 अपने प्राणका हनन किया था और अपने ही देहों का
 छेदन करने लगे थे । कुछ लोग तो अपने मस्तकों को काटकर करतल में
 रखकर समुत्सुक हो रहे थे । २४२५। बहुत ही पीडिता से युक्त होते
 हुए वे नीराजम कर रहे थे और सब मस्मीभूत हो गये थे । इसी प्रकार
 से उस समय ये कह रहे थे और अत्यन्त भीषण ध्वनि के साथ गर्जना
 कर रहे थे । अत्यन्त भीषण स्वरूपधारी होकर शस्त्री के प्रहारों के
 द्वारा अपने ही अङ्गों का छेदन करने लगे थे । वे सब उसी प्रकार से
 विलय को प्राप्त हो गये थे और दासायणी के साथ ही उन्होंने प्राणों
 का त्याग कर दिया था । वहाँ पर दो अमृत गण थे और वह एक
 अद्भुत सा दृश्य उस समय में ही गया था । वहाँ पर जो भी सब ऋषि-
 गण थे, इन्द्र आदि देवगण और मरुद्गण थे तथा विश्वेदेवी, अश्विना
 कुमार और समस्त लोकपाल विद्यमान थे, उस समय में ये सब के सब
 घृष होकर मोन धारण कर गये थे । इनमें से जो कुछ लोग धरेण्य
 भगवान् विष्णु की सभी ओर से प्रार्थनायें कर रहे थे । २२-२६।

एव भूतस्तदा यज्ञीजातस्तस्य दुरात्मनः ।
 दक्षस्य ब्रह्मवन्धोश्च ऋषयो भयमागताः । ३०।
 एतस्मिन्पुत्रे विप्रा ! नारदेन महात्मना ।
 कथितसर्वमेवैतद्दक्षस्य च विचेष्टितम् । ३१।
 तदाक्वथ्येश्वरो वाक्यनारदस्यमुखोद्गतम् ।
 चुकोपपरमक्रुद्ध आसनादुत्पतक्षिव । ३२।
 उद्धृत्य च जटां हृद्रो लोकसंहारकारकः ।
 आस्फोटयामास हवा पर्वतस्य शिरोपरि । ३३।
 ताडनाच्च समुद्भूतो वीरभद्रो महायशाः ।
 तथा कालोत्पन्ना भूतकोटिभिरावृता । ३४।

कोपान्निः श्वसितेनैव रुद्रस्य च महात्मनः ।

ज्ञातं उवराणां च शतं सन्निपातास्त्रयोदश ।३५।

उस ब्रह्म बन्धु दुरात्मा दक्ष का यज्ञ का यज्ञ उस समय में इस प्रकार का हुआ था और सब ऋषिगण भय से व्याप्त हो गये थे । हे विप्रगण ! इसी बीच से देवर्षि नारदजी ने जो एक महान् आत्मा वाले हैं भगवान् शिव के समीप में पहुंचकर यह दक्ष का पुरा समाचार जो भी कुछ कहने की चेष्टा उसने की थी भगवान् शिव को कह सुनाया था । भगवान् शिव ने नारद के मुख से कहे हुए इस वाक्य का श्रवण करके अत्यन्त अधिक क्रोध किया था और क्रोध के आवेश में आकर शिव अपने आसन से उछल पड़े थे । ३०। ३१। ३२। समस्त लोको के संहार करने वाले भगवान् रुद्र ने अपनी जटा को खोल दिया था और उस जटा को पर्वत की शिखर पर बड़े ही रोष से फेंक कर मारा था । उस जटा के पंछाटने से महान् यज्ञ वाला वीर मद्र समुत्पन्न हो गया था तथा करोड़ों भूतों से संपावृत्त महाकाली भी उत्पन्न हो गई थी । क्रोध के कारण जो भगवान् शिव के गर्म श्वास निकल रहे थे उनसे सैकड़ों प्रकार के उवर और त्रयोदश सन्निपात समुत्पन्न हो गये थे । ३०-३५।

विज्ञप्तो वीरमद्रोऽणुरुद्रो रीद्रपराक्रमः ।

किं कार्यं भवतः कार्यं शीघ्रमेव वद प्रभो ।३६।

इत्युक्त्वो भगवान् रुद्रो प्रेषयामास सत्त्वरम् ।

गच्छ वीर महाबाहो दक्षयज्ञं विनाशय ।३७।

शासनं शिरसा घृत्वा देवदेवस्य शूलिनः ।

कालिकाऽऽलिहितो वीरः सर्वभूतैः समावृतः ।

वीरमद्रो महातेजा ययौ दक्षमर्षं प्रति ।३८।

तदानो मेव सहसा दुर्निमित्तानि चाऽभवन् ।

रुक्षो ववोत्तदा वायुः शकं राभिः समावृतः ।३९।

असृग् वर्षंति देवश्च (पञ्चान्य) तिमिरेणाऽऽवृता दिशः ।

उत्कापाताश्च बहवः पेतुरुर्व्यां सहस्रशः ।४०।

एवं विधानपरिष्ठानि ददृशुर्विबुधादयः ।
 दक्षोऽपिमयमापन्नोविष्णुं शरणमाययौ ॥४१॥
 रक्षरक्षमहाविष्णोत्वहिनः परमोमुरुः ।
 यज्ञोऽसि त्वंसुरश्रेष्ठ ! भयान्मापरिमोचय ॥४२॥

वीर भद्र ने समुत्पन्न होते ही रीद पराक्रम वाले भगवान् रुद्र से प्रार्थना की थी—हे प्रभो ! नील ही मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये कि इस समय में मुझे प्रापकी कौन सी सेवा करनी चाहिये । इस तरह से कृष्ण पर भगवान् रुद्र ने उसे नील ही सेवा दिया था और आज्ञा प्रदान की थी कि हे वीर ! हे महाबाहो ! तुम चले जाओ और शीघ्र ही दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कराओ । देवों के भी देव महादेवजी के इस शासन को शिरोधार्य करके कालिका के द्वारा आनिहिन तथा भूर्तो से समावृत वीर वीरभद्र जोकि महान तेज में संयुक्त था दक्ष प्रजापति के यज्ञ की ओर रवाना हो गया था ॥३६॥३७॥३८॥ उसी समय में सहस्रा बड़े-बड़े मयकृत होने लगे थे और उस प्रकार पर वायु बहुत ही रुखा होकर चलने लगा था जिसमें धूलि मिली हुई थी । मेघों में रुधिर की वर्षा होने लगी थी और सभी दिशाओं में वीर मन्थकार छा गया था । पृथ्वी पर सहस्री ही उल्कापात आकर गिरने लगे थे ॥३६॥३४॥ ॥३८॥३९॥४०॥ देवगण प्रादि सबने इस तरह के परिणों को देखा था । प्रजापति दक्ष भी परम भय को प्राप्त हो गया था और भगवान् विष्णु की शरणार्थि में आ गया था ॥४१॥ दक्ष ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की थी—हे विष्णु ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो । प्राप ही हमारे परम गुरु हैं । प्राप तो स्वयं यज्ञ रूप हैं और सभी देवगणों में सर्वश्रेष्ठ हैं । इस महान् भय से मेरा गोचन कीजिये ॥४२॥

दक्षेण प्रार्थ्यमानाद्द्विजगाद मधुसूदनः ।
 मयारक्षा विधातव्याभवतोनात्र संशयः ॥४३॥
 त्वदगा हि कृतादक्ष त्वमाधर्ममजानता ।
 ईश्वरावज्ञया सर्वं विफलचभविष्पति ॥४४॥

अपूज्यायत्र पूज्यन्तेपूजनोयोन पूज्यते ।
 त्रीणि तत्रप्रवर्तन्तेदुर्मिक्षं मरणां भयम् ॥४५॥
 तस्मात्सर्वप्रयन्नेनमाननीयोवृषध्वजः ।
 अमानितान्महेशात्त्वांमहद्भयमुपस्थितम् ॥४६॥
 अधुनैव वयं सर्वे प्रभवोन भवामहे ।
 भवतो दुर्नयेनैव नाऽत्रकार्या विचारणा ॥४७॥
 विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिन्तापरोऽभवत् ।
 विवर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थितः ॥४८॥

जित समय में दक्ष के द्वारा इस रीति से भगवान से प्रार्थना की गई थी तो भगवान मधुसूदन ने कहा था । मेरे द्वारा आपकी रक्षा अवश्य ही की जायगी । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४३॥ हे दक्ष ! तुमने धर्म को न जानते हुए बड़ी भारी भवशा की है । ईश्वर को इस महती भवशा से तेरा यह सभी कुछ विफल अवश्य ही हो जायगा ॥४४॥ जहाँ पर जो पूजने के योग्य हैं वे तो पूजे नहीं जाया करते हैं और पूजन करने के योग्य महान देवों को पूजा नहीं की जाती है वहाँ पर ये तीन कार्य हुआ करते हैं—महान दुर्मिक्ष का होना, भरण और तीमरा महान भय । इसलिये सभी प्रयत्नों के द्वारा भगवान् वृषध्वज का मान करना ही चाहिये । महेश के मान न करने से ही तुमको यह महाद् भय इस समय में उपस्थित हो गया है ॥४६॥ इसी समय में हम सब समर्थ नहीं हो सकते हैं । यह आपके दुर्जय से ही सब कुछ हो रहा है । इसमें अब अधिक विचार करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है ॥४७॥ भगवान् विष्णु के इस वचन को सुनकर दक्ष परम चिन्ता से समाकुल हो गया था और क्लान्तिहीन मुख वाला होकर चुपचाप भूमि पर स्थित हो गया था ॥४८॥

वीरभद्रो महाबाहू रुद्रेणैवप्रचोदितः ।
 कालीं कात्यायनीशानाचामुण्डा मुण्डमहिनी ॥४९॥

चद्रकालोत्थानद्रात्वरितावैष्णवी तथा ।
 नवदुर्गादिमहिषीभूतानाचमणोमहान् १५०।
 शाकिनी डाकिनो चैवभूतप्रमथगुह्यकाः ।
 तथैवयोगिनीचक्रंचतुः पञ्च नमन्वितम् १५१।
 निजुंभुः सहसा तत्र यज्ञवाटं महाप्रमम् ।
 वीरभद्रसमेता ये गणाः शतमहन्तगः १५२।
 पार्यदाः शङ्करस्यैते सर्वे रुद्रस्वरूपिणः ।
 पञ्चवक्त्रा नीलकण्ठाः सर्वेतेनारूपारण्यः १५३।
 छत्रचामरस्रवोताः सर्वे हरपराक्रमाः ।
 दशबाहवस्त्रिनेत्रा व्रटिला रुद्रभूषणाः १५४।
 अर्धचन्द्रधराः सर्वे सर्वे चैव महीजसः ।
 सर्वे ते वृषभाह्वयाः सर्वे ते वेषभूषणाः १५५।
 सहस्रबाहुर्जगाधिपैर्वृत्तलिनीवनो भीमवली मयावहः ।
 एभिः समेनञ्च तदा महात्मा स वीरभद्रोऽभिजगाम यज्ञम् १५६

महान् बाहुर्भी वाना वीरभद्र त्रिमकी मयवान रुद्र वे शेरित कर
 शेरित किया था । काली देवी, कास्मानवी, ईशान, चाकुण्डा, सुन्द-
 मादिनी, भद्र काली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी इन सब दुर्गा मादि के
 सहित श्रीर महान् भूतों के गण, शाकिनी व डाकिनी, पृथ, अमथ, गुह्यक तथा
 शक्ति योगिनीयों से समन्वित पूर्ण चक्र से सभी वहाँ से निकल पड़े थे ।
 वहाँ पर महान् प्रसा वाले यज्ञवाट में पहुँच गए थे । वीरभद्र के सहित
 संकड़ों श्रीर हजारों गण थे । ये सभी मयवान शङ्कर के पार्यद थे श्रीर
 सबका रुद्र के समान स्वरूप था । सबके पाँच भुज थे—नीले कण्ठ वाले
 थे श्रीर सबके हाथों में छत्र सबे हुए थे १५२-१५३। सब छत्र श्रीर
 चामरों से संगीन थे श्रीर हर के ही समान पराक्रम वाले थे । सबके
 दश बाहुयें थीं, जटाधारी थे श्रीर रुद्र के ही तुल्य भूषणों के धारण
 करने वाले थे १५४। सब प्राये चन्द्र की धारण करने वाले महान् श्रीर

से सम्पन्न थे । सभी वृष पर समाहृष्ट श्रीर शिवतुल्य वेप भूपाधारी थे । सहस्र बाहुओं वाला, मुजकों के षधियों से समावृत, तीन नेत्रों का धारी भीम बल वाला, मय देने वाला वह महात्मा वीर भद्र इन सब के साथ लिये हुये उस यज्ञ के समीप में पहुँच गया था । १५५।१५६।

युग्यानां च सहस्रेण द्विप्रमाणेनख्यंदनम् ।
 सिहानांप्रयुतेनैवबाह्यमानं च तस्य तत् । १५७।
 तथैव दंशिताः सिहावहवः पार्श्वंरक्षकाः ।
 शार्दूलामकरामत्स्यागजाश्चैव सहस्रशः ।
 छत्राणि विविधान्येव चामराणि तथैव च । १५८।
 मूर्द्धनिध्रियमाणानिसर्वतोऽग्राणिसर्वशः ।
 ततोभेरी महानादाः शङ्खाश्चविविघस्वनाः ।
 पटहा गोमुखाश्चैव शृङ्गाणि विविधानि च । १५९।
 ततोऽवाद्यन्ततान्येवघनानिसुपिराणि च ।
 कलगानपराः सर्वे सर्वे मृदङ्गवादिनः । १६०।
 अनेकलास्यसयुक्ता वीरभद्राग्रतोऽभवन् ।
 रणावादित्रनिर्घोषैर्जगजुंरमितीजसः । १६१।
 तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम् ।
 एवं सर्वे समाघाता गणारुद्रप्रणोदिताः । १६२।
 यज्ञवाटं च दक्षस्यविनाशार्थंप्रहारिणः ।
 रजसाचाऽऽवृतंव्योमतमसा च वृतादिशः । १६३।

उस वीरभद्र का ही प्रमाण सयुक्त रथ था जिसमें एक सहस्र षश्व थे और एक प्रयुन सिहों द्वारा वह ब्रह्म मान ही रहा था । उसके बहुत से दंशित सिह पार्श्व रक्षक थे । सहस्रों शार्दूल, मकस्मदस्य और गज थे । अनेक प्रकार के छत्र-चामर थे वो सबके आगे मस्तक पर धारण किये हुए थे । इसके अनन्तर महान नाद वाली भेरी और महान वाद्य ध्वनि वाले शङ्ख बजा रहे थे । पटहा, गोमुख और अनेक शृङ्ग

परिचान्त्वना देवे ह्ये कदा या — ये देवैः सवर्षेभ्यः विषयं काले हि मन्वन्तः ।
 नहीं हुआ करते हैं । १।२।३। देवों के द्वारा कहे हुए वे सब वर्ष ईश्वर
 के बिना कैसे मरवें होंगे । ये तो सभी विच्छन्न ही होंगे । इसलिए सब तो
 अपने समस्त प्रयत्नों के द्वारा सुम ईश्वर की शरण में चले जायेंगे । भग-
 वान् मोक्षियं वह कह ही कह रहे थे कि वह सेना लगी सागर वहीं पर
 समझ कर आ ही गया था । उस समय में देवों ने वीरभद्र के सहस्र ही
 सहस्रों देखा था । ४।१। इन्द्र ने उस समय में भारमवाद में रत भगवान्
 विष्णु की पीर हँसते हुए हाथ में वज्र इहण करके सुरों के साथ युद्ध
 करने की इच्छा बना ही गया था । नृसिंह ने शीघ्र ही उच्चारण परा-
 यण होकर समाचरण किया था । उस समय में गणों ने देवों के साथ
 युद्ध किया था । ६।७।

शरतीमरनाराचर्जघ्नुस्तेच परस्परम् ।
 नेट्टु शङ्खाश्च बहुशस्तस्मिन्नणुमहोत्सवे । १८।
 तथा दुःशुभयोनेदुः पटहादिण्डिमादयः ।
 तेन शब्देन महताश्लाघ्यमानास्त्वेदा सुराः ।
 लोकपालेश्वर सहिता जघ्नुस्ताञ्छिवकिङ्करान् । १९।
 सङ्गेश्चाऽपि हताः केचिद्गदाभिश्चविभोयिताः ।
 देवीः पराजिताः सर्वे गणाः शतसहस्रतः । २०।
 इन्द्राद्यलोकपालेश्वरणास्तेचपराडमुखाः ।
 कृताश्चतस्त्रणादेवभृगोर्मन्त्रबलेनहि । २१।
 उच्चाटनकृततेषामृगुणायजिदना तदा ।
 यजनार्थं च देवानातुष्टयं दोक्षितस्य च । २२।
 तेनैव देवा जयिनोजातास्तरक्षणमेवहि ।
 स्वानां पराजयं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽस्यान्वितः । २३।
 सूताप्रोक्तान्पिशाचाश्च कृत्वातानेव पृथक्तः ।
 वृषभस्यान्पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः ।
 तीक्ष्णं त्रिशूलमादाय पातायामास ताव्रणं । २४।

वे सब परस्पर में शर-तोमर और नाराचों के द्वारा निहन्न करने लगे थे । उस रण महोत्सव में बहुत बार राक्षों की ध्वनियां हुई थीं । इसी प्रकार से उस रणक्षेत्र में दुन्दुभियां और पटह एवं डिण्डिय आदि रण के बाघों ने ध्वनियां की थी । उस महान शब्द से उस समय में सुरगण बहुत ही श्लाघ्यमान हुए थे और लोकपालों के सहित उन्होंने उन समाक्रमणकारी शिव के किङ्करी का खूब ही हनन किया था । कुछ लोग तो खगों के द्वारा निहत किए गये थे और कुछ गदाघो के प्रहारों से मारे गये थे अर्थात् विषोषित कर दिये गये थे । वे संकड़ो और सहस्रों शिव के गण देवों के द्वारा पराजित कर दिये गये थे । इन्द्र आदि के और लोकपालों के द्वारा वे सब गण पराङ्मुख कर दिए गये थे । उसी समय में भृगु के मन्त्र बल के द्वारा उन सबका उच्चारण किया गया था । यज्वी भृगु ने देवों के यजन करने के लिए और यज्ञ में दीक्षित दक्ष प्रजापति की तुष्टि के लिये ही ऐसा मन्त्रों का प्रयोग किया था । १०।११।१२। उसी के द्वारा उसी क्षण में देवगण विजयी हो गये थे । अपने साथ सेना में समागत गणों का पराजय देख कर वीरभद्र को बड़ा भारी क्रोध हुआ था । उसी समय में उन वीरभद्र ने उन पराङ्मुख होने वाले भूत-प्रेत और पिशाचों को पीछे की ओर करके जो वृषभों पर समाकूट थे उनको आगे किया था और महान बल-शाली स्वयं भी आगे बढ़कर आ गया था । फिर उसने अपने तीक्ष्ण शूल को हाथ में लिया था और उन देवों को रणक्षेत्र में भूमिशायी कर दिया था । १३।१४।

देवान्यक्षान्पिशाचांश्चगुह्यकाप्राक्षमांस्तथा ।

शूलघातैश्च ते सर्वगणादेवान्प्रजघ्नरे । १५।

केचिद् द्विधाकृताः खड्गेमुद्गरैश्चाऽपि पोषिताः ।

परश्वर्धः खण्डशश्च कृताः केचिद्रणाजिरे । १६।

शूलैर्भिष्ठाश्चशतशः केचिच्चशकलीकृताः ।

एवं पराजिताः सर्वे पलायनपरायणाः । १७।

परस्परं परिष्वज्यगतास्तेऽपि त्रिविष्टनम् ।
 केवलं लोकपालाञ्च इन्द्राद्यास्तत्स्युत्सुकाः ।
 बृहस्पतिं पृच्छमानाः कुतोऽस्नाकं जयो भवेत् ॥१८॥
 बृहस्पतिस्वाचेदं सुरेन्द्रं त्वरितस्तदा ॥
 यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सत्यं जातमद्य वै ॥१९॥
 अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूपस्य कर्म्मणः ।
 कर्तारं भजते सोऽपि न ह्यकतुः प्रभुहितः ॥२०॥
 न मन्त्रीषधयः सर्वे नानिचारानलोकितः ।
 न कर्म्मणि न वेदादच न मोमासाद्वयंतया ॥२१॥
 ज्ञातुमीशाः सम्भवन्ति नक्त्या ज्ञेयास्त्वनयथा ।
 ज्ञान्त्या च परया तुष्ट्या ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ॥२२॥

उन सब गरुओं ने देवों को, यक्षों को, पिशाचों को, गृह्यकों को
 और राक्षसों को तथा देवों को शून्य के घातों के द्वारा निह्वनत किया
 था ॥११॥ कुछ लोग तो खर्गों से दो टुकड़े कर दिने गए थे और मुद्-
 वरों के द्वारा भी पीड़ित किये गये थे । कुछ क्षेत्र परम्पणों से खट-खट
 कर डाले थे । इस प्रकार से उस रणक्षेत्र में ह्वनत किया गया था ॥१६॥
 संकडों को परम्पणों के द्वारा निह्वन कर दिए थे और कुछ टुकड़े कर डाले
 थे । इस तरह से सब पराजित होते हुए भागने में परापरण हो गये थे ।
 ॥१७॥ परस्पर में परिष्वजन करके वे भी सब स्वर्ग चले गये थे । वहाँ
 पर सिकुं लोकपाल और इन्द्र आदि उत्सुक होते हुए स्थित रह गये थे ।
 इन सबने बृहस्पति से पूछा था कि हमारा विजय कैसे होगा ॥१८॥ उस
 समय में शीघ्रता से बृहस्पति ने सुरेन्द्र से यह कहा था । बृहस्पति ने
 कहा—जो कुछ भी भगवाद् विष्णु ने पहिले कहा था वह सब कुछ
 प्राप्त सत्य ही हो गया है ॥१९॥ इस फल रूप कर्म्म का यदि कोई ईश्वर
 है वह भी कर्त्ता का नवन किया करवा है जो कर्त्ता का सह प्रभु नहीं
 होता है ॥२०॥ सब मन्त्र और भोजधियाँ—अनिवार, भौतिक, कर्म्म, देव

और दोनों पूर्व भी माँस तथा उत्तर भी माँस (वेदान्त) उसको जानने में समर्थ नहीं हैं। वह तो अनन्य मक्ति के ही द्वारा जानने योग्य है। शान्ति और परा तुष्टि से ही भगवान सदाशिव जानने के योग्य हुआ करते हैं। १२१।२२।

तेन सर्वसम्भवन्तिमुखदुःखात्मकं जगत् ।
परन्तु सम्बदिव्यामिकार्यकार्यविवक्षया १२३।
त्वमिन्द्र ! बालिशो भूत्वा लोकपालोः सहाय वं ।
आगतो बालिशो भूत्वा इदानीं किं करिष्यसि १२४।
एतेन्द्रसहायाश्च गणाः परमशोभन १ : ।
कृपिताश्च महाभाग न तु शेषं प्रकुर्वते १२५।
एवं बृहस्पतेर्वनियंश्चुत्वातेऽपिदिवोकसः ।
चिन्तामापेक्षिरेसर्वलोकपाला महेश्वराः १२६।
सतोऽब्रवीद्वीरभद्रोगणैः परिवृतो भृशम् ।
सर्वं यूयं बालिशत्वादवदानार्थमागताः १२७।
अवदानानिदास्यामितृप्यर्थंभवतात्वरन् ।
एवमुषता शितैर्बाणैर्जघानाऽथ रूपाश्वितः १२८।

उसी से यह दुःख-मुक्त स्वरूप वाला जगत् और सब समुपन्न हुआ करते हैं किन्तु कार्य और प्रकार्य की विवक्ष्य से मैं कहूँगा १२३। हे इन्द्र ! तुम भूख हो गए हो और इन सब लोकपालों के साथ आज भूखंता की है। यहाँ पर बिल्कुल भूढ़ बनकर तुम समागत हो गये हो। इस समय मैं क्या करोगे ? १२४। ये समस्त गण भगवान इन्द्र की सहायता वाले हैं और परम शोभन हैं। ये महाभाग पर्यायिक श्रेय में भरे हुए हैं ये शेष नहीं रखा करते हैं १२५। इस प्रकार के कहे हुए बृहस्पती के वाक्य का अर्थण करके वे समस्त देवगण भी चिन्तित हो गए थे तथा सब महेश्वर लोकपाल भी चिन्ता को प्राप्त हो गए थे १२६। इसके अनन्तर गणों से पूब घिरे हुए वीरभद्र बोले—आप सब भूढ़ता के कारण से ही भगवान के लिए समागत हुए हैं १२७। आपकी वृष्टि के

लिए बहुत ही क्षीघ्रता से मैं उन सब दानों को दूँगा। इस प्रकार से कहकर बड़े रोष से समन्वित होकर अपने तीक्ष्ण वाणों से हनन किया पा १२८।

तैर्बाणैर्निहता सर्वे जग्मुस्ते च दिशो दश ॥२६॥
 गतेषु लोकपालेषु विद्रुतेषु सुरेषु च ।
 यज्ञवाटे समायातो वीरभद्रो गणाभितः ॥३०॥
 तदा त ऋषयः सर्वे सर्वमेवेश्वरेश्वरम् ।
 विजन्तुकामा सहस्राञ्चुरेव जनार्दनम् ॥३१॥
 रक्ष यज्ञं हि दक्षस्य यज्ञोऽसित्वं न सशय ।
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनमृषीणां जनार्दनः ॥३२॥
 योद्मूकामः स्थितो युद्धे विष्णुरध्यात्मदीपक ।
 वीरभद्रो महाबाहुः केशवं वाचय मम वीत् ॥३३॥
 अत्र त्वया गतकस्माद्विष्णो ! वेत्नामहाबलम् ।
 दक्षस्य पक्षमाश्रित्य कथजेष्यसितद्वद ॥३४॥
 दासायण्याकृतं यच्च न दृष्टं किं त्वयाऽनघ !
 त्वचाऽपियज्ञं दक्षस्य अवदानार्थमागतः ।
 अनदानं प्रयच्छामि तव चाऽपि महाभुज ! ॥३५॥

उन वाणों से उन सब को निहत कर दिया पा वीर वे दशों दिशाओं में चले गये थे ॥२६॥ उन समस्त लोकपालों के चले जाने पर वीर देवगणों के विद्रुत हो जाने पर फिर वह वीरभद्र अपने वाणों की साथ में लेकर उस यज्ञ वाट में समागत हुए थे ॥३०॥ उस समय में वे समस्त ऋषिगण समस्त ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् जनार्दन से विज्ञापन करने की इच्छा वाले होते हुए सहस्र करने लगे थे। हे भगवन् ! इस दक्ष के यज्ञ की रक्षा करिए क्योंकि प्रायः यज्ञ स्वरूप हैं—इसमें कुछ संशय नहीं है। भगवान् जनार्दन ने ऋषियों के वचनों को सुनकर मुद करने की इच्छा वाले होकर अध्यात्म दीपक वह भगवान् विष्णु स्वयं

युद्ध स्थल में स्थित हो गए थे । उस समय में महाबाहु वीरभद्र ने भगवान् केदाव से यह वाक्य कहा था — १३१।३२।३३। हे विष्णु ! आप यहाँ पर कैसे भा गए हैं । आप तो इस महाबल के ज्ञाता थे । आप इस दक्ष के पक्ष की ग्रहण करके इस रुद्र की सेना को कैसे जीत लेंगे — यही आप हमको बतला दीजिए । हे अनघ ! जो यहाँ पर दासायणी किया है क्या आपने उस दुर्घटना को नहीं देखा था ? आप भी इस दक्ष के यज्ञ में भवदान ग्रहण करने के लिए ही समागत हुए हैं । हे महाभुज ! मैं वह भवदान आपकी भी देता हूँ । १३४।३५।

एवमुक्त्वा प्रणम्यादौ विष्णुं सहस्ररूपिणम् ।

वीरभद्रोऽग्रतो भूत्वा विष्णु वाक्यमथाऽब्रवीत् । ३६।

यथाशम्भुस्तथात्वंहिममनास्यत्रसंशयः ।

तथाऽपित्वंमहाबाहोयोद्धु कामोऽग्रतः स्थितः ।

नेष्याम्यपुनरावृत्ति यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना । ३७।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्यधीमतः ।

उवाच प्रहसन्देवोविष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः । ३८।

रुद्रतेजः प्रसूतोऽसि पवित्रोऽसि महामते ।

अनेन प्रायितः पूर्वं यज्ञार्थं च पुनः पुनः । ३९।

वहं भक्तपराधीनस्तथासोऽपि महेश्वरः ।

तेनैव कारणोनाऽब्रदक्षस्य यजनं प्रति । ४०।

वागतोऽहं वीरभद्र ! रुद्रकोपसमुद्भव ! ।

वहं निवारयामित्वां त्वं वामां विनिवारय । ४१।

इत्युक्तवत्तिगोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः ।

प्रश्रयावततो भूत्वा इदमाह जनार्दनम् । ४२।

इस प्रकार से कहकर सर्वप्रथम सहस्र स्वरूप वाले भगवान् विष्णु की प्रणाम किया था और फिर वीरभद्र आगे होकर विष्णु भगवान् से यह वाक्य बोला था । ३६। जिस प्रकार से मेरे माननीय भगवान् शम्भु हैं

वैसे ही घाप भी है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है तो भी हे महाबाहो ! घाप मुझसे मुट्ट करने की कामना वाले होकर मेरे प्राण समवस्थित हो गए हैं । यदि घाप अपने घाप ही इस रण में स्थित होकर लड़ते हैं तो मैं घापकी मपुत्रावृत्ति में पहुँचा दूँगा । ३७। उस घीमात्र वीरभद्र के इस वचन का श्रवण करके सबके ईश्वरो के भी ईश्वर विष्णुदेव हँसते हुए यह वचन बोले । ३८। भगवान विष्णु ने कहा—हे महामते ! घाप रत्न के तेज से समुत्पन्न हुए हैं अतएव घाप परम पवित्र हैं । देखो, इस दक्ष ने पहिले ही यज्ञ में समागत होने के लिए मुझे चारम्बर बुलाया था और मेरी प्रार्थना की थी । मैं तो भक्त के पराधीन हूँ उसी तरह भगवान महेश्वर भी अपने भक्त के अधीन रहा करते हैं । इसी कारण से मैं दक्ष के इस यजन में आ गया हूँ । हे वीरभद्र ! घाप तो रुद्र के कोप से समुत्पन्न होने वाले हैं । मैं घापको निवारण करता हूँ और घाप मुझको विनिवारित कीजिये । ३९। ४०। ४१। इस प्रकार से यह श्री गोविन्द के कहने पर वह महान् मुजाब्रों वाला हूँ सकर और श्रव्य से एकदम किन्त होकर जनार्दन से यह बोला—। ४२।

यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः ।

सेवकाश्च वयं सर्वे तव वा शङ्करस्य च । ४३।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सोऽच्युतः सम्प्रहस्य च ।

इदं विष्णुमहावाक्यं जगादपरमेश्वरः । ४४।

योषयस्वमहाबाहो गयासार्धमशङ्कितः ।

तवाऽस्त्रैः पूर्यमाणोऽहं गच्छामि भवनं स्वकम् । ४५।

तथेत्युक्त्वा तु वीरोऽसौ वीरभद्रो महाबलः ।

गृहीत्वा परमाघ्राणसिंहनादं जगर्ज ह । ४६।

विष्णुश्चाऽपि महाघोषं शङ्खनादं चकार सः ।

तच्छ्रुत्वा ये गता देवारणहित्वाऽऽयुः पुनः । ४७।

व्यूहं चक्रुस्तदा सर्वे लोकपालाः सवासवाः ।

तदेन्द्रेण हतो नदी वज्रैश्च शतपर्वाणा । ४८।

नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनान्तरे ।

वायुनाच हतो भृंगी भुङ्गिणा वायुराहतः ।४६।

जिस रीति से भगवान शिव हैं उसी भाँति आप हैं और जैसे आप हैं वैसे ही भगवान शिव हैं । हम सब तो भगवान शङ्कर के और आपके सेवक हैं ।४३। उसके इस वचन का श्रवण करके भगवान अभ्युत्त हो गये और फिर परमेश्वर भगवान विष्णु यह महावाक्य बोले ।४४। हे मन्नावाहो ! तुम शङ्कर रहित होकर मेरे साथ युद्ध करो । तुम्हारे शस्त्रों में पूर्णमाण होकर ही मैं अपने भवन को चला जाऊँगा ।४५। ऐसा ही किया जायेगा — यह कहकर महान् बलवान् इस वीर वीरमद ने परम भस्त्रों को ग्रहण करके सिंह नादों के सहित गर्जना की थी ।४६। भगवान विष्णु ने भी महान घोष वाला शंख नाद किया था । यह सुन कर जो देवगण वहाँ से भागकर चले गये थे और युद्ध छोड़ चुके थे वे भी फिर वहाँ पर लौट कर वापिस आ गये थे । इन्द्र के सहित समस्त लोकपालो ने एक व्यूह (मोर्चा) की रचना की थी । इसके पश्चात् उसी समय में इन्द्रदेव ने शतपर्वा वज्र के द्वारा नन्दी पर प्रहार किया था तथा नन्दी ने त्रिशूल के द्वारा स्तनो के मध्य में इन्द्र पर प्रहार किया था । वायुदेव ने भृङ्गि पर और भृङ्गी ने वायु पर प्रहार किए थे और दोनों एक दूसरे के प्रहारों से प्राहत हो गए थे ।४७।४८।४९।

शूलेन सितधारेण सनद्धो दण्डधारिणा ।

यमेन सह संग्रामं महाकालो बलान्वितः ।५०।

कुबेरेण च संगम्य कूष्माण्डानां पति स्वयम् ।

वरुणेन समं युद्धं मुण्डश्चैवमहानलः ।५१।

युयुधे परया शक्त्या त्रैलोक्यं विस्मयन्निव ।

नैऋतेन समागम्य चण्डश्च बलवत्तरः ।५२।

युयुधेपरमास्त्रेण नैऋत्यं च विडम्बयन् ।

योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवो नायकोमहान् ।५३।

विदार्यं देवानखिलान्पपी शोणितमद्भुतम् ।
 क्षेत्रपालास्तथा चान्ये भूतप्रमथगुह्यकाः ॥५४॥
 शाकिनी डाकिनी रौद्रा नवदुर्गास्तथैव च ।
 योगिन्यो घातुघान्यश्च तथा कूष्माण्डकादयः ।
 नेदुःपपुः शोणितं च बुभुजु पिशितं बहु ॥५५॥
 भक्ष्यमाणतदासैन्यं विलोक्यमुरराट् स्वयम् ।
 विहायनन्दिनपश्चाद्द्वोरभद्र समाक्षिपत् ॥५६॥

मिनवार वाले गुरू के द्वारा दण्डीधारी यम के साथ बत से समन्वित महा काल तपाम के लिए सन्नद्ध हो गया था । कुवेर के साथ सङ्गम करके स्वयं कूष्माण्डों का पति तथा महान बनघाली मुण्ड वरुण के साथ मिनवार युद्ध करने लगे थे । तीन सौकों की विरमय में डालते हुए परमाधिक शक्ति से बनघाली में विशेष बनघाली चण्ड ने नैऋत देव के साथ मिनवार युद्ध किया था ॥५०॥५१॥५२॥ योगिनियों के चक्र से मन्वित होकर महान् सेना के मायक भैरव ने परमात्म के द्वारा स्वयं देव की विडम्बित करते हुए घोर युद्ध किया था । समस्त देवों विदीर्ण करके उस भैरव में अद्भुत देवों का हथिर का पान किया था । उसी भाँति अन्य क्षेत्रपाल, भूत, प्रमथ, गुह्यक, शाकिनी, डाकिनी, परम रौद्र रूप वाली नव दुर्गा, योगिनियाँ, घातुघानियाँ, कूष्माण्ड आदि सबने महान घोर ध्वनि की, रक्त का खूब पान किया तथा माँस का पच्यो तरह से भक्षण किया था । उस समय में इस बुरी तरह से समस्त सेना का भक्षण होते हुये देखकर देवों के राजा इन्द्रदेव ने नन्दी के साथ युद्ध करना छोड़कर फिर वीरभद्र के ऊपर आक्रमण किया था ॥५३॥५४॥५५॥५६॥

वीरभद्रो विहार्यैव विष्णुं देवेन्द्रमास्थितः ।

तयोपुंढमभ्रद्वोरं बुधाङ्गारकयोरिव ॥५७॥

वीरभद्रं पदाशक्रो हन्तुकामस्त्वरान्वितः ।
 तावच्छक्रं गजस्थं हि पूरयामास मार्गणेः । ५८।
 वीरभद्रो रूपाविष्टो दुर्निवार्यो महाबलः ।
 तदेन्द्रेणाहतः शीघ्रं वज्रेण शतपर्वणा । ५९।
 सगजश्च सवज्रं च वासवंगन्तुमुद्यतः ।
 हाहाकारो महानासोद् भूतानां तत्र पश्यताम् । ६०।
 वीरभद्रं तथाभूतं हन्तुकाम पुरन्दरम् ।
 त्वरमाणस्तदा विष्णुर्वीरभद्राग्रतः स्थितः । ६१।
 शक्रं च पृष्ठतः कृत्वा योधयामास वै तदा ।
 वीरभद्रस्य विष्णोश्च युद्ध परमभूत्तदा । ६२।
 शस्त्रास्त्रैर्विविधाकारैर्योधयामास तुस्तदा ।
 पुनर्नन्दिनमालोक्य शक्रो युद्धविशारदः । ६३।

वीरभद्र ने भी भगवान विष्णु को द्योढ़कर स्वयं देवेन्द्र को ऊर
 भाक्रमण के लिए समास्थित हो गया था । उस समय में उन दोनों का
 युध और अद्भारक के समान अत्यन्त घोर युद्ध हुआ था । इन्द्र बहुत ही
 शीघ्रता युक्त होकर पद से वीरभद्र का हनन करना चाहता था किन्तु
 तब तक वीरभद्र ने ऐरावन हाथी पर स्थिति इन्द्र को वाणों से पूरित
 कर दिया था । वह महान बलवान वीरभद्र एक दम रोष के आवेश में
 हुआ था और दुर्निवार्य हो गया था । उसी समय में इन्द्रदेव ने शतपर्वा
 वज्र के द्वारा उसे शीघ्र ही समाहत कर दिया था । ५७। ५८। ५९। ६०।
 जिस समय में हाथी और वज्र के सहित इस पर गमन करने के लिए वह
 उद्यत हुआ था उस समय में वहाँ पर जो प्राणी देख रहे थे उनमें महान
 हाहाकार मच गया था । इस प्रकार से इन्द्रदेव का हनन करने की
 इच्छा वाले वीरभद्र को देखकर भगवान विष्णु शीघ्रता से समागत होते
 हुये वीरभद्र के आगे स्थित हो गये थे । इन्द्र अपने पृष्ठ भाग की ओर
 करके स्वयं ही उस समय में युद्ध करने लगे थे । उस अवसर पर वीर-

भद्र घोर भगवान विष्णु का परम घोर युद्ध हुआ था । वे दोनों ही अनेक भाँति के आकार वाले अस्त्र घोर घस्त्रों से युद्ध कर रहे थे । युद्ध करने की कला के महान पण्डित इन्द्र ने नदी को फिर देखा था । १५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।

द्वन्द्वयुद्धं सुमुतुलां देवानां प्रमथैः सह ।
 प्रमथा मथिता देवैः सर्वे ते प्राद्रवद्रणात् । ६४।
 गणान्पराङ्मुखान्दृष्ट्वा सवैतेव्याधयो भृशम् ।
 रुद्रकोपात्समुद्भूता देवाश्चाऽपि प्रदुद्रुवुः । ६५।
 ज्वरंस्तु पीडितान्देवान्दृष्ट्वा विष्णुर्हसन्निव ।
 जीवप्राहेण जग्राह देवांस्तांश्च पृथक्पृथक् । ६६।
 देवाश्चिवनी तदाऽऽहूय व्याधीन्हन्तुं तदाभृतिम् ।
 ददौ तान्यां प्रयत्नेन गणमित्वा सुबुद्धिमान् । ६७।
 ज्वरांश्च सन्निपाताश्च अन्येभूतद्रुहस्तदा ।
 तान्सर्वाग्निगृहीत्वाऽयमश्विनीतौ मुदान्वितौ ।
 विज्वरानथ देवांश्च कृत्वा मुमुदतुश्चिरम् । ६८।
 तैजित योगिनीचक्र भीरवं व्याकुलीकृतम् ।
 तीक्ष्णार्मः पातयामासुः शरंभूतगणानपि । ६९।
 सुरेन्द्रावित सैन्य विलोक्य पतितभुवि ।
 वीरमद्रो रूपाविष्टो विष्णुर्वचनमब्रवीत् । ७०।

महान तुमुल द्वन्द्व युद्ध देवों का प्रमथो के साथ हुआ था । देवों के द्वारा मथित हुए वे सब प्रमथ गण रणक्षेत्र से भाग खड़े हुए थे । गणों के पराङ्मुख देखकर वे समस्त व्याधियाँ जो बहुत अधिक परिमाण में भगवान रुद्रदेव के कोप से समुत्पन्न हो गईं थीं उन्हें देखकर देवगण भी भाग गए थे । इस तरह से ज्वरों से पीडित देवों को देखकर भगवान विष्णु ने हँसते हुए ही उन देवों को पृथक्-पृथक् जीवप्राह से ग्रहण किया था । ६४।६५।६६। उसी समय में अश्विनी कुमार दोनों देवों को

बुलाकर व्याधियों का हनन करने के लिए कहा गया था। तभी से लेकर उन्हें परम सुबुद्धिमान गिनकर उन दोनों को प्रयत्नपूर्वक दे दिया था। १६७। वे दोनों अश्विनीकुमार उस समय में सब प्रकार के जरों को, सन्निपातों को और अन्य प्राणियों को पीड़ा देने वाले रोगों को सबको निवृत्त करके परम प्रसन्न हुए थे। समस्त देवों की श्रद्धा से रहित करके चिरकाल पर्यन्त वे अश्विनी कुमार मुदित हुए थे। १६८। फिर उन देवों ने नैरव को व्याकुली कृत करके सम्पूर्ण योगिनी चक्र को जीत लिया था और तीक्ष्ण प्रप्रमाण वाले जरों के द्वारा भूतगणों को भी उन देवों ने रसाक्षेप में गिरा दिया था। १६९। इस तरह सुरों के द्वारा विद्रा-वित अपनी सेना को देखकर तथा सबको घराशापी विलोकन करके वीर-भद्र को बड़ा भारी रोष प्राप्त हुआ था तथा क्रोध में भरकर वह भगवान् विष्णु से यह वचन बोला था। १७०।

त्वं शूरोऽसिमहाबाहो ! देवानां पालको ह्यसि ।

युध्यस्व मां प्रयत्नेन यदि ते मत्तिरीदृशी । १७१।

इत्युक्त्वा तं समासाद्य विष्णुं सर्वेश्वरेन्दवरम् ।

दक्षं निश्चितं वाणैर्वीरमद्रोमहाबलः । १७२।

तदा चक्रेण भगवान् वीरभद्रं जघान सः ।

आयान्तं चक्रमालोक्य प्रसितं तच्छणञ्च तत् । १७३।

प्रसितं चक्रमालोक्य विष्णुः परपुरस्त्रयः ।

मुखतस्त्य परामृज्य विष्णुर्नोद्गलितं पुनः । १७४।

स्वचक्रमादाय महानुभावो दिवंगतोऽश्वो भुवनैकमर्त्ता ।

ज्ञात्वा च तत्सर्वं भिद च विष्णुः कृती कृत दुष्प्रसहं परेशाम्

१७५।

हे महाबाहो ! आप तो महान शूरवीर हैं और देवों के साथ परम पालन करने वाले भी हैं। यदि आपको ऐसी ही बुद्धि है तो प्रयत्न पूर्वक मेरे साथ सब आप ही स्वयं युद्ध कर लीजिए। १७१। इतना

कहकर वह विष्णु भगवान के समीप में पहुँच गया था जो कि समस्त ईश्वरों के भी परम ईश्वर थे । महान बलवान वीरभद्र ने अत्यन्त तीखे बाणों के द्वारा उन पर वर्षा प्रारम्भ करदी थी । ७२। उसी समय भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा वीरभद्र का हनन किया था उस प्राते हुए चक्र को देखकर जो तत्क्षण ही प्रसित कर लेने वाला था । पर पुरों का जय करने वाले भगवान विष्णु ने उस प्रसित अपने चक्र को देखकर उसके मुख का परामृत्न करके पुनः विष्णुन उसे उद्गलित किया था । अपने चक्र को ग्रहण करके वे महानुभाव भगवान विष्णु जो समस्त भुवनो के एक ही भरण करने वाले हैं स्वर्गलोक में चले गये थे । कृती विष्णुदेव ने इस सबका ज्ञान करके दूमरों का जो दुष्प्रसह था वह कर दिया था । ७३। ७४। ७५।

५—वीरभद्र द्वारा दक्ष का शिरच्छेदन

विष्णो गते तदा सर्वे देवाश्च ऋषिभिः सह ।
 विनिजिता गणैः सर्वे ये च यज्ञोपजीविनः । १।
 भृगुश्च पातयामास श्मश्रूणां लुञ्चनं कृतम् ।
 द्विजाश्चोत्पाटयामास पूष्णां विकृतविक्रियान् । २।
 विडम्बिता स्वधा तत्र ऋषयश्चविडम्बिताः ।
 वधृषुस्ते पुरोपेणवितानाग्नीरुषान्विताः । ३।
 अग्निर्वाच्यं तदाचक्रुर्गणाः क्रोधसमन्विताः ।
 अन्तर्वेद्यन्तरगतो दक्षो वं महतो भयात् । ४।
 तं निलीनं समाज्ञाय आनिनाय रुषान्वितः ।
 कपोलेषु गृहीत्वा तं खड्गेनोपहतशिरः । ५।
 अभेद्यं तच्छिरो मत्वा वीरभद्रः प्रतापवान् ।
 स्कन्धं पद्भ्यां समाक्रम्य कण्ठरेऽपीडयत्तदा । ६।
 कण्ठरात्पाट्यमानाच्च शिरश्छिन्नं दुरात्मनः ।
 दक्षस्य च तदा तेन वीरभद्रेणधीमता ।
 तच्छिद्रः सुदृढं कुण्डे ज्वलिते तत्क्षणात्तदा । ७।

महर्षि प्रवर लोमशा मुनि ने कहा था—भगवान् विष्णु के उस समय में वहाँ से चले जाने पर समस्त देवगण ऋषियों के सहित गणों के द्वारा जीत लिये गए थे जो भी वहाँ पर यज्ञ के उपजीवी थे सभी को वीरमद्र के गणों ने पराजित कर दिया था ।१। उस वीरमद्र ने भृगु को नीचे गिरा दिया था और उसकी इमयुषों का लुचन कर डाला था पूषण को और विकृत विक्रिया धाने द्विजों को उत्पाटित कर दिया था ।२। स्वषा को और ऋषियों को वहाँ पर विडम्बित कर दिया था । ३। राप से समन्वित होकर उन्होंने वितानाग्नि में पृरीप (मन्त्र) की वर्षा की थी । क्रोध से भरे हुए उन गणों ने उस समय में ऐसे कृत्य किये थे जो वचनों के द्वारा कहने के भी योग्य नहीं हैं । प्रजापति दक्ष महान् भय से अन्तर वेदों के अन्दर चला गया था किन्तु वहाँ पर उसको छिपा हुआ जानकर क्रोध से समन्वित होकर वह वीरमद्र उसको निकाल कर ले आया था । उसके कपोलों को पकड़कर उसका शिर खड्ग से काट डाला था ।३।४। प्रतापशाली वीरमद्र ने उसके शिर को भस्मेष्ट मानकर उसके इन्ध को पैरों से दबाकर कन्धरा में पीड़ित किया था । ५। पीठ्यमान कन्धरा से उस दुरात्मा का शिर छिन्न किया था । यौमान् उस वीरमद्र ने उस समय में इसी तरह से उसके मस्तिष्क का छेदन किया था और उसी समय में उस जननी हुई धग्नि में तुरन्त ही कुण्ड में उसके शिर को भस्मी-भाँति हूत कर दिया था ।७।

ये चान्यो ऋषयो देवाः पितरो यक्षराक्षसाः ।

गणेषु पद्रुताः सर्वे पलायनपरा ययुः ।८।

चन्द्रादित्यगणाः सर्वे ग्रहनक्षत्रतारकाः ।

सर्वे विचलिताह्याशन् गणैस्तेऽपि ह्युपद्रुताः ।९।

सत्यलीकंगता ब्रह्मा पुत्रशोकैकं पीडितः ।

चिन्तयामासचाव्ययः किं कार्यं कार्यमद्यत् ॥१०।

मनसा द्रुपमानेन शं न लेभे पितामहः ।

जात्वा सर्वे प्रयत्नेन दुष्कृतं तस्य पापिनः ॥११।

गमनाय मतिं चक्रे कैलासं पर्वतं प्रति ।
 हंसाहूढो महातेजाः सर्वदेवैः समन्वितः । १२।
 प्रविष्टं पर्वतश्रेष्ठं स ददर्श सदाशिवम् ।
 एकान्तवासिनं रुद्रं शैलादेन समन्वितम् । १३।
 कपर्दिनं श्रियायुक्तवेदाङ्गानां च दुर्गमम् ।
 तथाविधं समालोक्य ब्रह्माक्षोभपरोऽभवत् । १४।
 दण्डवत्पतितो भूमी क्षमापयितुमुद्यतः ।
 संस्पृशं तत्पदाब्जं च चतुर्मुकुटकोटिभिः ।
 स्तुतिं कर्तुं समारेभे शिवस्य परमात्मनः । १५।

जो अन्य ऋषिगण, देववृन्द, पितृगण, यक्ष और राक्षस ये वे सब गणों के द्वारा उपद्रुत होने पर पलायन परायण हो गये थे अर्थात् भाग गए थे । ८। उन रुद्रदेव के गणों के द्वारा पीड़ित होते हुए चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारक सभी विचलित हो गए थे । ९। अपने पुत्र दक्ष के शोक से पीड़ित होकर ब्रह्माजी सत्य लोक को चले गये थे और वे यह चिन्ना करने लगे थे कि आज मुझे मर कौन जा कार्य करना चाहिए । उस समय में ब्रह्मा बहुत ही अव्यग्र होकर यह सोच रहे थे । १०। पितामह के मन में बहुत ही अधिक दुःख या और उसके दूयमान होने के कारण उनके मन में धान्ति नहीं हुई थी । उस पापी दक्ष का यह सब दुष्कृत खूब समझकर सब प्रकार के प्रयत्न से कैलास पर्वत की ओर ही गमन करने की मति स्थिर की थी । समस्त देवगणों को साथ में लेकर अपने हंस पर समाहूढ होकर महान तेजस्वी उस परम श्रेष्ठ पर्वत में प्रविष्ट हो गये थे और वहाँ पर भगवान सदाशिव का दर्शन प्राप्त किया था । कैलास पर भगवान रुद्र शैलादे के साथ एकान्त में निवास कर रहे थे । कपर्दी श्री से समन्वित और वेदाङ्गों के द्वारा दुर्गम उस प्रकार से सम्बन्धित भगवान शिव का आलोकन करके ब्रह्माजी के हृदय में बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया था । ११। १२। १३। १४। ब्रह्मा सदाशिव के

चरणों में दण्ड की भाँति भूमि में गिर गये थे और धपराप की समा-
यचना के लिए समुद्यत हो गए थे । उन्होंने अपने चारों मस्तकों पर
धारण किये हुए मुकुटों की नीकों से शिव के चरण कमलों का
सर्श किया था । फिर ब्रह्माजी ने परमात्मा शिव का स्तवन करने का
प्रारम्भ किया था । १५।

नमो रुद्राय शान्ताय ब्रह्मणो परमात्मने ।
त्वं हि विश्वसृजासृष्टा घाता त्वं प्रपितामहः । १६।
तमो रुद्राय महते नीलकण्ठय वेधसे ।
विश्वाय विश्वबीजाय जगदानन्दहेतवे । १७।
ओङ्कारस्त्वं षण्ढकारः सर्वारम्भप्रवर्तकः ।
यज्ञोऽसि यज्ञकर्माऽसियज्ञानां च प्रवर्तकः । १८।
सर्वेषां यज्ञकर्तृणां त्वमेव प्रतिपालकः ।
शरण्योऽसि महादेव ! सर्वेषां प्राणिनां प्रभो ।
रक्ष रक्ष महादेव ! पुत्रलोकेन पीडितम् । १९।
महादेव उवाच

शृणुष्व्वाऽबहितो मूर्खामम वाक्यं पितामह ! ।
दक्षस्य यज्ञमङ्गोऽयं न कृतश्च मया क्वचित् । २०।
स्वीयेन कर्मणा दक्षो हतो ब्रह्मन् संशयः । २१।

ब्रह्माजी ने कहा — परम शान्त स्वरूप, ब्रह्म, परमात्मा भगवान्
रुद्रदेव की सेवा में मेरा प्रणाम है । हे भगवन ! आप ही समस्त विश्व
के सृजन करने वालों के भी सृष्टा हैं । आप घाता हैं और सबके प्रपिता
यह है । नीलकण्ठ, महान् और वेधा रुद्रदेव के लिए मेरा नमस्कार है ।
विश्व स्वरूप, विश्व के बीज और इस जगत की आनन्द प्रदान करने के
हेतु आपके निचे प्रणाम है । १६। १७। आप ओङ्कार हैं, षण्ढकार हैं
और सब प्रारम्भों की प्रवृत्ति कराने वाले हैं । आप यज्ञ स्वल्प हैं, यज्ञ
में होने वाले कर्म स्वल्प हैं तथा समस्त यज्ञों के प्रवर्तक हैं । सभी यज्ञों

के करने वाले के भाप ही प्रतिशलन करने वाले हैं । हे महादेव ! भाप तरप्प, हैं हे भ्रमो ! सब प्राणियों के कारण अर्थात् रक्षा करने वाले हैं । हे महादेव ! परित्राण कीजिए, रक्षा कीजिए मैं अपने पुत्र के शोक से अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ । १८।१६। श्री महादेवजी ने कहा — हे पिता-मह ! भाप साक्षान्त होकर मेरे वावय का शरण कीजिये । यह दक्ष के यज्ञ का भङ्ग मैंने कभी भी नहीं किया है । हे ब्रह्मन् ! दक्ष अपने ही कर्म के द्वारा हत हो गया है—इसमें कुछ भी शशय नहीं है । २०।२१।

परेषां क्लेशद कर्म न कार्यं तत्कदाचन ।
 परमेष्ठिन् परेषा यदात्मनस्तद्भविष्यति । २२।
 एवमुक्त्वा तदा रुद्रो ब्रह्मणा सहितः सुरैः ।
 ययौ कनखल तीर्थं यज्ञवाट प्रजापतेः । २३।
 रुद्रस्तदा ददर्शस्य वीरभद्रेण यत्कृतम् ।
 स्वाहा स्वधा तथा पूषा भृगुर्मतिमताम्बरः । २४।
 तदाज्यश्रुपयः सर्वे पितरश्च तथाविधाः ।
 येऽप्ये च वहस्तत्र यज्ञगन्धर्वकिन्नराः । २५।
 त्रोटिता लुब्धिनाश्चैव मृनाः केचिद्रगाजिरे । २६।
 शम्भुं समागतं दृष्ट्वा वीरभद्रो गणैः सह ।
 दण्डप्रणामसयुक्तस्तथावप्रे सदाशिवम् । २७।
 दृष्ट्वाऽपुनः स्थितं रुद्र वीरभद्र महाबलम् ।
 उवाच प्रहसन्वावय किं कृतं वीरनन्विदम् । २८।

दूसरो को क्लेश देने वाला कार्य कभी भी नहीं करना चाहिए । हे परमेष्ठिन ! जो दूसरो के लिये होगा वही अपने लिये भी हो जायगा । २२। उसी समय में इस प्रकार से कहकर भगवान् रुद्र ब्रह्माजी घोर समस्त देवगणों के साथ प्रजापति की यज्ञशाला में कनखल तीर्थ को चल दिये थे । उस समय में भगवान् रुद्रदेव ने वहाँ पर पहुँच कर वह सभी स्वयं देखा था जो वीरभद्र ने किया था । स्वाहा, स्वधा, पूषा,

मतिमानों में परम श्रेष्ठ भृगु, अन्ग समस्त ऋषिगण, उसी प्रकार वाले सब पितर और जो बहुत से वहाँ पर यज्ञ, गन्धर्व और किन्नर ये वे सभी श्रोतन एवं लुञ्जित और रणक्षेत्र में कुछ भरे हुये थे । २३। २४। २५। २६। भगवान् शम्भु को वहाँ पर समागत हुये देखकर वीरभद्र अपने गणों के सहित दण्ड की भाँति गिरकर प्रणाम करके भगवान् सदाशिव के आगे समवस्थित हो गया था । २७। वरदेव ने अपने आगे स्थित महान् बनवान् वीरभद्र को देखकर हैमते हुए यह वाक्य कहा था—हे धीर ! क्यों जी, तुमने यह क्या कर डला है ? । २८।

दक्षमानय शीघ्रं भो येनेदं कृतमीदृशम् ।

यज्ञे विलक्षणं तात यस्येदं फलमीदृशम् । २९।

एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रस्त्वराम्बितः ।

कबन्धमानयित्वाऽयं शम्भोरग्रे तदाक्षित् । ३०।

तदोक्तः शङ्करेणैव वीरभद्रो महामनाः ।

शिरः कनापनोतं च दक्षस्याऽस्य दुरात्मनः । ३१।

दास्यामि जीवनं वीर कुटिलस्याऽपि चाधुना ।

एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रोऽन्ननीत्पुनः । ३२।

मया शिरोहुतंचाम्नीतदानीमेव शङ्कर ! ।

अवशिष्टं शिरः शम्भो पशोश्च विकृताननम् । ३३।

इतिज्ञात्वा ततोद्भ्रः कबन्धोपरिचाक्षिपत् ।

शिरः पशोश्चविकृतं कूर्चयुक्तं भयावहम् । ३४।

न दक्षो जीवितं लेभे प्रसादान्छङ्करस्यच ।

सदृष्ट्वाऽग्रे तदास्त्रं दक्षोलज्जासमन्वितः ।

तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शङ्कर लोकशङ्करम् । ३५।

हे वीरभद्र ! दक्ष को यहाँ पर बहुत शीघ्र लाभो जिसने यह ऐसा किया है । हे तात ! यज्ञ में जिसका ऐसा विलक्षण फल हुआ है । इस तरह से शङ्कर के द्वारा कह गये वीरभद्र ने तुरन्त ही जाकर दक्ष

के कवच को लाकर वहाँ पर शम्भु के भागे डाल दिया था । १२६।३०।
 उस समय में महान मन वाले वीरभद्र से भगवान् शङ्कर ने कहा—इस
 दुरात्मा दक्ष का शिर किस ने दूर किया है ? हे वीर ! इस समय मे
 तो इस कुटिल को भी मैं जीवन दान दूँगा । इस प्रकार से शङ्कर के
 द्वारा कहे जाने पर फिर वीरभद्र ने कहा—१३१।३२। हे शङ्कर ! मैंने
 उसका शिर तो उसी समय मे अग्नि मे हवन कर दिया था अब तो हे
 शम्भो ! पशु का विकृत भ्रान्त ही भवशिष्ट रह गया है । उन दक्ष ने
 शकर के प्रसाद से जीवन प्राप्त किया था । उसने उस समय में अपने
 भागे जब भगवान् रुद्र को देखा तो वह दक्ष लज्जा से भवन्त हो गया
 था । फिर उसने प्रणत होकर लोक के कल्याण करने वाले भगवान्
 शङ्कर का स्तवन किया था । १३३।३४।३५।

नमामि देव वरदं वरेण्यं नमामि देवेश्वर सनातनम् ।

नमामि देवाधिपमोश्वरं हरं नमामि शम्भुं जगदेकबन्धुम्

। ३६।

नमामि विश्वेश्वर ! विश्वरूप सनातन ब्रह्म निजात्मरूपम् ।

नमामि सर्वं निजभावभाव वरं वरेण्यं वरदं नतोऽस्मि । ३७

दक्षेण सस्तुतो रुद्रो वभापे प्रहसन्नहः । ३८।

चतुर्विधाभजन्तेमाजनाः सुकृतिनः सदा ।

वार्तो जिज्ञासुरथार्यो ज्ञानी च द्विजसत्तमः । ३९।

तस्मान्मे ज्ञानिनः सर्वे प्रियाः स्युर्नाऽत्र संशयः ।

विना ज्ञानेन मां प्राप्नुं गतन्ते ते हि बालिशाः । ४०।

केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्तुं मिच्छसि । ४१।

न वेदंश्च न दानैश्च न यज्ञं स्तपसा क्वचित् ।

न शक्नुवन्ति मां प्राप्नुं मूढाः कर्मवशा नराः । ४२।

दक्ष ने कहा—वरदान प्रदान करने वाले, वरेण्य, देवो के ईशो
 में भी परमार्थेष्ट ! सनातन देव को मैं प्रणाम करता हू । देवो के

प्रधिप, ईश्वर, जगत के एकमात्र बन्धु हर शम्भु की सेवा में मैं प्रणाम करता हूँ । ३६। हे विश्वेश्वर ! विश्व के स्वरूप वाले, निज के आत्म रूप से युक्त सनातन ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ । निज भाव के भाव, वर, वरेण्य, वर प्रदान करने वाले आपको मेरा नमस्कार है । मैं आपकी सेवा में नत हो रहा हूँ । ३७। महर्षि खीमस ने कहा—इस प्रकार से दक्ष प्रजापति के द्वारा भली-भाँति स्तुति किये गये मगवान रुद्र प्रहास करते हुए एकान्त में बोलें । ३८। श्री हर ने कहा—हे द्विजों मैं परम श्रेष्ठ ! मेरे भजन एवं उपासना करने वाले चार प्रकार के प्राणी हुआ करते हैं जो परम सुकृती सदा होते हैं । एक तो उन चारों तरफ के जनों में वह है जो भक्त होता है भवति परम पीडा से उत्पीडित होकर मेरा भजन किया करता है । दूसरा जिज्ञासु होता है जिसे ज्ञान की विधासा हुआ करती है । तीसरा मर्थ की चाह रखने वाला प्राणी मेरी उपासना करता है और चौथा ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति होता है । इन सब धारों तरह के भजन करने वालों में सभी जानी जन मेरे सदा परम प्रिय हुआ करते हैं - इमें लेश साय भी संशय नहीं है । बिना ज्ञान के जो मनुष्य मुझे प्राप्त करने की चेष्टा एवं प्रयत्न किया करते हैं वे मर्दा मूर्ख ही होते हैं । तुम तो केवल कर्म के द्वारा ही इस संसार से उद्धार होने की इच्छा रखते हो । ३९। ४०। ४१। कर्म के बल में ही केवल रहने वाले मनुष्य महान मूढ होते हैं और वे वेदों के द्वारा, दानों से, यज्ञ कर्मों के द्वारा और तपश्चर्या से मुक्त हो प्राप्त नहीं कर सकते हैं । ४२।

तस्माज्ज्ञानपरो भूत्वा कुरु कर्म समाहितः ।

सुखदुःखसमो भूत्वा सुखी भव निरन्तरम् । ४३।

उपदिष्टस्तदा तेन शम्भुना परमेष्ठिना ।

दक्षं तत्रैव संस्थाप्य यमी रुद्रः स्वपर्वतम् । ४४।

ब्रह्मणाऽपितथा सर्वे भृग्वाद्याश्च महर्षयः ।

आश्वासिता बोधिताश्च ज्ञानिनश्चाऽभवन्क्षणात् । ४५।

गतः पितामहो ब्रह्मा ततश्च सदनं स्वकम् ।४६।
 दक्षोऽपि च स्वयं वाक्यात्परंबोधमुपागतः ।
 शिवध्यानपरोभूत्वा तपस्तेपे महामनाः ।४७।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ससेव्यो भगवाञ्छिवः ।४८।

इसलिए ज्ञान मे परम परायण होकर ही समाहित होते हुए तुम जो कुछ भी कर्म हो उसे करो । सुख और दुःख को समान समझकर निरन्तर सुखी बनो ।४६। महर्षि प्रवर लोमशजी ने कहा—उस समय परमेशी भगवान् शम्भु ने इस प्रकार से उपदेश दिया था और फिर भगवान् रुद्रदेव वही पर दक्ष प्रजापति को स्थापित करके अपने पर्वत कैलास पर वापिस चले गये थे ।४७। उस समय में ब्रह्माजी के द्वारा सभी भूगु प्रादि महर्षि गण उसी भाँति आश्रयित किये गये थे और उन्हें बोध दिया गया था और वे सभी तत्क्षण में सब ही ज्ञानी हो गये थे । फिर पितामह ब्रह्माजी अपने घर को वापिस चले गये थे ।४८। प्रजापति दक्ष भी भगवान् शिव के द्वारा स्वयं कथित वाक्य से परम बोध को प्राप्त हो गये थे । महामना दक्ष ने फिर शिव के ध्यान मे तत्पर होकर तपश्पर्षा की थी । इसलिए परम सार यही है कि सभी प्रयत्नों के द्वारा भगवान् शिव की भली भाँति उपासना करनी चाहिये ।४७।४८।

६ - लिङ्गप्रतिष्ठावर्णन

लिङ्गे प्रतिष्ठा च कथं शिवंहित्वाप्रवृत्तिताः ।
 तत्कथ्यतां महाभाग ! परं शुश्रूषताहिनः ।१।
 यदा दासवने शम्भुभिक्षार्थं प्राचरत्प्रभुः ।२।
 दिगम्बरो मुक्ताजटाकलापो वेदान्तवेद्यो भुवनेकभर्ता ।
 स ईश्वरो ब्रह्मकलापधारो योशीश्वराणां परमः परश्च ।३।
 अणोरणीयान्महतो महोयान्महानुभावो भुवनाधिपो महान् ।
 स ईश्वरो भिक्षुरूपी महात्मा भिक्षाटनं दासवने चकार ।४।

मध्याह्नपथोविप्रास्तोर्ध्वजम्भुः स्वकाश्रमात् ।
 तदानीमेवसर्वास्ताःश्रुपिभार्याः समागताः ॥१॥
 विलोकयन्त्यः शम्भुं तमाचक्षुश्चपरस्परम् ।
 कोऽसी भिक्षुकरूपोऽप्यमागतोऽपूर्वदर्शनः ॥६॥
 अस्मेभिस्त्रांप्रयच्छामोवयं च मसिभिः सह ।
 तथेतिगत्वासर्वास्तागृहेभ्यमानयन्मुदा ॥७॥

श्रुपिगण ने कहा—हे महाभाग । भगवान् शिव का त्याग करके शिव के लिंग की पूजा करने की प्रतिष्ठा कैसे प्रवर्तित हुई थी— यह आप हमारे सामने बतलाइये । इसके अर्थ कारण करने की हमारी बड़ी भारी इच्छा है । १। लोमश जी ने कहा—जिस समय में प्रभु शम्भु भिक्षाटन के लिए दाक्षवत में प्रचरण कर रहे थे । उस समय में शिव परम दिगम्बर भयान् नग्न थे । उनकी जटायें मद खुली हुई थीं जोकि प्रभु वेदान्ती के द्वारा जानने के योग्य हैं और इस भुवन के एक ही पूर्ण भरण करने वाले हैं वह ईश्वर ब्रह्म कर्माप धारी और योगीश्वरों के परम पर थे । २। ३। वह ईश्वर भ्रानु ने भी छोटा है और महान् सभी महान् भयान् बड़ा है, समस्त भुवनों का स्वामी, महान् और महानुभाव है किन्तु वह एक भिक्षु का रूप धारण किए हुए दाक्षवत में भिक्षा का समाचरण करता था । ४। मध्याह्न के समय में सभी विप्र और श्रुपिगण अपने भाग्यों से तीर्थ को चले गये थे । उसी समय में वे सब श्रुपियों की आश्रयिणी वहाँ पर सम्भग्न हो गई थी । ५। उन्होंने उन दिगम्बर स्वरूप धारी भयवान् शम्भु को देखकर वे परस्पर में कहने लगीं थी— यह ऐसा एक भिक्षुक के रूप को धारण करने वाला कौन है जो इस समय में वहाँ पर समागत हो गया है । यह तो अपूर्व ही दर्शन वाला है । इसको हम सब अपनी सखियों के साथ भिक्षा देंगे । ठीक है ऐसा ही करो—यह कहकर वे सब अपने धरो से बहुत ही प्रसन्नता से भिक्षा ले पायीं । ६। ७।

भिक्षान्नं विविधं श्लक्ष्णं सौपचारं च शक्तिः ।
 प्रदत्तं मलितं तेन देवेदेवेनशूलिना ॥८॥
 काचित्प्रियतमंशम्भुवभाषेविस्मयान्विता ।
 कोऽसित्वंभिक्षुकोभूत्वाआगतोऽत्रमहामते ॥९॥
 ऋषोणामाश्रमं शुद्धं किमर्थं नो निषीदसि ।
 तयोक्तोऽपि तदाशम्भुर्वभाषेप्रहसन्निव ॥१०॥
 ईश्वरोऽहं सुकेशान्ते पावने प्राप्तवानिमम् ।
 ईश्वरस्य वचं श्रुत्वा ऋषिभार्याउवाचतम् ॥११॥
 ईश्वरोऽसि महाभाग कैलासपतिरेव च ।
 एकाकिनं कथं देव ! भिक्षार्थंमदनं तव ॥१२॥
 एवमुक्तस्तया शम्भुः पुनस्तामब्रवीद्वचः ।
 दाक्षायण्या विरहिरो विचरामि दिगम्बरः ॥१३॥
 भिक्षाटनार्थं सुश्रोणि ! संकल्पपरहितः सदा ।
 तया सत्यां विना किञ्चित् स्त्रीमात्रं मम मामिनि ।
 न रोचते विशालाक्षि ! सत्यं प्रति वदामि ते ॥१४॥

यह भिक्षा का अन्न पनेक प्रकार का था, परम श्लक्ष्ण और शक्ति
 मय उपचारों से समन्वित था । उसे उन सबने दिया था और उसे
 प्राप्त कर उन देवों के भी शूली ने भक्षण कर लिया था ॥८॥ उनमें से
 किसी ने विस्मय से सद्युत होकर प्रियतम भगवान् शम्भु से कहा था—
 आप कौन हैं जो भिक्षुक होकर हे महान् मति वाले ! इस समय में
 यहाँ पर आपने पदार्पण किया है ? यह ऋषियों का आश्रम परम शुद्ध
 है । आप हमारे मध्य में किसलिए स्थित हो रहे हैं ? उन ऋषि पत्नी
 द्वारा इस तरह से कहे गये भी भगवान् शम्भु ने हँसते हुए ही यह कहा
 था—हे सुकेशान्ते ! मैं ईश्वर हूँ और इस परम पावन आश्रम में प्राप्त
 हो गया हूँ । ऐसे ईश्वर के वचन का धरण करके ऋषिभार्या ने उनसे
 कहा था—हे महाभाग ! आप जब ईश्वर हैं और कैलास पर्वत के स्वामी
 हैं तो हे देव ! फिर एकाकी आपका यह इस तरह से भिक्षाटन क्यों

होता है ? उस ऋषि की भाषा के द्वारा इस तरह कहे गये शम्भु ने फिर उनसे यह वचन कहा था मैं अपनी पत्नी दाक्षायणी से विरहित होकर दिगंबर होते हुए इसी तरह विचरण किया करता हूँ । हे सुप्रोणि ! भिक्षाटन के लिए भी मैं सदा सङ्कल से रहित रहना करता हूँ । हे मामिनी ! उस सती के बिना मुझे स्त्री मात्र कुछ भी प्रच्छदी नहीं लगा करती हैं । हे विशालाक्षि ! मैं यह बात आपको पूर्ण रूप से सत्य ही कह रहा हूँ ।
।६-१४।

तस्योक्तं वचनं श्रुत्वा उवाच कर्मलेक्षणा ।
स्त्रियो हि सुखसंस्पर्शाः पुरुषस्य न संशयः ।१५।
ताः स्त्रियो वज्रिताः शम्भो ! त्वादृशेन विपश्चिता ।१६।
इति च प्रमदाः सर्वामिलितायत्र शङ्करः ।
भिक्षापात्रं च तच्छम्भो, पूरितं च महागुणैः ।१७।
अग्नेश्चतुर्विधैः पद्भ्यो रसंश्च परिपूरितम् ।
यदा शम्भुर्गन्तुकामः कैलास पर्वतं प्रति ।
तदा सर्वा विप्रपत्न्यो ह्यन्वयच्छन्मुदाश्रिताः ।१८।
गृहकार्यं परित्यज्य चेरुस्तद्गतमानसाः ।
गतासु तासु सर्वासु पत्नीषु ऋषिसरामाः ।१९।
यावदाश्रममभेत्य तावच्छून्यं व्यलोकयन् ।
परस्परमथोचुस्ते पत्न्यः सर्वाः कुतो गताः ।२०।
न विदामोऽयवै सर्वाः केन नष्टेन चाहताः ।
एवं विमृश्यमानास्ते विनिन्दन्तस्ततस्ततः ।२१।
समपश्यन्स्ततः सर्वेशिवस्थानुगताश्रिताः ।
शिवं दृष्ट्वा तु सम्प्राप्ताः ऋषयस्ते रुपाश्रिताः ।२२।
शिवस्थायीश्रिता भूत्वा ऊचुः सर्वे त्वरान्विताः ।
किं कृतं हि त्वया शम्भो ! विरक्तेन महात्मना ।
परदारानहर्त्ताऽसि त्वमृषीणां न संशयः ।२३।

भगवान् शिव के द्वारा कथित इस वचन का श्रवण करके यह कमल के सदृश नेत्रों वाली ऋषि पत्नी बोली—स्त्रियाँ निश्चय ही पुरुष के सुख सश्रय वाली हुमा करती हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । हे शम्भो ! प्रायः जैसे महान् विद्वान् पुरुष ने उन स्त्रियों को वञ्चित कर दिया है । ११।१६। घोर इस प्रकार से उन समस्त प्रमदाग्रों ने सम्मिलित होकर जहाँ पर भगवान् वाकर विराजमान थे उनके भिक्षा के पात्र को महागुण वाले चार प्रकार के भद्रों से घोर छे प्रकार के रसों से परिपूर्ण कर दिया था । जिस समय में भगवान् शम्भु अपने कंलास पर्वत को जाने की इच्छा वाले हुए थे उस समय में वे सब विप्रों की पत्नियाँ भी परमानन्द से समन्वित होकर उनके ही पीछे जाने लगी थी । १७।१८। शम्भु में ही अपना मन समासक्त करके उन्होंने अपने गृह का सम्पूर्ण कार्य त्याग दिया था और उन्हीं शम्भु के साथ में चरण करने लगी थीं । उन सब पत्नियों के गमन करने के बाद परम श्रेष्ठ ऋषि वृन्द ने जैसे ही अपने प्राश्रमों में आकर देखा तो सबको उस समय में शून्य ही पाया था । वे सब प्रापस में कहने लगे थे सबकी सब पत्नियाँ कहाँ चली गयी हैं । हम सब कुछ नहीं जानते हैं कि इन सबको किस नष्ट हुए व्यक्तियों ने समाहृत कर लिया है, इस तरह से विचार करते हुए वे जहाँ-तहाँ पर खोज करने में तत्पर हो रहे थे । बाद में उन्होंने देखा कि वे सभी पत्नियाँ शिव के पीछे चलती गयी हैं । भगवान् शिव को देखकर वे सब ऋषिगण रोष से संयुक्त होने हुए वहाँ उनके पास प्राप्त हुए थे । वे सब भगवान् शिव के सामने उपस्थित होकर बड़ी ही शीघ्रता के साथ वे सब कहने लगे थे । हे शम्भो ! आपने जो बहुत बड़ी महान् मारमा वाले एव परम विरक्त हैं, यह क्या किया है । प्रायः तो पराई दारामों के अपहरण करने वाले हैं और आपने हम लोग ऋषियों की पत्नियों का अपहरण किया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । १९।२०।२१।२२।२३।

एवंक्षितः शिवोमौनीगच्छमानोऽपिपवंतम् ।

तदासंश्रुतिभिः प्राप्नोमहादेवोऽभ्ययस्तथा ।२४।

यस्मात्कलत्रहृता स्व तस्मात्पण्डो भवत्स्वरम् ।

एवं शप्तः समुनिभिलिङ्गं तस्यापतद्भुवि ।

भूमिप्राप्तं च तल्लिङ्गं ववृधे तरसा महत् ।२५।

आवृत्यसमापातालान्क्षणात्लिङ्गमधोर्ध्वतः ।

व्याप्यपृथ्वीसमग्रांचगन्तरिक्षं समावृणोत् ।२६।

स्वर्गः समावृताः सर्वस्वर्गातीतमथामवत् ।

न मही न च दिक्चक्रं न तोयंनचपावकः ।२७।

नचवायुर्नवाऽऽकाशताहकारो न वा महत् ।

न चाव्यक्तंनकालश्च न महाप्रकृतिस्तथा ।२८।

घषने कैलास पर्वत पर जाते हुए भी भगवान शिव इस प्रकार से समाक्षित होते हुए भी मौन वारण किये हुये थे । उन समय में उन षष्यष महादेवजी को श्रुतिमें ने प्राप्त कर दिया था ।२४। कर्पूकि प्राप कलत्रों के हरण करने वरते हैं इगनिए बहुत ही शीघ्र प्राप पण्ड हो जाऽये । इस प्रकार से मुनियों के द्वारा शिव को प्राप्त दिया गया था । और इसका प्रभाव मह हुआ था कि भगवान शिव का लिंग भूमि पर गिर गया था । भूमि पर प्राप्त हुआ वह लिंग बड़े ही वेग से महान होकर बढ़ने लग गया था ।२५। वह लिंग सातों पातालों को समावृत करके साण भर र्भ ही वह निङ्ग नीचे से ऊपर की तरफ बढ़कर भा गया था । सम्पूर्ण पृथ्वी को व्याप्त करके फिर उस लिंग ने सम्पूर्ण गन्तरिक्ष को व्याप्त कर लिया था । सभी स्वर्गों को समावृत कर दिया था और इसके उपरान्त स्वर्ग से भी घटीन हो गया था । मही, दिशाओं का समु-दाय, जन, पावक, वायु, प्राकाश, महकार, महत्तन, षष्यक्त, काल और महा प्रकृति ये सभी एकमय हो गये थे ।२६।२७।२८।

नासीद्द्वैतविभागनसर्वलीनवतस्क्षणात् ।

यस्मात्लीनचगत्सर्वतस्मिलिङ्गमहात्मनः ।२९।

लयनाल्लिङ्गमित्येवं प्रवदन्ति मनीषिणा ।
 तथाभूतवर्द्धमानं दृष्ट्वा तैऽपि सुरपुंगवः ।३०।
 ब्रह्मेन्द्रविष्णुवायवग्निलोकपालाः सपन्नगाः ।
 विस्मयाविष्टमनसः परस्परमयाऽद्भुवन् ।३१।
 क्रिमायामचविस्तारवद्विस्तारं वचपीठिका ।
 इतिचिन्तान्वितोविष्णुमूनु सर्वसुरास्तदा ।३२।
 अस्य मूलं त्वया विष्णो ! पद्मोद्भव ! च मस्तकम् ।
 युवाम्या च विलोक्य स्यात्स्थाने स्यात्परिपालकी ।३३।
 श्रुत्वा तुतीमहाभागो वैकुण्ठकमलोद्भवो ।
 विष्णुर्गंतो हि पाताल ब्रह्म स्वर्गजगामह ।३४।
 स्वर्गं गतस्तदा ब्रह्मा अवलोकनतत्परः ।
 नापश्यत्तत्र लिङ्गस्य मस्तकं च विचक्षणः ।३५।

उस भगवान् रुद्राशिव के लिङ्ग की वृद्धि के कारण द्रौत विभाग ही नहीं रहा था । उसी क्षण में सब लीन हो गये थे । क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् उन महात्मा के लिंग में लीन हो गया था । लय ही जाने से मनीषीगण सब कुछ को लिंग ही कहते थे क्योंकि सर्वत्र उन्हें लिङ्ग के दर्शन होते थे और अन्य सभी उसी में लीन हो गये थे । उस प्रकार से वर्द्धमान होकर सर्वत्र व्याप्त हुए शिव के उस लिंग को देखकर वे सब सुरपिंगण, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, वायु, अग्नि, समस्त लोकपाल, पन्नग आदि सभी विस्मय से समाविष्ट मन वाले होकर आपस में कहने लगे थे इसका कितना आयास है, कैसा विलक्षण विस्तार है, इसका कहीं पर अन्त है और कहीं इसकी पीठिका है, इस तरह की चिन्ता से अत्यन्त समा-
 कुन होते हुये सब सुरो ने उस समय में भगवान् विष्णु से कहा था ।३६।
 ।३०।३१।३२। देवो ने कहा—हे विष्णो ! हे पद्म से उद्भव प्राप्त करने वाले ! आप इसका मूल और मस्तक दोनों ही के द्वारा देखने के योग्य हैं और आप दोनों ही समुचित परिपालक हैं । इसको भगवान् विष्णु

श्रीर ब्रह्माजी ने श्रवण करके शीनों महाभागों ने यह जानने का विचार किया था । नगवान त्रिप्यु ती पालान नोक को गये थे और ब्रह्माजी स्वर्गलोक में यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए गये थे । स्वर्ग में गये ब्रह्माजी भयलोकान करने परामण ही गए थे किन्तु विचक्षण ब्रह्माजी ने उस शिव लिङ्ग का मस्तक वहाँ पर कहीं भी नहीं देखा था । ३१।३४। ३५।

तथागतैर्न मार्गैण प्रत्यावृत्तिमिच्छन्मवः ।
 मेरुपृष्ठमनुप्राप्तः सुरम्या लक्षितस्ततः । ३६।
 स्थिता या केतकीच्छायापुत्राव मधुरं वचः ।
 तस्या वचनभाकरण्यं सर्वलोकपितामहः ।
 उवाच प्रहसन्वाक्यं छनोक्त्या सुरभि प्रति । ३७।
 लिङ्गं महाद्मुत्तं दृष्टं येन व्याप्तं जगत्त्रयम् ।
 दर्शनार्थं च तस्यान्तं देवैः सम्प्रेषितोऽस्म्यहम् । ३८।
 न दृष्टं मस्तकं तस्य व्यापकस्य महात्मनः ।
 किं वक्ष्येऽहं च देवा प्रे विन्तामेनातिवर्तते । ३९।
 लिङ्गस्य मस्तकं दृष्टं देवानां च मृषा वदेः ।
 ते सर्वे यदि वक्ष्यन्ति द्वाद्या देवतागणाः । ४०।
 ते सन्ति साक्षिणो देवा अस्मिन्नर्थे वद स्वस्वम् ।
 अर्थोऽस्मिन्भव साक्षी त्वं केतक्या सह मुव्रते । ४१।
 तद्वचः शिरसागृह्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
 केतकी सहिता तत्र सुरभी तदमानयत् । ४२।

काम्य से समुत्पन्न ब्रह्माजी तथागत मार्ग से प्रत्यावृत्ति के द्वारा मेरु के पृष्ठ भाग पर प्राप्त हो गये थे । वहाँ पर सुरभि ने उनकी देखा था । वह वहाँ पर केतकी की छाया में स्थित थी । उसने परम मधुर वचन कहा था । उसके वचन का श्रवण करके समस्त लोकों के पिता-मह ने छन की उक्ति से सुरभि के प्रति हँसने हुए यह वाक्य कहा था ।

१३६।३७। एतं मनुजं मद्भुतं निगं देखा या त्रिमने तीनो जगती को
 व्याप्त कर रक्खा है । उमी के दर्शन के लिए देवगणो ने मुझे यहाँ भेजा
 है और उसका घन्त वहाँ पर यह जानने के लिए भी मैं उनके द्वारा
 भेजा गया हूँ । उस व्यापक मद्भारमा का मस्तक भी वही नहीं देखा गया
 है । अब मैं जाकर उन देवगणो के आगे बतलाऊँगा—यही मुझे एक
 बड़ी भारी विन्ता व्याप्त हो रही है । या मैं यह मिथ्या उन देवगणो के
 आगे बोल दू कि मैंने निग का मस्तक देत लिया है । यदि वे सब
 देवता जिनमें इन्द्र आदि सभी हैं यह कहेंगे कि तुम्हारे कोई साक्षिगण
 हैं तो आप इस विषय में शीघ्र बोलो । इस विषय में हे सुवने ! केतकी
 के साथ मेरे साथी बन आओ । ३८।३६। ४०।४१। परमेशी ब्रह्माजी के उस
 वचन को शिर के बल प्रदण करके वहाँ पर केतकी के सहित सुरभी
 उसको मान लिया या ४२।

एवं समागता ब्रह्मा देवाग्ने समुवाच ह १४३।

लिङ्गस्य मस्तकं देवा दृष्टवानहमद्भुतम् ।

समीचीनं चचित्तं च केतकीदलसयुतम् १४४।

विशालं विमलश्लक्ष्णं प्रसन्नतरमद्भुतम् ।

रम्यं च रमणीयं दर्शयिष्ये महाप्रभम् १४५।

एतादृशं भयादृष्टं न दृष्टं तद्विनाकत्रविद् ।

ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा सुराविस्मयमाययुः १४६।

एवं विस्मयपूर्णास्तेन्द्राद्यादेवतागणाः ।

तिष्ठन्ति तावत्सर्वेशोकिणुरध्यात्मदीपकः १४७।

पातालादागतः सद्यः सर्वेषामवदत्परम् ।

तस्याप्यन्तो न दृष्टो मे ह्यवलोकनतत्परः १४८।

विस्मयो मे भद्राज्ञातः पातालात्परतश्चरन् ।

अतलं सुतलं चापि वितलं च रसातलम् १४९।

इस प्रकार से ब्रह्माजी वहाँ वापिस आगत हो गये थे और देवों के
 समक्ष में यह बोले—हे देवगण ! इस निग का मस्तक मैंने देत लिया

है जोकि परम अद्भुत है । यह बहुत ही भर्मीचीन है, चञ्चित है और केतकी के दल से संयुत है ॥४३॥४४॥ यह बड़ा विशाल है, विमल है, पद्मवर्ण है, प्रसन्न तर एवं अद्भुत है । परमरश्मि, रमणीय, दर्शन करने के योग्य और महान् प्रसन्न वाला है ॥४५॥ ऐसा मैंने देखा है और उसके बिना कहीं नहीं देखा है । ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर सुरगण परम विस्मय को प्राप्त हो गये थे । इस प्रकार से विस्मय में भरे हुए इन्द्र आदि सभी देवगण तब तक कहीं पर स्थित रहे थे जब तक अव्यारम दीपक भगवान् विष्णु तुरन्त ही पाताल लोक से समागत हो गये थे उनने उन सभी देवगणों से शीघ्रतापूर्वक कहा था । मैंने उसका कोई भी अन्त नहीं देखा है और मैं इसके बराबर अवलोकन करने में तदार होकर लगा रहा हूँ । पातान से भी भागे विचरण करते हुए मुझे बड़ा भारी विस्मय उत्पन्न हो गया है । मैंने अक्षय, सुतन, वितन और रमातल तक जाक ध्यान ली है ॥४६-४९॥

तथा गतस्तलं चैव पातालं च तथातलम् ।
 तलानामानि तान्येवं सून्यवद्यद्विभाव्यते ॥५०॥
 शून्यादपि च शून्यं च तत्सर्वं सुनिरीक्षितम् ।
 न मूलं च तमध्यञ्चान्तो ह्यस्य न विद्यते ॥५१॥
 लिङ्गरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत् ।
 यस्य प्रसादाद्गुह्यपत्ना युग्मं च ऋपयस्तथा ॥५२॥
 श्रुत्वा सुराश्च ऋपयस्तस्य ज्ञापयमपूजयन् ।
 तदा विष्णुस्त्वचेदं ब्रह्माणं प्रहसन्निव ॥५३॥
 दृष्टं हि चेत्स्वया ब्रह्मन् मस्तकंपरमार्थतः ।
 साक्षिणः केस्वया तत्र अस्मिन्नर्थे प्रकल्पिताः ॥५४॥
 आकर्ष्यं वचनं विष्णोर्ब्रह्मालोकपितामहः ।
 उवाच त्वरितेनैव केतकी सुरभीति च ॥५५॥
 तैर्देवा मम साक्षित्वे जग्नीहि परमार्थतः ।
 ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा सर्वदेवास्त्वरान्विताः ॥५६॥

इसके भी प्रागे में तल में गया था फिर पाताल और तलातल तक पहुँच गया था किन्तु वे सब शून्य की भाँति विभावित होने हैं । मैंने शून्य से भी परम शून्य सम्पूर्ण स्थान का भली-भाँति निरीक्षण किया था किन्तु इस लिंग का न तो कहीं पर मूल है, न भव्य है और न कहीं इसका अन्त ही है । यह तो लिंग रूपी सर्वत्र महादेव ही है जिनके द्वारा यह समस्त जगद् धारण किया जाता है जिसके प्रमाद से प्राप लोग और सब ऋषिगण ममुत्पन्न हुए हैं । १५०।१५१।१५२। सुरों ने और ऋषियों ने यह सुनकर उनके वाक्य का बड़ा सत्कार किया था । उसी समय में भगवान् विष्णु ने हँसने हुए ब्रह्माजी से कहा था—हे ब्रह्मा ! यदि वास्तव में प्रापने इस शिव लिंग के मस्तक को देखा है तो प्राप ने इस अर्थ के विषय में कौन से माझी कल्पित किये हैं ? लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु देव के इस वचन को सुनकर बहुत ही शीघ्रता से कहा था—केतकी और सुरभी ये दोनों ही हे देवगणों ! मेरे माझी हैं और इनकी ही प्राय लोग साक्ष्य (गवाही) देने वाले समझ लो जो परमार्थ रूप से हैं । ब्रह्माजी के इस वचन का श्रवण करके सब देवता लोग बहुत ही शीघ्रता वाले हो गये थे । १५३-१५६।

आह्वानं चक्रिरे तस्याः सुरम्याश्च तथा सह ।
 आग्ने तत्क्षणादेवकार्याय ब्रह्मणस्तदा । १५७।
 इन्द्रार्घ्यंश्च तदादेवैरुक्ता च सुरभीततः ।
 उवाच केतकी साङ्गं दृष्टो वै ब्रह्मणा सुराः । १५८।
 लिंगस्य मस्तको देवा केतकीद्वनपूजितः ।
 तदा नभोगता वाणीसर्वेषां शृण्वताममूत् । १५९।
 सुरम्याश्चैवयत्प्रोक्त केतवयाचतथा सुराः ।
 तन्मृषोक्तं च जानीध्वंनहृष्टोह्यम्यमस्तकः । १६०।
 तदा सर्वोऽथविबुधाः सेन्द्रा वै विष्णुना सह ।
 जेषुश्च सुरभिरोपान्मृषावादनतत्पराम् । १६१।

मुपेनोक्तं त्वयाऽद्य वै मनृतं च तथा शुभम् ।
 अपवित्रं मुखं तेऽस्तु सर्वं धर्मवह्निष्कृतम् ।६२।
 सुगन्धकेतकीचाडीपद्मयोग्या त्वं शिवार्चने ।
 भविष्यति न सन्देहोऽनृताच्चैव भामिनि ।६३।

उन देवों ने उसके तकीके सहित उस सुरभी का वहाँ पर समाह्वान किया था । उसी समय में उसी क्षण में ब्रह्माजी के कार्य को सम्पादन करने के लिए वे वहाँ पर आ गयीं थी । फिर इन्द्र आदि देवों ने सुरभी से कहा था । तब केतकी के सहित सुरभी ने कहा था—हे सुरगणो ! ब्रह्माजी ने केतकी के दल से पूजित लिंग का मस्तक देखा है । उसी समय में सब लोगो के श्रवण करते हुए आकाश में स्थित रहने वाली वाणी हुई थी—सुरभी ने तथा केतकी ने यह जो कुछ भी कहा है वह सभी मिथ्या ही कहा है । आप लोग अब यह समझ लीजिये कि ब्रह्माजी ने तथा इन दोनों ने लिंग का मस्तक नहीं देखा है । १५७।१५८। १५९।६०। उसी समय में इसके अनन्तर सब देवताओं ने इन्द्रदेव के साथ तथा भगवान विष्णु के सहित रोष से मिथ्या बोलने में तत्पर सुरभी को शाप दिया था—तूने इन अपने मुख से आज यह मिथ्या बतलन कहे हैं इसलिये यह तुम्हारा परम शुभ मुख जो परम पवित्र माना जाता था आज से ही अपवित्र और सब धर्मों से बहिष्कृत हो जायगा । यह सुन्दर गन्ध वाली केतकी भी शिव अर्चना के प्रयोग्य हो जायगी । हे भामिनी ! इससे अब कुछ भी सन्देह नहीं है कि आप प्रभुत भाषिणी हैं अतएव मिथ्या ही हो जायगी । ६१।६२।६३।

तदानभोगतावाणीब्रह्माणं च शशाप वै ।
 मृपोक्तं च त्वया मन्दे ! किमर्थं बालिशेनहि ।६४।
 भृगुरा ऋषिभिः साकं तथैव च पुरोधसा ।
 तस्माद्यय न पूज्याश्च भवेयुः क्लेशभागिनः ।६५।
 ऋषयोऽपि च धमिष्ठास्तत्त्ववाक्यवह्निष्कृताः ।
 विवादनिरता मूढा अतस्त्वजाः समत्तराः ।६६।

याचकाश्चावदाभ्याश्च नित्यं स्वज्ञानघातकाः ।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धाः परस्परविनिन्दकाः । ६७।

एवं शप्ताश्च मुनयो ब्रह्माद्या देवतास्तथा ।

शिवेन शप्तास्ते सर्वलिङ्गं धारणमाययुः । ६८।

उसी समय में आकाशवाणी ने ब्रह्माजी को भी शाप दिया था—
हे मगद ! आपने भी यह सब मिथ्या वचन कहे हैं । भूलता के यश में
आकर ऐसा किस लिए तुमने वह दिया है ? भृगु पुरोहित और समस्त
ऋषियों के सहित आपने ऐसा किया है । इससे आप लोग भूजा के
योग्य नहीं रहोगे तथा सब लोग बलेशो के भोगने वाले बन जाओगे ।
ऋषिगण भी बड़े ही घम्मिष्ठ हैं किन्तु अब तत्त्व वाक्यों से बहिष्कृत,
वेदों के वादों में ही सर्वदा निरत रहने वाले, सूढ़, उर्द्वों के न जानने
वाले, मात्सर्प्य से युक्त, याचक सबदान्य (दानशील न होने वाले), नित्य
ही अपने ज्ञान के घात करने वाले, आरम सम्भावित (अपने आप
को प्रतिष्ठित मानने और कहने वाले) स्तब्ध और परस्पर में एक दूसरे
को निन्दा करने वाले हो जायेंगे । इस प्रकार से सब मुनिगण और
ब्रह्मादि देवगण शिव के द्वारा शाप दिये गये थे । वे फिर सबके सब
शिव के लिए की धारणागति में समागत हुये थे । ६४-६७। ६८।

७—देवों द्वारा लिङ्ग की स्तुति

तदा च ते सुराः सर्वं ऋषयोऽपिभयान्विताः ।

ईडिरे लिङ्गमेशचब्रह्माद्याज्ञानविह्वलाः । १।

त्व लिङ्गरूपो तु महाप्रभावो वेदान्तवेद्योऽसि महात्मरूपी ।

येनेव सर्वे जगदात्ममूलं कृतं सदान्दपरेण नित्यम् । २।

त्वं साक्षीसर्वलोकानाहर्ता त्व च विचक्षणः ।

रक्षणोऽसिमहादेवमैरवोऽसिजगत्पते । ३।

त्वया लिङ्गस्वरूपेणव्याप्तमेतज्जगत्त्रयम् ।

सुद्राश्चैव वयं नाथ ! मायामोहितचेतसः । ४।

अहं सुराऽसुराः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।

पन्नगाश्चपिशाचाश्च तथा विद्याधराह्यमी ।१।

त्वं हि विश्वसृजांस्त्रया त्वं हि देवोजगत्पतिः ।

कर्त्तात्वं भुवनस्यास्यत्वं हर्तापुरुषः परः ।६।

त्राह्यस्माकं महादेव ! देवदेवनमोऽस्तुते ।

एवं स्तुतो हि वै घात्रा लिङ्गरूपी महेश्वरः ।७।

महर्षि लोमश जी ने कहा—उम समय में वे सब सुरमण, ऋषि वृन्द और ज्ञान विह्वल ब्रह्मा प्रभृति सब मय से भ्रत्यन्त भीत हो हो गये थे और फिर इन सब ने भगवान शिव के लिङ्ग का स्तवन किया था ।१। ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवन ! आप महात् प्रभाव वाले लिंग के स्वरूप को धारण करने वाले हैं आप वेदान्तों के द्वारा जानने योग्य हैं और महात्मा रूपी हैं । जिसने ही सानन्द परायण ने यह सब जगत आत्म मूल नित्य कर दिया है ।२। आप समस्त लोकों के साक्षी और हर्ता हैं । आप परम विचक्षण हैं । आप ही रक्षा करने वाले हैं । हे महादेव ! आप इस जगत के पति हैं और भैरव हैं । आपने इस समय मे अपने इस लिंग के स्वरूप से इस त्रिलोकी को ही व्याप्त कर लिया है । हे नाथ ! हम लोग तो बहुत ही क्षुद्र हैं और माया से सम्पोहित चित्त वाले भी हो रहे हैं । मैं सब सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पन्नग, पिशाच और ये विद्याधर हैं किन्तु आप तो इन विश्व के सृजन करने वालों के भी सृजन करने वाले हैं । हे देव ! आप तो इस जगत के स्वामी हैं । आप ही इस भुवन के करने वाले हैं । आप ही इसके संहार करने वाले हैं । आप पर पुरुष हैं । हे महादेव ! आप सब हमारा परित्राण कीजिए । हे देवो के भी देव ! आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम है । इस प्रकार मे घात्रा के द्वारा वह लिंग के स्वरूप को धारण करने वाले महेश्वर महाप्रभु की स्तुति की गई थी ।३-७।

ऋषयः स्तोतुकामास्तेमहेश्वरमकल्मषम् ।
 अस्तुवन्गीभिरग्याभिः श्रुतिगीताभिराहताः ॥८॥
 अज्ञानिनो वयं कामान्न विदामोऽस्य सस्थितिम् ।
 त्वं ह्यात्मा परमात्मा च प्रकृतिस्त्व विभाविनी ॥९॥
 त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
 त्वमीश्वरो वेदविदेकरूपो महानुभावोः परिविन्त्यमानः ॥१०॥
 त्वमात्मा सर्वं भूतानामेको ज्योतिरिवंसाम् ।
 सर्वं भवति यस्मात्त्वत्तस्मात्सर्वोऽस्ति नित्यदा ॥११॥
 यस्माच्च सम्भवत्येतत्तस्माच्छम्भुरिति प्रभुः ॥१२॥
 त्वत्पादपङ्कजं प्राप्ता वयं सर्वं सुरादयः ।
 ऋषयो देवगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥१३॥
 तस्माच्च कृपया शशभो पाह्यस्माञ्जगतः पतेः ! ॥१४॥

उक्त कल्मष रहित महेश्वर देव की स्तुति करने की कामना वाले ऋषिगण भी जो श्रुति गीता से समागत यी प्रपत्नी परमोत्तम वाणियो के द्वारा स्तुति करने लगे थे । ऋषियो ने कहा — हम लोग तो बहुत ही भक्तानी हैं क्योंकि कामना से परिपूर्ण रहा करते हैं आपकी स्थिति को नहीं जानते हैं । आप तो आत्मा-परमात्मा और विभाविनी प्रकृति हैं । आप ही हम सबकी माता तथा पिता हैं । आप ही हमारे बन्धु हैं और आप ही हमारे सखा भी हैं । आप ईश्वर, वेदवित् और एक रूप हैं । आप महानुभावो के द्वारा सर्वदा परिविन्त्यमान होते हैं ॥८॥९॥१०॥ आप समस्त भूतो के आत्मा हैं, आप एषो की एक ही ज्योति है । क्योंकि जिससे यह सभी कुछ होता है इसलिये आप नित्य ही सर्व स्वरूपो वाले हैं । जिससे यह सभी कुछ सम्भूत अर्थात् समुत्पन्न होता है इसी कारण से आप शम्भु प्रभु हैं । हम सभी सुर आदि आपके चरण रूरी कमलों की शरण में प्राप्त हुए हैं । हम में सब ऋषिगण, देव, गन्धर्व, विद्याधर और महोरग भी हैं । इसलिये हे

सम्भो ! हे जगत् के स्वामिन् ! अथ कृपा करके इस महात् समागत
मय से हमारी रक्षा कीजिए । ११—१४।

शृणुष्वं तु वचोमेऽथ क्रियतां च वरान्वितैः ।
विष्णुं सर्वे प्रार्थयन्तु त्वरितेन तपोधनाः । ११।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शङ्करस्य महात्मनः ।
विष्णुं सर्वे नमस्कृत्य ईडिरे च तदा सुराः । १२।
विद्याधराः सुरगणा ऋषयश्च सर्वे
त्रातास्त्वयाऽद्य सकला जगदेकबन्धो ।

तद्वत्कृपाकर ! जनान्परिपालयाऽद्य
त्रैलोक्यनाथ ! जगदीश ! जगन्निवास ! । १३।
प्रहस्य भगवान् विष्णुश्चाचेदं वचस्तदा ।
दैत्यैः प्रपीडिता यूयं रक्षिताश्च पुरामयाः । १४।
अद्यैव भयमुत्पन्नं लिङ्गादस्माच्चिवरन्तनम् ।
न शक्यते मया त्रातुमस्माल्लिङ्गभयात्सुराः । १५।
अच्युतेनैव मुक्तास्ते देवाश्चिन्ताग्विता भवन् ।
तदानभोगतावाणी उवाचाश्चास्य वै सुरान् । १६।
एतल्लिङ्गं सवृणुष्व पूजनाय जनार्दन ।
पिण्डीभूत्वा महाबाहोरक्षस्व सचराचरम् ।
तथेति मत्वा भगवान् वीरभद्रोऽभ्यपूजयत् ॥ १७ ॥

श्री महादेव जी ने कहा—प्राप लोग आज मेरा वचन श्रवण
करो और त्वरों से समन्वित होकर उसी काम को प्राप लोगों को
करना भी चाहिए । प्राप सब लोग शीघ्रता से समन्वित होकर—हे
तपोधनो ! भगवान् विष्णु की प्रार्थना करो । महान् आत्मा वाले भग-
वान् शङ्कर के उस वचन का श्रवण करके उस समय में सब सुरगणों
ने भगवान् विष्णु को नमस्कार करके उनका स्तवन करना आरम्भ कर
दिया था । ११। १२। देवगण ने कहा—हे जगत् के एक बन्धो ! समस्त

सुरगण, ऋषि वृन्द और विद्याधर समस्त आज आपके द्वारा ही रक्षित हैं और रहे हैं । हे कृपा करने वाले ! आप तो इस त्रिलोकी के नाथ हैं, जगत् के ईश हैं और इस जगत् के आश्रय हैं । उसी भाँति जैसे समय-समय पर आप रक्षा करते रहे हैं मरने इन जनो का परिपालन करिये । उस समय मे भगवान् विष्णु होकर यह बचन बोले थे । प्राय लोगो पहिले दैत्यो ने पीडित किया था तो मैंने आपको सुरक्षा की थी । आज ही इस लिंग से विरग्न्न मय समुत्पन्न हो गया है । हे सुरगणो ! इस लिंग के महान भग से मैं आपका आग नहीं कर सकता हूँ । जब भगवान् प्रच्युत ने इस प्रकार से कहा तो वे देवता लोग परम चिन्ता मे मातुर हो गये थे । उसी समय मे मायाया गामिनी बाणी ने समस्त सुरो को समाश्वासन प्रदान करते हुए कहा था—हे जनार्दन ! पूजन के लिए इस लिंग का सम्बरण कीजिये । हे महाबाहो ! विण्डी पून होकर इस समस्त घराघर जगत् की रक्षा कीजिये । तब भगवान् ने तथास्तु (ऐसा ही होगा) यह मानकर वीरभद्र ने प्रतिपूजन किया था ।

।१७-२१।

ब्रह्मादिभिः सुरगणैः सहितैस्तदानीं सम्पूजितः
 शिवविधानरतो महात्मा ।
 स वीरभद्रः शशिशेखरोऽसौ शिवप्रियौ
 रुद्रसमस्त्रिलोक्याम् ।२२।
 लिङ्गस्यार्चनमुक्तोऽसौ वीरभद्रोऽभवत्तदा ।
 तद्रूपस्यैव लिङ्गस्य येन सर्वमिदं जगत् ।२३।
 उद्भाति स्थितिमाप्नोति तथा विलयमेति च ।
 तल्लिङ्गं लिङ्गमित्याहुर्लयनात्तत्त्ववित्तमाः ।२४।
 ग्रहाण्डगोलकैर्व्याप्तं तथा रुद्राक्षभूषितम् ।
 तथा लिङ्गं महज्जातं सर्वेषां दुरतिक्रमम् ।२५।

तदा सर्वेऽप्य विदुषा ऋषयो वै महाप्रभाः ।
 तुष्टुवुश्च महालिंग वेदवादैः पृथक्-पृथक् ॥२६॥
 बरुणोरणीमांस्त्वंदेवतथा त्वं महतोमहान् ।
 तस्मात्त्वयाविधातव्यसर्वेषांलिङ्गपूजनम् ॥२७॥
 तदानीमेव सर्वेण लिङ्गं च बहुशः कृतम् ।
 सत्ये ब्रह्मेश्वरं लिंगं वंकुष्ठे च सदाशिवः ॥२८॥

उस समय में द्विन से सम्बन्धित ब्रह्मा आदि महान् सुरगणों के द्वारा शिव की समर्था के विधान में रति रखने वाले महारत्ना वह बीर सम्पूजित हुए थे जो चन्द्र की मस्तक में धारण करने वाले शिव के परम प्रिय और त्रिभुवन में भगवान् रुद्र के ही तुल्य थे ॥२२॥ उस अवसर से यह बीरभद्र शिव लिङ्ग की धर्मना में समापुक्त हो गये थे । यह लिङ्ग साक्षात् उन शिव के ही स्वरूप वाला था जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है—स्थिति को प्राप्त होता है और विलय को प्राप्त हुआ करता है । हे तत्त्व के ज्ञाता गणो ! नय ही वैसे ही लिङ्ग "लिङ्ग" इस नाम से कहा गया है ॥२३॥२४॥ ब्रह्माण्ड गीतकों के द्वारा व्यास तथा रुद्राक्षों से विभूषित यह लिङ्ग सभी के लिये हरति क्रम वाला महान् समुत्पन्न हो गया था ॥२५॥ उस समय में समस्त देवगण और महती प्रभा से सुसम्पन्न ऋषि गणों ने वेद वादों के द्वारा पृथक्-पृथक् स्तुति किया था—हे देव ! प्रायः प्राण से भी अधिक धन है और प्राण महान् से अधिक महान् है । इस लिए आपके द्वारा सभी को शिव का पूजन करना चाहिए । उसी समय में भगवान् शर्व ने बहुत-से शिव कर दिये थे । सत्य लोक में ब्रह्मेश्वर नाम वाला लिंग है और वंकुष्ठ में सदाशिव है ॥२२-२८॥

बमरादत्यां सुप्रतिष्ठमभरेश्वरसञ्जकम् ।
 बरुणेश्वरं च वारुण्यां यान्यांकालेश्वरंप्रभुम् ॥२६॥

नैऋतेश्वरं च नैऋत्या वायव्यांपावनेश्वरम् ।
 वेदार मृत्युलोके च तथैव क्षमरेश्वरम् ।३०।
 ओद्धार नर्मदाया च महाकालं तथैव च ।
 काश्या विश्वेश्वर देव प्रयागेऽललितेश्वरम् ।३१।
 त्रियम्बक ब्रह्मगिरी कलि भद्रेश्वरं तथा ।
 द्राक्षारामेश्वरलिङ्ग गङ्गासागरसङ्गमे ।३२।
 सोराष्ट्रे च तथा लिङ्गसोमेश्वरमित्तिरमृतम् ।
 तथा सर्वेश्वर विन्ध्येश्रोऽशैलेशिरारेश्वरम् ।
 कान्त्यामल्लालनाथ च सिंहनाथ च सिङ्गले ।३३।
 विह्वपाक्ष तथा लिङ्गकोटिशङ्करमेव च ।
 त्रिपुरान्तक च भीमेशममरेश्वमेव च ।३४।
 भोगेश्वरं च पाताले हाटकेश्वरमेव च ।
 एवमादन्यनेकानि लिङ्गानि भुवनत्रये ।
 स्थापितानि तदा देवैर्विश्वोपकृतिहेतवे ।३५।

क्षमरावती में क्षमरेश्वर नाम वाले सुप्रतिष्ठित तट थे । वाङ्गो
 दिशा में बहुरेश्वर और यामी दिशा में कालेश्वर प्रभु स्थापित हुए
 थे । नैऋत्य दिशा में नैऋतेश्वर तथा वायव्य कोण में पावनेश्वर
 विराजमान हुए थे । इस मृत्युलोक में वेदार तथा क्षमरेश्वर स्थापित हुए ।
 नर्मदा में ओद्धार तथा महाकाल प्रतिष्ठित हुए थे । काशी पुरी में
 विश्वेश्वर (विश्वनाथ) और प्रयाग में ललितेश्वर हैं ।३१। ३०। ३१। ब्रह्म-
 गिरि में त्रियम्बक है, कलि में भद्रेश्वर हैं और गङ्गा सागर सङ्ग में
 द्राक्षारामेश्वर लिङ्ग विराजमान हैं ।३२। सोराष्ट्र में सोमेश्वर लिङ्ग है,
 विन्ध्य में सर्वेश्वर तथा धी शैल में सिंहरेश्वर नाम वाला लिङ्ग प्रतिष्ठित
 है । कान्ति में मल्लाल नाथ तथा सिङ्गल में सिंहनाथ नामक लिङ्ग
 विराजमान हैं ।३३। विह्व प्राक्ष लिङ्ग कोटिशङ्कर, त्रिपुरान्तक, भीमेश,
 क्षमरेश्वर, भोगेश्वर और पाताल में हाटकेश्वर लिङ्ग हैं । इस प्रकार से

उपप्लुक्त अनेक लिंग इस त्रिभुवन में प्रतिष्ठित हैं और उस समय में सम्पूर्ण विश्व के उपकार के लिए देवगणों ने इन्हें स्थापित किया है । ३४।३५।

लिंगेशंश्च तथा सर्वैः पूरुणामासौज्ज्वल्यम् ।
 तथा च वीरभद्रांशाः पूजार्थममरैः कृताः । ३६।
 तत्रविंशति संस्कारास्तेषामष्टाधिकामवन् ।
 कथिताः शकरेणैव लिंगस्थार्चनसूचकाः । ३७।
 सन्ति रुद्रेण कथिताः शिवधर्माः सनातनाः ।
 वीरभद्रो यथा रुद्रस्तथाऽन्ये गुरवः स्मृताः । ३८।
 गुरोर्जाताश्च गुरवो विख्याता भुवनत्रये ।
 लिंगस्य महिमानं तु नन्दीजानातिवत्स्वतः । ३९।
 तथास्कन्दोहिमगवानन्येतेनामधारकाः ।
 यथोक्ताः शिवधर्माहिनन्दिनापरिकीर्त्तिताः । ४०।
 शैलादेन महाभागा विचित्रा लिंगधारकाः ।
 शयस्योपरिलिंगं च ध्रियते च पुरातनैः । ४१।
 लिंगेन सहस्रवत्त्वं लिंगेन मह्यं जीवितम् ।
 एते धर्माः सुप्रतिष्ठाः शैलादेन प्रतिष्ठिताः । ४२।

समस्त लिंगेशों के द्वारा ये तीनों जगत् परिपूर्ण या श्रीर अमर गणों के द्वारा पूजा के लिए वीर भद्रांश कर दिए गये थे । वहाँ पर आठ आधिक विंशति अर्थात् अष्टादश संस्कार हुए थे ये भगवान् शङ्कर ने ही लिंग की अर्चना के सूचक कहे थे । ३६।३७। भगवान् शिव के द्वारा कहे गये सनातन शिवधर्मा हैं । जिस प्रकार से भगवान् रुद्र हैं उसी तरह वीर भद्र हैं अन्य गुरुगण कहे गये हैं । ३८। गुरु से गुरुवृन्द समुत्पन्न हुए थे जो भुवन त्रय में विख्यात थे । लिंग की महिमा को स्वतः पर्वक नन्दी जानते हैं । उसी प्रकार से भगवान् स्कन्द भी जानते हैं । अन्य जो हैं वे नाम धारक हैं । जो जिस तरह से शिवधर्म कहे

गये हैं वे नन्दी के द्वारा परिकीर्तित किये गये हैं । ३६।४०। शैलाद के द्वारा महाभाग विचित्र लिंग धारक हुए हैं । पुरातनों के द्वारा सब के ऊपर लिंग को धारण किया जाता है । लिंग के सह पञ्चत्व है और लिंग के साथ जीविन है । ये सब सुप्रतिष्ठ घर्म शैलाद के द्वारा प्रतिष्ठित हुए हैं । ४१।४२।

घर्मं पाशुपत श्रेष्ठः स्कन्देन प्रतिपालितः । ४३।

शुद्धापञ्चाक्षरीविद्याप्रासादी तदनन्तरम् ।

पडक्षरी तथा विद्याप्रासादस्यचदीपिका । ४४।

स्कन्दात्तत्समनुप्राप्तमगस्त्येन महात्मना ।

पश्वादाचार्यभेदेऽह्यागमा बहवोऽभवन् । ४५।

किं नु वै बहूनोक्तेन शिव इत्यक्षरद्वयम् ।

उच्चारयन्ति ये नित्यं ते खद्रा नान् संशयः । ४६।

सतामार्गपुरस्कृत्य ये सर्वे ते पुरान्तकाः ।

वीरा माहेश्वरा ज्ञेयाः पापक्षयकरानृणासु । ४७।

प्रसंगे नानुपगेषुश्चद्वयाचयदृच्छया ।

शिवभक्तिम्प्रकुर्वन्ति ये वै ते यान्तिसद्गतिम् । ४८।

शृणुष्वं कथयामीह इतिहासं पुरातनम् ।

कृतं शिवालये यच्च पतन्या मार्जनं पुरा । ४९।

भगवान् स्कन्द के द्वारा प्रति पालित पाशुपत घर्म परम-श्रेष्ठ है । ४३। इसके अनन्तर प्रासादी शुद्धा पञ्चाक्षरी विद्या तथा प्रासाद की दीपिका पडक्षरी विद्या महान् आत्मा वाले अगस्त्य के द्वारा भगवान् स्कन्द से भनी भाति प्राप्त की थी । पीछे आचार्यों के भेद से बहुत से आगम हुए ये । ४४। ४५। अत्यधिक कथन करने से क्या लाभ है । केवल 'शिव' - ये दो अक्षरों को जो नित्य ही उच्चारण किया करते हैं वे साक्षात् खद्र ही हैं - इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है । ४६। जो सत्पुरुषों के मार्गों को पुरस्कृत करके रहने वाले हैं वे सब

पुरान्तक हैं । मनुष्यों के पापों का क्षय करने वाले माहेश्वर वीर जानने के योग्य होते हैं । ४७। जो प्रसंग से अनुदंग से, श्रद्धा से और यदृच्छा से भगवान् सदाशिव की भक्ति किया करते हैं वे सद्गति को प्राप्त होते हैं । ४८। यहाँ पर एक परम पुरातन में इतिहास कहता हूँ उसका भाष सब लोग श्रवण करिये । पहिले जो पतंग्या ने शिवालय में मार्जन किया था । ४९।

आगता भक्षणार्थं हि नैवेद्यं केन चापितम् ।
 मार्जनं रजसस्तस्याः पक्षाम्यामभवत्पुरा । ५०।
 तेन कर्मविपाकेन उत्तमं स्वर्गमागता ।
 भुक्त्वा स्वर्गसुखं चोन्नं पुनः संसारमागता । ५१।
 काशिराजमुता जातासुन्दरी नामविश्रुता ।
 पूर्वाभ्यासाच्च कल्याणी बभूवपरमासती । ५२।
 उपस्युपसि तन्वगीशिवद्वाररतासदा ।
 सम्मार्जनं च कुरुते भक्त्या परमया युता । ५३।
 स्वयमेव तदा देवी सुन्दरीराजकन्यका ।
 तथाभूतां च तां दृष्ट्वाऋषिरुद्वात्कोऽब्रवीत् । ५४।
 सृकुमारी सती बाले स्वयमेव कथं शुभे ! ।
 सम्मार्जनं च कुरुषे कल्पकेत्वंशुचिस्मिते ! । ५५।
 दासी दास्यश्रवहवः सन्ति देवि ! तवाग्रतः ।
 तवाज्ञयाकरिष्यन्तिसर्वसम्मार्जनादिकम् । ५६।

ये किसी के द्वारा समर्पित किये हुए नैवेद्य के भक्षण करने के लिये वहाँ शिवालय में समागत हुए थे । पहिले उस पतंग्या के पंखा से वहाँ की रज का मार्जन हुआ था । ५०। उस रज के मार्जनस्वरूप कर्म के विपाक से वह स्वर्ग में आ गई थी । वहाँ पर परमेश्वर स्वर्ग के सुख का उपभोग करके पुनः वह संसार में आ गयी थी । यहाँ पर वह सुन्दरी — इस नाम से प्रसिद्ध काशिराज की पुत्री होकर समुत्पन्न हुई

थी । पूर्व जन्म के अभ्यास से वह बलियाणी परम सती हुई थी । १२१।
 १२२। प्रत्येक दिन में प्रातः काल के समय में वह तत्वगी सदा भगवान्
 शिव के द्वार पर खूब रूठ रही करती थी और परम भक्ति से युक्त होकर
 वहाँ पर शिवालय में सम्मार्जन किया करती थी । १२३। उस समय में
 राजकन्या सुन्दरी स्वयं ही शिवालय के मार्जन को किया करती थी ।
 उस प्रकार से सम्मार्जन करने वाली उसको देखकर उद्दालक ऋषि ने
 उसमें कहा था—हे बाले ! हे सुने ! हे कन्यके ! हे सुचि स्मितवाली !
 आप तो परम सुकुमारा है और परम सती हैं । यहाँ पर आप स्वयं ही
 यह शिवालय का सम्म जन क्यो करती हैं । हे देवि ! आप तो राज-
 कन्या हैं, आपके तो दाम और दामियाँ ही भनेक हैं जो आपके आगे
 यह सभी सम्मार्जन आदि करने आपकी आज्ञा से ही कर लेंगे । १२४।
 १२५। १२६।

ऋषेस्तद्वचनश्रुत्वा प्रहस्येद्मुवाच ह ।
 शिवसेवा प्रकुर्वाणा शिवभक्तिपुरस्कृताः । १२७।
 ये नराश्र्वं च नायश्र्वं शिवलोकं व्रजन्ति वै । १२८।
 समार्जनवपागिम्यापद्भ्यायानशिवालये ।
 तत्मान्मया च क्रियतेसम्मार्जनमतन्द्रितम् । १२९।
 जन्यत्किञ्चिन्न जानामि एकसम्मार्जनं विना ।
 ऋषिस्तद्वचनश्रुत्वा मनसा च विमृश्यहि । १३०।
 अनया किं कृतं पूर्वं केषु कस्य प्रसादनः ।
 तदा ज्ञातं च ऋषिणा तत्सर्वं ज्ञानचक्षुषा ।
 विस्मयेन समाविष्टस्तूष्णीभूतोऽभवत्तदा । १३१।
 सविस्मयोऽभूदथ तद्वदित्वा उद्दालको ज्ञानवता वरिष्ठः ।
 शिवप्रभाव मनसा विचिन्त्य ज्ञानात्पर बोधमवाप शान्तः । १३२।

ऋषि के उस वचन का धरुण कर वह हैसकर ऋषि से यह
 बोली थी—जो तर और नारियाँ शिव की भक्ति की भावना में निमग्न

होकर शिवकी सेवा किया करते हैं वे निरचय ही शिव के लोक में गमन किया करते हैं । १५७। ५८। जो अपने हाथों से ही स्वयं सम्मार्जन किया करते हैं तथा अपने पैरों से चलकर शिवालय तक गमन किया करते हैं उन्हें ही शिवलोक की प्राप्ति हुआ करता है । इसी कारण मेरे द्वारा स्वयं ही निरालस्य होकर यहाँ पर नित्य ही सम्मार्जन किया जाता है । १५९। इस एक सम्मार्जन के अतिरिक्त अन्य में कुछ भी नहीं जानती हूँ । महर्षि ने उसके इस वचन का श्रवण करके मन से विचार किया था कि यह कौन है और किनके प्रसाद से इसने पहिले जन्म में क्या किया है । ऐसा विचार-विमर्श करने पर उस समय ऋषि ने अपने ज्ञान चक्षु के द्वारा उसी समय में वह सभी कुछ ज्ञान कर लिया था । प्रसाद प्रणव है — यह मन्त्र सासन में प्रणव प्रसाद बोज सत्ता होती है । उस समय में वह ऋषि विस्मय से समाविष्ट होकर तूष्णीभूत अर्थात् चुप हो गया था । १५९। ६०। ६१। वह विस्मय से समन्वित हो गया था । इसके अनन्तर ज्ञान वासो में परम धरिष्ठ उदात्तक यह सभी कुछ जान कर और भगवान् शिव के प्रभाव को मन में सोच कर परम शान्त होते हुए ज्ञान से उसने परम ज्ञान प्राप्त किया था । ६२।

८—रावणोपाख्यान

रावणेन तपस्तप्तं सर्वेषामपि दुःसाहम् ।
 तपोविषो महादेवस्तुतोप च तदा भृशम् । १।
 वराः प्रायच्छत तदा सर्वेषामपि दुर्लभात् ।
 ज्ञान विज्ञानसहित लब्धतेन सदाशिवात् । २।
 अजेयत्वं च सप्रामे द्वैगुण्य शिरसामपि ।
 पञ्चदशश्री महादेवो दशदशश्रीऽथ रावणः । ३।
 देवानृषीन्पितृश्रैव निजित्यतपसा विभुः ।
 महेशस्य प्रसादात्सर्वेषामधिकोऽभवत् । ४।

राजा त्रिकूटाधिपतिर्महेद्येनकृतो महान् ।
 सर्वपाराक्षसाना च परमासनमास्थितः ।१।
 तपस्विनां परीक्षायै यहषीणा विहितनम् ।
 कृततेन तदा विप्रा रावणेन तपस्विना ।२।
 अजेयो हि महाज्ञातो रावणो लोकरावणः ।
 सृष्ट्यन्तरं कृतं येन प्रसादाच्छंकरस्य च ।३।

लोमश महर्षि ने कहा—रावण ने सब लोगों के लिए परम दुःमह तप का तपन किया था । उस समय में तप का स्वामी महादेव अत्यन्त ही मन्तुष हुए थे ।१। उसी समय में मन्वको अनीव दुर्लभ वरदान प्रदान किये । उमने सदाशिव भगवान् मे विज्ञान के सहित ज्ञान प्राप्त किया था ।२। सप्राम मे उमने प्रजेयस्व की प्राप्ति की थी और शिर भी दुग्ने प्राप्त कर लिये थे । महादेव तो पाँच ही मुख वाले थे किन्तु रावण दस मुखो बाना हो गया था ।३। किन्तु उमने समस्त देवों की, ऋषियों की और भित्तरो की तप के द्वारा विजिन करके महेश के प्रसाद से सबसे अत्यधिक हो गया था ।४। महेश भगवान् ने महान् त्रिकूट का अधिपति राजा कर दिया था । वह रावण समस्त राजाओं के परमासन पर समास्थित हो गया था ।५। हे विप्रगण ! उम समय में परम तपस्वी रावण ने तपस्वियों की परीक्षा के लिये ऋषियों का विहितन किया था । वह लोक रावण महान् अजेय हो गया था जिसने भगवान् शङ्कर के प्रसाद से सृष्ट्यन्तर प्रयात् रचना मे अन्तर कर दिया था ।६।७।

लोकपाला जितास्तेन प्रभापेन तपस्विना ।
 ब्रह्माग्निं विजितोयेन तपसापरमेण हि ।८।
 अमृताशुक्रोभूत्वाजितोयेनशशो द्विजाः ।
 दाहकरवाज्जितोबह्निरीशः कैलासतोतनात् ।९।

ऐश्वर्येणजितश्चेन्द्रो विष्णुः सर्वगतस्या ।
 लिंगार्चनप्रसादेन त्रैलोक्यं च वशीकृतम् ॥१०॥
 तदा सर्वे सुरगणा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।
 मेरुपृष्ठं समासाद्य सुमंत्रं चक्रिरे तदा ॥११॥
 पीडिताः स्मोरावणो न तपसा दुष्करेण वै ।
 गोकर्णस्थिते गरीद्वेवाः श्रूयतां परमाद्भुतम् ॥१२॥
 साक्षाल्लिंगार्चनं येन कृतमस्ति महात्मना ।
 ज्ञानमेवं ज्ञानगम्यं यद्यत्परममद्भुतम् ॥१३॥
 तत्कृतं रावणो नैव सर्वेषां दुरतिक्रमम् ॥१४॥

उस प्रतापी तपस्वी ने सम्पूर्ण लोक पालों को जीत लिया था और जिसने अपने परम उग्र तप के द्वारा ब्रह्मा जी की भी जीत लिया था। हे द्विजगण ! जिसने अमृतानु कर होकर चन्द्र को जीत लिया था और साहस्रवक्त्र के होने से अग्नि को जीत लिया था। कैलास पर्वत को उत्तोलित अर्थात् हाथों से उठाकर भगवान् शिव को भी जीत लिया था क्योंकि शङ्कर भगवान् उस कैलास पर ही विराज मान रहा करते थे। ॥१०॥ ऐश्वर्य से इन्द्र को जीत लिया था तथा सर्वत्र रहने वाले भगवान् विष्णु को जीत लिया था। लिंग की अर्चना के प्रसाद से उस रावण ने सम्पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में कर लिया था। उस समय में सब देवगणों ने जिनमें ब्रह्मा और विष्णु पुरोगामी थे मेरु पर्वत की पृष्ठ भूमि पर एकत्रित होकर मन्त्रण करने लगे थे कि हम सब लोग परम दुष्कर तपश्चर्या के द्वारा रावण से उन्नीहित हो गये हैं। गोकर्ण नामक मिट्टि पर हे देव गणों ! इस परम अद्भुत का श्रवण करो। जिस महात्मा ने साक्षात् शिव के लिये का अर्चन किया है। ज्ञान के द्वारा मेय (गान करने के योग्य), ज्ञान के द्वारा ज्ञानने के योग्य जो-जो भी परम अद्भुत है वह सभी कुछ सबके लिये दुरतिक्रम रावण ने ही किया है ॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥

वंशाश्वपरमास्थायश्रीदार्यं च ततोऽधिकम् ।
 तेनैव ममता त्यक्तारावणेनमहात्मना ॥१५॥
 सवत्सरसहस्राच्च स्वशिरो हि महाभुजः ।
 कृत्वा क्वरेणालिगस्य पूजनार्थं समर्पयत् ॥१६॥
 रावणस्य कवचं चतदग्रे च समीपतः ।
 योगधारणया युक्तं परमेण समाधिनाः ॥१७॥
 लिगेनयसमाधापकयापिकलया स्थितम् ।
 अन्यच्छिरोदिवृच्छ्येवतेनापिशिवपूजनम् ॥१८॥
 कृतं नैवान्यमुनिना तथा चैवापरेण हि ॥१९॥
 एव शिवास्थेव बहूनि तेन समर्पितान्येव शिवार्चनार्थं ।
 भूत्वा कवचो हि पुनः, पुनश्च तदा शिवोऽपी वरदो बभूव ॥२०॥
 मया विनासुरस्तत्र पिडीभूतेन वै पुरा ।
 वरान्वरय पौनस्त्ययथेष्टं तान्ददान्यहम् ॥२१॥

उस महात्मा रावण ने परम वैराग्य में समास्थित होकर श्रीर
 उससे भी अधिक श्रीदार्य में समास्थित होकर ममता का पूर्ण ह्रास से
 त्याग कर दिया था । महान भुजाश्री वाले उसने एक सप्तय वर्ष तक
 धीरे तपश्चर्या करने हुए अपना मस्तक हाथ में लेकर उसे लिंग की
 पूजा के लिए समर्पित कर दिया था । उस लिंग के समीप में ही उसके
 पास रावण का कवच (चढ) योग की धारणा से युक्त होकर परम
 समाधि से लिंग में किसी भी अल्पदमृत कला से लय को प्राप्त कर स्थित
 रहा था । इसी भाँति उसके अपने अन्य शिर भी काट कर भगवान शिव
 का पूजन किया था । ऐसा अन्य किसी भी मुनि ने तथा किसी दूसरे ने
 नहीं किया था ॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥ इस प्रकार से उसने अपने बहुत से
 शिरो को ही भगवान शिव के अर्चना के लिए समर्पित कर दिया था
 वारम्बर कवच स्वस्व हो गया था । उसी समय में शिव वर प्रदान
 करने वाले हो गये थे ॥२०॥ वहाँ पर विनासुर के पिडी भूत होने

उसमें पहिले ही कहा था—हे गीनस्य ! गरदाना की याचना कर जो जो भी तुमको प्रमीष्ट हो, मैं उन सब वरों को देता हूँ । १२१।

रावणेन तदा चोक्तः शिवः परममङ्गला ।

यदि प्रमदो भगवन्देवो मे वरं वत्तमः । १२२।

न कामयेज्यं च वरमाश्रये स्वल्पवाङ्मुखा ।

यथा तथा प्रदातव्यं यद्यस्ति च कृपायामि । १२३।

तदा सदाशिवेनोक्तो रावणो लोकरावणः ।

मत्प्रसादाच्च सर्वं त्वे प्राप्स्यमे मनसोऽप्यतम् । १२४।

एव प्रातः शिवात्मवं रावणेन सुरेश्वराः ।

तस्मात्सर्वं भवद्भिः प्र तव मापरमेण हि । १२५।

विजेतव्यांशवणोऽयमिति मे मनसि स्थितम् ।

अच्युतस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्माद्यादेवतागणाः । १२६।

चिता मापेदिरे सर्वे चिरन्तो विषयाग्निताः ।

ब्रह्माऽपि चैद्रियप्रस्तं सूता रमितुमुद्यतः । १२७।

इन्द्राहि जारमानाच्च चन्द्रोहि गुरुतल्पगः ।

यमः कश्यपावाच्च चचलत्वात्सदा गतिः । १२८।

उस समय में परम मङ्गल स्वरूप भगवान शिव से कहा था—
हे भगवन ! यदि आप मुझ पर परम प्रमद हैं तो मुझे एक ही सर्वोत्तम
वरदाव देने को कृपा कीजिए । मैं अन्य कोई भी वरदान नहीं चाहता
हूँ, मैं केवल आपके वरण कमलों के समोश्रय प्राप्त करने का ही वर-
दान चाहता हूँ । यदि मुझ पर माफकी कृपा है तो यथा तथा यही मुझे
प्रदान करिये । १२२। १२३। उस समय उस लोकरावण रावण से भगवान
सदाशिव ने कहा था—देरे प्रमाद मे गमी कुछ जो भी तुम्हारे मन में है
तथा प्रमीष्ट है वह तुम परस्य प्राप्त कर लीये । १२४। हे सुरेश्वर ! इसी
प्रकार से उस रावण ने भगवान शिव से सभी कुछ प्राप्त कर लिया है
इसलिए मन प्राण सबके द्वारा परमोदाय तपस्वियों से इस रावण को

भी जीत लेना चाहिए, यही बात मेरे मन में स्थित है । भगवान् भ्रमर के इस वचन का श्रवण करके ब्रह्मादि देवगण सब बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे क्योंकि वे विरकाल से विषयों में लित थे । पितामह ब्रह्मा भी इन्द्रियो में प्रसूत थे और अपनी सुता के साथ रमण करने को समुद्यत हो गये थे । इन्द्रदेव भी जार भाव से युक्त थे तथा चन्द्रदेव भी गुरु शय्या पर गमन करने वाला था । यम में पूर्ण तथा फट्य भाव था । सदागति वायुदेव चञ्चल थे । २५—२८।

पावकः सर्वभक्षित्वात्तथाऽन्येदेवतागणाः ।

अशक्ता रावणजेतु तपसा च विजृम्भितम् । २६।

शीलादो हि महातप्ता गणथेष्ठः पुरातनः ।

बुद्धिमान्नीतिनिपुणो महाबलपराक्रमो । २७।

शिवप्रियो रुद्ररूपो महात्मा ह्युवाच सर्वानय चंद्रमुख्यान् ।

कस्माद्य सभ्रमादागताश्च एतत्सर्वं कथ्यता विस्तरेण । २८।

नन्दिना च तदा सर्वे पृष्ठाः प्रोचुस्त्वरान्विताः । २९।

रावणत वयसर्वेनिजितामुनिभिः सहः ।

प्रसादयितुमायाताः शिव लोकेश्वरेश्वरम् । ३०।

प्रहस्य भगवान्न दी ब्रह्माणं वं ह्युवाच ह ।

वक्त्रयं वच शिवः शम्भुस्तपसा परमेण हि ।

द्रष्टव्यो हृदि मध्यस्थः सोऽयं द्रष्टुं न पायते । ३१।

यावद्भावा ह्यनेकाश्चइन्द्रियाथस्तिथेव च ।

यावच्च ममवाभावस्तावदसौ हि दुर्जभः । ३२।

अग्निदेव सर्व भक्षिता का शेष था तथा भ्रमर भी सब देवता-गण प्रसक्त थे । तपश्चर्गा के द्वारा रावण को जीतना एक विजृम्भित मान ही था । शीलाद पुरातन गणों में श्रेष्ठ महान् तेजस्वी था । यह महान् बुद्धिमान्, नीति शास्त्र में परम निपुण, महान् बल और पराक्रम से समन्वित थे । शिव के परम प्रिय रुद्र के रूप धारण करने वाले,

महात्मा वह चन्द्र जिनमें प्रमुख थे उन सबमें बीने—प्रायः सब किस सन्ध्रम से यहाँ पर समागत हुए हैं—यह विस्तार पूर्वक हमको बतलाइये । इस प्रकार से जब नन्दी के द्वारा पूछे गये तो सभी देवगण त्वरान्वित होकर कहने लगे थे । २६।३०।३१।३२। देवगण ने कहा— रावण ने समस्त मुनिगण के साथ हम लोगों को जीत लिया है इसलिए हम सब लोकों के ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान सदाशिव को प्रसन्न करने के लिए यहाँ पर आये हुए हैं । उस समय में भगवान नन्दी ने हँसकर ब्रह्माजी से कहा था—कहाँ तो प्रायः हैं और कहाँ परम तप से सम्पन्न भगवान शम्भु शिव हैं । वह तो हृदय के मध्य में स्थित ही देखने के योग्य हैं । वे अत्र प्राज देखे नहीं जा सकते हैं । जब तक अनेक भाव हृदय में विद्यमान हैं तथा इन्द्रियो के अर्थ अर्थात् बहुत प्रकार के विषय मन में प्रविष्ट हो रहे हैं एवं जिस समय तक मनता की भावना हृदय में स्थित है तब तक भगवान ईश परम दुर्गम ही हैं । ३३।३४।३५।

जितेन्द्रियाणांशानां तस्मिन्नात्मनाम् ।
सुलभोनिगर्हणीस्याद्भवताहिसुदुर्गमः । ३६।
तदा ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च विपश्चितः ।
प्रणम्यनदिनं प्राहुः कस्मात्त्व वानराननः । ३७।
तत्सर्वं कथयाय च रावणस्य तपोबलम् ।
कुबेरोऽषिकृस्तस्तेनश्चकरेणमहात्मना ।
घनातामाधिपत्ये च तं द्रष्टुं रावणोऽश्रवं । ३८।
आगन्धर्ववरया युक्तः समारुह्यस्ववाहनम् ।
मा दृष्ट्वा चात्रवीत्कृद्धः कुबेरोह्यत्रआगतः । ३९।
त्वया दृष्टोऽयत्राऽनासौक्य्यतामविलम्बितम् ।
किंकार्यं घनदेनाद्यज्ञातपृष्टोमयाहिषः । ४०।
तदोवाच महातेजा रावणो लोकराजणः ।
मय्यश्रद्धान्वितो भूत्वा विषयात्मासुदुर्गमः । ४१।

शिक्षापयितुमारब्धोमंत्रंकार्यमितिप्रभो ।

यथाऽहं च श्रियायुक्तमाढ्योऽहं बलवानहम् ।

तथा त्वं भव रे मूढ मा मूढत्वमुपार्जय ॥४२॥

ओ प्रपनी इन्द्रियो के जीतने वाले हैं, परम शान्ति की भावना से युक्त हैं, शिव में ही परम निष्ठा रखने वाले हैं और महान आत्मा वाले हैं उनको ही निग रूषी भगवान शिव सुलभ हुमा करते हैं आप लोगो को तो वे सुदुर्भंग ही हैं । ३६। उसी समय में ब्रह्मा आदि समस्त देवताओ और महान विद्वान सृष्टिगणों ने नन्दी को प्रणाम करके कहा था कि आप वानर के तुल्य मूढ वाले किम कारण से हो गये हैं यह सब कथा हमको बतान इये तथा अन्य ओ रावण का तपोबल है उसे भी कहिये । ३७। नन्दीश्वर ने कहा—महात्मा शङ्कर ने कुबेर को घनो के आधिपत्य में अधिष्ठान कर दिया था । यहाँ पर उसको देखने के लिए अपने वाहन पर समाह्व होकर बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर यहाँ पर रावण आया था । उसने यहाँ पर मुझको देखकर अत्यन्त क्रोधित होते हुए कहा था कि क्या यहाँ पर कुबेर आया था ? क्या आपने उसको यहाँ पर देखा है ? वह बहुत ही शीघ्र बिना कुछ विलम्ब किये मुझे बतलाओ कि क्या वह यहाँ पर है । उस समय में मैंने उससे पूछा था कि आज आपको घनद (कुबेर) से क्या काम है । उस समय में लोक रावण, महान तेजस्वी रावण ने कहा था—मुझसे अघट्टा से युक्त होकर विषयों में लित आत्मा वाला तू मतीव सुदुर्भद हो गया है । मुझे ही आज शिक्षा देना तुमने आरम्भ कर दिया है । हे प्रभो ! ऐसा तुमको नहीं करना चाहिये । जैसा मैं ओ से युक्त हूँ और परम आढ्य हू तथा मैं बलवान भी हूँ । रे मूढ ! उसी प्रकार का तू भी हो जा और इस मूढता का उपार्जन मत करो । ३८—४२।

अहं मूढः कृतस्तेन कुबेरेणमहात्मना ।

मयानिराकृतो रोषात्तपस्तेपे स गुह्यकः ॥४३॥

कुबेरः स हि तंदिन्किमागतस्तव मन्दिरम् ।
 दीयतां च कुबेरोऽद्यनात्रकार्याविचारणा ॥४४॥
 रावणस्यवचः श्रुत्वाह्ववोचत्वरितोऽप्यहम् ।
 लिङ्गकोसिमहाभागत्वमहं च तथाविधः ॥४५॥
 उभयोः समतांज्ञात्वावृथाजल्पसि दुर्मते ।
 यथोक्तः स त्ववादीन्मां वदनार्थैवल्लोदतः ॥४६॥
 यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं वदनार्थं महात्मभिः ।
 पुरावृत्तंमयाप्रोक्तंशिवार्चनविधेः फलम् ।
 शिवेन दत्तं साहस्यं न गृहीतं मया तदा ॥४७॥
 याचितं च मया शंभोर्वदनं वानरस्य च ।
 शिवेन कृपया दत्तं मम काल्प्यशालिना ॥४८॥
 निराभिमानीनो ये च निदंभानिष्परिग्रहाः ।
 शंभोः प्रियास्तेविक्षेयाह्यन्येशिववहिष्कृताः ॥४९॥

उस महात्मा कुबेर के द्वारा मैं मूढ़ बना दिया गया हूँ। जब मैंने रोप से उसका निरादर कर दिया था तो उस गुह्यपक (कुबेर) ने तपस्त्रयी की थी ॥४३॥ रावण ने कहा—हे नन्दिन ! वह कुबेर आपके मन्दिर में क्यों समागत हुआ था ? आज उस कुबेर को तुम मेरे सुपुत्र कर दो और इस विषय में कुछ भी विचार मत करो ॥४४॥ रावण के इस वचन को सुनकर मैंने तुरन्त ही उससे यह कहा था—हे महाभाग ! आप लिङ्गक हैं अर्थात् शिव लिङ्ग की उपासना करने वाले हैं और मैं भी उसी प्रकार का उपासक हूँ। हम तुम दोनों की समता का ज्ञान प्राप्त करके भी हे दुर्मते ! यह सब व्यर्थ ही कह रहे हो। ऐसा ज्यों ही मैंने उससे कहा था वह मुझसे बोला—वदनार्थं मे वल से उद्धत हो गया है। महान आत्मा वाले आपने जैसा मुझसे वदनार्थं में पूछा है। मैंने शिवार्चन की विधि का फल पुरावृत्त कहा है। भगवान् शिव ने मुझे अपना साहस्य प्रदान किया था, किन्तु उस समय मैं मैंने उसे स्वी-

कार नहीं किया था । ४२।४६।४७। मैंने उस समय में भगवान् शम्भु से वानर का वहन माँगित किया था । कहणावाली शिव ने कृपा करके मुझे वह प्रदान कर दिया था । ४८। जो अग्रिमान् में रहित हैं, दम्भ से दून्य हैं और परिग्रह हीन होते हैं वे ही लोग भगवान् शम्भु के परम प्रिय होते हैं और अन्य जो होते हैं वे शिव के द्वारा बहिष्कृत कृपा करते हैं । ४९।

सथावदग्मया साङ्घं रावणस्तपसोबलात् ।
 मया च याचिताभ्येवदश वक्राणिधोमता । ५०।
 उपहासकर वाक्यं पीलस्त्यस्य तदासुराः ।
 मया तदा हि शप्ताऽसौरावणो नोकरावणः । ५१।
 ईदृशान्येव वक्राणि येषां वै सम्भवति हि ।
 तैः समेतो यशकोऽपिनरवर्यो महातपाः ।
 मा पुरस्कृत्य सहसा हनिष्यति न सशयः । ५२।
 एवं शप्तो मया ब्रह्मन्नावणो नाकरावणः ।
 अचित्तं केवलं निगदिना तेन महात्मना । ५३।
 पाठिकारूपसस्येन विना तेन सुरोत्तमाः ।
 विष्णुना हि महाभागास्तस्मात्सर्वं विधास्यति । ५४।
 देवदेवो महादेवो विष्णुरूपो महेश्वरः ।
 सर्वे यूयमार्चयन्तु विष्णुं सर्वगुहाशयम् । ५५।
 अहं हि सर्वदेवानां पुरोवर्ती भवाम्यतः ।
 ते सर्वे नन्दितो वास्यं श्रुत्वा श्रुदितमानसाः ।
 वैकुण्ठमागता गोभिर्विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रिरे । ५६।

उपीबल से रावण ने मेरे साथ उस प्रकार ते बड़ा था कि धीमात्र मैंने तो भगवान् शम्भु से दशमुखी के हो जाने की याचना की थी । हे सुराण ! यह उस समय में पीलस्त्य का परम उपहास के करने वाला वाक्य था । उस समय में लोको को डराने वाले उस रावण को

मैंने श्राप दे दिया था । जिनको ऐसी ही मुछ हुआ करते हैं, जिन समय में उनसे युवक महान तपस्वी कोई नरतरुणा होगा वह सहसा मुझको प्राण करके मार डालेगा — इसमें कुछ भी संशय नहीं है । १५०।११।१२। इस तरह से मेरे द्वारा श्राप दिया हुआ है ब्रह्मन् ! यह लोकरावण रावण था । उसने उस महात्मा के बिना केवल लिङ्ग का ही भर्त्सन किया था । हे महान् भाग वाले सुरीतमो ! उसने पीठिका रूप सस्थित उस विष्णु भगवान के बिना ही यह समर्चना की थी । प्रत्येक वह विष्णु ही सब कुग्र करने । देवो के भी देव महेश्वर विष्णु के स्वरूप वाले महादेव हैं । इसलिए भाप सब लोग सबके गृहाशय भर्त्सात् सबके भान्तर्गामी भगवान विष्णु की प्रार्थना करिये । १५३।१४।१५। इसलिए मैं श्राप सब लोगो के श्रापे रहने वाला होऊँगा । वे समस्त देवता लोग नन्दी के ६६ पादय का श्राप कर बहूत्र ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे । फिर वे सभी वैकुण्ठ मे समागत हो गये थे और बालियों के द्वारा भगवान विष्णु की स्तुति करने लगे थे । १५६।

नमो भगवते तुभ्यं देवदेव ! जगत्पते ! ।
 त्वदाधारमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् । १५७।
 एतस्त्रिगन्तव्याविष्णोवृत्तं वै पिण्डरूपिणा ।
 महाविष्णुस्वरूपेणघातितौ मधुकैटभौ । १५८।
 तथा कमठरूपेण घृतो वै मंदराचलः ।
 वराहरूपमास्थाय हिरण्याक्षो हतस्त्वया । १५९।
 हिरण्यकशिपुर्देवो हतो नृहरिरूपिणा ।
 त्वयाचैव बलिर्बद्धो दैत्यो वामनरूपिणा । १६०।
 नृगूरुणामन्वये भूत्वा कृतवीर्यात्मजो हतः ।
 इतीप्यस्मान्महाविष्णो तथैव परिपालय । १६१।
 रावणस्य भयादस्मात्प्रातुं भूयोऽर्हसि त्वरम् । १६२।

एवं सप्राथितो देवैर्भगवान्भूतभावनः ।

उवाच च सुरान्सर्वान्वासुदेवो जगन्मयः ।६३।

हे देवाः श्रूयतां वाक्यप्रस्तावसदृशमहत् ।

शैलादि च पुरस्कृत्यसर्वे यूय त्वरान्विताः ।

अवतारान्प्रकुर्वन्तु वानरी तनुगाथिताः ।६४।

देवगण ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं । भगवान् आपके लिए हमारा नमस्कार है । इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के आप ही एक मात्र आधार हैं ।५७। हे विष्णो ! पिण्ड रूपी आपने इस निग की धारण किया है । महा विष्णु के स्वरूप से आपने मधु और कैटभ दोनों असुरों का हनन किया था ।१८। आपने कमठ रूप से मन्दराचल को धारण किया था तथा आपने धरु के स्वरूप में समास्थित होकर हिरण्याक्ष का वध किया था । नृसिंह के स्वरूप को धारण करके आपने हिरण्यकशिपु दैत्य का हनन किया था और वामन रूपी आपने ही बलि दैत्य को बद्ध किया था । मृगुषो के वश में जन्म धारण करके वृत्वीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन का हनन किया था । हे महा विष्णो ! उसी भाँति से यहाँ पर भी हमारी रक्षा आप कीजिए । रावण के इन भय से आप बहुत ही शीघ्र पुनः रक्षा करने के योग्य होते हैं ।५९।६०।६१।६२। इस प्रकार से देवगणों के द्वारा भूतो पर दया करने वाले भगवान् समस्त देवों से जगन्मय वासुदेव बोले—हे देवगणों ! आपके इस प्रस्ताव के सदृश मेरा महान् वाच श्रवण करो । आप सभी लोग अत्यन्त शीघ्रता से समन्वित होते हुए शैलादि को अपने प्राये करके वानरी तनु (शरीर) का समावेश ग्रहण करते हुए अवतारों को करो ।६३।६४।

महहिमानुषो भूत्वा ह्यज्ञानेन समावृतः ।

संभविष्याम्ययोध्याया गृहे दशरथस्य च ।

ब्रह्मविद्यासहायोऽस्मि भवतां कार्यसिद्धये ।६५।

जनकस्यपृहेसाक्षाद्ब्रह्मविद्याजनिष्यति ।
 भक्तो हि रावणः साक्षाच्छ्रवध्यानपरायणः । ६६।
 तपसा महता युक्तो ब्रह्मविद्यां यदेच्छति ।
 तदा सुमाध्योभवति पृथ्वो धर्मनिर्जितः । ६७।
 एवं संभाव्य भगवान्निष्पुः परममङ्गलः ।
 वालीचेन्द्रांससभूतः सुप्तोवोऽश्रुमतः सुतः । ६८।
 तथा ब्रह्मांगसम्भूतो जाम्बवानृक्षकुञ्जरः ।
 शिलादतन्वयो नन्दीशिवस्थानुचरः पियः । ६९।
 यो वै नैकादशोऽरुहो हनुमान्म महाश्रुपिः ।
 अतोर्यैः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः । ७०।

मैं फिर यज्ञान से समावृत्त होकर मनुष्य होऊँगा और राजा
 दशरथ के घर में प्रयोष्या पुरी में जन्म ग्रहण करूँगा । भाप सब
 लोगों के कार्य की सिद्धि के लिये मैं ब्रह्म विद्या की सहायता आता
 होऊँगा । वह ब्रह्म विद्या राजा जनक के पृह में जन्म ग्रहण करेगी ।
 परमभक्त रावण साक्षात् शिव के दशान में परागण होकर महान् तप-
 श्रमा से युक्त जब ब्रह्म विद्या की इच्छा करेगा तो तभी समय में वह
 धर्म निर्जिता पृथ्व सुसाध्य हो जायगा । ६५। ६६। ६७। परम भक्त
 स्वल्प भववान् विष्णु के हम तरह से कहकर इन्द्र के मरु में सम्भूत
 वाली, भंक्षुमान् का पुत्र सुप्तिर का श्रुत्य कुञ्जर जाम्बवान् ब्रह्मा के
 घर से सम्भूत हुआ । शिलाद का तलम (पुत्र) नन्दी भयव न् शिव का
 प्रिय मनुवर था जो एकादश रुद्र रूप महा श्रुपि या वह हनुमान् हुआ ।
 इसी योगि से अपरिमित तेज धारण करके वाले भगवान् विष्णु की
 सहायता करने के लिये धवतीयों हुए थे । ६८। ६९। ७०।

मन्वाद्योऽथ कपयस्ते सर्वे गुरसत्तमाः ।

एवं सर्वसुरगणाभवतेऽस्यपात्रधम्

। ७१।

तथैव विष्णुरुत्पन्नः कौशल्यानान्दवर्द्धनः ।
 विश्वस्य रमणान्चैव राम इत्युच्यते बुधे ॥७२॥
 शेषोऽपि भक्त्या विष्णोश्च तपसाऽवातरद्भवि ॥७३॥
 दोर्दण्डावपि विष्णोश्च अवतीर्णोऽप्रतापिनी ।
 शश्रुघ्नभरताह्वयो च विस्थातोभुवनत्रये ॥७४॥
 मिथिलाधिपते, कन्यायाउक्ताब्रह्मवादिभिः ।
 सा ब्रह्मविद्याऽवतरत्सुराणांकार्यसिद्धये ।
 सीता जाता लाङ्गलस्य इय भूमिविकर्पणात् ॥७५॥
 तस्मात्सीतेति विख्याता विद्या सान्वीक्षिकी तदा ।
 मिथिलाया समुत्पन्ना मैथिलीत्यभिधीयते ॥७६॥
 जनकस्य कुले जाता विश्रुताजनकात्मजा ।
 स्यात्ता वेदवती पूर्वं ब्रह्मविद्याऽघनाशिनी ॥७७॥

वे सब सुरश्रेष्ठ तथा मीन्द भादि ऋषिगण इसी प्रकार से
 यथातथ भवतीर्ण हुए थे । उसी भाँति कौशल्या के घानन्द का वर्द्धन
 करने वाले भगवान् विष्णु समुत्पन्न हुए थे । समस्त विश्व के रमण
 कराने से बुधो के द्वारा "राम"—इस नाम से कहे जाते हैं । भगवान्
 शेष भी विष्णु भगवान् की भक्ति के कारण से तप के द्वारा इस भू-
 मण्डल में भवतीर्ण हुए थे । प्रतापो दोर्दण्ड भी जो भगवान् विष्णु के ये
 उस समय में भवतीर्ण हुए थे । वे दोनों दोर्दण्ड भुवनत्रय में भरत और
 शश्रुघ्न इन दो शुभ नामों से विख्यात हुए थे ॥७१॥७२॥७३॥७४॥ जो
 मिथिला देश के स्वामी की कन्या थी वह ब्रह्म वादियों के द्वारा ब्रह्म-
 विद्या कही गयी थी जो कि सुरों के कार्य की सिद्धि के लिए भवतीर्ण
 हुई थी । यह सीता हल के द्वारा भूमि के विकर्षण से समुत्पन्न हुई थी
 ॥७५॥ इसी कारण से उस समय में वह आन्विक्षिकी की विद्या "सीता"
 इस नाम से विख्यात हुई थी । यह मिथिला देश में समुत्पन्न हुई थी
 इसलिये यह "मैथिली"—इस शुभ नाम से भी कही जाती है । वह

राजा जनक के कुल में समुत्पन्न हुई थी अतएव वह जनक राजा—इस नाम से विद्युत हुई थी । यह अश्वी के जात करने वाली ब्रह्म विद्या पहिले वेदवती—इस नाम से विख्यात हुई थी ।७६।७७।

सा दत्ता जननेनैव विष्णुवे परमात्मने ।७८।

तथाऽथ विद्यया साद्धं देवदेवो जगत्पतिः ।

उग्रं तपसिलीनोऽसौविष्णुः परममङ्गलः ।७९।

रावणं जेतुकामो वै रामो राजीवलोचनः ।

अरण्यवासपकरोद्देवानां कार्यसिद्धये ।८०।

श्रेयावतारोऽपि महास्तपः परमदुष्करम् ।

तत्राप परयाशक्त्या देवानांकार्यसिद्धये ।८१।

शशुष्को भरतश्चैव तेषतुः परमन्तपः ।८२।

ततोऽसौ तपसा युक्तः साद्धं तदेवतागणः ।

सगणं रावणं रामः पशुभिर्ममिरजीहन्त् ।

विष्णुना धातितः शस्त्रैः शिवसाहस्यमशवान् ।८३।

सगणः स पुनः सद्यो बन्धुमिः सह सुव्रताः ।८४।

उसको स्वयं राजा जनक ने ही परमात्मा विष्णु को प्रदान किया था ।७८। इसके प्रबन्तर देवों के देव भगवान् जगत्पति उस विद्या के शप में परमोत्तम तप में यह परम मङ्गल मनु लीन हो गये थे । राजीव (कमल) के ममान लोचनी वाले ममवात् थी राम रामण को जीतने की कामना वाले थे । उन्होंने देवगणों के कार्य की सिद्धि के लिये अरण्य का निवास किया था । श्रेय के धवतार वाले ने भी देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए अपनी पराशक्ति के द्वारा परम दुष्कर एव महान् तपश्चर्या की थी । शशुष्क और भरत ने भी परम तप का तपन किया था ।७९।८०।८१।८२। इसके उपरान्त देवगणों के साथ तपस्वर्या से युक्त इन भगवान् को राम ने छै ही मासों के अन्दर गणों के महिम्न रावण को मार डाला था । भगवान् विष्णु ने शस्त्रों से उनका

वध किया था । वह रावण भगवान् शिव के स्वरूप को प्राप्त हो गया था । हे सुव्रतो ! उसने अपने ममस्त बन्धु गणों के साथ तथा अपने गणों के सहित पुनः तुरन्त ही शिव की स्वरूपता प्राप्त कर ली थी । १८३।१८४।

शिवप्रसादात्सकल द्वैताद्वैतमवाप ह ।
 द्वैताद्वैतविवेकाथमृषयोऽप्यत्र मोहिताः ।
 तत्सर्वं प्राप्नुवन्तीह शिवार्चनरता नराः । १८५।
 येऽर्चयन्तिशिवनित्यलिङ्गरूपिणमेवच ।
 स्त्रियादाऽप्यथवाशूद्राः श्वपचाह्यन्त्यवासिनः ।
 त शिव प्राप्नुवन्त्येव सर्वदुःखोपनाशनम् । १८६।
 पशवोऽपि पर याताः किं पुनर्मानुषादयः । १८७।
 ये द्विजा ब्रह्मचर्येण तपः परममास्थिताः ।
 वर्षैरनेकैर्यज्ञाना तैऽपि स्वर्गपरा भवन् । १८८।
 ज्योतिष्मो वाजपेयो ह्यतिराश्रादयो ह्यमी ।
 यजाः स्वर्गं प्रयच्छन्ति सत्त्रिणा नात्र सशयः । १८९।
 तत्र स्वर्गमुखं भुक्त्वापुण्य क्षयकर महत् ।
 पुण्यक्षयेऽपि यज्वानो मर्त्यलोकं पतन्तिव । १९०।
 पतिताना च ससारे देवाद्बुद्धिः प्रजायते ।
 गुणत्रयमयी विप्रास्तासु तास्विहयोनिषु । १९१।
 यथा मत्स्व सभवति सत्तदयुक्तमव नराः ।
 राजसाश्च तथा ज्ञेयास्तामसाश्चैव ते द्विजाः । १९२।

उसने भगवान् शिव प्रसाद से सम्पूर्ण द्वैताद्वैत की प्राप्ति कर ली थी । यह द्वैताद्वैत विवेक ऐसा है जिसकी जानने के लिए इस विषय में बड़े-बड़े महर्षि गण भी मोहित हो जाया करते हैं । उस सम्पूर्ण द्वैताद्वैत सिद्धान्त को भगवान् शिव के समर्चन में निरम रहने वाले मनुष्य इस प्रकार में प्राप्त कर लिया करते हैं । १८५। जो पुरुष नित्य प्रति त्रिग स्वरूप वाले भगवान् शिव का सर्वत्र क्रिया करते हैं

चाहे वे स्त्रियाँ हों भयवा पुरुष हों, सूद हों, श्वपच हों या अन्धधरमो हों क्यों न हों वे सभी दिव के लिंगार्चन के प्रभाव से समस्त दुखों के उप नाश करने वाले भगवान् शिव की मन्त्रिकी से मदय ही प्राप्त कर लिया करते हैं । १८६। शिव लिंग की अर्चना का प्रभाव तो ऐसा कि वरु मरु भी परम पद को प्राप्त कर लिया करते हैं फिर मनुष्य आदि की तो बात ही क्या है । १८७। जो द्विज ब्रह्मचर्य पूर्वक अनेक वर्षों तक यज्ञों के परम रूप में समास्थित हैं वे भी स्वर्ग पर ही जाया करते हैं । ज्योतिषोम, आश्वमेध और ये अतिरथादि यज्ञ सत्क करने वालों को स्वर्ग प्रदान किया करते हैं — इसमें कुछ भी भय नही है । यह स्वर्ग प्राप्ति का मुख महान् पुण्यों के द्वार करने वाला है — उप मुख को भोग कर किये हुए ममस्त पुण्य के क्षीण हो जाने पर यज्वागस्य फिर इसी मत्स्य लोक में पतन प्राप्त किया करते हैं । जब इस संसार में पुनः पतन हो जाता है तो उन पतितों को देव वरु से बुद्धि उत्पन्न हो जाया जाती है । वह बुद्धि गुणत्रय मयी होती है । हे विप्रमण ! तिस प्रकार से सत्त्व सत्त्व युक्त भक्त बाल जन्म ग्रहण किया करता है । हे द्विजमण ! वे मनुष्य राजस और तामस ही जानते चाहिए । १८८-१९१।

एवं संसारचक्रेऽस्मिन्प्रमिता बहवो जनाः ।
यदृच्छ्यादंवात्प्रा शिव सत्सेवते तर. १८३।
शिवध्यानपराणां च नाराण्य यत्चेतसाम् ।
मायानिरसनंसद्यो भविष्यति न चान्यथा । १८४।
मायानिरसनात्सद्यो नश्यत्येव गुणत्रयम् ।
यदागुणत्रयातीतो भवतीति स मुक्तिभाक् । १८५।
तस्मात्सिद्धार्चनं मात्पर्यसर्वेषामपि देहिनाम् ।
सिद्धरूपी दिवो भूत्वा त्रायते सचराचरम् । १८६।
पुरा भवद्भिः पृष्टोऽहं सिद्धरूपी कथं शिवः ।
तत्सर्वं कथितं विप्रायासात्स्थेन सद्यप्रति । १८७।

चयं गरं भस्मिन्वाञ्छिरो लोत्रमहेश्वरः ।

तत्सर्वं श्रयतां विप्रा यथावत्कथयामि वः ॥६८॥

इस प्रकार से इस मनार के चक्र में बहृत-ने मनुष्य अन्या किया करते हैं । देवगति से महच्छा से मनुष्य भगवान् शिव का सेवेन किया करता है । जो नर भगवान् शिव के ध्यान में परायण होते हैं और संयत चित्त वाले होते हैं उनकी माया का निरसन तुरन्त ही हो जायगा — इनके प्रतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से नहीं होता है । जब माया का निरसन हो जाता है तो तुरन्त सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों का नाश हो जाया करता है । जब मनुष्य गुणों से भ्रष्ट हो जाया करता है तो वह मुक्ति के प्राप्त करने का पूरा अधिकारी हो जाता है । इसीलिए समस्त देहधारियों को शिव लिए का ध्यान अवश्य ही करना चाहिए । निग रूमी शिव होकर इस चरावर जगत् का नाश किया करता है । पहिले मुक्त से धार लोगों ने पूछा था कि यह भगवान् शिव निग के स्वरूप को धारण करने वाले कैसे हुए थे । हे विप्रगण ! वह सभी कुछ इस समय में याथावय्य रूप से धार लोगों को कह कर बतला दिया है । लोक महेश्वर भगवान् शिव ने गरल का मक्षण कैसे किया था — इस सबको भी हे विप्र वृन्द ! धार श्रवण करिये । मैं यथावत् सब धारकी बतला रहा हूँ ॥६३-६८॥

६-गुरु की श्रवणा से इन्द्र का राज्य मङ्ग

एकदा तु सभामव्यजास्थितो देवराट्स्वयम् ।

लोकपालैः परिवृतो देवश्चक्षुषिभिस्तथा ॥१॥

अप्सरोगणसंवीतो गन्धर्वैश्च पुरस्कृतः ।

उपगोयमानविजयः सिद्धविद्याधरैरपि ॥२॥

तदाशिष्यैः परिवृतो देवराजगुरुः सुधीः ।

आगतोऽसौ महाभागीवृहस्पतिरुदारधीः ॥३॥

तं दृष्ट्वाः सहसाः देवाः प्रसीमुः समुपस्थिताः ।
 इन्द्रोपिदृष्टो तत्र प्राप्तवाचस्पतितदा । १४।
 नोवाच किञ्चिद्दुर्मघावचो मानसुरः मरम् ।
 नाह्वानं नासनं तस्य न विसर्जनमेव च । १५।
 शकं प्रमत्तं ज्ञात्वाऽथ मदाद्राज्यस्य दुर्मतिम् ।
 तिरोधानमनुप्राप्तो बृहस्पतीरुपाश्वितः । १६।
 गते देवगुरोतस्मिन्विमनस्काऽभवत्सुराः ।
 यक्षानागाः सगन्धर्वाः ऋषयोऽपिनथाद्विजाः । १७।

महावि लोमश ने कहा—एक वार समा के मध्य में देवराज इन्द्र स्वयं समास्थित हो रहे थे । उनके चारों ओर सौकपाल, देव और ऋषिगण विराजमान थे । वह अम्बराधो के नृत्य को देखने में मग्न थे गन्धर्वगण आगे गमन कर रहे थे और सिद्ध तथा विद्यापरो के द्वारा उनके विजय मग्न का तापन हो रहा था । उसी समय में शिष्यों के सहित देवराज के सुधी सुसुदेव उदार बुद्धि वाले महाभाग बृहस्पति वहाँ पर समागत हो गये थे । १।२।३। उनको देखकर राव देवगण सहसा उठ खड़े हुए और सबने उनको प्रणाम किया था । उस समय में वहाँ पर प्राप्त हुए वाचस्पति को इन्द्रदेव ने भी स्वयं देखा था किन्तु उस दुष्ट बुद्धि वाले ने मान पूर्वक उनसे कुछ भी नहीं कहा था । न तो उनका कुछ स्वाम्य ही किया—न आसन दिया और और न उनकी विदाई ही की । इसके पनन्तर बृहस्पति जी ने इन्द्र को राज्य के मद से प्रमत्त दुर्मति समझकर क्रोध से युक्त होकर अपना तुरन्त ही वहाँ से तिरो-धान कर लिया था । १४।१५। देव गुरु के चले जाने पर समस्त सुरगण बहुत ही उदास हो गये थे । सब यज्ञ, नाग, गन्धर्व, ऋषिवृन्द और द्विजगण विमनस्क हो गये थे । १७।

गान्धर्वसमावसानेतु लब्धसञ्ज्ञो हरिः सुरान् ।
 प्रपञ्चश्चरितेनैव क्व गतो हि महातपाः । १८।

तदेव नारदेनोक्त शक्रो देवाधिपस्तथा ।
 त्वयाकृताहवज्ञा च गुरोर्नान्यत्र संशयः । १६।
 गुरोरवज्ञया राज्य गतं ते वनसूदन ! ।
 तस्मात्क्षमापनीयोऽमी सर्वभावेन हि त्वया । १७।
 एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्यनारदस्य महात्मनः ।
 आसनात्महसोत्थायतैः सर्वैः परिवारितः ।
 आगच्छस्त्वरया शक्रो गुरोर्गोहमतन्द्रिनः । १८।
 पृष्ट्वा ताराप्रणम्यादौ वव्र गतो हि महानपाः ।
 न जानामीत्युवाचेद तारा शक्रं निरीक्षणी । १९।
 तदा चिन्तान्विनोभूत्वाशक्रः स्वगृहमाव्रजत् ।
 एतस्मिन्नन्तरे स्वर्गोह्यनिष्ठान्यृद्भूतानि च । २०।
 अभवन्सर्वदुःखार्थं शक्रस्य च महात्मनः ।
 पातालस्थेन वनिना ज्ञातं शक्रस्य चेष्टितम् । २१।
 ययो दैत्यं परिवृतः पातालादमरावतीप् ।
 तदा युद्धमतीवाऽऽमीदृशाना दानवैः सह । २२।

गन्धर्षों का गायन जब समाप्त हो गया तो उस समय में इन्द्र को कुछ होश पाया था और उसने देवताओं से शीघ्र ही पूछा था— महान तपस्वी गुरुदेव कहां चले गये हैं ? उसी समय में देववि नारदजी ने देवों के स्वामी इन्द्रदेव से कहा था— तुमने गुरु की प्रवृत्ता की थी है— इसमें कुछ भी संशय नहीं है । हे वनसूदन ! तेरा राज्य गुरुदेव की प्रवृत्ता से गया है । इसलिए आकाशको सब संतोभाव से उनसे इच्छामन कराना चाहिए । महात्मा थी नारदजी के इस वचन का श्रवण करके वह अपने आसन से सहना समुत्थित हो गया था और उन सबके द्वारा परिवारित होता हुआ बड़ी ही शीघ्रता के साथ इन्द्र मतन्द्रिन होकर गुरुदेव के घर में प्राया था । सर्व प्रथम गुरु पत्नी तारा को प्रणाम करके उसने पूछा था— महान तपोमूर्ति गुरुदेव इस समय में

कहाँ चले गये हैं ? सारा ने इन्द्र को देखते हुए यही उत्तर दिया था कि मैं नहीं जानती हूँ । उस समय मैं परम चिन्ता से समन्वित होकर इन्द्र का पित्त मरने पर मे आ गये थे । इसी बीच मैं स्वर्ग अन्धधुन अन्ध हुए थे जो सब प्रकार के दुःखों के लिए ही महात्मा इन्द्र को हुये थे । पाताल में स्थित बलि ने इन्द्र की इस कुश्चेष्ट को समझ कर वह पाताल से दैत्यों से परिवृत्त होता हुआ अमरावती में गया था । उस समय में देवों का दानवों के साथ अनीत घोर युद्ध हुआ था । १८-१९।

देवाः पराजिता दैत्यैः राज्य शक्यस्य तत्क्षणात् ।
 सम्प्राप्त सकलं तस्य भूदस्य च दुरात्मनः । १६।
 नीतं सर्वप्रयत्नेन पाताल त्वरितं गताः ।
 शुक्रप्रसादात्तो सर्वे तथा विजयिनाऽभवन् । १७।
 शक्रोऽपि निःश्वक्रो जातो देवीस्त्यक्तस्ततो भूक्षम् ।
 देवीतिरोघानगता वसुव कमलेक्षणा । १८।
 ऐरावतो महाभागस्तथैवोच्चैः शवा हयः ।
 एवमादीनि रत्नानि जनेकानि बहून्वपि । १९।
 नीतानि सहस्रदैत्यैर्लोभादसाषु वृत्तिभिः ।
 पुण्यभाञ्छि च तान्प्रेक्ष्य पतितानि च सागरे ।
 तदा स विस्मयाविष्टो बलिराह गुह्यम्पति । २०।
 देवान्निब्रित्य चास्माभिरानीतानि बहूनि च ।
 रत्नानि तु ममुद्देश्य पतितानि तद्वद्भुनम् ।
 बलैस्तद्बन्धनं श्रुत्वा उशाना प्रत्युवाच तम् । २१।

दैत्यों के द्वारा सब देवगण पराजित हो गये थे और दुरात्मा महाभुद इन्द्र का सम्पूर्ण रा म दैत्यों ने प्राप्त कर लिया था । वे सब राज्य के सम्पूर्ण भव को लेकर भीष्म ही का पित्त पाताल लोक को चले गये थे । देवों के गुह्येय शुक्राचार्य के पभाव से वे सब दैत्यगण विद्रयो हो गये थे । इन्द्र भी शीहीन हो गया था और समस्त देवों के द्वारा

बहु धन्यन्त त्याग दिया गया था । कमलेशणा देवी भी विरोधान्त हो हो गई थी अर्थात् वहाँ से छिपकर चुप हो गई थी । महानाग ऐरावत तथा उच्चैःश्रवा अश्व आदि इस प्रकार से अनेक बहुत से रत्न भी सहसा दैत्यो ने जो असाधु चरित्र वाले थे लोभ से ले लिए थे । ये सब रत्न परम पुण्यात्म के ही उपभोग करने के योग्य थे इसलिए वे सब सागर में पतित हो गये थे । उस समय में अतीव विस्मय से समाविष्ट होकर राजा बलि ने गुरुदेव शुक्राचार्य्यं जी से कहा था । १६-२०। हे गुरुदेव ! देवो को युद्ध में जीतकर हमने ये सब रत्न बहुत से प्राप्त किये थे किन्तु ये सभी रत्न समुद्र में गिर गये हैं—बहु एक बहुत ही अद्भुत घटना है । दैत्यराज बलि के इस ध्वन का श्रवण करके शुक्राचार्य्यं ने उसको इसका उत्तर दिया था । २१।

अश्वमेधशतेनैव सुरराज्यं भविष्यति ।
 दीक्षितस्य न सन्देहस्तस्माद्भोवता स एवच । २२।
 अश्वमेध विना किञ्चित्स्वर्गं भोक्तुं न पायते । २३।
 गुरोर्वचनमाज्ञाय तूष्णीभूतो बलिस्ततः ।
 बभूव देवैः साद्धं च यथोचितगकारयत् । २४।
 इन्द्रोऽपिशोच्यताप्राप्तोजगाम परमेष्ठिनम् ।
 विज्ञापयामासतथासर्वं राज्यभयादिकम् ।
 शक्रस्य वचनं श्रुत्वा परमेष्ठी उवाच ह । २५।
 समिलित्या सुरान्सर्वास्त्वया साकृत्वरान्विताः ।
 आराधनार्थं गच्छामो विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् । २६।
 तथेति गत्वा ते सर्वेशक्राद्यालोकपालकाः ।
 ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तटं क्षीरार्णवस्य च । २७।
 प्राप्योपविश्य ते सर्वे हरिं स्तोतुं प्रचक्रमुः । २८।

श्री अश्वमेध यज्ञो के करने पर ही सुर राज्य के वैभव का आनन्द प्राप्त होगा जबकि इस प्रकार से दीक्षित तुम हो जाओगे ।

इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इससे इन समस्त देवों का भौता वह ही होता है जो भी भद्रमेव कर लिया करता है । बिना भद्रमेव यज्ञ के स्वर्ग का मूल मोक्ष नहीं किया जा सकता है । १२३। १३। गुरुदेव के इस वचन का ध्यान करके फिर वैत्यराज बलि चुप ही गया था और देवी के साथ अपने यथोचित व्यवहार किया था । १२४। देवराज इन्द्र भी परम गोक को प्राप्त होकर परमेष्ठी ब्रह्माजी के पास गया था और वहाँ जाकर सब राज्य भय आदि की घटना का समाचार सुनाया था । इन्द्रदेव के इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—-१२५। अत्यन्त शीघ्रता से मन्त्रिज होकर समस्त सुरों के साथ मिलकर सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णु की माराधना करने के लिए चरें । ऐसा ही करना चाहिए— यह विचार कर मैं सब इन्द्र आदि लोकपाल जाकर ब्रह्माजी को अपना मगधामी बना कर क्षीर सागर के तट के समीप में प्राप्त हो गये थे । वहाँ पर बैठकर उन सबने श्री हरि का स्तवन करना आरम्भ कर दिया था । १२६-२७-२८।

देवदेव जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत ।
 पुष्यश्लोकाव्ययानन्त परमात्मश्रमोऽस्तुते । १२६।
 यशोऽसि यज्ञस्थाऽसि यज्ञांगोऽसि रमापते ।
 ततोऽद्य कृपया विष्णो देवानां वरदो भव । १२७।
 गुरोरवज्ञया चाद्य ज्ञष्टराज्यः शक्तकनुः ।
 जातः सुर्यपिभिः साकं तस्मादेवं समुद्धर । १२८।
 गुरोरवज्ञया सर्वं नश्यतीति किमद्भुतम् ।
 ये पापित्रीह्यधमिषाः केवलं विषयात्मकाः ।
 पितरौ निन्दितौ येन निर्देहास्ते न सखयः । १२९।
 जनेन यत्कृतं ब्रह्मरुष्टस्तत्पन्नमागतम् ।
 कर्मणा चास्य शकस्य सर्वेषा संकटापमः । १३०।

विपरीतो यदा कालः पुष्पस्य भवेत्तदा ।

भूतमंत्रिं प्रकुर्वन्ति सर्वकार्यायंसिद्धये । १४।

तेन वै कारणेनेन्द्र मदीयं वचनं कुरु ।

कार्यहेतोस्त्वया कार्यो दैत्यैः सह समागमः । १५।

ब्रह्माजी ने कहा—हे देवो के भी देव ! मार तो इस जगत् के स्वामी हैं । सुर और असुर सभी मारको नमस्कार करते हैं । हे पुष्प प्लोक ! आप विनाश रहित हैं और अनन्त स्वरूप वाले हैं । हे परमात्मन् ! मारको हम सबका नमस्कार है । १४। मार यज्ञ स्वरूप हैं और स्वयं ही साक्षात् यज्ञ हैं । हे रमायते ! आप यज्ञ के अङ्ग हैं । इसलिए हे विष्णो ! आज अपनी परम कृपा करके इन समस्त देवो को वरदान देने वाले हो जाइये । अब अपने गुरुदेव की आज्ञा करने के कारण इन्द्र अपने राज्य से भ्रष्ट हो गए हैं । यह सुरवियों के सहित पतन्त ही हीन दशा की प्राप्त हो गया है । इसलिए आप सब कृपा करके इसका उद्धार कर दीजिये । ३०। ३१। श्री भगवान् ने कहा—गुरु की आज्ञा करने से सभी कुछ नाश को प्राप्त हो जाया करता है—इसमें मद्भुत क्या बात है । जो पारी और घर्म्मिष्ठ है तथा केवल विषयात्म ही है अर्थात् विषयों के उपभोग करने में ही लित रहा करते हैं और जिन्होंने अपने माता-पिता की निन्दा की है वे निर्देव अर्थात् भाग्यहीन ही होते हैं—इसमें कुछ भी सशय नहीं है । ३२। इस इन्द्र ने जो कुछ भी किया है उस कर्म का तुरन्त ही इसे फल भी प्राप्त हो गया है । इस इन्द्र के ही इस दुष्कर्म से आप सभी को सद्भूट प्राप्त हो गया है । ३३। जिस समय में पुरुष का विपरीत काल आकर उरस्थित हो जावे वे उस समय में समस्त कार्यों की अर्थ-तिद्धि के लिए मनुष्य भूत मंत्री अर्थात् समस्त प्राणि मन्त्रों से मित्रता का व्यवहार करना चाहिये । हे इन्द्र ! इस कारण से अब तुम मेरा वचन स्वीकार करो । कार्य के हेतु से तुमको दैत्यो के साथ समागम कर लेना चाहिये । ३४-३५।

एवं भगवताऽऽदिष्टः शक्रः परमबुद्धिमान् ।
 अमरावतीं ययौहिस्त्वा सुतलं देवतैः सह ।३६।
 इन्द्रं समागतं श्रुत्वा इन्द्रसेनो ह्यपश्वितः ।
 बभूव सह सैन्येन हन्तुकामः पुरन्दरम् ।३७।
 नारदेन तदा दैत्या बलिश्च बलिनां वरः ।
 निवारितस्तद्वधाचन वाक्यैश्चचावचंस्तथा ।३८।
 ऋषेस्तस्यैव वचनात्पद्यतमन्युर्वलिस्तदा ।
 बभूव सह सैन्येन आगतो हि शतक्रतुः ।३९।
 इन्द्रसेनेन दृष्टोऽसौ लोकपालः समावृतः ।
 उवाच त्वरयायुक्तः प्रहसन्निव दैत्यराट् ।४०।
 चस्मादिहागतः शक्र ! सुतलं प्रतिकथ्यताम् ।
 तस्यैतद्वचनं श्रुत्वास्मयमान उवाच तम् ।४१।
 वयं कश्यपदायादा यूयं सर्वे तथैव च ।
 यथा वयं तथा यूयं विप्रहोहि निरर्थकः ।४२।
 मम राज्यं क्षणेनैव नीतं देववशात्त्वया ।
 तथा ह्येतानि तान्येव रत्नानि सुदहूर्यपि ।
 गतानि तत्क्षणादेव गन्तानीतानि वै त्वया ।४३।

परम बुद्धिमान् इन्द्र ने इस भाँति भगवान् के द्वारा समादिष्ट होकर अपनी अमरावती का त्याग करके वह देवगणों के साथ सुतल को चले गये थे । वहाँ पर इन्द्र को समागत सुनकर इन्द्रसेन क्रोध से युक्त होकर इन्द्र को हत करने की कामना वाला होकर अपनी सेना के साथ हो गया था । उस समय में देवपि नारद के द्वारा दैत्यगण और बलियों में परम श्रेष्ठ बलि को उनके दध से ऊँचे-नीचे वाक्यों के द्वारा निवारित कर दिया गया था । उस समय में उसी ऋषि के वचन से राजा बलि ने अपना क्रोध त्याग दिया था । इन्द्र अपनी सेना के साथ-समागत हुआ था । इन्द्रसेन ने लोकपालों से उसे समावृत देखा था । यह

दैत्यराज बहुत ही शीघ्रता के साथ हँसते हुए ही यह बोला था । हे इन्द्र ! प्राय इस सूतल लोक में किस कारण में समागत हुए हैं— यह बतलाइये । उसके इस वचन को ध्वण करके मुस्कराते हुए इन्द्रदेव ने उसमें कहा था । ३६-४२। हम सभी लोग महर्षि कश्यप के दामाद हैं और प्राय भी सब लोग उसी भाँति के हैं । जैसे हम हैं वैसे ही प्राय भी सब लोग हैं । हमारे प्रायके बीच में विग्रह निरर्थक ही है । देव वश से एक ही क्षण में आपने मेरा सम्पूर्ण राज्य ले लिया था । उसी भाँति से बहुत से वे ही रत्न हैं जो आपने ही बड़े यत्न से समानीत किये थे । वे सभी उसी क्षण में चले गये हैं । ४३।

तस्माद्विमर्शः कर्तव्यः पुरुषेणविपश्चिता ।

विमर्शज्जायते ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षो भविष्यति । ४४।

किंतु मे वत उक्तेन जाने नच तवाग्रतः ।

शरणार्थी ह्यहं प्राप्त सुरैः सहतवान्तिकम् । ४५।

एतच्छ्रुत्वा तु शक्रस्यवाक्यंवाक्यविदा वरः ।

प्रहस्योवाचमतिमाञ्छकं प्रतिविदावरः । ४६।

त्वमागतोऽसि देवेन्द्र ! किमर्थं तन्न वेद्म्यहम् । ४७।

शक्रस्तद्वचन श्रुत्या ह्यश्रुपूर्णकुलेक्षणः ।

किञ्चिन्नोवाच तत्रैनं नारदो वाक्यमब्रवीत् । ४८।

बले त्वं किंनजानासिकार्याकार्यविचारणाम् ।

धर्मो हि महतामेषशरणागतपालनम् । ४९।

शरणागतं च विप्रं न रोगिणं वृद्धमेव च ।

य एतान्न च रक्षन्ति ते वै ब्रह्महृणो नराः । ५०।

शरणागतशब्देन आगतस्तव सन्निधौ ।

संरक्षणाय योग्यश्च त्वया नास्त्यत्र संशयः ।

एवमुक्त्वा नारदेन तदा दैत्यपतिः स्वयम् । ५१।

इसलिए विद्वान् पुष्य के द्वारा जिमर्षा प्रवश्य ही करना चाहिए । विमर्ष करने से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान प्राप्त हो जाने पर ही मोक्ष होगा । ४८। किन्तु मेरा यह कथन ही है इसके क्या होगा । मैं तो भावके प्रागे कुछ भी नहीं जानता हूँ । मैं तो सब देव वृन्दों के साथ भावके समीप में शरणाधी होकर ही प्राप्त हुआ हूँ । ४९। वाक्यों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ और विद्वानों में उत्तम वह मतिमान् इन्द्र के इस वचन का श्रवण कर हंसते हुए इन्द्रदेव से यह बोला—हे देवेन्द्र ! तुम यहाँ किस प्रयोजन से आये हो—यह मैं नहीं जानता हूँ । ४९। ५०। इन्द्र ने उसके इस वचन का श्रवण करके प्राप्तिप्राप्ति से प्रपत्नी भर कर कुछ भी न बोला वहाँ पर इसमें देवपि नारदजी ने यह वचन कहा था— ४९। हे बले ! क्या भाव काम' (करने के योग्य) और प्रकाम' (करने के योग्य) की विचारणा की नहीं जानते हो ? महान् पुष्यो का यही धर्म होता है कि जो भी कोई शरणागत हो उसका पूर्ण पालन करे । प्रपत्नी शरण में समागत, विप्र, रोगी और वृद्ध पुष्य, इनकी जो रक्षा नहीं करता है वे मनुष्य ब्राह्मण ही हुआ करते हैं । यह इन्द्र तो शरणागत शब्द से भावकी सन्निधि में प्राप्त हुआ है और भाव इसके शरणागत के लिए परम योग्य भी है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इस प्रकार से जब श्री नारद जी के द्वारा दैत्यपति से कहा गया था तब उसने स्वयं विचार किया था । ४९-५१।

विमृश्य परया बुद्ध्या कार्याकार्यविचारणम् ।
 शक्रं प्रपूजयामास बहुमानपुरः सरम् ।
 लोकपालैः समेतं च तथा सुरगणैः सह । ४२।
 प्रत्ययार्थं च सत्त्वानि ह्यनेकानि व्रतानि वै ।
 बलिप्रत्ययभूतानि च चकार पुरन्दरः । ४३।
 एवं स समयं कृत्वाशक्रः स्वार्थपरायणः ।
 बलिना सहचावात्सीदर्थशास्त्रपरो महान् । ४४।

एवं निवसतस्तस्य चुतलेऽपि शतक्रतोः ।
 वत्सरा बहवो ह्यासस्तदा बुद्धिमक्तायत् ।
 संस्मृत्य वचनं विष्णोर्विमृश्य च पुनः पुनः । १५५।
 एकं तु सभामध्यग्रासीनो देवराट् स्वयम् ।
 उवाच प्रहसन्वाक्यं बलिमुद्दिश्य नोतिमान् । १५६।

दैत्यों के राजा बलि ने अपनी पराबुद्धि से कार्याकार्य के विचार का विमर्श करके फिर उसने बहुमान पूर्वक इन्द्र की पूजा की थी और समस्त लोकपालों एवं सुरगणों का भी परम समादर किया था । १५२। उस इन्द्रदेव ने दैत्यराज बलि के विश्वास के स्वरूप वाले उसके विश्वास को समुत्पन्न करने के ही लिए उस इन्द्रदेव ने अनेक सत्त्व व्रतों को उस समय वहाँ पर किया था । इस प्रकार से परम स्वार्थ में पराशरण इन्द्र ने सन्धि करके महान अघंशास्त्र में परायण वह पुरन्दर वहाँ पर बलि दैत्यराज्य के साथ ही निवास करने लग गया था । १५३। १५४। इस रीति से सुवल लोक में दैत्यों के राजा बलि के साथ निवास करते हुए उस इन्द्र देवराज को बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे । उस समय में फिर उसने अपनी बुद्धि से विचार किया था । जबकि भगवान विष्णु के वहे वचनों का उसे सम्भरण हुआ था और बारम्बार उसने उस पर विचार किया था । एक बार वह देवराज स्वयं सभा के मध्य में विराजमाय थे । उस परम नीति में निपुण इन्द्र ने उस समय में दैत्यराज बलि का उद्देश करके हँसते हुए यह वाक्य कहा था । १५५। १५६।

प्राप्तव्यानि त्वया वीर अस्माकं च त्वया वले ।
 गजादीनि बहून्धेव रत्नानि विविधानि च । १५७।
 गतानि तत्क्षणादेव सागरे पतितानि वै ।
 प्रयत्नो हि प्रकर्तव्यो ह्यस्माभिस्तवरमान्वितैः । १५८।
 तेषां चोद्धरणे दैत्य रत्नानामिह सागरात् ।
 त्वि निर्मयनं कार्यं भवता कार्यं सिद्धये । १५९।

वलिः प्रवर्तितस्तेनशक्रेण सुरसूदनः ।
 उवाच शक्रं त्वरितः केनेदं मननं भवेत् ॥६०॥
 तदा नभोगतावाणीभेषगंभीरनिः स्वना ।
 उवाच देवादैत्याश्च मन्यस्त्वं क्षीरसागरम् ॥६१॥
 भवतां बलवृद्धिश्च भविष्यति न संगमः ॥६२॥
 मन्दरश्चैवमन्यामं रज्जुं कुह्तवासुकिम् ।
 पश्चाद्देवाश्चदैत्याश्चमेलयित्वाविमध्यताम् ॥६३॥
 नभोगता च तां वाणीनिगम्याथतदा सुराः ।
 दैत्यैः साद्वृत्ततः सर्वं उद्यम चक्रुः स्वताः ॥६४॥

हे दैत्यराज बले । आप तो बड़े ही वीर पुरुष हैं हमारे जो रत्न हैं वे आपको मन्थन ही प्राप्त कर लेने चाहिये । ऐरावत आदि बहुत से प्रनेक परम सुन्दर रत्न विद्यमान हैं । वे सब चने पये हैं और सागर में जाकर पतित हो गये हैं । अब उनको प्राप्त करने के लिए हम सभी को बहुत ही शीघ्रता के साथ मन्थन ही प्रयत्न करना चाहिए । हे दैत्यराज ! उन रत्नों का सागर से उद्धरण करने के लिए अब आपको कार्य निष्ठि के लिए समुद्र का निर्मथन करना ही चाहिये । ॥१७॥१८॥१९॥ वह सुर सूदन दैत्यराज बलि उन इन्द्रदेव के द्वारा प्रवर्तित किया गया था और वह फिर इन्द्र से बोला था कि वह निर्मथन बहुत ही शीघ्रता से होने वाला किमके द्वारा होगा ॥६०॥ उस समय में मेघ के समान परम गम्भीर वनि वाणी आकाश गामिनी वाणी ने कहा था—'हे देववृन्द ! और हे दैत्यगण ! अब आप लोग क्षीरसागर का मन्थन करो इसके करने से आप लोगों के बल की वृद्धि होगी—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । प्रायः लोग इस क्षीरसागर के मन्थन करने के लिए मन्दरावन को मन्थन बनाइये और वासुकि सर्वराज की उखली रज्जु करिये । इसके पदचात देवता और दैत्यगण सब मिलकर सागर का मन्थन करो । इस तरह कथित नभोगत वाणी

को उसी समय में ध्वज वर देवों ने दैत्यों के साथ मिलकर उद्यत होते हुए सबने मन्यन करने के लिए उद्यम किया था । ६१—६४।

१०—लक्ष्मी देवी का धाविर्भाव

पुनः सर्वे सुतरब्धाममन्युः क्षीरसागरम् ।
 मध्यमानात्तदा तस्माद्दुदधेश्च तथाऽभवत् । १।
 कल्पवृक्ष. पारिजातश्चूतं सन्तानकस्तथा ।
 तान्द्रुमानेकत कृत्वा गन्धर्वनगरोपमान् ।
 ममन्थुस्त्र त्वरिता. पुनः क्षीराणं व बुधाः । २।
 निर्मध्यमानाद्दुदधेरभवत्सूर्यं वचसम् ।
 रत्नानामुत्तमं रत्न कौस्तुभारमं महाप्रभम् । ३।
 स्वकायेन प्रकाशेन भासयन्त जगत्त्रयम् ।
 चिन्तामणिपूरस्कृत्य कौस्तुभं ददृशुहिते । ४।
 सर्वेसुराददुस्त वै कौस्तुभं विष्णवेतदा ।
 चिन्तामणिततः कृत्वा मध्ये चैवसुरासुराः ।
 ममन्युः पुनरेवाधि गर्जन्तस्ते बलोत्कटाः । ५।
 मध्यमानात्ततस्तस्माद्दुर्घ्नैः श्रवाः समुद्भुतम् ।
 बभूव अश्वोरत्नाना पुनश्चैरावतो गजः । ६।
 तथैवगज्जरत्नं च चतु.षष्ट्यासमन्वितम् ।
 गजानापाण्डुराणा च चतुर्दन्तमदान्वितम् । ७।

५१ महर्षि सोमश जी ने कहा—फिर सभी देव क्षीर दैत्यगण ने सुतरब्व होकर उस क्षीर सागर का मन्यन किया था । उस समय में मन्यन किये गये उस सागर से उस प्रकार से हुआ था कि कल्प, वृक्ष, पारिजात, सन्तानक, चूत ये वृक्ष समुत्पन्न हुये थे । उन सब द्रुमों को एक जगह करके जो गन्धर्व नगर के तुल्य थे फिर देवगण ने बहुत ही धीमे व शांली होकर उद्यता से उस क्षीर सागर का मन्यन किया था ।

।१।२। उस निर्मथ्यमान सागर से सूर्यदेव के समान बचंघ वाला समस्त रत्नो मे परम श्रेष्ठ रत्न महती प्रभा से समन्वित कौस्तुभ नाम वाला समुद्रपन्न हुआ था । अपने प्रकाश से तीनों भुवनों को भासित करते हुए चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति करके उन्होंने कौस्तुभ को देखा था । सब सूर्यों ने उस कौस्तुभ मणि को उसी समय भगवान विष्णु को समर्पित कर दिया था । इसके अनन्तर चिन्तामणि को मध्य मे करके उन सूर्य और प्रसुरों ने जो परम ब्रह्म से उत्पन्न थे गर्जना करते हुये फिर उस सागर का मन्थन किया था ।३।४।५। इसके उपरान्त मन्थन किए गये उस समुद्र से उत्पन्न भ्रमा अथवा समुद्रभुत हुआ था जो एक वन रत्नो में से था । इसके पश्चात् ऐरावत हाथी समुद्रपन्न हुआ था ।६। उसी प्रकार से षोडश से समन्वित गजरत्न जो पाण्डुर गजो में चतुर्दन्त और मदान्वित था उदधि से समुद्रपन्न हुआ था ।७।

तामसर्वान्मध्यतः कृत्वा पुनश्चीव ममन्थिरे ।

निर्मथ्यमानाद्बुद्धेर्निर्गतानि बहून्यथ । ।

मदिरा विजया भृंगो तथा लशुनगृजनाः ।

वतीव उन्मादकरा घत्सूरः पुष्करस्तथा ।६।

स्थापितानकपद्यं नतोरेनदनदीपतेः ।

पुनश्चतेतन्नमहामुरेन्द्राममन्युर्बिद्यसुरसत्तमैः सह ।१०।

निर्मथ्यमानाद्बुद्धेस्तशसोरसा दिव्यलक्ष्मीभुवनैकताया ।

आन्वीक्षिकी ब्रह्मविदो वदन्ति तथा चान्ये मूलविद्यां गृह्णन्ति ।

।११।

ब्रह्मविद्यां केचिदाहुः समर्थाः केचित्सिद्धिं मृद्धिमाज्ञामयासाम् ।

यां वैष्णवीयोगिनः केचिदाहुस्तथा च मायां मायिनो नित्य-

युक्ताः ।१२।

वदन्ति सर्वे केनसिद्धान्तयुक्तां यां योगमायां ज्ञानशक्त्यान्विता

ये ।१३।

ददृशुस्तामहालक्ष्मीमायान्तीशनकैस्तदा ।

गौरा च युवतीस्निग्धापद्मकिजल्कभूपणाम् ॥१४॥

उन सबको मध्य में करके फिर उन्होंने मन्थन किया था । इस तरह से निर्मथ्यमान मागर में बहुत से रत्न निकले थे । मंदिरा, विजया, मृद्धी, नह्मन, गृञ्जन (गाजर) और मत्स्यन्त उन्माद के करने वाला घृग तथा पुष्कर मागर में निकले थे । ये सब एक ही साथ नद नदी पति प्रधांन् मागर के तीर पर स्थापित किये गये थे । फिर वहाँ पर उन मङ्गात पशुरेन्द्रो ने देवगणों के साथ मिलकर उस सागर के मन्थन किया था ॥ ६॥१०॥ उस समय ये मन्थन किए गये मागर से वह दिव्य लक्ष्मी प्रकट हुई थी जो युवती की एकमात्र स्वामिनी हैं । ब्रह्म वेत्ता इस देवी को आन्विक्षिकी कहा करते हैं तथा अन्य लोग इसी देवी को मृन्विद्या इम नाम से ब्रह्मण किया करते हैं ॥११॥ कुछ लोग इस देवी को ब्रह्म विद्या कहते हैं और कुछ समयों लोग इसको ऋद्धि एवं मिद्धि कहते हैं तथा घाता भी कहा करते हैं । योगी लोग त्रिमको वैष्णवी देवी कहने हैं और कुछ नित्य पुरत मयी लोग इसको " माण " — इस नाम से पुकारते हैं । केनोपनिगन् के द्वारा प्रतिपाद्य सिद्धा त (उमा शब्द वाच्य ब्रह्मविद्या) से युक्त जिस देवी को शान की शक्ति से समन्वित जो लोग हैं वे योगमाया कहते हैं ॥१२॥१३॥ उस समय में प्राती हुई उम महालक्ष्मी को जो गौर वण वाली, युवती, स्निग्धा और पद्मकिजल्क के भूपणी वाली थी, घीरे से सबने देखा था अर्थात् सबने उम देवी के दर्शन हुए थे ॥१४॥

अलोकितास्तथा देवास्तथा लक्ष्म्या श्रियाश्रिताः ।

सञ्जातास्तत्क्षणादिव राज्यलक्षणतक्षिताः ॥१५॥

दंत्यास्ते नि.श्रिका जाना ये श्रियाऽनवलोकिताः ॥१६॥

निरोक्ष्यमाणा च तदा मुकुन्द तमालनीलं मुकपोलनासम् ।

विभ्राजमान वपुषा परेण श्रीवत्सलक्ष्मं सदयावलोकत् ॥१७॥

दृष्ट्वा तदेव सहसा वनमालयाग्निता लक्ष्मीर्गजादवततार
सुविस्मयन्ती ।

कण्ठे ससर्जं पुत्रपस्य परस्य विष्णोर्मातां श्रिया विरचितां
भ्रमरंरूपेताम् ।१८।

वामाङ्गमश्रित्य तदा महात्मनः सोपाविदात्तत्र
समीक्ष्य ता उभौ ।

सुराः सदैव्या मुदमापुरदभुतां सिद्धाध्वरः
किन्नरचारणाश्च ।१९।

उम सती महा लक्ष्मी देवी ने उन सब देवगणों—दानवों और सिद्धों—चारणों एवं पन्नगों को जिस तरह से माता अपने पुत्रों को देखा करती है उसी भाँति देखा था । लक्ष्मी देवी ने श्री से समन्वित देवी का प्रबलीकन किया था । उसी क्षण में वे सब देवगण राज्य लक्षणों से लक्षित हो गये थे । १७। वे सब दैत्यगण जो श्री के द्वारा प्रबलीकित नहीं हुए थे निःश्रीक अर्थात् श्री से हीन हो गये थे । १८। उस समय में भगवान् मुकुन्द को जो तमान के समान नीलवर्ण वाले—सुन्दर कपोल और वासुकि से युक्त, परमोत्तम यगु से विभ्राजमान, श्री वस्तु के वक्षस्थल में चिह्न वाले तथा दया पूर्वक सबको और प्रबलीकन करने वाले के ऐसे भगवान् का विरीक्षण करती हुई महालक्ष्मी सुरवा ही उसी समय में देखकर ही वनमाला से समन्वित होकर मुस्कराती हुई गज से नीचे उतर गई थी और वनमाला परम देव पुरुष भगवान् विष्णु के कण्ठ में डाल दी थी जो कि श्री देवी के द्वारा विरचित की हुई और भ्रमरों के समूह से संयुक्त थी । उस समय में महान् प्रात्मा वाले भगवान् के वामाङ्ग में संधाश्रित होकर वह देवी उपविष्ट हो गई थी । वहाँ पर उन दोनों देवी तथा दैत्यों के दलों ने उसको देखा था । सुर और प्रभुर, सिद्ध, किन्नर, चारण और अध्वर्यों के गण ने लक्ष्मी देवी के

रहित विष्णु का दर्शन करके परम आनन्द को प्राप्त किया था अर्थात् सबको अत्यन्त ही प्रसन्नता हुई थी । १७।१८।१९।

सर्वेषामेवलोकानामेकपद्येन सर्वशः ।
 हर्षो महानमभूत्तत्र लक्ष्मीनारायणागमे ।२०।
 लक्ष्म्यावृतो महाविष्णुर्लक्ष्मीस्तेनैव सम्वृता ।
 एवं परस्परं प्रीत्याह्यवलोकनतत्परी ।२१।
 शंखाश्च पटहाश्चैव मृदंगानकगोमुखाः ।
 भेर्यश्च ऋर्भरीणा च स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।२२।
 बभूव गायकानां च गायनं सुमहत्तदा ।
 ततानि वितताग्येव घनानि सुषिराणि च ।२३।
 एव चाद्यप्रभेदंश्चविष्णुं सर्वात्मना हरिम् ।
 अतोपयन्सुगीतज्ञागन्धर्वप्सरसांगणाः ।२४।
 तथा जगुर्नारदतुम्बुरादयो गन्धर्वेयक्षाः सुरसिद्धसंधाः ।
 संसेवमानाः परमात्मरूपं नारायणं देवमगाधबोधम् ।२५।

उस समय में लक्ष्मी नारायण के समागम के होने पर वहाँ पर समस्त लोको को एक साथ महान् हर्ष हुआ था । महान् विष्णु लक्ष्मी देवी से आवृत थे और महा लक्ष्मी देवी उन विष्णु भगवान् से सम्वृत थीं । इस प्रकार से परस्पर में ये दोनों ही प्रीति पूर्वक एक दूसरे के समस्तलोकन करने में परापर हो रहे थे । २०।२१। उस समय में चारों ओर शंख, पटह, मृदङ्ग, आनक, गोमुख, भेरी, ऋर्भरी— इन सब प्रकार के वाद्यों की तुमुल श्रवति हुई थी । उस आनन्द के काल में गायक गणों के गायन वगैरे सुमहान् शब्द हो रहा था । तत-वितत-घन और सुषिर प्रभृति वाद्यों के प्रभेदों के द्वारा सबने इस रीति से सर्वात्म भाव से श्री हरि विष्णु का परम तोप किया था । सुन्दर गीतों के ज्ञाता गन्धर्व, अप्सराओं के गण, नारद, तुम्बर आदि, गन्धर्व, यक्ष, सुर, सिद्धों के समुदाय ने गान किया था और परमात्मा के स्वरूप वाले,

अमाघ बोध से सुसम्पन्न देव नारायण की सबने परम सेवा की थी
॥२२-२३॥

११-अमृत विभाजन वर्णन

प्रणम्य परमात्मानं रमायुक्तं जनादेनम् ।
अमृताथ ममन्युस्ते सुरासुरगणाः पुनः ।१।
उदयेर्मध्यमानाच्च निर्गतः सुहायवाः ।
घन्वन्तरिरिति ह्यातो युवामृतयुञ्जयः परः ।२।
पाणिभ्यां पूर्णकलशंसुधयाः परिगृह्य वे ।
यावत्सर्वे सुराः सर्वे निरीक्षन्तेमनोहरम् ।३।
तदा दैत्याः सम गत्वा हतुकामा बलादिव ।
सुधया पूर्णकलश घन्वन्तरिकरे स्थितम् ।४।
यावत्तरङ्गमालामिरावृतोऽभुद्भिपत्तम ।
शनैः शनैः समायातो दृष्टोऽसौ वृषपर्वणा ।५।
कनस्यः कलशस्तस्य हतस्तेन बलादिव ।
बसुराश्च ततः सर्वे जगज्जुरतिभीषणम् ।६।
कलशं सुधया पूर्णं गृहीत्वातेसमुत्सुकाः ।
दैत्याः पातालमाजगुस्तदा देवाभ्रमाग्निताः ।७।
अनुजग्मुः सुसंनद्धायां दुक्षुकामाश्च तैः सह ।
तदा देवान्समालोचय बलिरेवमभाषत ।८।

महर्षि प्रवर लोमस ने कहा—रमादेवी से ससन्वित परमात्मा
भगवान् जनादेन को प्रणाम करके फिर उन सुर और असुरों के गण
ने अमृत की प्राप्ति करने के लिए समुद्र का मन्थन करना आरम्भ कर
दिया था ।१। इन मध्यमान उदधि से सुन्दर महान् पक्ष से सम्पन्न, युवा
मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले, परम “घन्वन्तरि”—इस नाम से
विख्यात निर्गत हुए थे ।२। उनके दोनों हाथों में सुधा से परिपूर्ण कलश
परिगृहीत हो रहा था । उनको सभी सुरगण बहुत ही सुन्दर के साथ

देत रहे थे । उन्ही समय में दैत्यगण एक साथ एकत्रित होकर बलपूर्वक उस घमृत के बलशयी हरण करने की इच्छा वाले हो गये थे जो कि सुधा का कलश भगवान् घन्वन्तरि के घर में स्थित था । ३४। वह भिषकों में श्रेष्ठ जब तक तरङ्गों की मालापीने समावृत्त थे और बहुत ही धीरे-धीरे समायात हो रहे थे तभी तक वृषपर्वा ने उनको देख लिया था । उस इन्द्र ने उन घन्वन्तरि के हाथ में स्थित उस सुधा के कलश को बलपूर्वक ग्रहण कर लिया था । इसके पश्चात् सब असुर गण प्रत्यन्त भीषणता के साथ गर्जना करने लगे थे । ११६। उस सुधा से परिपूर्ण कनक की असुरों ने ग्रहण कर लिया था और बहुत ही उत्सुक होते हुए दैत्यगण वातावरण में आ गये थे । उस समय में समस्त देवता श्रम युक्त हो गये थे । वे सभी उन दैत्यों के पीछे ही चले गये और उन दैत्यों के साथ युद्ध करने की इच्छा करने लगे थे । तब ब्रह्मि ने उन देवों को देख कर इस प्रकार से उनसे कहा था । ७१८।

वयं तु केवल देवाः सुधया परितोपिताः ।
 शीघ्रमेव प्रगन्तव्यं भवद्भिश्च सुरोत्तमैः । ६।
 त्रिविष्टपमुदायुक्तेः किमस्माभिः प्रयोजनम् ।
 पुराऽस्माभिः कृतंमोत्रभवाद्भिः स्वार्थतत्परैः ।
 अधुना विदितं तत्तु नाम कार्या विचारणा । १०।
 एवं निर्भत्सितास्तेन बलिना सुरशतानाः ।
 यथागतेन मार्गेण जग्मुर्नारायणप्रभुम् । ११।
 तं दृष्ट्वा विष्णुना सर्वे सुरा भग्नमनोरयाः ।
 वाग्वासितावचोभिश्चनानानुनयकोविदैः । १२।
 मा श्रासं कुस्तात्राथ आनयिष्यामि तं सुधाम् ।
 एवमाभाष्य भगवान्पुकुन्दोऽनायतं श्रवः । १३।
 स्थापयित्वा सुरान्सर्वास्तत्रैव मधुसूदन ।
 मोहिनीरूपमस्यायदैत्यानामप्रतोऽभवत् । १४।

तावद्दैत्याः सुसंरब्धाः परस्परमवाब्रूवन् ।

विवादः सर्वदैत्यानाममृतार्थं तदाऽभवत् ।१५।

दैत्यराज बलि ने कहा — हे देवगणो ! हम तो केवल युधा में ही परिचोषित हो गये हैं । हे सुरोत्तमो ! भाव लोपी को भव यहाँ से बहुत शीघ्र ही चले जाना चाहिए । भाव लोप भ्रानन्द से मुक्त होकर अपने स्वर्गलोक में चले जाओ । भव हम लोपी से आपका क्या प्रयोजन है ? पहिले ही त्वार्थ में परायण होकर भाव सबने हमारे साथ मीची का व्यवहार किया था । अब हमको वह सब भ्रात हो गया है । इसलिए अब हम विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए । १६:१०। इस प्रकार से बलि के द्वारा सब देवगण बहुत फटकारे गये थे । फिर वे सब महापत भार्य के द्वारा यम प्रभु नारायण के समीप में चले गये थे । भगवान् विष्णु ने उन ममस्त सुरों को भक्त मनोरथों वाले देखकर अनेक अनुनय से परिपूर्ण बचनों के द्वारा भगवान् ने उन सबको समा-श्रमन दिया था । ११:१२। हे देवगणो ! इस विषय में भाव लोप अपने मतमें किसी भी प्रकार का वास मत करो । मैं उस सुवर्ग के कलश को ले आऊँगा । इस तरह से मनापों को समश्रम प्रदान करने वाले भगवान् मुहुन्द ने उन सब देवनामों से कहा था । भगवान् सधुसूदन ने वही पद समस्त सुरों को स्थापित करके अपना एक मोहिनी का रूप धारण किया और उन दैत्यों के सामने जाकर स्थित हो गये थे । तब तब वे सब दैत्यगण सुसंरब्ध होकर परस्पर में बातचीत कर रहे थे । उस समय में सब दैत्यों का वह अमृत के लिए बड़ा भारी विवाद हो गया था । १३:१४। १५।

एव प्रवर्तमाने तु मोहिनीरूपमाश्रिताम् ।

दृष्ट्वा योषां तदा दैवात्सर्वभूतमनोरमाम् ।१६।

विस्मयेन समाविष्टा बभूवुस्तृपित्सेक्षणाः ।

तं संमान्य तदा दैत्यराजो बलिहवाच ह ।१७।

सुधा त्वयाविभक्तव्या सर्वेषां गतिहेतवे ।
 शीघ्रत्वेन महाभागे कुरुष्व वचनं मम । १८ ।
 एवमुक्ता ह्यवाचेदं स्मयमाना बलिप्रति ।
 स्त्रीणां नैव च विश्वासः कतं व्योहिविपश्चिता । १९ ।
 अनृतं साहसं माया भूखंत्वमतिलोभता ।
 अशीचं निघृणत्वंच स्त्रीणां दोषा स्वभावजाः । २० ।
 निःस्नेहत्वं च विज्ञेयं धूर्तत्वं चैव तत्त्वतः ।
 स्वस्त्रीणांच वचिन्न यादोषानास्त्यत्र ईशयः । २१ ।

ऐसा होने पर उसी समय मे मोहिनी के स्वरूप में समाधि-
 लभ प्राणियों के लिए परम मनोरमा उस स्त्री को देवात् देखकर सभी
 दैत्यगण अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो गये थे और सब वियासित नेत्रों
 वाले होकर स्थित हो गये थे । उस समय मे दैत्यराज बलि ने उस
 मोहिनी का बड़ा भारी सम्मान किया था और उससे कहा था—दैत्य-
 राज बलि ने कहा—आपको इन सबकी भलाई के लिये इस सुधा का
 विभाजन कर देना चाहिए । हे महाभागे । माय बहुत ही लोभता से
 मेरे इस वचन को स्वीकृत कर लीजिए । १९ । १७ । १८ । जब इस प्रकार
 से देवी मोहिनी से कहा गया तो वह मुस्कराती हुई दैत्यराज बलि से
 बोली—विद्वान् पुरुष को स्त्रियों का कभी भी विश्वास नहीं करना
 चाहिये । क्योंकि स्त्रियों के अनृत (मिथ्याभाषण), साहस, माया, भूखंता,
 अत्यन्त लालच, अशीच, निघृणत्व ये स्वभाव सिद्ध दोष हुआ करते हैं ।
 स्नेह का न होना और तात्त्विक रूप से धूर्तता ये दोष भी स्त्रियों के
 जानने के योग्य हुआ करते हैं । ये दोष तो अपनी स्त्रियों
 मे भी समझ लेने चाहिए—इस विषय मे लेश मात्र भी संशय नहीं है ।
 १९ । २० । २१ ।

यथैव

श्वापदानांच घृकाहि सापरायणाः ।

काका

यथाण्डजानांच श्वापदानांच जम्बुकाः ।

घूर्णी तथा मनुष्याणां स्त्री ज्ञेया सततं दुर्वाः । २२।
 मया सह भवद्भिस्त्र कथं सत्यं प्रवर्तते ।
 सर्वथाऽत्र न विज्ञेयाः के यूयं चैव काह्यहम् । २३।
 तस्माद्भवद्भिः संचिन्त्य कार्याकार्यविचक्षणः ।
 कर्तव्यपर्यावृद्ध्याप्रयातानुरसतामाः । २४।
 यास्त्वया कथिता नार्यो ग्राम्या ग्राम्यजनप्रियाः ।
 तासां त्वं कथ्यमानाना मध्यमा नसि शोभते । २५।
 किं त्वया बहुनीदतेन कुल्येव वचनहिनः ।
 सा मोहिनीर्दे प्रोक्त्व बलेर्विद्यादन्तरम् । २६।
 करिष्यामि च ते वाक्य सूक्तसूक्तमिति प्रभो ! । २७।
 अद्याभूत च सर्वेषां विभजस्व यथातथम् ।
 स्वयादर्शं च गृह्णीमः सत्यं सत्यवशमिते । २८।
 श्वमुक्त्वा तदादेवीमोहिनीमर्षमङ्गला ।
 उवाचाऽयामुराजसर्वाप्रोचयैल्लोकिकीभ्यस्तिष्ठ । २९।

जिस प्रकार वे व्यापको (चाणको) के मध्य में वृक्त (मेदिनी) हिसा परायण हुआ करते हैं—कोए श्रमज्ञो के मध्य में हिसा परायण होते हैं तथा व्यापको में अशुक्त (शृगाल) हिसक वृत्ति जाने होते हैं ठीक उसी भाँति मनुष्यों में बुद्ध पुण्यो को क्षिप्रो की निरन्तर समझ लेना चाहिए । २२। मेरे साथ आगका मित्र भाव कित्ता तरह से प्रवृत्त रहेगा ? इस विषय में हम तीव्र सब प्रकार से जानने के योग्य नहीं हैं । कीत लीम आप हैं और कीन मैं हूँ ? इस लिए कार्याकार्य में परमशुभत माप लोगों का बहुत ही मन्त्रा तरह से विचार करके परां बुद्धि के द्वारा ही करना चाहिए । है असुरभौष्टो माप आइये । २३। २४। ईश्वराव बलि ने कहा—हे देवी ! आपने जो नारियों के विषय में दोष आदि के वाक्य कहा है वे ग्राम्य नारियाँ ही होती हैं और ग्राम्य जनों की ही श्रिय

हुमा करती है । आप उन कही हुई नारियों के मध्य में रहने वाली है
 धीमने ! नहीं है । २५। आपके ऐसे अत्यधिक वचन से क्या लाभ है ?
 आप तो मेरे निवेदित वचन को ही करिये । वह मोहिनी दैत्य राज
 बलि के वाक्य के अनन्तर यह वचन बोली—हे प्रभो ! आपके सूक्ता-
 सूक्त वाक्य का मैं अवश्य ही पालन करूँगी । २६। २७। बलि ने कहा—
 आज आप इस अमृत को यथातथ अर्थात् ठीक-ठीक रूप से सबको
 विभाजित कर दीजिएगा । आपके द्वारा दिये हुए इस अमृत को हम
 सब लोग ग्रहण कर लेंगे । यह बात हम बिल्कुल आपसे सत्य-सत्य कह
 रहे हैं । इस प्रकार से उस समय में बही हुई सर्ग भङ्गना मोहिनी देवी
 समस्त असुरों से लौकिक स्थिति को रोचित करती हुई बोली ।
 २८। २९।

यूयं सर्वकृतार्थाश्च जाताद्वेनकेनचित् ।
 अद्योपवाससमुक्ता अमृतस्याधिवासनम् । ३०।
 क्रियतामसुराः श्रेष्ठाः शुभेच्छाकिञ्चिदस्तिवः ।
 एवोभूते पारणकुर्याद्व्रतार्चनरतिश्च वः । ३१।
 न्यायोपाजितवित्तैर्न दशमाशेन धीमता ।
 कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थं हेतवे । ३२।
 तथेति मत्वा ते सर्वे यथोक्तदेवमायया ।
 चक्रुस्तथैव दंतेषा मोहिता नातिकोविदाः । ३३।
 मयासुरेण च तदा भवनानि कृतानिव ।
 मनोज्ञानि महार्हाणि सुप्रभाणि महान्तिव । ३४।
 तेषूपविष्टास्ते सर्वे सुस्नाताः समलङ्कृताः ।
 स्थापयित्वा सुसरब्धाः पूर्णं कलशमग्रतः । ३५।
 रात्रौ जागरणं सर्वं कृत परमया मुदा ।
 अथोपसि प्रवृत्ते च प्रातः स्नानयुता भवन् । ३६।

असुरा बलिमुहयाश्च पङ्क्तिभूता यथाक्रमम् ।

सर्वमाद्यदयनकृत्वातदा पानरताभवन् ॥३७॥

मोहिनी के स्वरूप को पारण करने वाले श्री भगवान ने कहा—

आप सब लोग किसी देव के द्वारा परम सफल हो गये हैं । हे शत्रु प्रसुर गणो ! यदि आपकी कुछ शुभेच्छा है तो आज आप लोग सब उपवास से संयुक्त होओ अर्थात् उपवास करो और इस प्राप्त हुए श्रमृत का अधिवासन करो । कल प्रातःकाल होने पर इस उपवास का पारण करना चाहिए । आप लोगों की व्रतार्चन की रति समुत्पन्न होगी । श्रीमान् पुरुष के द्वारा ईश की प्रीति के लिए न्याय से समुपाहित वित्त के दशम प्र ष से विनियोग करना चाहिये ॥३०॥३१॥३२॥ उन सब ने 'एिमः ही किया जायेगा'—इस तरह से जो कुछ भी देव माया ने कहा था उसको मान लिया था । उन देवों ने मोहित होने हुए वैया ही सब कुछ किया था क्योंकि वे अत्यन्त कोविद तो थे नहीं ॥३३॥ उस समय मे मगसुर ने द्वारा परम सुन्दर-सु दर प्रभा से समन्वित, विशाल एवं बहुमूल्य भवनों की रचना की गई थी । उन भवनों में वे सब मली-भाति स्नानादि करके समनङ्कृत होते हुए उपविष्ट हो गये थे । सुसं-रम्भ उन्होंने मुष्ठा से परिपूर्ण कलश को प्रागे स्थापित करके रात्रि में सबने बहुत ही अधिक प्रसन्नता के साथ जागरण किया था । इसके अन-न्तर प्रातः काल के प्रवृत्त होने पर सब लोगों ने स्नानादि किया था । जिनमे बलि प्रचाम था उन सब प्रसुरों ने प्रपत्नी पङ्क्ति यथाक्रम से व्रता ली थी । सभी कुछ आवश्यक कर्म करके वे सब श्रमृत के घान करने के लिए निरत हो गये थे ॥३४॥-३७॥

करस्थेन तदा देवी कलयेन विराजिता ।

शुशुभे परया कान्त्या जगन्मङ्गलमङ्गला ॥३८॥

परिवेषवरा सर्वे सुरास्तेह्यसुरान्तिकम् ।

आगतास्तत्क्षणादेव यत्र ते ह्यसुरोत्तमाः ।

तान्दृष्ट्वा मोहिनी सद्य उवाच प्रमदोत्तमा ॥३९॥

एते ह्यतिथयो ज्ञेया धर्मसर्वस्वसाधनाः ।
 एभ्योदेयं यथाशक्त्या यदि सत्यवचोमम ।
 प्रमाणं भवतां चाद्य कुर्ध्वं मा विलम्बय ॥४०॥
 परेषामुपकारं च ये कुर्वन्निस्वशक्तिनः ।
 धन्यास्ते चैव विज्ञेयाः पवित्रालोकपालकाः ॥४१॥
 केवलात्मोदरार्थाय उद्योगंये प्रकुर्वते ।
 ते क्लेशभागिनो ज्ञेया नात्रकार्यं विचारणा ॥४२॥

उस समय मे वह मोहिनी देवी अपने कर मे स्थित समुद्र के कलश से शोभायमान हो रही थी । वह जगन्मूर्तियों के भी परम मङ्गल स्वहस्तिनी अपनी परमाधिक वाग्नि से मुग्धोन्मित हो रही थी । परस्विय को धारण करने वाले वे समस्त देवगण भी उन असुर श्रेष्ठ विराजमान हो रहे थे । उनको देखकर वह प्रमदायी मे परमोत्तमा मोहिनी तुरन्त ही बोली थी । ॥३८॥३९॥ मोहिनी ने कहा — ये सब कभी अहम् सर्वस्व के साधक करने वाले प्रतिनिधिगण हैं । इनके लिए भी यथाशक्ति कुछ प्रवश्य ही देना चाहिये । यदि मैं यह वचन सर्वथा सत्य रह रही हूँ तो अब आज प्रार लोग ही सब कुछ करने के लिए समर्थ हैं जो भी कुछ भाव चाहें वैसा ही करिये । अब इसमें विनम्ब मत करिये ॥४०॥ जो लोग अपनी शक्ति से दूसरों का उपकार किया करते है वे ही इस विश्व में परम धन्य हैं । ऐसे ही लोगों को परम पवित्र और लोकों के पालन करने वाले समझना चाहिये ॥४१॥ जो केवल अपने ही उदर के भरने के लिए उद्योग किया करते हैं, वे इस जगत् मे बौद्धों के भोगने वाले ही हुमा करते हैं ऐसा ही जानना चाहिये । इस विषय मे बितकुल विचार नहीं करना चाहिये ॥४२॥

तस्माद्भिभजनं कार्यं मयैतस्यशुभप्रताः ।
 देवेभ्यश्च प्रयच्छ्वं यद्वि चारुप्रियाप्रियम् ॥४३॥

इत्येकते वचने देव्यात्थावक रतम्विताः ।
 आङ्गायामासुरसुराः सर्वन्देवान्सवासवान् ॥४४॥
 उपविष्टाश्चते सर्वे अमृतार्थवभाद्विजाः ।
 तेषुविश्वमानेषु ह्युवाच परमं वचः ।
 माहिनी सर्वघर्मज्ञा अमुराणां समपन्निव ॥४५॥
 आदौ ह्यभ्यागतः पूज्या इति व वेदिती श्रुतिः ॥४६॥
 तस्माद्यर्थं वेदपराः सर्वे देवपरायणाः ।
 ब्रवन्तु त्वरितेनैव आदौ केषां ददाम्यहम् ।
 अमृतं हि महाभागा वलिमुख्या वदन्तु माः ॥४७॥
 वलिनोक्तातदादेवा यत्ते मनसिरोचते ।
 स्वामिना त्व न सन्देहा ह्यस्माकंमुन्यनने ॥४८॥
 एवं समानिता तेन वलिना भाविनात्मना ।
 परिवेषणकार्यार्थं कल्पत गृह्य सत्त्वरा ॥४९॥

हे शुभवन जानो ! मुझे तो इम अमृत का विभाजन सभी के लिए कर देना चाहिये । जो भी यचना प्रिय तथा अप्रिय भी हो उसको देवों के लिए भी दो । इम वचन क कहने पर जोकि देवी मोहिनी ने कहा था, उन असुरों ने अनन्धित होकर वेना ही स्वीकार कर लिया था और फिर असुरों ने उन सब सुरगणों को भी जिनमें इन्द्रदेव भी विद्यमान थे वही पर बुचा लिया था ॥४३॥४४॥ हे द्विजगणो ! उस अमृत के पान करने के लिए वे सभी वहाँ पर उपविष्ट हो गये थे । उन सबके वहाँ पर बैठ जाने पर सब प्रकार के घर्ष के जानने वाली मोहिनी असुरों की ओर मुँकराते हुए वह परम वचन कहा था—॥४५॥ मोहिनी ने कहा—वैदिकी श्रुति का पही प्रादेश है कि सबके आदि में अभ्यागत गणों का पूजन करना चाहिये ॥४६॥ इमलिए आप सभी लोग वेदों को मानने में परायण हैं और आप सब देव परायण भी हैं । अतएव अब प्राय सब लोग मुझे घति सीधता से बतसाइये कि सबसे प्रथम मैं किन को इस अमृत को दूँ । हे महाभाग

वालो ! दैत्यराज बलि जिनमे परम प्रघात है वे सभी मुझे प्रब बन-
लाइये ।४६। उस समय में इस प्रकार से कहने पर दैत्यराज बलि ने
मोहिनी से कहा था—हे सुन्दरानने ! जो भी मापको अपने मन मे
अच्छा लगे वीसा ही करिये । माप तो हम सबकी स्वामिनी है । इसमें
किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नही । इस तरह से भावितात्मा बलि के द्वारा
सम्मानित हुई उस मोहिनी देवी ने परिवेषण करने के लिए शीघ्र ही
उस सुधा के कलश को ग्रहण कर लिया था ।४७।४८।४९।

तस्मान्नरेन्द्रकरभोस्तासदुकूला

श्रीगीतटालसगतिमं वविह्वलाङ्गी ।

सा कूजती कनकनूपुरसिञ्चितेन

कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ।५०।

तदा तु देवी परिवेषयती स मोहिनी देवगणाय साक्षात् ।

ववर्ष देवेषु सुधारस पुनः पुनः सुधाहाररसामृतं यथा ।५१।

पुनश्च ते देवगणाः सुधारसं दत्तं तथा परया विश्वसूर्या ।

देवेन्द्रमुख्याः सह लोकराला गन्धर्वय क्षाप्सरसा गणाश्च ।५२।

सर्वे दैत्या आसनस्थास्तदानी

चिन्तान्विताः धुषया पीडिताश्च ।

तूष्णीभूता बलिमुख्या द्विजेन्द्रा

मनस्विनो ध्यानपरा वभूवुः ।५३।

ततस्तथाविधाग्दृष्ट्वा दैत्यास्तामोहमाश्रितान् ।

तदारोहश्चकेतुश्चद्वावेती दैत्यपुङ्गवो ।५४।

देवाना रूपमास्थाय अमृतार्थं त्वरान्वितो ।

उपविष्टो तदा पद्भ्यादैवानाममृताथिनी ।५५।

यदाऽमृतं पातुक्लामो राहुः परमदुर्जयः ।

चन्द्रार्कर्म्यां प्रकथितो विष्णोरमिततेजसः ।५६।

तदा तस्य अिरच्छितं राहोर्दुर्विग्रहस्य च ।
शिरो गगनमापेदे कवन्वं च महीतले ।

भ्रममाणं तदा ह्यदोऽवुखयापास वं तदा ॥५७॥

श्रेष्ठ पुरुष के कर्म के सहस्र ऊहसो पर द्योमित युक्तुन (वस्त्र) वाली श्रोणा तट मे अनस गति से युक्त, मद से विह्वलित अहों वाली, सुवर्ण के नूपुरी की ध्वनि से कूचन करती हुई, कुम्भ के तुल्य स्तनों से समन्वित कनक हार्यों में ग्रहण किये हुई उन मोहिनी इसके अनन्तर वहाँ पर प्रवेश किया था ॥५०॥ उन समय में देवगण के लिये साक्षात् परिवेषण करती हुई उन मोहिनी देवी ने जिस प्रकार से सुधा के प्राकार का रसामृत हो उन तरह से बारम्बार उन देवगणों में सुधा रस की खूब वृष्टि का थी ॥५१॥ परा विभ्र मूर्ति उनके द्वारा दिए उस मधुघा के रस का उन सब देवगणों, देवन्द मुम्बों, लोकपालों और मन्वव, पक्ष तथा अमरार्थों के समुदाय ने बारम्बार खूब पान किया था ॥५२॥ उस समय मे सब दैत्यगण आने आगनी पर स्थित हुये परमाञ्जित हुये ये और क्षुपा ने पीडित हो रहे थे । हे द्विजेन्द्रो ! बलि दैत्य जिनमें प्रधान था वे सब दैत्यगण अज्ञान मे परायण होते हुए मनस्वी लुप ही रह गये थे । इसके अनन्तर मोह न समाश्रित हुए उस प्रकार से सिधत उन समस्त दैत्यो को देखकर उमी समय मे राहु और केतु ये दोनों दैत्यश्रेष्ठ देवों का स्वरूप धारण करके बहुत ही शीघ्रता से अमृतपान करने के लिए अमृतार्थों मे दोनों देवों के पँटो में आकर बैठ गये थे । जिस समय मे अमृत पान करने की कामना जाता परम दुर्जय राहु प्रस्तुत हो रहा था उमी समय चन्द्र और सूर्य, इन दोनों देवों ने अपरिमित तेज वाले मगवान विष्णु मे इनको बनजा दिया था । उस समय मे उस दुर्विग्रह राहु का शिर छिदा हो गया था और वह शिर गगन में पहुच गया था तथा उसका घट महावन पर गिर गया था । उस घट ने भ्रमण करते हुए उस समय में पवतों को वृणित कर दिया था ।

साद्विश्च सर्वभूलोकश्चूर्णितश्च तदाऽभवत् ।
 तथा तेन च देहेन चूर्णितं सचराचरम् ॥५८॥
 दृष्ट्वा तदा महादेवस्नस्योपरितुसंस्थितः ।
 निवासः सर्वदेवानां तस्याः पादतलेऽभवत् ॥५९॥
 पीडनं तत्समापेऽथ निवास इति नाम वै ॥६०॥
 महतामालययस्माद्यस्यास्तव्वरणाम्बुजम् ।
 महालयेतिविख्याता जगत्त्रयविमोहिनी ॥६१॥
 वेतुश्चधूमरूपोऽसावाकाशे विलय गतः ।
 सुधा समर्प्य चन्द्राय तिरोधानगतोऽभवत् ॥६२॥
 वासुदेवोजगद्योनिर्जगताकारणं परम् ।
 वषणो प्रसादात्तज्जातं सुराणाकार्यसिद्धिदम् ॥६३॥
 अमुराणां विनाशाय जातं देवविषयं यात् ।
 विना देवेन जानीष्वमुद्यमो हि निरर्थकः ॥६४॥
 य गपद्येन तौ सर्वे क्षीराब्धेर्मथनंकृतम् ।
 सिद्धिर्जाता हि देवनामसिद्धिरसुरान्प्रति ॥६५॥
 ततश्च ते देववरान्प्रकोपिता दंत्याश्च
 मायाप्रविमोहिताः पुनः ।
 अनेकशस्त्रास्त्रगुतास्तदाऽभवन्विष्णो
 गते गर्जमानास्तदानीम् ॥६६॥

पर्वतो के सहित सम्पूर्ण यह भूलोक उस समय में चूर्णित हो गया था और उससे तथा उसके देह से जड़-चेतन सभी कुछ चूर्णित हो गया । उस काल में महादेव जी ने देखा कि सर्व देवों का निवास उसके ऊपर जो स स्थित था वह उसके पाद तल में हो गया था और उसके समीप में पीडन हो रहा था । इसके 'निवास' यह नाम हो गया था । ॥५८॥५९॥६०॥ क्योंकि उसका चरणाम्बुज महान् पुण्यो का प्राप्त था इसलिए 'महालया'— इस नाम से वह जगत् त्रय को विमोहन करने

वाली विख्यात हो गई थी। यह केतु जो घूम रूप वाला था वह शक्राश्व
में विलय को प्राप्त हो गया था। उस सुधा को चन्द्र के लिये समर्पित
करके वह निरोधानगत हो गया था। भगवान् वासुदेव इस सम्पूर्ण
जगत् की योनि थे और जगतों के परम कारण थे। भगवान् विष्णु के
प्रसाद से वह सूरों के कार्या की सिद्धि का प्रदान करने वाला हो गया
था। ६१-६४। देव के विपर्यय होने ही से वह असुरों के विनाश करने
के लिये हुआ था। यह जान लेना चाहिये कि बिना देव के समस्त
उद्यम निरर्थक ही हुआ करता है। उन सबने एक ही साथ मिनकर
उस क्षीर भागर का मन्यन किया था किन्तु उस मन्यन करने को सिद्धि
देवगणों को ही हुई थी और असुरों को केवल परिश्रम ही मिला था
और सबका असिद्धि उनको प्राप्त हुई थी। इसके अनन्तर माया से
प्रकृत रूप से विमोहित हुए वे सब दैत्यगण देवों के प्रति अत्यधिक
प्राकृषित हुये थे। उस समय मे भक्त शस्त्र और अस्त्रों से संयुक्त
होकर वे सब भगवान् विष्णु के चले जाने के पश्चात् उसी समय मे बहुत
अधिक गनना करने लगे थे। ६५। ६६।

१२—शिव लिङ्ग माहात्म्य वर्णन

हत्वा तं तारकं सख्ये कुमारेण महात्मना ।
किं कृतं सुमहद्विमं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।१।
कुमारो ह्यपरः सम्भुर्धनं सर्वमिदं ततम् ।
तपसा तोषितः सम्भुर्ददाति परमं पदम् ।२।
कुमारो दर्शनात्सद्यः सफलो हिनृणांसदा ।
येपापिनोऽप्यर्धम्मिष्टाः स्वपचाभपिलोमशः ।
दर्शनाद्भूतपापास्ते भवन्त्येव न संशयः ।३।
शीतस्य वचः श्रुत्वा उवाच चरितं तदा ।
व्यासशिष्योमहाप्राज्ञः कुमारस्यमहात्मनः ।४।

हृत्वा त तारकं सरये देवानामजयं ततः ।
 अवध्यं च द्विजश्रेष्ठाः कुमारोजयमाप्तवान् ॥१॥
 महिमा हि कुमारस्य सर्वंशास्त्रेषु कथ्यते ।
 वेदश्च स्वागमंश्चापि पुराणंश्च तथैव च ॥६॥
 तथोपनिषदंश्चैव मीमासाद्वितयेन तु ।
 एव शूत कुमारोऽमराकयो वणिक्तुं द्विजाः ॥७॥

शौनक जी कहा—हे विप्रवर ! महात्मा कुमार द्वारा रण स्थल
 में उस तारक का हनन करके फिर सुमहान क्या कर्म किया था वह
 सभी कुछ भाग वश करने के योग्य है ॥१॥ भगवान कुमार तो दूसरे
 शम्भु ही हैं जिनमें यह सभी कुछ विस्तृत किया है । तपश्रवा के द्वारा
 तोषित हुए भगवान शम्भु परम पद प्रदान किया करते हैं ॥२॥ भगवान
 कुमार मदा ही मनुष्यों के लिए दर्शन से ही तुरन्त फल दाना हो जाया
 करते हैं । हे लोमश ! जो महापापी हैं, अधार्मिष्ठ है और श्वपच हैं
 वे भी सब दर्शन से ही निष्ठा हो जाया करते हैं—इसमें लेश मात्र
 भी मशय की कोई बात नहीं है ॥३॥ शौनक ने इस वचन का श्रवण
 करके उसी समय में महान पण्डित श्री व्यास देव के शिष्य ने महात्मा
 कुमार का चरित कहा था । लोमश महर्षि ने कहा—हे द्विजों में परम
 श्रेष्ठो ! युद्ध स्थल में देवों के द्वारा भ्रज्य उस तारका सुर का हनन
 करके जोकि वध करने के योग्य ही नहीं था, कुमार ने विजय प्राप्त
 करने का यश प्राप्त किया था । भगवान कुमार की महिमा समस्त
 शास्त्रों में कही जाती है । वेदों के, भागमों के, पुराणों के, उपनिषदों
 और दोनों प्रकार के मीमांसकों के द्वारा भी कुमार की महिमा का
 गान किया जाता है । हे द्विजगण ! इस प्रकार का यह कुमार है
 जिसका वश नहीं किया जा सकता है ॥४॥ ७॥

यो हि दर्शनमात्रेण पुनाति नकलंजगत् ।
 त्रातारं भुवनस्यास्यनिशम्यपितृराट्स्वयम् ॥८॥

ब्रह्माण्डं च पुरस्कृत्य विष्णुं चैव सवाधवम् ।
 म यथौ त्वरितेनैवमंकरं लोकशंकरम् ।
 तुष्टान् प्रयतो भूत्वा दक्षिणाशापतिः स्वयम् ॥६॥
 नमो भर्गाय देवाय देवानां पतये नमः ।
 मृतपृञ्जयाय रुद्राय ईशानाय कपर्दिने ॥१०॥
 नीलकण्ठाय शर्वाय व्योमावदन रूपिणे ।
 कान्नाय कात्तनाथाय कालरूपाय वै नमः ॥११॥
 यमेन स्तूयमानो हि उवाच प्रभुरीश्वरः ।
 किमर्थं मामतोर्जसि त्वं तरमवैरुषयस्व नः ॥१२॥
 धूम्रतां देवदेवेन वाक्यं वाक्यविज्ञारद ।
 तपसा परमेष्ठेव तृष्टिं प्राप्नोऽतिशङ्कर ॥१३॥
 कर्मणा परमेश्वर ज्ञेया लोकपितामहः ।
 तुष्टिमेति न संदेहो वराणां हि सदा प्रभुः ॥१४॥

जो दर्शन मात्र से सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर दिया करता है और इस भुवन का परिभ्रमण करने वाला है—ऐसा पितृराट् यम ने स्वयं प्रवण किया था । वह ब्रह्माजी को और इन्द्र के सहित भगवान् विष्णु को अपने शर्म करके दहृत ही सीधना के साथ लोको का कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर के समीप में गया था । दक्षिण दिशा के स्वामी यमराज ने स्वयं प्रयत्न हीकर स्तवन किया था । देवों के पति भर्ग देव के लिये शरभ्यार नमस्कार है । भगवान् मृतपृञ्जय, रुद्र, ईशान, कपर्दी, नीलकण्ठ, शर्व, व्योमावदन रूपी, काल, काल नाथ और कात्तनाथ के लिये हम सबका नमस्कार है । इस प्रकार से यह के द्वारा स्तवन किये लिये प्रभु ईश्वर ने कहा—तुम यही किन प्रयोजन से माये हो—यद्भव इमको बतनामो । यमराज ने कहा—हे देवों के भी देवेस । आप लो वाक्य कहने से महान् विज्ञारद हैं । मेरा वाक्य प्रवण कीजिए । हे शङ्कर ! आप परमाधिक तप से तुष्टि की प्राप्त हो गये है ।

लोहों के विनामह ब्रह्मा जी परम कर्म में ही पुष्टि को प्राप्त हो जाते हैं । इसमें कुछ भी मन्देह नहीं है कि उरी के प्रदान करने में मदा प्रभु हैं ॥८-१४॥

तथा विष्णुर्हि भगवान्त्रेदवेद्यः सनातनः ।
 यज्ञैरनेकैः सन्तुष्ट उपवासव्रतैस्तथा ।१५।
 ददाति केवलं भावं येन कैवल्यमाप्नुयुः ।
 नराः सर्वे मम मतं नान्यथा हि वचो मम ।१६।
 ददाति तुष्टोवैभोगंतयास्वर्गादिसंपदः ।
 सूर्यो नमस्ययाऽऽरो यददातीहनवान्यन्यथा ।१७।
 गणेशो हि महादेव अर्घ्यपाद्यादिचन्देनैः ।
 मन्त्रावृत्त्या तथा शमो निविघ्नंचकरिष्यति ।१८।
 तथान्ये लोकया सर्वे यथाशक्त्या फलप्रदाः ।
 यज्ञाध्ययनदानार्थैः परितुष्टाश्च शङ्कर ।१९।
 महदाश्चर्यसभूत सर्वेषा प्राणिनामिह ।
 कृतं च तव पुत्रेण स्वर्गद्वारमावृतम् ।२०।
 दशंताच्च कुमारस्य सर्वे स्वर्गाकमो नराः ।
 पापिनोऽपि महादेवजातानास्त्यत्रसंशयः ।२१।

उसी प्रकार से वेदों के द्वारा जानने के योग्य, सनातन भगवान् विष्णु अनेक प्रकार के यज्ञों के द्वारा तथा उपवास और व्रतों के द्वारा सन्तुष्ट हो जाते हैं । वह केवल भाव को प्रदान किया करते हैं जिसके द्वारा सब मनुष्य कैवल्य को प्राप्त कर लेते हैं—ऐसा मेरा मत है । मेरा यचन अन्यथा नहीं है । वह तुष्ट होकर भोग तथा स्वर्गादि की सम्पदा प्रदान किया करते हैं । सूर्य देव नमस्कारों से ही आरोग्य का प्रदान करते हैं जैसा कि अन्य कोई नहीं करता है । हे महादेव ! हे शम्भो ! गणेश देवता, अर्घ्य-पाद्य आदि चन्दन जैसे अर्चनोपचारों के द्वारा तथा मन्त्र की आवृत्ति के द्वारा कर्मों में निविघ्नता कर दिया करते हैं इति

भाति प्रथम लोकात्सर्वे मी सब यथा शक्ति फलों के प्रदान करने वाले हैं । हे शङ्कर ! यत्न-प्रयत्न-दान आदि के द्वारा सब परितुष्ट हो जाया करते हैं । यहाँ पर समस्त प्राणियों के लिए यह महान् आश्चर्य सम्भूत है कि श्रावके पुत्र ने स्वर्ग के द्वार को अपावृत्त कर दिया है । केवल कुमार के दर्शन कर लेने भर से ही सब मनुष्य स्वर्ग में निवास करने वाले हो जाया करते हैं । हे महादेव ! जो मूढ़ पापी लोग होते हैं वे भी लीये कुमार के दर्शन करने की महिमा से स्वर्गगामी हो जाते हैं—इसमें किञ्चित्मात्र भी संशय नहीं है ॥१५-२१॥

यथा किञ्चित्तादेवकार्यकार्यव्यवस्थितौ ।
 ये सत्यशीलाः साताश्रवदान्यानिरवग्रहाः ॥२२॥
 जितेन्द्रिया अलुब्धाश्च कामरागविवर्जिताः ।
 यात्रिका धर्मान्नाश्च वेदवेदांगपारगाः ॥२३॥
 या गतिं याति वै शभी सर्वे सुकृतिनापि हि ।
 सांगतिदर्शनात्सर्वेष्वपचावधमाश्रयि ॥२४॥
 कुमारस्य च देवेश महाश्रयंकर्मणः ।
 कार्तिकया कृत्तिकायोगसहिताया शिवस्य च ॥२५॥
 शिवस्य तनयं दृष्ट्वा ते याति स्वकुले सह ।
 कोटिभिर्वहुभिश्च वमत्स्थानं परिमुच्यते ॥२६॥
 कुमारदर्शनात्सर्वे श्वपचा अपि याति वै ।
 सद्गतिं त्वरितेनैव किं क्रियेतमयाऽद्युता ॥२७॥
 यमस्य वचनं श्रुत्वा शङ्करो वाक्यमब्रवीत् ॥२८॥

हे देव ! अब ऐसी दशा में कार्य और प्रकार्य की व्यवस्था में मैं क्या करूँ ? जो प्राणी सत्य सोन, परम दान्य, वदान्य (दानी), निह्वग्रह, जितेन्द्रिय, अलुब्धक, काम और राग से रहित, यात्रिक, धर्म में परम गाढ निष्ठा रखने वाले, देवों तथा वेदों के शङ्क शास्त्रों, के पार-गामी विद्वान् पुरुष हे शम्भो ! सब सुकृती मनुष्य जिन दिव्य यज्ञों को

प्राप्त किया करते हैं उसी उत्तम गति को सभी श्वपच और अधम पुरष भी वेवल कुमार के दर्शन मात्र के करने से प्राप्त कर लिया करते हैं ।।२२।२३।२४।। यमराज ने भगवान् शङ्कर से पूछा था—हे देवेश ! वृत्ति का के योग से सयुक्त वात्सिबी मे महान् मादचर्यं से युक्त वर्म वाले कुमार का और शिव का तथा शिव के पुत्र का दर्शन प्राप्त करके वे अपने बहुत से करोड़ों कुलो के साथ मेरे स्थान का परित्याग करके कुमार के दर्शन के प्रभाव से सब श्वपच भी तुरन्त ही सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं । अब मुझे क्या करना चाहिए अर्थात् अब तो मेरे लिये कुछ भी कार्य करना शेष ही नहीं रह गया है । यमराज ने इस वचन का श्रवण करके भगवान् शङ्कर ने यह वाक्य कहा था ।२५।२६। २७।२८।

येषां त्वंग्गं पाप जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
 विशुद्धभावो भो घर्मं तेषा मनसि वर्त्तते ।२६।
 सत्तीर्थगमनायैव दर्शनार्थं सतामिह ।
 वाञ्छ्याचमहती तेषा जायते पूर्वकारिता ।३०।
 बहूना जन्मनामन्ते मयि भावोऽनुवर्त्तते ।
 प्राणिना सर्वभावेन जन्माभ्यासेनभो यम ।३१।
 तस्मात्सुकृत्तिनः सर्वे येषा भावोऽनुवर्त्तते ।
 जन्मजन्मानुवृत्तानां विस्मयनैवकारयेत् ।३२।
 स्त्रीबालशूद्राः श्वपचाघमाश्च प्राग्जन्मसस्कारवशाद्दि घर्मं ! ।
 योनि गताः पापिषु वर्त्तमानास्तथाऽपि शुद्धा
 मनुजा भवन्ति ।३३।
 तथा सितेन मनसा च भवन्ति सर्वे सर्वेषु चैव विषयेषु
 भवन्ति तज्ज्ञाः ।
 देवेन पूर्वचरितेन भवन्ति सर्वे सुराश्चोद्रादयो
 लोकपालाः प्राक्तनेन ।३४।

जाता ह्यमी भूतगणाञ्च सर्वे ह्यमी ऋषयो देवताश्च ।३५।

भवमान् सङ्कर ने कहा—जिन परम पुण्य कर्मा करने वाले मनुष्यों ने अंग एत पाप होता है हे धर्म ! उनके कर्म से परम विद्युद्ध भाव भासा धर्म रहा करता है । वहाँ अच्छे तीर्थों के मन्त्र के लिये और सत्पुरुषों के दर्शन प्राप्त करने के वास्ते उनको पूर्व कारिता वाञ्छा समुपपन्न हुआ करती है । बहुत-से जन्मों के मन्त्र से मुक्त से उनका भाव अनुवर्तित हुआ करता है । हे धर्मराज ! ऐसा प्राणियों के सर्वतोभाव से जन्मों के सम्पात्त से ही हुआ करता है । इसलिये जिनका भाव अनुवर्तित होता है वे सभी सृष्टी होते हैं क्योंकि वे सब जन्म-जन्मानुवृत्त ही हुआ करते हैं अर्थात् बहुत से जन्मों के अनुवर्तित से ही ऐसा हुआ करता है । इसलिये इससे विस्मय कभी नहीं करना चाहिए । हे धर्मराज ! स्त्री, बालक, दूध, अपच और अवयव लीन भी पहिले जन्मों के संस्कार के कारण ही प्राणियों को उत्तमान योनियों में प्राप्त हुए हैं तो भी वे मनुष्य सुद्ध होते हैं ।२६-३३। उसी भाँति के मन्त्रों के विद्युद्ध मनसे सब सभी विषयों में उनके पूर्ण ज्ञान ही ज्ञाना करते हैं । पूर्व चरित दैव से और प्राक्तन कर्म से वे सब सुर, इन्द्रादि और लोक पान ही ज्ञाना करते हैं । वे समस्त भूत गण, ऋषि गण और देव गण सपुत्र्यस्त हुए हैं ।।३५।३५।

विस्मयो नैव कर्तव्यस्त्वया वापि कुमारके ।
 कुमारदर्शने चैव धर्मराज तिनोष मे ।३६।
 वचनं कर्मसंपुक्तं सर्वेषां फलदायकम् ।
 सर्वतोर्षानि यज्ञाश्च दानानि विविधानि च ।
 कार्थीणि मनः शुद्धयर्थं नात्र कार्या विचारणा ।३७।
 मनसामाकितो ह्यात्मा आत्मनात्मानमेव च ।
 आत्मा अहं च सर्वेषां प्राणिनां हि विव्यवस्थितः ।३८।

अहं सदा भावयुक्त आत्मसंस्थो निरंतरः ।
 जङ्गमाजंगमानां च सत्य प्रति वदामिते ।३६।
 द्वन्द्वातीतो निर्विकल्पो हि साक्षात्स्वस्यो नित्यो
 नित्ययुक्तो निरोहः ।
 कूटस्यो वै कल्पभेदप्रवादेवंहिष्कृति बोधबोध्यो

ह्यनन्तः ।४०।

विस्मृत्यचैनस्वात्मानकेवलबोधलक्षणम् ।
 संसारिणो हि दृश्यतेसमस्ताजीवराशयः ।४१।
 अहं ब्रह्मा च विष्णुश्चत्रयोऽमोगुणकारिणः ।
 सृष्टिपालनसंहारकारकानान्यथाभवेत् ।४२।
 अहंकारवृतेनैव कर्मणा कारितावयम् ।
 मूय च सर्वे विबुधा मनुष्याश्च खगादयः ।४३।

हे धर्मराज ! आपसी कुमार के विषय में बिल्कुल विस्मय नहीं चाहिए । कुमार के दर्शन में जो भी फलोद्भव हुआ करता है उसे तुम मुझसे मनी मति समझ लो । कर्मों से समन्वित वचन ही सबको फल प्रदान करने वाला हुआ करता है । सम्पूर्ण तीर्थ-यज्ञ और विविध प्रकार के किये जाने वाले दान मन की विमुक्ति प्राप्त करने के लिए अवश्य ही करने चाहिए । इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए । ।३६।३७। मन से भावित आत्मा होना है और अपनी आत्मा से ही आत्मा हुआ करता है धर्मान् अपने पापका कन्याण धरती ही आत्मा के द्वारा हुआ करता है । समस्त प्राणियों की व्यवस्थित आत्मा में ही हूँ । मैं सदा भाव से युक्त निरन्तर आत्मा में संस्थिति करने वाला हूँ चाहे कोई जगम सृष्टि हो या अड सृष्टि हो । यह मैं आपको बिल्कुल सत्य-सत्य बतला रहा हूँ । मेरा स्वरूप सुख दुःखादि द्रव्यों से परे है— मैं निर्विकल्पक हूँ, मेरा स्वरूप साक्षात् स्वस्य, नित्य, नित्ययुक्त, निरोह (चेष्टा रहित), कूटस्य, बल्पो के भेद, प्रवाहो से बहिष्कृत, बोध के द्वारा

जानने के योग्य और अनन्त है। किन्तु इस प्रकार के इस बोध लक्षण वाली अपनी आत्मा को विस्मृत करके ही ये समस्त सांसारिक जीवों के सम्मुख दिखलाई दिया करते हैं। मैं ही ब्रह्मा हूँ और मैं ही साक्षात् विष्णु हूँ। ये तीनों स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के गुणकारी हैं। मसार का मृत्रन-पालन और संहार करने वाले ये जिस प्रकार से हुआ करते हैं। ३८-४२। महद्द्वार वृत्त कर्म से ही हम सब कराये गये हैं और आप सब देवगण तथा मनुष्य वृन्द और जग (पक्षी) प्रकृति भी उसी प्रकार के किये गये कर्म से हुए हैं। ४३।

पद्मवाद्यः पृथग्भूतास्तथान्ये वहवो ह्यमी ।
 पृथक्पृथक्समीचीना गुणवशश्च संसृताः । ४४।
 पतिता मृगतृष्णाया मायया च वशीकृताः ।
 वय सर्वत्रविदुषाः प्राज्ञाः पंडितमानिनः । ४५।
 परस्परं दूषयन्तो मिथ्यावादरताः खलाः । ४६।
 त्रैगुणा भवसंपत्ता अतत्त्वज्ञाश्च रागिणः ।
 कामक्रोधभयद्वेषमदमात्सर्यसंसृताः । ४७।
 परस्परं दूषयन्तो ह्यतत्त्वज्ञा वहिर्मुखाः ।
 तस्मादेव विदित्वाथ असत्यं गुणभेदतः । ४८।
 गुणातोते च वस्त्वर्थे परमार्थैकदसंनम् । ४९।

पशु आदि सब पृथग्भूत हैं तथा अन्य बहुत-से हम पृथक्-पृथक् इस संसार में गुणवात् और समीचीन हैं। माया के द्वारा वशीकृत हुए हम सब मृग वृष्णा में पड़े हुए हैं। हम सब और परम प्राज्ञ अपने आपको पण्डित मानने वाले देवगण परस्पर में एक दूसरे को दूषित करते हुए मिथ्यावाद में विरत हुए खल हो रहे हैं। सत्त्व, रज, तम इन त्रिगुणों से संयुक्त, भव से सम्पन्न, तत्त्वों के न जानने वाले राग से परिपूर्ण—काम, क्रोध, मय, द्वेष, मद और मात्सर्य से सम्पन्न एक दूसरे के दतनाने वाले—अतत्त्वज्ञ और वहिर्मुख हैं। इसलिए गुणों

के भेद से इस प्रकार से सबको समस्त जान कर रहे । गुणातीत वस्तु के धर्म में परमार्थ का एक दर्शन होता है ॥४४-४६॥

यस्मिन्भेदो ह्यभेदं च यस्मिन्प्रागो विरागताम् ।

क्रोधो ह्यक्रोधतायाति तद्धाम परमं शृणु ॥५०॥

न तद्भासयते शब्दः कृतकत्वाद्यथा घटः ।

शब्दो हि जायते घर्म्मैः प्रवृत्तिपरमो यतः ॥५१॥

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा द्वन्द्वानि सर्वज्ञः ।

विलययातियत्र वत्तत्स्थानशाश्वत मतम् ॥५२॥

निरन्तरं निर्गुणं ज्ञप्तिमात्रं निरजन निर्विकारं निरोहम् ।

सत्तामात्रं ज्ञानगम्यं स्वसिद्धं स्वयंप्रभ सुप्रभ बोधगम्यम् ॥५३॥

एतज्ज्ञानं ज्ञानविदो वदन्ति सर्वात्मभावेन निरोद्धयन्ति ।

सर्वातीतं ज्ञानगम्यं विदित्वा येन स्वस्थाः समबुद्ध्या चरन्ति

॥५४॥

अतीत्य संसारमनादिमूलं मायामय मायया दुर्विचार्यम् ।

मायां त्यक्त्वा निर्ममा बीतरागा गच्छन्ति प्रेतराणि वि-

कल्पम् ॥५५॥

संसृतिः कल्पनामूलं कल्पना ह्यमृतोपमा ।

यैः कल्पनापरित्यक्तात्तेयाति परमागतिम् ॥५६॥

जिसमें भेद भेदता को प्राप्त हो जाता है, राम विरागता की प्राप्ति कर लिया करता है, क्रोध अक्रोध भाव को प्राप्त होता है वही परम धाम है, यह श्रवण करलो । जिस तरह से कृतक होने से घट भारीत नही होता है उसी भाँति वहाँ पर शब्द भासित नहीं हुआ करता है क्योंकि यह शब्द प्रवृत्ति, परम धर्म हुआ करता है । सभी जगह प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा द्वन्द्व विद्यमान रहा करते हैं किन्तु जहाँ पर ये सब विलीनता को प्राप्त हो जाया करते हैं वही परम शाश्वत स्थान माना गया है ॥५०॥५१॥५२॥ निरन्तर, निर्गुण,

ज्ञानिमान्, निरञ्जन, निविकार, निरीह, सत्ताज्म्य, ज्ञानम्य, स्वसिद्ध, सुप्रम, षोडशम्य को होता है उसी को ज्ञान के वेत्ता नए ज्ञान कहा करते हैं और सर्वात्मभाव से निरीक्षण किया करते हैं अर्थात् सभी को अपने ही समान देखा करते हैं । सबसे अतीत अर्थात् परे और ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य समझकर विमर्श द्वारा परमस्वस्थ और मय वृद्धि से सञ्चरण किया करते हैं । ॥५३॥५४॥ माया से परिपूर्ण, माया से दुर्विचार्य अर्थात् परम दुःख से विचार करने के योग्य और अनादि मूल इस ससार का मति कमण करके है, अंतरात् ! इस माया का त्याग करके समता से रहित, बीतराग से पूर्ण ही निविकल्पक को जाया करते हैं ॥५५॥ यह सृष्टि कल्पना के मूल वाली है और यह कल्पना समुत् के समान है जिन्होंने इस कल्पना का त्याग कर दिया है वे सत्पुरुष ही परम मति को प्राप्त किया करते हैं ॥५६॥

शुभत्या रजतवुद्धिश्च रज्जुवुद्धियंधोरलो ।

मरीचो जलवुद्धिश्चमिथ्यामिथ्यैवमान्यथा ॥५७॥

सिद्धिः स्वच्छदवत्तित्वंपारतय्यहिवमृषा ।

वद्धोहपरतशस्योमुक्त. स्वात त्र्यभावन. ॥५८॥

एको ह्यात्मा विदित्वाय निर्मया निरवग्रहः ।

भुनस्तेषा बबनं च यथाखेपुष्पमेव च ॥५९॥

जडाविषाणमेवैतज्ज्ञानं संसार एव च ।

किं कार्यं बहुनीकतेन वचना निष्फलेन हि ॥६०॥

समता च निराकृत्यप्राप्सुकामाः परंमदम् ।

ज्ञानिनस्तैहिविद्याषोवीतरागनिर्वेद्रियाः ॥६१॥

यैस्त्यक्ती समताभावोतोमसोपौनिराकृती ।

तेषातिपरमं स्थानं कामकोधविवजिताः ॥६२॥

यथा भ्रमरिकादृष्टा भ्रम्यते च मही यम ।
 तथात्मा भेदबुद्ध्या च प्रतिभातिह्यनेकधा ॥७१॥
 तस्माद्बिमृश्य तैर्नैव ज्ञातव्य श्रवणेन च ।
 मन्तव्यः सुप्रयोगेण मननेन विशेषतः ॥७२॥
 निर्द्वयं चात्मनात्मानं सुखं बधात्प्रमुच्यते ।
 मायाजालमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥७३॥
 मायामयोऽयं समारां ममतालक्षणी महान् ।
 ममताचवहि कृत्वा सुखबधात्प्रमुच्यते ॥७४॥
 कोऽङ्गं कस्व कुतश्चान्ये महामायाबलविनः ।
 अजागलस्तनस्यैव प्रपञ्चोऽयनिरर्थकः ॥७५॥
 निष्कलाऽयं निराभासो निःसारो धूमद्वरः ।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन आत्मानं स्मरवेयम ॥७६॥

हे यम ! बिह तरह से भ्रमरिका के द्वारा देखी गई मही घूमती हुई दिखनाई दिया करती है ठीक उसी भाँति यह आत्मा भेद की बुद्धि से अनेक प्रतीत हुआ करती है । इसीलिए भली-भाँति विमर्श करके उसी के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । घोर श्रवण के द्वारा समझना चाहिए । सुन्दर रीति से प्रयोग के द्वारा तथा विशेष रूप से मनन करने के द्वारा मानना चाहिये ॥७१॥७२॥ अपनी आत्मा से ही अपनी आत्मा का निषारण करके सुख पूर्वक बन्ध से प्रमुक्त हो जाया करता है । यह सम्पूर्ण चराचर जगत् माया का ही एक अंश है । यह समस्त ससार भी माया से परिपूर्ण है और यह महान ममता के लक्षण वाला है । इस ममता का बहिष्कार करके अर्थात् मैं मेरे मन की भावना को दूर हटाकर प्राणी परम सुख के साथ इस संसार के चार-म्बार जन्म-मरण के द्वारा आवागमन के बन्धन से छुटकारा पा जाया करता है । मैं कौन हूँ, तू कौन है और अन्य महामाया का अवनम्बन करने वाले कौन वहाँ से भाग है—बकरी के गले में समुत्पन्न होने वाले स्तन की ही भाँति यह सारा प्रपञ्च निरर्थक ही होता है । यह सभी

बुद्ध फल रहित, निराश्रम, धार से शून्य धूम इन्धन है क्योंकि घूँसा का सा छाया हुआ जाल है जिसमें वास्तविकता लेना मात्र को भी नहीं है । इसलिये है यम ! सभी प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा भास्मा का ही स्मरण करो । ७३—७६।

एवंप्रचोदितस्तेन शम्भुना प्रेतराट्स्वयम् ।

बुद्धोभूत्यायमः साक्षादात्मभूतोऽभवत्तदा । ७७।

कर्मणां हि च सर्वेषां शास्ता कर्मानुसारतः ।

बभूव इवरो नृणांभक्तानाञ्चममाहितः । ७८।

हन्वा तु तारकं युद्धं कुमारैश्च महात्मना ।

अत ऊर्ध्वं कथानां भोक्तिं कृतं महद्दद्मुत्तम् । ७९।

हते तु तारके दंत्ये हिमकाप्रमुत्पाद्रयः ।

कार्तिकेयं समागत्य गार्गी रम्याभिरंडयन् । ८०।

नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमङ्गल ।

विश्ववंशो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन । ८१।

वरिष्ठाः श्वपचः येन कृता वै दर्शनात्त्वया ।

त्वा नमामो जगद्गुह्यं त्वांवर्यंशरणागता । ८२।

नमस्ते पार्वतीपुत्र शङ्करात्मज ते नमः ।

नमस्ते कृतिरुसूनो धर्मिभूत नमोऽस्तु ते । ८३।

नमोऽस्तु ते देवदरः सुपूज्य नमोऽस्तु ते ज्ञानविर्षा वरिष्ठ । ।

नमोऽस्तु ते देववर प्रसोद शरण्य सर्वोक्तिविनागरक्ष । । ८४।

महापि सोमश जी ने कहा —इस तरह से भगवान् शम्भु के द्वारा प्रेरणा दिये हुए पतिराज स्वयं ही परम बुद्ध होकर उस समय में साक्षात् भारतभूत हो गये थे । समस्त कर्मों के अनुसार ही सबके कर्मों का ध्यान करने वाला हो गये थे और प्राणियों का तथा मनुष्यों का परम समाहित इन्धन हो गया था । ७७।७८। ऋषियण ने कहा— महात्मा कुमार ने, रत्नसूरि हैं तारका सुर का हनन करके इसके पश्चात्

उन्होंने क्या महान अद्भुत कर्म किया था उसे बनलाइये । श्री सूतजी ने कहा—तारका मुर के निहत हो जाने पर हिमवान प्रादि प्रमुख पर्वत वृन्द स्वामी कार्तिकेय के समीप में आकर परम रम्य वाणिषी के द्वारा स्तवन करने लगे थे । गिरिगण ने कहा—हे विश्व के मञ्जल करने वाले ! कल्याण स्वरूप आपके लिए हमारा नमस्कार है । हे विश्व बन्धो ! आप तो समस्त विश्व पर दयाभाव रखने वाले हैं आपके लिए बारम्बार नमस्कार है । जिन आपने अपने सुन्दर दर्शन ही देकर के जो स्वपच से उनको परम धरिष्ठ बना दिया है । जगत् के बन्धु आपको हम नमस्कार करते हैं और हम सब आपकी क्षरणागति में प्राप्त हुए हैं । १७६—८२। यमराज ने कहा—हे पावती के पुत्र ! हे शङ्कर के आत्मज ! आपके लिये बारम्बार नमस्कार है । हे कृत्तिका के पुत्र ! आप तो अग्नि, भूत हैं । आपके लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है । हे देववरो के द्वारा भली-भाँति पूजा करने के योग्य ! हे ज्ञान के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ ! आपकी सेवायें बारम्बार नमस्कार है । हे देवो में श्रेष्ठ ! हे शरण्य ! आप तो सबकी प्राप्ति के विनाश करने में परम कुशल हैं । आप प्रसन्न होइये । आपको मेरा नमस्कार है । ८३। ८४।

एवं स्तुतो गिरिभिः कार्तिकेयो ह्युत्तमामुतः ।

तान् गिरीन्मुप्रसन्नात्मा वरदातुं समुत्सुकः । ८५।

भो भो गिरिवरा यूयं शृणुध्वमद्वचोऽधुना ।

कमिभिर्ज्ञानिभिश्चैव सेव्यमाना भविष्यथ । ८६।

भवत्स्वेव हि वर्तते दृषदो यत्नसेविताः ।

पुनन्तु विश्वं यचनात्सम ता नात्र सशयः । ८७।

पर्वतीयानि तीर्थानि भविष्यति न चाग्नया ।

शिवात्तमानि दिव्यानि दिव्याग्ना यत्नानि च । ८८।

यत्नानि विचित्राणि शोभनानि महाति च ।

भविष्यति न सग्देहः पर्वता यचनात्सम । ८९।

योऽयं मातामहो मेऽद्यहिमवान्पर्वतोत्तमः ।

तपस्विनांमहाभागः फलदोहि भविष्यति ।६०।

मेरुश्च गिरिराजोऽयमाश्रयो हि भविष्यति ।

लोकालोकागिरिवरउदयाद्रिमहापराः ।६१।

उक्त प्रकार से सुन्दर नाणियों के द्वारा स्तवन किये गए उमा देवी के पुत्र स्वामी कात्तिकेय परम प्रसन्न आत्मा बाले होकर उन गिरिवरो को वरदान प्रदान करने के लिए समुत्सुक हो गये थे । स्वामी कात्तिकेय ने कहा—हे गिरिवरो ! आप लोग इस समय में मेरे वचन का ध्यान करो । आप लोग सब ऋषियों के करने धर्मों के द्वारा ज्ञानियों के द्वारा से व्यमान हो जायेंगे । आप लोगों के मन्दर ही ऐसी शिखरों विद्यमान हैं जो मत्लों के द्वारा सेवित होती हुईं मेरे वचन से इस संपूर्ण विश्व को पवित्र करेगी, इसमें कुछ भी मत्त नहीं है । अनेक पर्वतोप तीर्थ होंगे, यह प्रत्यया नहीं है । दिव्य शिवालय और दिव्य प्रायतन एवं विचित्र भवन जो योग्यन तथा महान होंगे । हे पर्वतगण ! मेरे इस वचन से इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं है । जो यह मेरे पितामह हैं वे समस्त पर्वतों में परम श्रेष्ठ इस समय पर हैं । यह सब तास्वियों में महान भाग वाले हैं और निद्वय ही फल देने वाले होंगे । यह मेच नाम घाटी पर्वत गिरियों का राजा है और यह सबका समाश्रय होगा । लोकालोक पर्वत गिरियों में श्रेष्ठ गिरि है और यह महान यश वाला उदय गिरि है । २५-६१।

लिंगरूपो हि मगवान्भविष्यति चान्यथा ।

श्रीशैलोहिमर्हेन्द्रचतुर्वासह्यात्रलोगिरिः ।६२।

मात्यवान्मलयो विन्ध्यस्तथासौ गंधमादनः ।

श्वेतकूटस्त्रिकूटो हि तथादुर्गपर्वतः ।६३।

एते चान्ये च बहवः पर्वता लिंगरूपिणः ।

मम वावयद्भविष्यति पापक्षयकरा ह्यमो ।६४।

एवं वरं ददौ तेभ्यः पर्वतेभ्यश्च शाङ्करिः ।
 ततो नन्दी ह्युवाचाथ सर्वागमपुरस्कृतम् ॥६५॥
 त्वया कृता हि गिरयो लिंगरूपिणा एवते ।
 शिवालयाः कथंनाथपूज्याः स्म्युः सर्वदैवतैः ॥६६॥
 लिङ्गं शिवालयं ज्ञेयं देवदेवस्य शूलिनः ।
 सर्वैर्नृभिर्देवतैश्च ब्रह्मादिभिरतन्द्रितैः ॥६७॥
 नीलं मुक्ता प्रवालं च वैडूर्यं चन्द्रमेव च ।
 गोमेदपद्मरागं च भारतं काञ्चनं तथा ॥६८॥

भगवान् लिङ्ग रूप वाले होंगे—इसमें अन्यथा नहीं है । श्री
 शील, महेन्द्र, सह्याचल, गिरि, माल्यवान, मलय, विन्ध्य, गन्ध, मादन,
 श्वेत कूट, त्रिकूट तथा ददुर पर्वत—ये सब तथा अन्य पर्वत लिङ्ग
 रूप वाले हैं । ये सभी मेरे वचन से पापों के क्षय करने वाले हो जायेंगे ।
 इस प्रकार से भगवान् शङ्कर के पुत्र कुमार ने उन पर्वतों के लिए
 वरदान प्रदान किया था । इसके पश्चात् नन्दी समस्त प्राणियों से पुर-
 स्कृत वचन कहा था । नन्दी ने कहा था—हे भगवन ! आपने
 इन समस्त पर्वतों को लिङ्ग रूपी बना दिया है । हे नाथ ! ये शिवा-
 लय समस्त देवों के द्वारा किस प्रकार से पूज्य होंगे ? कुमार ने कहा—
 देवों के देव भगवान् शूली के लिङ्ग को ही शिवालय जानना चाहिए ।
 यह बात सभी मनुष्यों, दैवतों और अतन्द्रित ब्रह्मा आदि को भी समझ
 लेना चाहिये । नील (नीलम) मुक्ता (मोती), प्रवाल (मूंगा),
 वैडूर्य, चन्द्र, गोमेद, पद्मराग, मारकत, काञ्चन, राजत, ताम्रश्वर
 तथा पर नागमय—इस सब रत्न एवं धातुओं से परिपूर्ण लिङ्ग
 आपको हमने बतला दिये हैं ॥६२—६८॥

राजतं ताम्रमारं च तथा नागमयं परम् ।

रत्नधातुमयान्येव लिंगानिकथितानि ते ॥६६॥

पवित्राण्येव पूज्यानि सर्वकामप्रदानि च ।
 एतेषामपि सर्वेषां काश्मीरहिविशिष्यते ॥१००॥
 ऐहिकामुष्मिकं सर्वं पूजाकर्तुः प्रयच्छति ॥१०१॥
 लिंगानामपि पूज्यं सगद्धारुणलिंगं त्वया कथम् ।
 कथितं चोत्तमत्वेन तत्सर्ववदमुत्रत ॥१०२॥
 रेवाद्यां तोममध्ये च दृश्यते हृष्योहिया ।
 शिवप्रसादात्तास्तु स्फुल्लिगरूपानचान्यथा ॥१०३॥
 श्लक्ष्णमूलाश्च कर्तव्याः विडिकोदरिसस्थिताः ।
 पूजनीयाः प्रयत्नेतशिवदीक्षाघृतेनहि ॥१०४॥
 पिण्डीयुक्तं च शास्त्रेणविधिनावयजेच्छिवम् ।
 वरदोहिजगत्सायः पूजकस्यनचान्यथा ॥१०५॥
 पञ्चाक्षरी यस्य मुखे स्थिता गदा
 चेतोनिवृत्तिः शिश्चिन्तने च ।
 मूलेषु साम्यं परिवादमूकना
 पण्डित्वमेव परयोपितम् ॥१०६॥

ये सब परम पवित्र, पूज्य एवं मनस्त प्रसाद की कामनाओं को पूर्ण तथा प्रदान करने वाले हैं । इन मनस्तों में भी काश्मीर विशेष रूप से माला जाता है । पूजा करने जाने मनुष्य को ऐहिक (इस लोक-का) भीर वा मुष्मिक (परलोक का) सभी कुछ यह प्रदान किया करता है ॥६६॥१००॥१०१॥ नन्दी ने कहा—हे मुनि ! आपने इन समस्त लिंगों में शास्त्र लिङ्ग को परम पूज्य कैसे कहा था । आपने उसे सर्वोत्तम रूप से बतलाया था—यह सब कुरा करके बतलाइये । जगदान कुमार ने कहा—देवा नदी में जल के मध्य में जो निवाये दिखलाई दिया करती है वे सब जगदान शिव के पसाद से लिङ्ग के स्वरूप वाले हो गये हैं—इसमें तनिक भी ध्वयदा नहीं है । पिण्डिका के ऊपर में संस्थित श्लक्ष्ण मून करनी धाड़िये उन निवायों का पूज्य जगदान

शिव की दोक्षा से संयुक्त मनुष्य के द्वारा ही करना चाहिये । शास्त्रोक्त विधि के द्वारा विष्णुयुक्त भगवान् शिव का यजन करना चाहिये । जो भगवान् शिव का भक्ति करने वाला पुण्य होता है उसकी जगत् के बाह्य शिव वरदान के प्रदाना हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी घमना नहीं है । जिसके मुख में सदा "ॐ नमः शिवाय"—यह पञ्चाक्षरी मन्त्र स्थित रहा करना है और भगवान् शिव चिन्तन करने में चेत की निवृत्ति हो जाया करनी है । प्राणिमात्र में समता की भावना, परिवाह में भूकना अर्थात् किसी के भी साथ किसी भी प्रकार का विवाद न करना तथा पराई स्त्रियों के विषय में पण्डित अर्थात् दूसरों की स्त्रियों के साथ भेदभाव का प्रभाव का रहना यह कल्याण के लिये होना चाहिये । १०२-१०६।

१६-राशि नक्षत्र निरूपण

यदा सृष्टं जगत्सर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
 कालचक्रं तदा जातं पुरा राशिसमन्वितम् ।
 द्वादश राशगस्ता नक्षत्राणि तथैव च ।१।
 सप्तदशतिसख्यानि मुख्यानि कार्यसिद्धये ।२।
 एभिः सर्वं प्रचडं च राशिभिर्दुभिस्तथा ।
 कालचक्रान्वितः कालः क्रोडयन्सृजतेजगत् ।३।
 आब्रह्मस्तं वपर्यतं सृजत्यवति हति च ।
 निवद्धमस्ति तेनैव कालेनैकेन भो द्विजाः ।४।
 कालो हि बलवान् लोके एक एव न चापरः ।
 तस्मात्कालात्मकसर्वं मिदं नास्त्यत्र मशयः ।५।
 आदौ कालः कालनाञ्च लोकनायकनायकः ।
 ततो लोकाहि संजाताः सृष्टिश्च तदनन्तरम् ।६।
 सृष्टेर्लवो हि संजातो लवाञ्च क्षणमेव च ।
 क्षणाच्च निमित्तं जात प्राणिनां हि निरन्तरम् ।७।

श्रुतिगण ने कहा — इस ज्ञान की पहिले किसने बतलाया था —
 किसने सर्व प्रथम इनको किया था, इनका फल क्या है, इसका उद्देश
 क्या है, हे विभो ! सब भाप वचनाने की कृपा करें : महर्षिदत्त भी
 योगेश ने कहा — परमेश्वी ब्रह्माजी ने त्रिषु समय में इस सम्पूर्ण जगत्
 का सृजन किया था उसी समय में पहिले राशियों ने समन्वित यह काल
 चक्र समुपपन्न हुआ था । उनमें बारह राशियाँ हुई थी तथा बड़ी प्रकार
 से नक्षत्र भी हुए थे । १। ये नक्षत्र मर्यादा में सात्ताईस परम मुख्य कार्यों की
 सिद्धि के लिए हुए थे । २। इन समस्त राशियों ने तथा तदुपगतों से सयुक्त
 यह सम्पूर्ण प्रपञ्च जगत् का काल चक्र से समन्वित काल कोटा करता
 हुआ सृजन किया करता है । ३। प्रथमस्तम्भ वर्णुन्त है द्विचरण । यही
 सृजन किया करता है, परिपालन करता है और हनन किया करता है
 अर्थात् इसी में उत्पत्ति, रक्षण और संहार हुआ करने हैं । यह सभी कुछ
 उसी एक काल के द्वारा निबद्ध है । ४। यह काल एक ही इस लोक में
 परम बलवान है । ऐसा अन्य कोई भी बलशाली नहीं है । इसलिए यह
 सभी कुछ फलदात्मक ही है और इसमें कुछ भी मत्तप नहीं है । ५। उसके
 प्रादि में काल न होने से काल होता है और यह लोकों के नायकों का
 भी नायक है । इसके अनन्तर में समस्त लोक समुत्पन्न हुये थे और
 इसके पश्चात् यह सृष्टि हुई है । ६। सृष्टि के नव हुआ और तब से क्षण
 उत्पन्न हुआ है । क्षण से निमित्त की उत्पत्ति हुई की प्राणियों की निर-
 न्तर रहा करती है । ७।

निमित्पाणां च पश्चात् व पल इत्यभिधीयते ।

पञ्चदश्या अहोरात्रेः पक्षइत्यभिधीयते । ८।

पक्षाभ्यां मास एव स्थाभ्यासाद्वादशवत्सरः ।

तकालं ज्ञातुकामेनकार्यंज्ञानंविचक्षणैः । ९।

प्रतिपदिनमारभ्य पौर्णमास्यातमेव च ।

पक्षः पूर्णो हि यस्याश्च पूर्णिमेत्यभिधीयते । १०।

पूरणचद्रमसी या तु सा पूर्णा देवताप्रिया ।
 नष्टस्तुचद्रोयस्यांवाअमासाकथिताबुधैः । १।
 अग्निष्वात्तादिपितृणा प्रियातीव बभूव ह ।
 त्रिंशद्दिनानि ह्येतानपुण्यकालयुतानि च ।
 तेषा मध्ये विशेषो यस्तं शृणुष्व द्विजोत्तमाः ॥१२॥
 योगाना वा व्यतीपात ऊड्ना श्रवणस्तथा ।
 अमावास्यातिथानाञ्चपूर्णिमावैतथैव च ॥१३॥
 सक्रातयस्तथा ज्ञेया पवित्रा दानकर्मणि ।
 तथाष्टमो प्रिया शम्भोर्गणेशस्यचतुर्थिका ॥१४॥

साठ निमित्तों का एक पक्ष होना है जो 'पक्ष'—इस नाम से ही
 कहा जाता है । पन्द्रह पक्षों में से एक पक्ष होता है । दो पक्षों का एक
 मास होना है और बारह मासों का एक वर्ष होना है । उस काल का
 ज्ञान प्राप्त करने की कामना से विचक्षण पुरुषों के द्वारा ज्ञान करना
 चाहिये । प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके पूर्णमासी की समाप्ति पर्यन्त
 पूर्ण एक पक्ष हुआ करता है इसीलिए इस तिथि का नाम पूर्णिमा कहा
 जाता है । १८।६.१०। जो यह पूर्ण चन्द्र से युक्त हुआ करती है इसीलिये
 यह पूर्ण और देवगणों की परम प्रिय हुआ करती है । जिस तिथि में
 चन्द्र पूर्ण तथा नष्ट होना है अर्थात् बिल्कुल दिखनाई ही नहीं दिया
 करता है वह तिथि 'अमा' अर्थात् अमावस्या कही जाया करती है ।
 यह अमावस्या अग्निष्वात्तादि पितृगणों को अत्यन्त प्रिय हुई थी । इस
 प्रकार से तीस दिन होते हैं जो पुण्य काल से युक्त हुआ करते हैं । हे
 द्विजोत्तमो ! उन तीस मास के दिनों में जो विशेषता से युक्त दिन होना
 है उसका प्रथम शोण शुद्धमे श्रवण कर्हि ॥११॥१२॥ योगों का व्यतीपात
 तथा उडुगणों में श्रवण, तिथियों में अमावस्या तथा पूर्णिमा एवं
 सङ्क्रान्तिमाँ ये सब दान देने के कर्मों में परम पवित्र जाननी चाहिए ।
 विभिन्न देवों की भी परम प्रिय विभिन्न तिथियाँ हुआ करती हैं । अग-

वान शम्भु की प्रिय तिथि षष्ठमी होती है और गरुड को परम प्रिय तिथि चतुर्थी हुआ करती है । १३।१४।

पञ्चमी नागराजस्य कुमारस्य च पशुका ।

मानोश्चसप्तमी ज्ञेयावदमोचण्डिकानिया । १५।

ब्रह्मणो दशमी ज्ञेया रुद्रस्यकादसी तथा ।

विष्णुप्रिया द्वादसी च जन्मकस्यत्रयोदशी । १६।

चतुर्दशी तथा शम्भोः प्रिया नास्त्यत्र संशयः ।

निशीथसंयुतायाथातुकृष्णपक्षे चतुर्दशी ।

सोपण्या सा तिथिः श्रेष्ठा शिवसामुज्यकारिणी । १७।

शिवरात्रितिथिः क्वयाता सर्वपापप्रणाशिनी ।

अत्र बोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । १८।

ब्राह्मणो विषवा काश्चित्पुराह्यमीच्चञ्चला ।

श्वपचाभिरतासावकामुक्तो कामहेतुतः । १९।

वस्यो वस्य सुतो जातः श्वपचस्यदुरात्मनः ।

दुःसहोदुष्टनामात्मा सर्वधर्मवहिष्कृतः । २०।

महापापप्रयोगाच्च पापमारभते सदा ।

कितवश्च सुरापायो स्तेयो च गुस्त्रल्पगः । २१।

मृगयुश्च दुरात्मासौ कर्मचण्डाल एव सः ।

अर्धमिष्टोह्यसद्गुराः कदाचिच्चशिवालयम् ।

शिवरात्र्यां च संप्राप्तो ह्यपिठः शिवसन्निधौ । २२।

नागराज को परम प्रिय तिथि पञ्चमी होती है तथा कुमार स्कन्द को प्यारी तिथि षष्ठी हुआ करती है । मास्कर भगवान सूर्य को प्रिय तिथि सप्तमी होती है और नक्षमी तिथि भगवती शण्डिका को परम प्रिय मानने गई है । ब्रह्माजी को प्यारी तिथि दशमी हुआ करती है तथा रुद्रदेव को परम प्रिय तिथि एकादशी होती है । भगवान विष्णु को परम प्रिय तिथि द्वादशी है तथा जन्मक यमराज को प्रिय तिथि त्रयो-

दशी हुआ करता है । चतुर्दशी तिथि भगवान् धम्मू की होती है—इस विषय में लेश मात्र संशय नहीं होता है । मास के कृष्ण पक्ष में अर्ध रात्रि में मयुत जो चतुर्दशी तिथि हुआ करता है उस तिथि में उपवास अवश्य ही करना चाहिए । यह तिथि परम श्रेष्ठ मानी गई है जो कि भगवान् शिव के सायुज्य कराने वाली हुआ करती है । ११५।१६।१७। यही शिवरात्रि तिथि के नाम से विख्यात है जो समस्त पापों का नाश करने वाली होती है । इसी विषय में इस परम पुराने इतिहास का उदाहरण देते हैं । १८। पहिले पुराने समय में कोई एक विधवा ब्राह्मणी थी जो अत्यन्त चञ्चला थी । वह काम वासना के कारण से ऐसी कामुकी थी कि एक श्वपच के साथ में अभिरत रहा करती थी । उस ब्राह्मणी के उदर से उस दुरात्मा श्वपच का एक पुत्र समुत्पन्न हो गया था । वह बहुत ही अधिक दुःसह, दुष्टनामात्मा और सभी धर्मों से बहिष्कृत था । महान पापों के प्रयोग करने के कारण वह सदा पाप कर्म का ही आरम्भ किया करता था । यह कित्तब था, मदिरा के पान करने वाला था, स्तेय (चोरी) कर्म का करने वाला और गुरु पत्नी के साथ गमन करने वाला भी था । वह मृगयु, दुरात्मा और कर्मों से पूर्णतया चाण्डाल ही था । असद्व्यय में रति रखने वाला दुष्परतिभ था । यह किसी समय में शिवरात्रि के दिन में शिवरात्रि से एक शिवालय में प्राप्त हो गया था और वहाँ पर यह भगवान् शिव की सन्निधि में बैठ गया था । १६—२२।

श्वरणं शैवाशास्त्रस्य यदृच्छाजातमंतिके ।

शिवस्य लिंगरूपस्य स्वयम्भुवो यदा तदा । २३।

स एकत्रोपितो दुष्टः शिवरात्र्यां तु जागरात् ।

तेन कर्मविपाकेन पुण्यां योनिमवाप्तवान् । २४।

भुक्त्वा पुण्यतमं लोकानुपितवाशाभ्रतोः समाः ।

चित्रांगदस्य पुत्रोऽभूद्भूपालेश्वरलक्षणः । २५।

नाम्ना विचित्रवीर्योऽपौ सुभगः सुन्दरोप्रियः ।
 राज्य महत्तरं प्राप्यानिः स्तम्भौ हि महानभूव ॥२६॥
 शिवे भक्ति प्रकुर्वाणः शिवकर्मपरोऽभवत् ।
 शैवशास्त्रं पुरस्कृत्य शिवपूजनतत्परः ।
 रात्रौ जामरणां यत्नात्करोति शिवसन्निधौ ॥२७॥
 शिवस्य गाथा गावस्तु जानदाश्रु कणान्मुहुः ।
 प्रमुचंश्च वनेश्यां रोमांचपुलकावृतः ॥२८॥

शिव के समीप में रहने पर दीवशाज का श्रवण स्वइच्छा से ही सम्पुलक हो गया था । अब तक स्वयम्भू भगवान शिव के विह्वल रूप का भी श्रवण हुआ था । वह कुछ एक ही स्थान में बैठा रहा था । शिव रात्रि में जागरण हो जाने से उसी कर्म के विपाक से उसने फिर पुण्यमयी योनि की प्राप्ति की थी । परम पुण्यतम लोकों के निवास करने का सुख भोगकर जोकि बहुत ही अधिक समय तक हुआ था और सदृशों वपों तक वहाँ निवास करके फिर विधांगद का पूजानेस्वर लक्षणों वाला पुत्र हुआ था । यह नाम से विचित्र वीर्य था और परम सुभग एवं सुन्दरी प्रिय था । इसने बहुत अधिक बड़ा राज्य प्राप्त किया था तथा यह महान निःस्तम्भ हो गया था ॥२३-२६॥ भगवान शिव की भक्ति करता हुआ भगवान शिव के ही कर्म में परागण हो गया था । दीव शास्त्र को श्रापे करके वह शिव के ही पूजन में तत्पर हो गया था । वह रात्रि में भगवान शिव की सन्निधि में रहकर बड़े ही यत्न से जागरण किया करता हुआ भागद के कारण समुद्रमुत् मश्रुओं के कणों की वारम्बार नेत्रों से मोचन करता हुआ रोमांच पुलकों से समवृत हो आया करता था ॥२५-२८॥

आपुष्पं च गतं तस्य शिवध्यानपरस्य च ।
 शिवोहिसुलभोलोकेपशूनां ज्ञानिनामपि ॥२९॥

संसेवितुं सुखप्राप्तये ह्येक एव सदाशिवः ।
 शिवरात्र्युपवासेन प्राप्तो ज्ञानमनुत्तमम् ।३०।
 ज्ञानात्सर्वमनुप्राप्तं भूतसाम्यं निरन्तरम् ।
 सर्वभूतात्मकं ज्ञात्वा केवलं च सदाशिवम् ।३१।
 बिना शिवेन यत्किञ्चिद्नास्ति वस्त्वत्र न क्वचित् ।३२।
 एवं पूर्णं निष्प्रपञ्चं ज्ञानं प्राप्नोति दुर्लभम् ।
 प्राप्तज्ञानस्तदा राजजातो हि शिववल्लभः ।३३।
 मुक्तिं सायुज्यतां प्राप्तः शिवरात्रेरुपोषणात् ।
 तेन लब्धं शिवाज्जर्मपुरायत्कथितं मया ।३४।
 दाक्षायणीवियोगाच्च जटाजूटेन विस्तरात् ।
 यत्परमो मस्तकाच्च शिवस्य परमात्मनः ।
 धीरभद्रोति विख्यातो यक्षयज्ञविनाशनः ।३५।

इस तरह से भगवान् शिव के ही ध्यान में परायण हुए उसकी प्राप्ति समाप्त हो गई थी । इस लोक में ज्ञानियों को और पशुओं को भी भगवान् शिव सुनभ हो जाया करते हैं । परम सुख की प्राप्ति के लिए मली-भाति सेवन करने के लिए एक ही भगवान् सदाशिव हैं । शिवरात्रि के एक दिन के ही उपवास करने से परम उत्तम ज्ञान इसने प्राप्त कर लिया था और उस ज्ञान से ही सभी कुछ प्राप्त कर लिया था । समस्त प्राणियों में समानता का भाव निरन्तर सर्व भूतात्मकता का ज्ञान प्राप्त करके फिर केवल भगवान् सदाशिव को प्राप्त कर लिया था । ।२६।३०।३१। कहीं पर भी भगवान् शिव के बिना यहाँ पर कुछ भी कोई वस्तु नहीं है । इस प्रकार से पूर्ण प्रपञ्च से रहित दुर्लभ ज्ञान की प्राप्ति किया करता है । उस समय में ज्ञान प्राप्त करने वाला राजा भगवान् शिव का वल्लभ हो गया था ।३२।३३। केवल शिवरात्रि के दिन का उपवास करने ही से वह सायुज्यता स्वरूप वाली मुक्ति को प्राप्त हो गया था । पहिले जो भिने कर्णन किया था वह चन्द्र उसने भगवान् शिव से ही प्राप्त किया था । दाक्षायणी सती प्रजा-

पति दक्ष की पुत्री के वियोग से जटाजूट के द्वारा परम विस्तार वाले परमात्मा शिव के मस्तक से जो सपुराण हुआ था जो प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाला था वह 'वीरमद'—इस युध नाम से विख्यात हुआ था । १४।३५।

शिवरात्रिब्रतेनैव तारिता बहवः पुराः ।
 प्राप्ताः सिद्धिं पुरा विप्राभरताद्याश्चदेहिनाः । ३६।
 मान्धाता मुग्धुमादिश्च हरिश्चन्द्रादयो नृपाः ।
 प्राप्ताः सिद्धिमनेनैव व्रतेनपरमेणहि । ३७।
 ततो गिरीशो गिरिजासमेतः

क्रीडाम्बितोऽसौ गिरिराजमस्तके ।

छूतं तथैवाक्षयुतं परेशो युवतो

मग्न्या स भृशं चकार । ३८।

हे विप्रवृन्द ! पुरातन समय में देहवागी भरत प्रभृति बहुत से लोग इस शिवरात्रि के व्रत से ही परम सिद्धि को प्राप्त हुये थे और चारित हो गये थे । मान्धाता, मुग्धुमारि और हरिश्चन्द्र आदि नृप इसी परमोत्तम व्रत से ही सिद्धि को प्राप्त हुये थे । इसके अनन्तर गिरिजा के सहित भगवान गिरीश गिरिराज कैनास की शिखर पर क्रीडाम्बित हुये थे । भवानी के साथ संयुक्त होकर परेश भगवान राम्मु ने भस्मों में युक्त छूत अत्यधिक रूप से किया था । ३६।३७।३८।

१७—दानभेद प्रशंसा वर्णन

वत्तस्त्वहं चिन्तयामि कथं स्थानमिदं भवेत् ।
 ममयत्तं यतो राजांभूमिरेपासदा वये । १।
 यत्त्वहं धर्मवर्माणं गत्वा याचे ह मेदिनीम् ।
 वर्षयत्येव सच मे याचितो न पुनः नरः । २।
 तथा हि मुनिभिः प्रोक्तं द्रव्यं त्रिविधमुत्तमम् ।
 शुक्लमर्घ्यं चतुर्वलमधमं कृष्णमुच्यते । ३।

धृतेः संपादनाच्छिष्यात्प्राप्तं शुक्लं च कन्यया ।
 तथा कुसीददाणिज्यकृपिया च तमेव ख ॥४॥
 धवलं प्रोच्यते सदिभ्रूतचोर्वेण साहसैः ।
 व्यजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णं सभुदाहतम् ॥५॥
 शुक्लवित्तेन यो धर्मं प्रकुर्याच्छ्रद्धयाण्वितः ।
 तीर्थपात्रं समासाद्य देवत्वे तत्समश्नुते ॥६॥
 राजसेन च भावेन वित्तेन शबलेन च ।
 प्रदद्याद्दानमर्थिम्यो मानुष्यत्वे तदश्नुते ॥७॥

देवपि नारदजी ने कहा - इसके उपरान्त मैंने सोचा कि यह स्थान किस प्रकार से मेरे अधीन होवे । क्योंकि यह भूमि तो सदा राजाओं के वश में रहा करती है । यदि मैं धर्म वर्मा के समीप में समुपस्थित होकर इस मेदिनी की याचना करूँ तो मेरे द्वारा याचना किया हुआ वह मुझे अर्पण कर दिया करेगा । पुनः पर नहीं है । १।२। उनी प्रकार से मुनियो ने कहा है कि तीन प्रकार का द्रव्य उत्तम होता है - शुक्ल, मध्य, शबल । प्रथम द्रव्य कृष्ण हुआ करता है । ३। धृति के सम्पादन से शिष्य से भीर कन्या के द्वारा जो प्राप्त होता है वह शुक्ल द्रव्य हुआ करता है । कुसीद (व्याज), वाणिज्य, कृपि और याचित किया हुआ जो द्रव्य होता है वह शबल द्रव्य कहा जाया करता है जिसे सत्पुरुष ऐसा ही बतलाया करते है । धून के द्वारा, और धर्म से, साहस पूर्ण धर्म के द्वारा और व्याज से उगजित द्रव्य होता है, वह कृष्ण द्रव्य कहा गया है । ४। ५। प्रथा से समन्वित जो पुरुष शुक्ल धन से धर्म किया करता है और तीर्थ पात्र को प्राप्त करने जो धर्म किया जाता है उसको देवत्व भाव उपभोग किया करता है । राजस भाव से और शबल धन के द्वारा याचकों के लिए दान दिया करता है उसका मानुष्यत्व में उपभोग किया करता है । ६। ७।

तमोवृषस्तु यो दद्यात्कृष्णवित्तेभानवः ।
 तिर्यककृत्वेतत्फलं प्रेत्यसमरनातिनराधमः । १७।
 तत्तु याचितद्रव्यं मे राजसं हि स्फुटं भवेत् ।
 अथ ब्राह्मणभावेन नृपं याचेप्रतिग्रहम् । १८।
 तदप्यो चातिकष्टं हेतुना तेन मे मतन् ।
 अयं प्रतिग्रहो घोरोमन्वास्वादोविपीपमः । १९।
 प्रतिग्रहेण संयुक्तं ह्यमोवमाविशेद्विजम् ।
 तस्मादहं निवृत्तश्रपापादस्मात्प्रतिग्रहात् । २०।
 ततः केनाप्युपायेन द्वयोरभ्यतरेण तु ।
 स्वायत्तं स्थानकं कुमं एतत्सञ्चितये मुहुः । २१।
 यथा कुमायः पुरुषश्चित्तान्तं न प्रपद्यते ।
 तथैव विमृशंभ्राह्मिन्तान्तं न लभाम्यसु । २२।
 एतस्मिन्सगररे पाथं स्नातुं तत्र समागताः ।
 बहवो मुनयः पुण्ये महीसागरसङ्गमे । २३।

उभोगुण से प्राप्त होकर जो पानक कृष्ण द्रव्य से दान किया करता है वह नराधम तिर्यक् गति में जाकर ही उसके फल की प्राप्ति किया करता है । वह मेरे द्वारा याचना किया हुआ द्रव्य स्फुट रूप से राजस ही होगा । इससे मनस्तर ब्राह्मण भाव से राजा से प्रतिग्रह की याचना कर्त्तुं । किन्तु उस हेतु से मेरे लिए वह जो अत्यन्त कष्टदायक है । यह प्रतिग्रह भी अत्यन्त घोर ही है जो मधु का आस्वाद विप के समान ही है जो प्रतिग्रह से सयुक्त द्विज, के अन्दर अमृत की भाँति प्रवेश कर जाया करता है । इमोलिप् में तो इस प्रतिग्रह के पाप से निवृत्त होता है । इमोलिप् में बार-बार सोचता हूँ कि इन दोनों में से किसी भी एक उपाय के द्वारा इस स्थान को स्वायत्त अर्थात् अपने अर्थात् में रहने वाला बना लूँ । १८-२३ जिस प्रकार से बुढ़ी माय्यां वाला पुरुष कभी भी अपने हृदय में स्थित विना का अन्त नहीं प्राप्त किया करता

है उसी प्रकार से विचार-विमर्श करता हुआ भी मैं चिन्ता को एक भणुमात्र भी अन्त नहीं प्राप्त कर रहा हूँ । हे पार्थ ! इसी बीच मैं बहुत से मुनिगण उस पुण्यमय मही-सागर के सङ्गम पे वहाँ पर स्नान करने के लिए समागत हो गये थे । १२।१४।

अहं तानब्रुवं सर्वाङ्कुतो यूय समागताः ।
 ते मामूचुः प्रणम्याथ सौराष्ट्रविययेमृने । १५।
 धर्मधर्मति नृपतिर्मोऽस्य देशस्य भूपतिः ।
 स तु दानस्य तत्त्वार्थतिपेवर्षगणान्वहन् । १६।
 ततस्तं प्राह खे वाणी श्लोकमेकं नृप शृणु ।
 द्विहेतु पडधिष्ठान षडंगं च द्विपाकयुक् । १७।
 चतुः प्रकारं त्रिविधं विनाशं दानमुच्यते ।
 इत्येकं श्लोकमाभाष्यखेवाणीविररामह । १८।
 श्लोकस्यार्थं नावभाषे पृच्छमानाऽपि नारद ।
 ततो राजा धर्मधर्मा पटहेनान्वधापयत् । १९।
 यस्तु श्लोकस्य चं वास्यलब्धस्य तपसामया ।
 करोति स मय ग्वाख्याय तस्मिन् च तद्दादा म्यहम् । २०।
 गवां च सप्त नियुयं सुवर्णां तावदेव तु ।
 आजगमुर्बहुदेशीया ब्राह्मणाः कोटिशो मुने । २१।

उन सबसे मैंने पूछा था कि धाय सब लोग कहीं से समागत हुए हैं ? तब उनमें प्रणाम करके मुझमें कहा था—हे मुने ! सौराष्ट्र देश में धर्म धर्मा नाम वाला एक राजा है जो कि इस देश का भूपति है । वह दान के तरह का भयो है और बहुत से वर्षों तक उसने तरप्रथा की थी । इसके परवात् आकाश में होने वाली वाणी ने उससे कहा था— हे नृप ! एक श्लोक का श्रवण करो, दो हेतु वाला, छ' अधिष्ठानों से युक्त, छ' भङ्गों वाला, दोपाकों से युक्त, चार प्रकार का, तीन विधों वाला तथा तीन तरह के नाशों से समन्वित दान कहा जाता करता है—

इस एक श्लोक को कहकर वह आकाश में होने वाली वाली विरत हो गई थी । ११—१८ हे नारद ! पूछी गई थी उसने इस श्लोक का अर्थ उसने नहीं कहा था । इसके पश्चात् उस धम्म धर्म राजा ने पट्ट की ध्वनि के साथ यह घोषणा कर दी थी कि जो कोई भी विद्वाद् मेरे इस तपस्या से प्राप्त इस श्लोक का मन्त्रों तरह से ध्यायना करेगा उसको मैं ऐसा दान दूँगा जिससे सात नियुक्त गोमें होभी शीघ्र तपना ही सुबल भी होगा । जो विद्वाद् इस श्लोक की वरायता श्लो-भाति कर देगा उसको मैं सात ग्राम दूँगा । १९।२०।२१।

पटहेनेति नृपतेः श्रुत्वा राज्ञो वचो महत् ।
 वाजमुत्तं हुदेशोयात्राहाणाः कोटिलो मुने । १२।
 पुनहुर्वोधावन्यासः श्लोकस्तेविप्रपुङ्गवैः ।
 आस्यात्तु शक्यते तत्र गुडो मूर्कर्यया मुने । १३।
 वयं च तत्र याताः स्तो घनलाभेनारद ।
 दुर्वोषत्वान्नमस्कृत्यस्तोर्कांचाश्रममागताः । १४।
 दुर्वोषेयस्त्वयश्लोकोमनंलभ्य तर्चनः ।
 तोषयात्राकयंयामोत्येवाचित्यात्रचानताः । १५।
 एवफाल्गुनतेपांतुवचः श्रुत्वामहात्मनाम् ।
 अतीवसंप्रहृष्टोऽहं तस्मिन्सृजयेत्पचित्तयम् । १६।
 अहोप्राप्तदपापोमेस्थानप्राप्तोनसंशयः ।
 श्लोर्कांभ्याह्यायनृपतेर्लप्स्येस्थानघनं तथा । १७।
 विद्यामूल्येन मेवं च याचितः स्यात्प्रतिग्रहः ।
 सत्यमाह पुराणापिर्वामुदेवो जगद्गुरुः । १८।

पट्ट के द्वारा राजा के इस महान वचन का प्रवण करके हे मुनिवर ! बहुत से देशों के करोड़ों ब्राह्मण वहाँ पर समागत हो गये थे, किन्तु उन विप्र श्रेष्ठों के द्वारा वह श्लोक दुर्वोष विन्यास वात्ता ही गया था अर्थात् वह श्लोक उनके अज्ञान के द्वारा ध्यायनाज नहीं हो

सका था । हे मुने ! जिस तरह से कोई गूँगा पुरुष गुड़ के स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता है उसी भाँति वे उस इन्द्र की व्याख्या नहीं कर सके थे । हे नारद ! हम भी वहाँ पर उस विशाल धन के लोभ से गये थे किन्तु उस इन्द्र को अपने तुल्य ज्ञान की सीमा से बाहर होने के कारण नमस्कृत करके वरिष्ठ यहाँ पर चने घाने हैं । क्योंकि वह इन्द्र बहुत ही कठिनाई में व्याख्या करने के योग्य है अतएव वह धन प्राप्त करने के योग्य ही नहीं है । अब तीर्थों की मात्रा को कैसे जावें । यही विचार करके यहाँ पर समागत हो गये हैं । इस प्रकार का उन महात्माओं का यह फाल्गुन यवन सुनकर मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ था और मैंने उनको छोड़कर यही विचार किया है कि बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि मैंने स्थान की प्राप्ति के विषय में अब उपाय प्राप्त कर लिया है — अब इसमें कुछ भी शंका नहीं है । इस इन्द्र की व्याख्या करके मैं अब रात्रि से धन और स्थान प्राप्त कर लूँगा । यह विद्या के मूल्य के द्वारा ही सब प्राप्त हो जायगा और याचित यह किसी प्रकार भी नहीं होगा । इस प्रकार यह प्रतिपद नहीं होगा । अमर के गुरु पुराणों के ऋषि वासुदेव ने यह सर्वथा सत्य ही कहा है । २२-२८।

धर्मस्य यस्यश्रद्धास्यान्न च सा नैव पूर्यते ।
 पापस्ययस्यश्रद्धास्यान्न च सापिनपूर्यते । २९।
 एवं विचिन्त्यविज्ञातः प्रकुर्वन्निमघारुचि ।
 सत्वमेतद्विभोर्वाक्प्रदुलभोऽपियथाहिमे । ३०।
 मनोरथेऽयंसकलः संभूतोऽकुचितः स्फूटम् ।
 एनं च दुश्चिदश्लोकमहंजानामिसुस्फूटम् । ३१।
 अमूर्तः पितृभिः पूर्वमेव स्यातो हि मे पुरा ।
 एवंहपान्वितः पार्यसंचित्याऽहंततो मुहुः । ३२।
 प्रणम्य तीर्थं चलितो महीसागरसंगमम् ।
 वृद्धब्राह्मणरूपेण ततोऽहं मातवान्तरम् । ३३।

इदं भणितवानस्मि इलोकव्याख्यां नृप शृणु ।
 यत्ने पटहविद्ययातं दानञ्च प्रगुणीकुरु । ३४।
 एवमुक्ते नृपः प्राङ्ग प्रोचुरेवं हि कोटिभ्यः ।
 द्विजोत्तमाः पुनर्नास्य प्रीक्षतुमर्थो हिनाक्यते । ३५।

धर्म के विषय में जिसकी श्रद्धा होती है वह कभी पूर्ण नहीं की जाया करती है और जिसकी वापस कर्म करने की श्रद्धा हुआ करती है वह भी पूरी नहीं की जाया करती है । इस प्रकार से विशेष विन्तन करके विद्वान् पुष्प अपनी उच्चि के ही अनुसार क्रिया करते हैं—पहले विष्णु का वाक्य पूर्णतया सत्य ही है जैसा कि मुझे यह दुर्लभ भी है । यह मेरा मनोरथ पूर्णतया सफल हो गया है और अब यह स्फुट रूप के प्रकृतित भी हो गया है । यह श्लोक यद्यपि दुर्दिद है तथापि मैं इसकी स्फुट रूप में जानता हूँ । बिना मूर्ति वाले पित्राणों ने पहिले पुराने समय में मुझे इसकी बतलाया था । हे पाप ! इस प्रकार से बड़े ही हानि से समन्वित होते हुए मैंने सविन्तन करके इसके अनन्तर मैंने फिर तीर्थ की प्राणम किया था जोकि मरी सागर सङ्गम था । मैं वहाँ से रवाना हो गया था । फिर मैं एक परम ब्रह्म ब्राह्मण के रूप को धारण करके नृप के समीप में गया था । मैंने वहाँ पर पहुँच कर इस तरह से कहा था—हे नृप ! अब आप उस श्लोक का व्याख्या का श्रवण कीजिए । आपने जो पटह के द्वारा लोक में घोषणा करके विख्यात किया है उस दान की प्रगुणित कीजिए । इस तरह से देने कहने पर उस राजा ने कहा था—इसी तरह में करीबों प्राह्वणों ने मुझसे कहा था । हे द्विजोत्तमो ! किन्तु इस श्लोक का अर्थ नहीं कहा जा सकता है । ३४-३५।

के द्विहेतुपदाख्यातव्यच्छिदानानिकानिच ।

कानिधैवपञ्चानिबोद्वीयाकोतयास्मृतौः ३३६

केच प्रकाराश्चत्वारः किंस्वित्त्वित्रविघं द्विजः ।
 त्रयोनाशाश्चकेप्रोक्तादानस्यैतत्स्फुटं वद ॥३७॥
 ततो गवा सप्तनिमुतं सुवर्णं तावद्देवतु ॥३८॥
 सप्तग्रामांश्चदास्यामिनोचेद्यास्यसिस्वंगृहम् ।
 इत्युक्तवचनं पार्थसौराष्ट्रस्वामिनं नृपम् ॥ ६॥
 धर्मवर्माणमस्त्वेवं प्रावोचमवधादय ॥
 श्लोकव्याख्यां स्फुटां वक्ष्ये दानहेतूचतीश्रुणु ॥४०॥
 अल्पत्वं वा बहुत्वं वा दानस्याभ्युदयावहम् ।
 श्रद्धाशक्तिश्चदानानां वृद्ध्यक्षयकरेहिते ॥४१॥
 तत्र श्रद्धाविषये श्लोका भवन्ति ।
 कायवत्तेशश्च बहुभिर्न चैवास्थस्य राशिभिः ॥४२॥
 धम सपाप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाः धर्मोऽद्भुतं तपः ।
 यद्वा स्वगश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् ॥४३॥

वे दो हेतु कौन से है और छँ कहे हुए वे अधिष्ठान कौन है ?
 छँ अङ्ग कौन से होते है तथा वे दो पाक कौन से बनाये गये है ? वे
 चार प्रकार कौन होते है ? हे द्विज ! क्या वह तीन प्रकार के है ? तीन
 नाश कौन से बतलाये गये है जो दान के हुषा करते है — यह सब आप
 मेरे सामने स्फुट रूप से बतलाइये । हे ब्राह्मण देव ! इन सात प्रश्नों
 को यदि आप बिल्कुन स्पष्ट रूप से कह देंगे तो फिर सात निमुत गीयें
 और उनना ही सुवर्ण तथा सात ग्राम मैं अवश्य ही आपको दे दूंगा ।
 यदि ऐसा नहीं होगा तो आप अपने घर को चले जायेंगे । इस तरह से इन
 वचनों को कहने वाले, सौराष्ट्र के स्वामी धम्मं धर्मा नृप से मैंने कहा है
 पार्थ ! मैंने कहा था—ऐसा ही होगा, अर्द्धा अब आप अबपारण
 करिये मैं इन श्लोक को व्याख्या को बहुत सुस्पष्ट रूप से बहूँगा—उन
 दोनों दान के हेतुओं का मुनिये—दान का अल्पत्व हो या बहुत्व हो
 अर्थात् बान चाहे छोटा—सा हो या बटून बडा हो इसके अन्त्युदय अर्ह
 होते है । श्रद्धा और शक्ति ये दोनों ही दानों की वृद्धि एवं लाभ करने

वासी हुआ करता है । वहाँ पर अन्धा के विषय में श्लोक है—वहूत से
 काणं बलेभ्यो के द्वारा और धन की राशिषो के द्वारा परम सूक्ष्म धर्मों
 से प्राप्त किया जाता है । अन्धा ही धर्म और अन्धा ही अद्भुत तप है ।
 अन्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है । यह सर्वपूर्ण जगत् अन्धा ही है । १३६।४३।

सर्वस्वं जीवितं चापि दद्यादश्रद्धया यदि ।
 नाप्नुयात्सफलं किञ्चिच्छुद्धानस्ततो भवेत् । ४४।
 अद्या या साध्यते धर्मो महद्भिर्नारियं राशिभिः ।
 अकिञ्चना हिमूतमः अद्वावन्तो दिवं गताः । ४५।
 त्रिविधा भवति अद्वादेहिनासास्वभावजा ।
 सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेत्सितांशुषु । ४६।
 यजन्ते सात्त्विकादेवान्यक्षरक्षसिराजसाः ।
 प्रेतान्भूतपिशाचांश्च यजन्ते तामसा जनाः । ४७।
 तस्माच्छुद्धावता पात्रं दत्तं पायाजित्तद्विधत् ।
 तेनैव भगवान्मुदः स्वल्पकेनापितुष्यति ।
 सक्तिरियमये च त्रिलोका भवन्ति । ४८।
 कुटुम्बमुक्तवधनाद्देयं यदातिरिच्यते ।
 मध्यस्वादो विषं पञ्चाहानुर्धर्मोऽज्ययथा भवेत् । ४९।

अपना सर्वस्व और जीवन भी यदि कोई अश्रद्धा से दान कर
 देता है तो वह कुछ भी फल प्राप्त नहीं किया करता है । यतएव यह
 परम प्रावश्यक है कि अन्धा वास्ता होवे । धर्म की साधना अन्धा से ही
 की जाया करती है । महान धन की राशिषों से धर्म माध्य कभी नहीं
 हुआ करता है । भुविपण अकिञ्चन हुआ करते हैं किन्तु यद्भक्तान होने
 के ही कारण से वे सब दिव लोक का प्राप्त हुए हैं । वेह धारिणों की वह
 यद्भक्त स्वभाव से ही समुत्पन्न तीव्र प्रकार की हुआ करती है । एक
 सात्त्विकी अन्धा होती है, दूसरी राजसी और तीव्र तामसी हुआ
 करती है । उसका भव अवलोक करो । ४४।४५।४६। सात्त्विकी अन्धा वागे

सात्त्विक पुत्र्य देवी का यजन किया करते हैं । राजस लोभ सब घोर राक्षसों का यजन करते हैं घोर जो तामस जन होते हैं वे प्रेत-भूत घोर पिछानों का यजन किया करते हैं । इसीलिए अज्ञान में भुक्त पुरुष के द्वारा स्वयं से उभाजित धन का पत्र में जो दात दिया गया है उससे ही चाहे वह बहुत ही स्वल्प ही क्यों न हो भगवान् नर परम तुष्ट हो जाया करते हैं । यहाँ तक तो अज्ञान के विषय में बतलाया गया है जब उक्ति के विषय में भी इतना है—कुटुम्ब के जीवन छोड़कर से अधिक प्रतिरिक्त देय हो पीछे मधु का आस्वाद करना विष के समान ही होता है अन्ध्या दाता का घर्म होना है ॥७॥८॥९॥

दावते परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।
 मध्वापानयिषाद स घर्माणा प्रतिरूपकः ॥१०॥
 भृत्यानामुपराधेन यत्करोत्पोष्वर्द्धं दैहिकम् ।
 तद्मकरयमुखादकं जीवतोऽयममृतस्य च ॥११॥
 सामान्य वाचित्त्याममाधिदीराश्च दर्शनम् ।
 अन्वाहितचनिक्षेपः सुवस्वधान्वसेयात् ॥१२॥
 आपस्त्वपि न देशानि तववस्तूनि पण्डितैः ।
 यो ददाति समूहात्माप्रार्थान्नीयतेनर- ॥१३॥
 इति ते गवितो राजन्हो हेतु श्रूयतामन- ।
 अघिष्ठानानि वदयामि पडेवशृणुतान्यपि ॥१४॥
 घर्ममर्यं च कामं च शोभाहर्षमयानि च ।
 अघिष्ठानानि दाताना पडेयानि प्रचलते ॥१५॥
 पात्रेभ्यो दीयते निःशयमनपेदय प्रयोजनम् ।
 केवलं घर्मबुद्ध्या महर्मादानं तदुच्यते ॥१६॥

मरने जनों के दुःख से पूर्ण जीवन यापन करने पर भी जो एक दूसरे जनों का दाता होता है तथा सम्भाषण के विषय का पदन करने वाला होता है वह घर्मों का प्रति स्वरूप हुआ जाता है ॥१०॥

मृत्यो के उपरोक्त से जो भीष्टवं दैहिक कृत्य किया करता है वह इसके जीवित रहते हुए भी मृत हो जाने पर भी सुखोदक ही हुआ करता है पर्याप्त उससे किसी भी दशा में सुख प्राप्त नहीं होता है । १५१। सामान्य, याचित, न्यास, भाषि, दाता, दर्शन, मन्वाहित, त्रिदोष और सर्वस्व मन्वय के होने पर पण्डितों के द्वारा जब मनुष्यों को याचिता काल के समयों में भी नहीं देनी चाहिये । जो दे देता है वह महान मूढ भारमा वाला है और ऐसा मनुष्य प्रायश्चित्त करने का अधिकारी हो जाया करता है । हे राजन् ! ये दो हेतु हमने भाग्यो वतला दिये हैं । हमके उपरान्त सब अधिष्ठानों के विषय में आप श्रवण कीजिये । वे अधिष्ठान छँ ही होते हैं उनकी मैं बतलाऊँगा । उन्हें भी सुनिये । १५२। १५३। १५४। धर्म, मयं, काम, क्रीडा, हर्ष और मय ये छँ दानों के अधिष्ठान कहे जाया करते हैं । सुयोग्य पानों के लिए बिना किसी प्रयोजन की अपेक्षा किये हुए जो नित्य ही केवल धर्म बुद्धि से दान दिया जाता है वह धर्म दान नाम से पुकारा जाता है । १५५-१६।

धनितं धनलोभेन लोभयित्वाऽयं माहरेत् ।
तदर्थं दानमित्याहुः कामदानमतः स्मृतम् । १५७।
प्रयोजनसपेक्षयैव प्रसङ्गाद्यप्रदीयते ।
मनर्हेषु सरागेण कामदानं तदुच्यते । १५८।
ससद्विद्वीडयाऽऽश्रुत्यर्द्धधिम्यः प्रददाति च ।
प्रतिदीयते च यद्दानं श्रीटादानमिति श्रुतम् । १५९।
दृष्ट्वा प्रियाणि ध्रुत्वा वा हर्षं वदत्प्रदीयते ।
हर्षं दानमिति प्रोक्तं दानं तद्धर्मनितकं । १६०।
आक्रोधानर्थं हिंसानां प्रतीकाराय यद्दमवेत् ।
दीयतेऽनुपकृतुंभ्यो मयदानं तदुच्यते । १६१।
प्रोक्तानि पण्डितानाम्गान्यापि च वदन्त्यसु ।
दाताप्रतिप्रहीताश्च बुद्धिर्देव च धर्मयुक् । १६२।

किसी धनी पुरुष को धन के लोभ से लानच में डालकर जो धर्म का भाहरण किया जावे वह "धर्म दान"—इस नाम से कहा जाता है । इसके उपरान्त में काम धन के विषय में श्रवण कीजियेगा । प्रयोजन की अपेक्षा करके प्रसङ्ग से जो दान किया जाता है और वह भी राग के सहित महंता से शून्य पुरुषों को दिया जावे वही दान कामदान कहा जाया करता है । १५७।५८। किनी संसद में ब्रीडा से प्रतिज्ञा करके जो धर्मियों के लिए दान या धन दिया जाता है और प्रतिदान किया जाना है वही दान ब्रीडा दान कहलाना है । १५९। प्रिय वस्तुओं को देखकर या परम प्रिय वस्तु एवं मनुष्यों को देखकर हर्ष-धान् होकर जो प्रदान किया जाना है उस दान को धर्म चिन्तकों के द्वारा हर्षदान कहा जाता है । भक्रोध, धनर्ष और हिंसा के प्रतिवार के लिए जो अनुकारियों के लिए दान दिया जाता है वह भय दान कहा जाया करता है । ये ही धर्म अधिष्ठान कहे गये हैं । अब इसके धर्म मंगों का भी श्रवण करिये । दानदाना, दान का प्रतिग्रहीता, शुद्धि, धर्मयुक्-देय, देय और काल में धर्म दानों के धर्म भग जान लेने चाहिये । १६०।६१।६२।

देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानिपङ्क्तिदुः ।

अपरोगोचधर्मादिस्मुरव्यसनः शुचिः । ६३।

अनिद्याजोवकर्मा चपङ्भिर्दाताप्रपस्यते ।

अनृजुश्चाश्रद्धानोऽशाश्रुतामाघृष्टभीरुकः । ६४।

असत्यसन्धो निद्रालुर्दाताऽयंतामसोऽधमः ।

त्रिशुक्लः कृशवृत्तिश्चघृणालुः सकलेन्द्रियः ।

विमुक्तो योनिदोषेभ्यो ब्राह्मणपात्रमुच्यते । ६५।

सौमख्यादभिसंप्रीतिरधिना दर्शने सदा ।

सत्कृतिश्चार्नसूया च तदा शुद्धिरितिस्मृता । ६६।

अपरादाधमवलेसं स्वयत्नेनाजितं धनम् ।

स्वल्पं वा विपुलं वापदेवमिरयभिधायते । ६७।

तेनापि किल धर्मोऽपि उद्दिश्य किञ्च किञ्चन ।

देयं तद्धर्मयुगिति शून्येशून्यं फलं मतम् ।६८।

न्यायेन दुर्लभं द्रव्यं देये कालेऽपिवापुनः ।

दानाहीदेशकालोत्तोस्मात्तांश्रे छीनचान्यथा ।६९।

पण्डितान्तीतिचोक्तानिद्वौ चपाकावतः शृणु ।

द्वौपाकीदानजीप्राहुः परत्राऽयस्त्विहोच्यते ।७०।

धर्मरोगी, धर्मात्मा, दित्तु (देने की इच्छा वाला) धर्मरोगी (धर्मरोगी से रहित), शुचि, अनिन्द्य धर्मात्मा के कर्म वाला — इन सब बातों से दान प्रसन्न हुआ करता है । धर्मरोगी, धर्मात्मा से रहित, अज्ञान्त धर्मरोगी वाला, धृष्टता सहित, भीरुक, अनल्प सन्ध्या (प्रतिभा) वाला, निर्दयी ऐसा दाता तामस और अयम हुआ करता है । विमुक्त, उश्वृत्ति, धृष्टान्त, समस्त इन्द्रियों वाला, योनि से विमुक्त जो ब्राह्मण होता है वही पात्र कहा जाता करता है ।६३।६४।६५। श्रीमुख्य होने से पति सम्पत्ति जो धर्मियों के दर्शन में सदा ही होती है, सत्कार, अनसूया अब होती है तभी शुद्धि कही गई है । धाना वाचा से रहित, क्लेश से हीन, अपने ही मर्तों के द्वारा उपार्जित जो धन है वह चाहे स्वल्प ही या विपुल (प्रधुन) ही, वही देयम् इक्ष नाम से कहा जाता है । वही भी किसी धर्म के द्वारा उद्दिश्य करके जो कुछ भी देय होत है । वही देय धर्म युक्त होता है और जो शून्य होता है उसमें फल भी शून्य ही माना गया है । न्याय से देय और काल में भी द्रव्य दुर्लभ होता है । दान के योग्य वे दोनों देय और काल परम श्रेष्ठ होते हैं वे दोनों धर्मरोगी नहीं होने चाहिये । ये सब धर्म बतला दिए गये हैं । अब हमें धर्मरोगी दो पात्रों के विषय में अवश्य करिये । दान से समुत्पन्न होने वाले दो पात्र कहे गये हैं जो परलोक में होते हैं यहाँ कहे जाते हैं ।

सद्म्यो यद्दोयते किञ्चित्तत्परत्रोपतिष्ठति ।
 असत्सु दीयते किञ्चित्तदानमिह भुज्यते ।७१।
 द्वीपाकावितिनिदिष्टीप्रकारांश्चतुरः शृणुः ।
 ध्रुवमाहुस्त्रिकं काम्यं नैमित्तिकं मितिक्रमात् ।७२।
 वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विजैः ।
 प्रपारामत्तडागादिसर्वं कामफलं ध्रुवम् ।७३।
 तदाहुस्त्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिनेदिने ।
 अपत्यविजयं श्वयं स्त्रीवालायं प्रदोयते ।७४।
 इच्छासंस्थं च यद्दानं काम्यमित्यभिधीयते ।
 कालापेक्षक्रियापेक्षगुणापेक्षमितिस्मृतौ ।७५।
 त्रिधानं नैमित्तिकं प्रोक्तं सदाहोमविवर्जितम् ।
 इति प्रोक्ताः प्रकारास्ते त्रैविध्यमभिधीयते ।७६।
 अष्टोत्तमानि चत्वारि मध्यमाधिविधानतः ।
 कानीयसानि शेषाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः ।७७।

सत्पुरुषों के लिए जो कुछ भी दान किया जाता है वह परलोक में उपस्थित होता है और असत्पुरुषों में जो कुछ भी दिया जाया करता है वह दान यहाँ पर ही भोग लिया जाया करता है । इस तरह से वे दो पाक निदिष्ट किए गये हैं । अब इसके चार जो प्रकार होते हैं उनका धरण कीजिए । ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक—इस क्रम से चार तरह का होता है । यह वैदिक दान मार्ग द्विजों के द्वारा चार प्रकार से वर्णित किया जाता है । प्रपा (प्याळ), पाराम (उद्यान) और तडाग आदि यह सर्वं काम फल ध्रुव होता है । जो दिन-दिन में दिया जाया करता है तथा अपत्य, विजय, ऐश्वर्य, स्त्री और बालकों के लिए दिया जाता है । मयनी इच्छा में सस्तिन रहने वाला जो दान है वह काम्य कहलाता है । कालापेक्ष, क्रियापेक्ष और गुणापेक्ष ये स्मृति में तीन प्रकार का नैमित्तिक दान बताया गया है जो सदा होम से

विवक्षित होता है । इस तरह से ये प्रकार कहे गये हैं जिनके तीन प्रकार के कहे गये हैं । उसके तीन प्रकार इस तरह से हैं—पाठ उत्तम है, अग्निदान से चार मध्यम हैं और छेप कनिष्ठ होते हैं । ७१—७७।

गृहप्रासादविद्याभूयोक्त्वप्राणाहाटकम् ।
 एतान्मुत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः । ७२।
 अन्नारामं च दातांसिहयतप्रभृतिवाहनम् ।
 दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः । ७३।
 उपानच्छत्रपात्रादिदक्षिमध्वारानानि च । ७४।
 दीपकाष्टीपलादीनि चरमं बहुवार्षिकम् ।
 इति कानीयसान्यहृदनिनागत्रयं शृणु । ७५।
 यद्दत्त्वा तप्यते पञ्चादासुरं तद्वथा मतम् ।
 अश्रद्धया यद्दाति राक्षसं स्पृहार्थवत् । ७६।
 यद्वाऽऽक्तुश्च ददात्यंगदत्त्वा चक्रोसतिद्विजम् ।
 पैशाचं तद्वथा दानं दानानाशास्त्रयस्त्वसौ । ७७।
 इति सप्तपदैर्वैदं दानमाहान्म्यमुत्तमम् ।
 शक्या ते कोलितराजन्माधुवाऽसाधु वा वद । ७८।

गृह, प्रासाद, विद्या, भूमि, घो, कूप, प्राण, हाटक—ये उत्तम द्रव्य के दान से उत्तम दान हुआ करते हैं । अन्न, पाराम, वस्त्र, अश्र प्रभृति वाहन—ये सब दान मध्यम द्रव्य के दान होने के कारण से मध्यम दान कहे जाते हैं । उपानत् (जूया), छत्र (छाता), पात्र आदि, अग्नि, अशु, अन्न, दीप, काष्ठ, उपान प्रभृति बहु वार्षिक चरम श्रेणी के दान हैं । इसीलिए ये सब दान कनिष्ठ कहे जाते हैं । अब तीन दानों के नाशो का अर्थ करो । जिसको दान में देकर पीछे से हृदय में ताप किया जाता है वह भासुर दान कहा गया है और वह वृथा ही माना गया है । जो अश्रद्धा से दिया जाता है वह राक्षस दान होता है । यह भी वृथा ही हुआ करता है । जिसको आक्रोश करके

दिया जाता है और जो देकर फिर द्विज को कौशा जाया करता है । वह पंचाक्ष दान होता है और यह भी दान वृथा ही हुआ करता है क्योंकि फल से सर्वथा शून्य माना जाता करता है । ये तीन दानों के नाश होते हैं अर्थात् दिये हुए दानों को फलों से शून्य बना देने वाले हुआ करते हैं । हे राजन् ! इस प्रकार से तुम्हारे सामने कीर्तित कर दिया गया है । यह साधु है अथवा असाधु है—यह माप बतलाइये । ७८—८४।

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ।

अद्य ते कृतकृत्योऽस्मि कृतः कृतिमतां वर । ८५।

पठित्वासकलं जन्मब्रह्मचारीयथा वृथा ।

बहुक्लेशात्प्राप्तभार्यः सावृथाऽप्रियवादिनी । ८६।

क्लेशेनकृत्वा कूपं वा सूच क्षारोदकोवृथा ।

बहुक्लेशैर्जन्म नीतं विनाधर्मं तयावृथा । ८७।

एवं मे यद्वथा नाम जातं तत्सफलं त्वया ।

कृतं तस्मान्नमस्तुर्म्यं द्विजेभ्यश्चमोनमः । ८८।

सत्यमाह पुरा विष्णुः कुमारान्विष्णुसधनि ।

नाहं तथापि यजमानहोववितान-

स्व्योतदघृतप्लुतमदन्तुतभुङ्मुखेन । ८९।

यद्माहाणस्य मुखतश्चरतोऽनुधासं

तुष्टस्य मय्यपहितैर्निजकर्मवार्कः । ९०।

तामयाऽशमंणा वापि यद्विप्रैष्वप्रियं कृतम् ।

सर्वस्य प्रभवो विप्रास्तत्क्षमंतांप्रसादये । ९१।

स्वंच कोऽसिनसामाण्यः प्रणम्याहं प्रसादये ।

आत्मानंश्चापयमुनेप्रोक्तस्चेत्यब्रवंतदा । ९२।

धर्मं वर्माने कहा—हे कृतिमानों में परम श्रेष्ठ ! आज मेरा जन्म सफल ही गया है और आज ही मेरा किया हुआ तप भी फल युक्त ही गया है । आज आपके द्वारा मैं पूर्ण तया कृत-कृत्य ही गया है ।

यमस्त यदकर एक ब्रह्मचारी के तुल्य जन्म वृथा ही है । अत्यधिक बलेष्टों से भायों को प्राप्त किया था सो वह भी भ्रष्टिप बोलने वाली होने के कारण वृथा ही है । अनेक पूर्वक रूप का निर्माण कराया तो खारा जल वाला होने के कारण वृथा ही हुआ । बहुत से बलेष्टों को भोग कर यह जन्म प्राप्त किया है सो वर्म के बिना यह भी वृथा ही है । इस तरह से मेरा यह सब वृथा ही नाम हुआ था वह भावने मात्र मुझे पूर्ण रूप से सफल बना दिया है । इसलिये मापकी सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है और सब द्विजों के लिए भी वारम्बार नमस्कार है । विष्णु के सन में पहिले भगवान विष्णु ने कुमारों के प्रति बिल्कुल सत्य ही कहा—जो हवि विताव मे बढ़ते हुए धृत से लुप्त है और दुव-भुक् के मुख के द्वारा बिछको दग्ध कर दिया गया है तब यजमान के हवि को मैं उत प्रकार से नहीं खाता है जो मुझमें भ्रष्टिप वर्म वाकों के द्वारा अनुवास चरण करके परम तुष्ट ब्रह्मण के मुख में पड़े हुए हवि से जंसा मैं ग्रहण किया करता हूँ । मकल्याणकारी मैंने विप्रों का जो कुछ भी भ्रष्टिप किया है उसके लिए मुझे क्षमा कीजिये और उन्हें आप मेरे ऊपर प्रसन्न करा दीजिए क्योंकि विप्र सबके प्रभु होते हैं । भाप कौन हैं ? भाप कोई साधारण पुरुष नहीं हैं । मैं प्रणाम करके आपकी प्रसन्न करता हूँ । हे मुने ! भाव यपना पूर्ण परिचय प्रदान करिये । इस तरह से जब राजा के द्वारा कहा गया तो उस समय में मैंने यह कहा था । ६१—६२।

नारदोऽस्मि नृपश्चेष्ट स्थानकारी समागतः ।

प्रोक्तं च देहि मे ब्रह्मभूमिचस्थानहेतवे । ६३।

मद्यपीयं देवतानांभूमिद्रव्यंनर्पाथिव । ।

तथापिपस्मिन्मयः काले राजाप्रार्थ्यं सनिश्चितम् । ६४।

स हीम्बरस्यापतारो भर्ता दाताऽमयस्थ सः ।

तयैव त्वामहं याचेद्ब्रह्मशुद्धिपरीप्सया । ६५।

पूर्वं त्वं नारदो विप्रं राज्यमस्त्वखिलं तव ।
 अहं हि ब्राह्मणानांतिदास्यं कर्तानसंशयः । १६६।
 यद्यस्माकं भवान्भक्तस्तत्ते दायं च नो वचः । १६७।
 सर्वं यत्तद्देहि मे द्रव्यमुक्तं भुवं च मे सप्तगव्युत्रिमात्राम् ।
 भूयात्त्वत्तोऽप्यस्य रक्षेति सोऽपि मेने त्वहं चिन्तये चाऽर्थ-
 शेषम् । १६८।

देवपि नारद जी ने कहा — हे नृपो मे परम श्रेष्ठ ! मैं नारद हूँ । मैं स्वान का इच्छुक होकर ही यहाँ पर समागत हुआ हूँ और मैंने कह दिया है । मुझे द्रव्य दो और स्वान के लिए भूमि दो । हे पाण्डव ! यद्यपि यह भूमि देवताओं की ही है और द्रव्य भी देवों का है तो भी जिस समय मैं जो भी कोई राजा होता है उसी की प्रार्थना करनी चाहिये यही निश्चित है क्योंकि वह राजा एक ईश्वर का ही भक्त होता है । वह भरण करने वाला होता है तथा भक्षण का देने वाला हुआ करता है । उस रीति से मैं प्रायसे द्रव्य की शुद्धि की परीक्षा से याचना कर रहा हूँ । देवार्थ मे प्रार्थना परायण होकर सबसे पूर्व मुझे भक्षण दो । १६२-१६६। राजा ने कहा — हे विप्र ! यदि प्राण नारद है तो यह सम्पूर्ण राज्य ही भारका है । मैं तो ब्राह्मणों का ही सेवक हूँ । मैं प्रथम प्राणकी दासता करने वाला रहूँगा, इसमें तनिक भी संशय नहीं है । देवपि नारद जी ने कहा — यदि प्राण हमारे परम भक्त हैं तो प्राणकी हमारा वचन करना चाहिये । १६७। जो द्रव्य कहा गया है वह सब मुझको दो और मुझे सात गव्युत्रि पश्माण वाली केवल भूमि दो । तुमसे इतकी भी रक्षा होवे । वह भी मान गया था और मैं अर्थ शेष का चिन्तन करता हूँ । १६८।

१५—सुतनु और नारद सम्वाद

ततोऽहं धर्मवर्माणप्रोच्य तिष्ठद्धनंस्वयि ।

कृत्यकालेप्रहीष्यामीत्यागमं देवतं गिरिम् । १।

वासं प्रमुदितश्चाह पश्यंस्त् गिरिस्तमम् ।
 आह्वामानं नरान्माघुन्मूमेभुं जमिवोच्छ्रितम् ।२।
 यस्मिन्नावाविष्ठा वृक्षाः प्रकाशंते समन्ततः ।
 साधुं गृहपतिं प्राप्य पुत्रभाषादियोरथम् ।३।
 मुदिता यत्र संभृता वागते कोकिलादयः ।
 सद्गुरोर्ज्ञानसंपन्नारथयाशिष्यगणामुचि ।४।
 यत्र तपस्वा तपो मर्त्यायधेस्सितमवाप्नुमुः ।
 श्रीमहादेवमासाद्य भक्तोयद्दन्मनोरथम् ।५।
 तस्याह च गिरेः पार्यं ममासाद्यमहाशिलाम् ।
 धीतसौरभ्यम्यं देन श्रीणितोऽचितयं हृदि ।६।
 तावन्मया स्थानमाप्तं यदतीव सुदुर्लभम् ।
 इदानीं ब्राह्मणार्थोऽहं कुर्वे तावदुपक्रमम् ।७।

देवधि श्री नारद जी ने कहा—इसके उपरान्त यह घन तप तप
 पुम्हारे पास ही रहे—यह तप वर्ष वर्षों राजा से मैंने कह कर कि
 मैं जब मेरा कृत्य करने का समय आवना लगी मैं इसे ग्रहण कर
 खूँया । मैं फिर रंघत गिरि पर जाऊया या ।।। उस परम उत्तम
 पर्वत की देखते हुए मैं अत्यन्त अधिक प्रमुदित हो गया था जो साधु
 नरो को बुनाने वाला भूमि का ऊँचा बड़ा हुआ एक भुज की ही भाँति
 था । जिस पर्वत में पनेक प्रकार के वृक्ष चारों ओर प्रकाश दे रहे थे
 जिस प्रकार से किसी परम साधु वृत्ति वाले यह के स्वामी हो प्राप्त कर
 पुत्र एवं भाष्या आदि रक्षा करते हैं । जहाँ पर कोकिल आदि पक्षिणए
 परम संतुष्ट और प्रसन्न होते हैं । निवास कर रहे थे जिस तरह से किसी
 सद्गुरु से ज्ञान से सुमन्त्र विषयगत सुषण्डन ने निवास किया करते हैं
 ।२।३।४। जहाँ पर मनुष्य तपश्चर्या करके अपने मन के मभीष्ट मनोरथो
 की प्राप्ति किया करते हैं जैसे कोई भक्त साक्षात् भगवान श्री महादेव जी
 को प्राप्त करके अपने मनोरथ को पूर्ण किया करता है । हे शर्ष ! तब

गिरिवर की मैंने महाशिला की प्राप्त प्रत्यन्त शीत, सुरभित घोर मन्द वायु से मैं परम प्रसन्नात्मा हो गया था । फिर मैंने अपने हृदय में विचार किया था—उस समय तक मैंने अपने लिए कोई भी स्थान प्राप्त नहीं किया था किन्तु अब यहाँ पर मैंने देखा कि यह स्थान ही प्रत्यन्त सुदुर्लभ स्थान है । अब मैं ब्राह्मणों के लिए ही उपक्रम करेगा । १५६।७।

ब्राह्मणाश्च विलोक्यामेवेहि पात्रतमामताः ।
 तथा हि चात्र श्रूयते क्वासि श्रुतिवादिनाम् । ८।
 न जलोत्तरणो शक्ताय द्वन्द्वोः कर्णवर्जिता ।
 तद्वच्छ्रेष्ठोऽप्यनाचारो विप्रो नोद्धरणक्षमः । ९।
 ब्राह्मणो ह्यनघोऽयान स्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
 तस्मै हृद्य न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते । १०।
 दानपात्रमतिक्रम्य यदपात्रे प्रदीयते ।
 तद्दत्तं गामतिक्रम्य गदं भस्य गवाह्निकम् । ११।
 ऊपरे वापितं वोजं भिन्नभाण्डे च गोदहम् ।
 भस्मनीव हृतं हृद्यं मूर्खे दानमशाश्वतम् । १२।
 विधिहीने तथाऽपात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ।
 न केवलं हि तद्यातिशेषं पुण्यं प्रणश्यति । १३।
 भूरासा गीस्तथा भोगा सुवर्णदेहमेव च ।
 अश्वश्चक्षुस्तथा वासो घृतं तेजस्तिताः प्रजाः । १४।

मुझे अब वे ब्राह्मण देखने चाहिये जो परम योग्य पात्र तम हों । यहाँ पर श्रुति वादियों के उसी भाँति के बचन धरण मोघर हुआ करते हैं । ये लोग जन के उत्तरण करने में भी समर्थ नहीं होते हैं जिस तरह से कणुं पार से रहित नौका पार जाने में प्रसन्न हूमा करती है । उसी तरह से परम श्रेष्ठ भी विप्र यदि पाचार से हीन है तो वह उत्तरण करने में समर्थ नहीं होता है । बिना पड़ा हुआ ब्राह्मण

तृणों की अग्नि के समान ही शीघ्र क्षान्त हो जाया करता है । ऐसे विप्र को कमी भी हृद्य नहीं देना चाहिए क्योंकि मरुत में कमी भी हवन नहीं किया जाता है । १८६।१०। दान देने के योग्य पात्र का प्रति क्रमण करके जो किसी अयोग्य अपात्र को दान दिया जाता है वह दान इसी तरह का है जैसे किसी गौ का प्रतिश्रमण करके वह गवाहिक गर्दभ को दे दिया जावे । ११। ऊपर भूमि में वपन किया हुआ बीज, टूटे हुए बरतन में दोहन किया हुआ दूध, मरुत में हवन किया हुआ हृद्य तथा सूखे विप्र को दिया हुआ दान मशाश्वत अर्थात् अस्यायी एव निष्फल ही हुआ करता है । १२। विधि जो शास्त्रकार दान की बतलाते हैं उससे हीन तथा अपात्र में जो कोई प्रतिग्रह दिया करता है उसका वह दिया हुआ दान ही केवल नष्ट नहीं होता बल्कि शेष पुण्य भी नष्ट ही जाया करता है । भूमि, गौ, भोग, सुवर्ण, देह, मश्व, चन्दन, वस्त्र पुत्र, तेज, तिल और प्रजा नष्ट कर दिया करते हैं । १३। १४।

घ्नन्तितस्माद्विद्वांस्तुविभियाच्चप्रतिग्रहात् ।
 स्वल्पकेनाप्यविद्वास्तुपद्मे गौरिवसीदति । १५।
 तस्मात्क्षे मूढतपसोगूढस्वाध्यायसाधकाः ।
 स्वदारनिरताः शान्तास्तेषु दत्तं सदाऽञ्जयम् । १६।
 देशकालउपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
 पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् । १७।
 न विद्यया केवलया तपसा चाऽपि पात्रता ।
 यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रम्प्रवक्षते । १८।
 तेषां त्रयाणां मध्येचविद्यामुख्योमहागुणः ।
 विद्याविनान्धवद्विप्राश्चक्षुष्मन्तोहितेमताः । १९।
 तस्माच्चक्षुष्मतो विद्वान्देशे देशे परीक्षयेत् ।
 प्रश्नान्ये समवक्ष्यंति तेभ्योदास्ताभ्यर्हंततः । २०।

इति सचिदस्य मनसातस्माद्देशात्समुत्पितः॥

आथमेधुमहर्षीगारविचराम्यस्मिफाल्गुन ॥२१॥

इसलिए विद्वान् पुरुष को प्रतिग्रह देने में भय करना चाहिये । जो विद्वान् नहीं है वह तो बहुत स्वल्प भी प्रतिग्रह से दमदम में फँसी हुए लो के समान वक्षीकृत हो जाया करता है । इसीलिए जो परम गूढ़ तपश्चर्या वाले हैं - गूढ़ व्याख्याय की भाषना करने वाले हैं, अपनी ही स्त्री में रक्ति रखने वाले हैं और परम शान्ति से पूर्ण वृत्ति वाले हैं ऐसे ही विप्रों को दिया हुआ दान सदा सक्षय हुआ करता है ॥२५॥२६॥ देश और काल के उपाय से श्रद्धा से सम्बन्धित द्रव्य जो किसी सुपौष्य पान को प्रदान किया जाता है वह सम्पूर्ण धर्म का सदाख है ॥२७॥ केवल विद्या से और न केवल तपश्चर्या से पावता हुआ करती है । जहाँ पर सन्चारिणता है और वे दोनों (विद्या और तप) भी विद्यमान हैं वह ही वस्तुतः पात्र कहा जाया करता है । उन तीनों के मध्य में विद्या मुख्य और एक महान मुख्य गुण है क्योंकि विद्या के बिना चक्षुषों वाले भी धर्म्य ही माने गये हैं । इसलिए विद्या रूपी चक्षुषों वाले विद्वानों का परीक्षण देश-देश से करना चाहिये । जो भेदे किसे हुए प्रश्नों का उत्तर दे देंगे उन्हीं को मैं दूना । इस प्रकार से मन के द्वारा भती-भ्राति चिन्तन करके करगुन । मैं फिर उस देश से उठकर चल दिया या और महर्षियों के माध्यम से विचरण किया करता था ॥२८—२९॥

इमाञ्छूलोकान्याश्रमातः प्रश्नरूपान्छृणुष्व तान् ।

मातृका का विजानाति कतिद्या कीदृशाक्षराम् ॥२९॥

पञ्चगवाद्भुत गेह की विजानाति वा द्विजः ।

यद्दृष्ट्वा स्त्रिय कनुमेकरुपाञ्च वेत्ति कः ॥३०॥

को वा चित्ररुपाचर्म वेत्ति संसारगानरः ।

कोवाण्णतमाहाप्रहवेत्तिविद्यापरायणः ॥३१॥

कोवाऽऽष्टविध ब्राह्मण्य वैत्तिब्राह्मणसत्तमः ।
 युगानां च चतुर्णां च कोपूलदिवास्त्रवदेत् ।२५।
 चतुर्दशमन्तुना वा मूलवासरं वैत्ति यः ।
 कस्मिन्नेव दिने प्राप पूर्वं वा भास्करो रथम् ।२६।
 उद्वेजयति भूतानि कृष्णहिरिवः वैत्तिकः ।
 को वा ऽस्मिन्धोरसंसारे दशदशतमो भवेत् ।२७।
 पन्थानावपि द्वौ कश्चिद्वैत्ति वक्ति च ब्राह्मणः ।
 इति मेवाद्दशप्रश्नान्ये विदुर्ब्राह्मणसत्तमाः ।२८।

ये प्रश्नों के स्वरूप बाने इन श्लोकों को सहाय हुआ बिन्दरस्य किया करता था । उन श्लोकों को तुम श्रवण कर नो । कौन ऐसा पुरुष है जो मातृगण को जानता है ? वह किसने प्रकार भी है और उसके धर्म किम प्रकार के होते हैं ? धर्मवा ऐसा कौन द्विज है वा पत्न पचाद्भुत गेह को जानता है ? कौन ऐसा है जो ऋतु कृषी वाली और एक ऊरु वाली स्त्री को करना जानता है ? धर्मवा ऐसा कौन संसार का गोत्रर है जो विप्र कथा वन्द का ज्ञान रखता है ? ऐसा कौन विद्या में परम पराङ्मुख है जो आर्णव ग्राह को जानता है तथा वतवाता है ? ऐसा कौन परम श्रेष्ठ ब्राह्मण है जो आठ प्रकार के ब्राह्मण्य का ज्ञान रखता है ? ऐसा कोई कौन है जो चारों मुहों के मूत्र दिवसों का बतना देवे ? ऐसा कोई कौन है जो चोदह मनुष्यों के मूल वासर का ज्ञान रखता है ? कौन यह है जो यह बतला देवे कि किस दिन में सबसे प्रथम मगवान भास्कर ने रथ को प्राप्त किया था ? ऐसा कौन आठ है जो यह बतला देवे कि वह कौन है जो कृष्ण सर्प को मूर्ति समस्त प्राणियों को उद्दिग्ध किया करता है ? ऐसा कौन है जो इस महीव घोर संसार में दसों में भी परम दश हों ? कोई ऐसा ब्राह्मण है जो दोनो भागों को जानता है और वतवाता है ?—ये बारह प्रश्न हैं । इनको जो जानते हैं वे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं ।२२-२८।

ते मे पूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम् ।
 इत्यहं गायमानो वै भ्रमितः सकलांमहीम् ॥२६॥
 ते चाहुर्दुःखदाः खयाताः प्रश्नास्तेकुर्महे नमः ।
 इत्यहं सकलां पृथ्वीविचित्र्यालब्धब्राह्मणः ॥२७॥
 हिमाद्रिशिखरासोनो भूमश्चित्तमवाप्तवान् ।
 सर्वविलोकिताविप्राः किमतः कर्तुं मुत्सहे ॥२८॥
 ततो मे चिन्तयानस्य पुनर्जातामतिस्त्वयम् ।
 अद्यापि न गतश्चाहं कलापग्राममुत्तमम् ॥२९॥
 यस्मिन्विप्राः संवसन्तिमूर्तानीवतपांसि च ।
 चतुराशोतिसाहस्राः श्रुताभ्ययनशालिनः ॥३०॥
 स्थाने तस्मिन्गमिष्यामीत्युक्त्वाहंचलितस्तदा ।
 खंचरोहिममाक्रम्यपरंपारं गतस्ततः ॥३१॥
 अद्राक्षं पुण्यभूमिस्थं ग्रामरत्नमहं महत् ।
 शतयोजनविस्तीर्णं नानावृक्षसमाकुलम् ॥३२॥

ऐसा ज्ञाता जो ब्राह्मण है वे मेरे परम पूज्य हैं और मैं उनकी
 चिरकाल पर्यन्त आराधना करने वाला हूँ । इस प्रकार से यही गायन
 करता हुआ मैं सम्पूर्ण भूमि भ्रमण में भ्रमण किया करता हूँ ॥२६॥ वे
 ब्राह्मण जो इन मेरे प्रश्नों को सुनते थे वे यही कह दिया करते थे कि ये
 प्रश्न तो बहुत ही दुःख देने वाले प्रसिद्ध हैं—यह कहकर वे नमस्कार
 कर दिया करते थे । इस रीति से मैं इस समस्त भूमि पर घूम चुका था
 किन्तु विचार करके देखा कि कोई भी ऐसा योग्य ब्राह्मण प्राप्त नहीं
 हुआ था । फिर मैं हिमालय पर्वत की शिखर पर समाप्त हो गया था
 और फिर पुनः मैं इसी चिन्ता में प्रस्त हो गया था । मैंने सभी ब्राह्मणों
 को देखा डाला है । परन्तु अब मैं क्या करूँ ? इस प्रकार से जब मैं
 चिन्तन कर ही रहा था कि मुझे फिर यह सुट्टि स्फुरित हुई थी कि
 अभी तक मैं परमोत्तम कलाप नामक ग्राम में नहीं जा पाया है जिस

ग्राम में श्रुताध्ययन शील चौरासी सहस्र ब्राह्मण निवास किया करते हैं जो माझान् तप की मूर्ति के ही समान हैं । मैं उस स्थान में अवश्य ही जरुंगीर—इतका कहकर ही मैं कहने से उसी समय में चल दिया था । सत्काण्गामी होकर समाक्रमण किया था और मैं परम पार पर इसके पदवात् पहुँच गया था । वहाँ पर मैंने परम पुण्य भूमि में स्थित महान् ग्राम रत्न की देखा था जो भी जीवन के विस्तार से पुत्र और धनेक प्रकार के वृक्षों से सम्तकीर्ण था । ३०—३५।

यत्र पुण्यवर्तै सन्ति गतयाः प्रमराश्रमाः ।
 सर्वेषामपिजोवनां यत्राग्न्योन्मं न दुष्टताः । ३६।
 यज्ञभाजां मुनिनां यदुपकारकरं सदाः ।
 सतां धर्मवतः यदुपकारो न शास्यति । ३७।
 मुनीनां यत्र परमंस्थानवाप्यविनाशकृत् ।
 स्वाहास्वधावपट्कारहन्तजारीननश्चति । ३८।
 यत्र कुतयुगस्याऽर्घ्यं बीजं पार्थाश्विधिष्यते ।
 मूर्यस्य सोमवंसस्य ब्राह्मणानांतयं च । ३९।
 स्थानकंतत्समासाद्यप्रविष्टोऽहं द्विजाश्रमान् ।
 यद्यतेविविषान्वादाग्निवदन्तैद्विजोत्तमाः । ४०।
 परस्पर चित्तयाना वेदाः मूर्तिधरा यथा ।
 तत्र मेधाविनः केचिदर्थमग्नैः प्रपूरितम् । ४१।
 विचिक्षिपुमं हारमानो नभोगतमिषामिषम् ।
 तत्राहं करमुद्यम्य प्रावोचंपूर्वतद्विजाः । ४२।
 काकाश्रवैः किमेतैर्वोपद्यस्तिज्ञानशालिताः ।
 व्याकुलुर्ध्वं ततः प्रदत्तात्ममदुविषहम्बहून् । ४३।

जिस विशाल ग्राम में परम पुण्यदायी महापुरुषों के संकडों ही अनिष्टेष्ट आश्रम बने हुए थे और जिस ग्राम में सभी जीवों में परस्पर में अग्न्योन्म के प्रति नबंदा दुष्टता की भावना थी ही नहीं । यज्ञों के

यज्ञ करने वाले मुनियों का जो सदा उपकार के करने वाला था और धर्म वाले सत्पुरुषों का जो उपकार होता है यह कभी भी साम्य भाव को प्राप्त नहीं हुआ करता है । ३६—३७। जिस ग्राम में पविनाश के करने वाला परम स्थान था और जहाँ पर स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और हन्तकार कभी भी नष्ट नहीं हुआ करता है । हे पार्य ! जिस ग्राम में कृत्तयुग का अर्थ और बीज अवशिष्ट रहता है और सोम तथा सूर्य के वंश का एवं ब्राह्मणों का वह अभी तक भी बीज विद्यमान था । उस स्थान को मैं पहुँच कर द्विजों के आश्रमों में प्रविष्ट हुआ था । वहाँ पर मैंने देखा था कि द्विजोत्तम वृन्द अनेक प्रकार के वादों की परस्पर में चर्चा कर रहे थे । वे ब्राह्मण ऐसे ही प्रवीत हो रहे थे मानो सायान् वेद ही मूर्ति धारण करके वहाँ पर उपस्थित होकर परस्पर में विविध विषयों का चिन्तन कर रहे हों । उनमें कुछ लोग परम भेषावी थे जोकि महान् आत्मा वाले अर्थों के द्वारा प्रभूरित अर्थ को नमोगत प्राविष्य की भाँति ही विशेष रूप से क्षिप्त कर दिया करते थे । वहाँ पर मैंने भी अपना हाथ उठाकर कहा था—हे द्विजगणों ! मेरे अर्थ को भी पूर्ति कीजिए । उन कालों की भाँति इति (कौंठ-कौंठ) करने से प्रायः लोगों को क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? यदि आप लोगों में कुछ ज्ञानशीलता विद्यमान है तो मेरे किये हुए परम दुर्विषय बहुत में प्रश्नों की श्लाघा करके मुझे समझाइये । ३८-४३।

वद ब्राह्मण प्रश्नान्स्वाञ्छुत्वाऽऽघास्यामहे वयम् ।

परमो ह्येष नो लाभः प्रश्नान्पृच्छति यद्भवान् । ३४।

अहं पूर्विकमा ते वै न्यदोधन्त परस्परम् ।

अहं पूर्वमहं पूर्वमिति वीरा यथा रणे । ४५।

ततस्तान्प्रर्वं प्रश्नानहं द्वादश पूर्वान् ।

श्रुत्वा ते मामवोचन्त लीलायन्तीमुनीश्वराः । ४६।

किं ते द्विज बालप्रश्नैरमाभिः स्वल्पकेरपि ।
 अस्माकं यत्रिहीनं त्वं मन्यसे स प्रवीत्वमनु ॥४७॥
 ततोऽतिविस्मितश्चा ऽ हं मन्यमानः कृतार्थताम् ।
 तेषांनिहीनसंखिन्यप्रावोचंप्रप्रवीत्वयम् ॥४८॥
 ततः सुतनुनामा स बालोऽबालोऽभ्युवाच माम् ।
 मम मन्दायते वाणी प्रश्नैः स्वल्पैस्तत्र द्विज ! ।
 तथापि वच्मि मां यस्मात्त्रिहीनं मन्यते भवान् ॥४९॥

उन ब्राह्मणों ने कहा—दे ब्राह्मण देव ! प्राय अपने प्रश्नों को बोलिए । हम लोग उनको सुनकर उनके विषय में व्याख्यान करेंगे । यह तो हमारा परम लाभ का भवसर प्राप्त हो गया है कि प्राय हम लोगों से कतिपय प्रश्न पूछ रहे हैं ॥४७॥ उस समय में वे सब महामहामिका की भावना से परस्पर में एक दूसरे को निषेध करने लगे थे और पहिले में ही इसके प्रश्नों का उत्तर दूंगा—इस तरह से 'भै पहिले-भै पहिले' कह कर एक दूसरे से कहने लगे थे । जिस तरह वीर लोग राणस्थल में युद्ध करने के लिए स्वयं ही सर्वप्रथम जाने के लिए प्रस्तुत हुआ करते हैं । ॥४५॥ इसके अनन्तर मैंने अपने वे ही बारह पहिले बताये हुए प्रश्नों को कहा था । उन्होंने उन बारह मेरे किये हुये प्रश्नों का श्रवण करके उन मुनियों ने लीला सी करते हुए मुझसे कहा था—हे द्विज ! इन बहुत ही छोटे २ बालकों के समान प्रश्नों के करने से आपका क्या अभिप्राय है ? क्या आपने हम सबकी इतना हीन श्रेणी का मान लिया है । इन प्रश्नों का उत्तर तो यह एक बालक ही दे देगा । इसके पश्चात् मैं अत्यन्त ही विस्मित हो गया था और मैं अपने आपको परम कृतार्थ मानने लगा था । उनमें जो सबसे विहीन मैंने सोचा था उसी से मैंने कहा था—यह ही मेरे प्रश्नों का उत्तर देवे । इसके अनन्तर एक सुतनु नाम बाला बालक जो जानाधिवय के कारण भवाल या मुझसे बोला था—हे द्विज ! आपके प्रति स्वल्प प्रश्नों से मेरी वाणी मन्द हो रही है

तो भी मैं बोलता हूँ जिससे कि आप मुझको विहीन न मान लें।
१४६-४६।

अक्षरारतु द्विपञ्चाशन्मातृकायाः प्रकीर्तिताः ॥५०॥

ॐकारः प्रथमस्तत्र चतुर्दश स्वरास्तथा ।

स्पर्शाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च ॥५१॥

विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च ।

उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदपी स्मृताः ॥५२॥

इति ते कथितासस्याग्र्यं चंपां शृणु द्विज ।

अस्मिन्नर्थे चैतिहासतवकस्यामियः पुरा ॥५३॥

मिथिलायां प्रवृत्तोऽभूद्वाह्यणस्य निवेशने ।

मिथिलायापुरापुर्वात्वाह्यणः कोपुमाभिधः ॥५४॥

येन विद्या प्रपठितावर्तन्ते भुविः सा द्विज ! ।

एकत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणां स कृतावरः ॥५५॥

अणामप्यनवच्छिन्नं पठित्वागेहवानभूत् ।

सतः केनाऽपि कालेनकोपुमस्याऽभवत्सुतः ॥५६॥

सुतनु ने कहा—कुल मक्षर वाहन हैं जो मातृका के प्रकीर्तित किए गये हैं। उनमें ॐकार सबसे प्रथम मक्षर होता है तथा चौदह उनमें स्वर हुआ करते हैं और लेनीस स्पर्श सजा वाले चर्या होते हैं तथा अनुस्वार, विसर्जनीय, जिह्वा मूलीय और उपध्मानीय भी होते हैं—ये सब पचास हो वाहन मक्षर है। हे द्विज ! यह पूरी संख्या तो मैंने आपकी बतलायी है अब इनके अर्थ का भी आप मुझमें व्यवस्था कीजिये। इस अर्थ में एक इतिहास जो पढ़िने का है उसे मैं पढ़ने आपकी बनचा—ऊँचा ॥५०—५३॥ यह इतिहास एक ब्राह्मण के घर में मिथिला में प्रवृत्त हुआ था। पढ़िने मिथिला में पुरीका एक कोपुम नाम वाला ब्राह्मण था। हे द्विज ! उसने जो भी सूत्रपद्धत में विद्यमान थी वे सभी विद्यार्थ पढ़ भी गये। उसने द्वादश सहस्र वर्षों तक आदर पूर्वक विद्या का

मध्ययन किया था । एक क्षण भी उसने नष्ट नहीं किया था । समस्त विद्या पढ़कर फिर वह गेह वाला हुआ था । इसके उपरान्त किसी काल में उस कौशुम विप्र के घर में पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । १५४।१५।१६।

जडवद्वर्त्तमानः स मातृकां प्रत्यपद्यत ।
 पठित्वा मातृकामन्यत्रांघ्येति स कथञ्चन । १५।
 ततः पिता खिन्नरूपी जडं तं समभाषत ।
 अधीष्वपुत्रकाधीष्वतवदास्यामिमोदकान् । १५।
 अथाऽन्यस्मिं प्रदास्यामि कर्णावृत्पाटयामि ते । १६।
 तात किं मोदकार्याय पठ्यते लोभहेतवे ।
 पठनं नाम यत्पुसां परमार्थं हि तस्मृतम् । १६।
 एवं ते वदमानस्य आयुर्भवतुब्रह्मणः ।
 साध्वी बुद्धिरियंतेऽस्तु कुतोनाघ्येऽपतः परम् । १६।
 तात सर्वं परिज्ञेयं ज्ञातमत्रैव वै यतः ।
 ततः परं कण्ठशोषः किमर्थं क्रियते वद । १६।
 विचित्रंभाषसेवात्सजातोऽत्रार्थंश्रकस्त्वया ।
 ब्रूहिब्रूहिपुनर्वत्सश्रोतुमिच्छामितेगिरम् । १६।

वह पुत्र एक जड की भाँति ही रहा करता था । उसने बड़ी कठिनाई से मातृका का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । उस, केवल मातृका को पढ़कर वह किसी भी प्रकार से अन्य कुछ भी नहीं पढ़ता था । इसके प्रसंग पर उसका पिता बहुत ही खिन्न हो गया था । उस कौशुम ने उस अपने जड पुत्र से कहा था—हे पुत्र ! पढ़ो-पढ़ो, मैं तुमको खाने के लिए मोदक दूँगा । यदि तुम नहीं पढ़ोगे तो वे मोदक मैं किसी अन्य को दे दूँगा और तुम्हारे काल उखाड़ डालूँगा । १५।१६।१६। पुत्र ने अपने पिता से कहा—हे तात ! क्या लोभ के ही कारण से मोदकों के पाने के लिये मध्ययन किया जाता करता है । यह मध्ययन तो पुत्रों का पर-सार्थ कहा गया है । कौशुम ने कहा—इस प्रकार से बोलने वाले तुम्हारी

आयु ब्रह्मा की आयु जैसी हो जावे । यह तो तुम्हारी बुद्धि घटीव साक्षी है फिर तुम आगे क्यों नहीं पढ़ने हो ? । पुत्र ने उत्तर दिया पा-हे तात ! इसी मे सभी कुछ परिश्रम अर्थात् जानने के योग्य मैंने जान लिया है । इससे आगे किस प्रयोजन के लिए व्यर्थ ही कण्ठ का शोषण किया जाता है ? आपही मुझे बतलाइये । ६०। ६१। ६२। पिता ने कहा-हे बालक ! तुम तो पर्यन्त ही विचित्र बात कह रहे हो । बतलाओ, तुमने इसी मे क्या जान लिया है ? हे ब्रह्म ! बतलाओ, बोनो, मैं तुम्हारी वाणी के श्रवण करने की उत्कट इच्छा रखता हूँ । ६३।

एकत्रिंशत्सहस्राणि पठित्वापित्वयापितः ।
 नानातर्कनिभ्रान्तिरेवसधितामनसिस्वके । ६४।
 अथमय चायमिति धर्मो यो दर्शनोदितः ।
 तेषु वातायते चेतस्तव तन्नाशयामि ते । ६५।
 उपदेश पठस्येव नैवार्थज्ञोऽसितत्त्वतः ।
 पाठमात्रा हि मे विप्रा द्विपदाः पशवो हि ते । ६६।
 तत्ते ब्रवीमि तद्वाक्यं मोहमार्तण्डमद्भुतम् । ६७।
 अकारः कथितोब्रह्मा उकारोविष्णुहव्यते ।
 मकारश्चस्मृतोरुद्रस्यश्चैते गुणाः स्मृताः । ६८।
 अर्धमात्रा च या सन्नि परमः स सदाशिवः ।
 एवमोकारमाहात्म्यंश्रुतिरेवा सनातनी । ६९।
 अकारस्य च माहात्म्यं याथात्म्येननशयते ।
 वर्षाणामयुतेनाऽपिग्रन्थकोटिभिरेववा । ७०।

पुत्र ने कहा-हे पिताजी ! आपके इच्छीत सहस्र वर्ष पर्यन्त अनेक सर्गों को पढ़कर भी आने मन मे भ्रान्ति की ही संशय किया है । दर्शन शास्त्रों के द्वारा कहा गया यह-यह जो धर्म है । उन धर्मों में आपका चित्त वायु की भाँति भ्रमित हो रहा है । उनका मैं शय विनाश करता हूँ । आप उपदेश करना ही पड़े हुए हैं । तात्पर्य रूप से आप

मयों के ज्ञाता नहीं हैं । जो विप्र केवल का पाठ ही का ज्ञान रखा करते हैं वे द्विपद होते हुए भी पशु ही हुआ करते हैं । इसीलिए मैं आपको मद्घुत मोह के भन्धकार के नाश करने वाली मार्चण्डि रूपी वाक्य को बतलाता हूँ । यह अकार ब्रह्मा कहा गया है और उकार विष्णु कहा जाता है । मकार छद्म कहा गया है । ये तीन गुण बतलाये गये हैं । जो यह सर्व सद्मा मूर्धा में हैं वह परम सदाशिव है । इस प्रकार से इस अकार का माहात्म्य है । यही परम सदाशिवी श्रुति है । इस अकार का माहात्म्य षड्युगी वर्णों में करीबी षण्णों के द्वारा भी स्याद्य रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता है । ६४—७०।

पुनर्यत्सारासर्वस्व प्रोक्त तच्छ्रुयता परम् ।
 अ का गता अकाराता मनवस्ते त्ततुर्दश । ७१।
 स्वामम्भुवश्च स्वारोचिरोत्तमोदेवनस्तथा ।
 तामसश्चास्युषः यष्टस्तथा वैवस्वतोऽधुना । ७२।
 सार्वगिर्ब्रह्मसादर्शो रुद्रगार्वाणरेव च ।
 उक्षमावर्णरेवाऽपि धम सार्वणिनेव च । ७३।
 रीच्यो भीत्यस्तथा चापि मनवोऽपि अनुर्दश ।
 इवेत. पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्र. पीतश्च कापिलः । ७४।
 कुण्डलः शोभन्तथा घुम्रः सुपिञ्जलः पशङ्गकः ।
 त्रिदशः शबलावर्णो ककंभुरइतिक्रमात् । ७५।
 वैवस्वत. क्षकारश्च तात कुण्डलः प्रहृष्यते ।
 ककाराद्या हकारान्ताभ्यस्त्रिंशच्च देवतः । ७६।
 ककाराद्याः ककारान्ताभावित्याद्वादशस्मृताः ।
 मारुतमिश्रोऽयं पाशको ब्रह्मणश्चाशुरेव च । ७७।
 भगो विवस्वाभूपाच सवितादशमन्तथा ।
 एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादश उच्यते । ७८।

फिर भी जो सार का सर्वस्व है वह मैंने बतला दिया है । इसके भी भागे साय और श्वश्रु कीजिए । मरार है सादि में जिनके धोर 'भा' यह है अन्त में जिनके ऐसे जो ये चौदह स्वर हैं वे ही चौदह मनुष्य हैं । उन चौदह मनुष्यों के ये नाम होते हैं—स्वायम्भुव, स्वारीचिष, उत्तम, रैवत, सामस, चाक्षुष छटा है । इस समय में वैवस्वत मनुष्यमान है । सायणों, प्रह्ला सावर्णों, रुद्र साकर्णों, दस सावर्णों, धर्म सावर्णों, रोच्य और भीष ये ही चौदह मनुष्य हुए करते हैं । श्वेत, पाण्डु, रक्त, तास पीत, कापिन, कृष्ण, श्याम, धूस, सुपिण्डक पिण्डक, निवर्ण, वर्णों से शवन और कर्कशुर इस क्रम में उन चौदहो मनुष्यों के वर्ण होते हैं । हे तास ! वैवस्वत और अकार कृष्ण दिखलाई देता है । ककार जिनके सादि में है वे सब ह्यारान्न चर्मन्त तेलीस देवता हैं । ककार से सादि नेकर उकार के अन्त पर्यन्त द्वादश सादित्य कहे गये हैं । उन बारहो सादित्यो के नाम ये होते हैं—धृ त, मित्र, धर्ममा, वाक, बहण, मंसु भग, विवश्वद, पूषा, दशर्षा सविता, एकादशर्षा स्वष्टा और बारहर्षा विष्णु नाम कहा जाता है । ७१ ७८।

अधन्यजः स सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः ।

डकाराद्यथकारान्ता रुद्राश्चैकादशैवतु । ७६।

कपाली पिङ्गता भीमो विष्णाक्षो निनोहितः ।

अजक. शासन. शास्ता शम्भुश्चण्डो भवस्तथा । ७७।

भनारद्या यकारात्ताम्रष्टौहिवसवोमताः ।

ध्रुवो धोरश्चसोमश्चआपश्चैवनलोर्निलः । ७८।

प्रत्सूपश्चप्रभाशश्चअष्टौतेजसवः स्मृताः ।

सो हृद्वेत्यश्विनोरुयानो नयस्त्रिधादिमेस्मृताः । ७९।

अनुस्यारो विसर्गश्च जिह्वामूलोयएव च ।

उपश्रमानोयइत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजाः । ८०।

स्वेदजाश्चोद्भिजाश्चैवित्तजीवाः प्रकीर्तितः ।

सावार्थः कश्चित्स्वार्थस्तस्वार्थश्चगुणां प्रथमम् । ८१।

यह इन समस्त आदित्यों से जपन्यज अर्थात् सबसे अन्त में समुपन्य होने वाला है किन्तु जपन्यज होते हुए भी गुणों में सबसे अधिक है। इकार से आदि लेकर बकारान्त पर्यन्त एकादश रुद्र होते हैं। उन एकादश रुद्रों के नाम ये होते हैं—कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, भ्रजक, शासन शास्ता, शम्भु, चण्ड, भव। भकार से आरम्भ करके पकार के अन्त तक आठ वसुगण कहे गये हैं। दोनों प्रकार और हजार ये दो अश्विनी कुमार प्रसिद्ध हैं। इस रीति से वे त्रैलोक्य देवगण बचाये गये हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वाभूवीय और उपध्मानीय ये चारों जरायुज, अण्डुज, स्त्रेदज और उद्विज ये चार प्रकार के जीव कौत्तिन किये गये हैं। यह मैंने इतका भाषार्थ का दिया है। अब इसका तत्त्वार्थ भी आप श्रवण कीजिये। ७६-८४।

ये पुमांसस्त्वमून्देवांसमाश्रित्य क्रियापराः।

अर्धं मात्रात्मकेनित्येपदेत्सीनास्तएवहि ॥८१॥

चतुर्णां जीवयोनीना तदैव परिमुच्यते ।

यदाभून्मनसा वाचा कर्मणा च यजेत्सुरान् ॥८२॥

यस्मिञ्छास्त्रं त्वमी देवा मानिता नैव पापिभिः ।

तच्छास्त्रं हि न मन्तव्यं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ॥८३॥

अमीचदेवाः सर्वत्र श्रौते मार्गे प्रतिष्ठिताः ।

पापण्डशास्त्रे सर्वत्र निषिद्धाः पापकर्मभिः ॥८४॥

तदमन्ये व्यतिक्रम्य तपो दानमयो जपम् ।

प्रकुर्वन्ति दुरात्मानो वेपन्ते मरुतः पथि ॥८५॥

अहोमोहस्यमाहात्म्यं पश्यताऽविजितात्मनाम् ।

पठन्तिमातृक्षंपापामन्यन्तेनसुरानिह ॥८६॥

जो मनुष्य न देवों का समाश्रय ग्रहण करके क्रिया में परायास रहा करते हैं वे अर्धं मात्रात्मक नित्य पद में तीन ही होते हैं। चार प्रकार की बीबी की योनियों का परिमोचन उन्हीं समय में हुआ करता

है जबकि मन, वाणी और कर्म के द्वारा सुरु का यजन होता है । जिस शास्त्र में ये सब देवगण हैं । वापियों के द्वारा ये सब देवगण नहीं माने जाये हैं । ऐसा शास्त्र भी कभी नहीं मानना चाहिये चाहे वक्ता साक्षात् ब्रह्मा ही क्यों न कहते हों । १८५-१८७। ये देवगण सर्वत्र थीं (वैदिक) मार्ग में प्रतिष्ठित होते हैं । वापण्ड शास्त्र में सब जगह पाप कर्म करने वालों के द्वारा निरिच्छ किय गए हैं । सो जो लोग इन देव गृहों का विशेष रूप से परिश्रमण करते हैं, मन तथा उप क्रिया करने हैं वे दुष्ट पाप्मा वाले पुरुष व धु के मार्ग कश्चित् दुष्मा करते हैं । बड़े ही आश्चर्य की बात है अद्विजित प्रादयासो वाले पुरो के मोह के इस माहात्म्य को देखिए । ये लोग सातुका का पाठ ही किया करते हैं अर्थात् इसका अध्ययन करते हैं किन्तु वापात्मा लोग इनमें सुरु को नहीं मानते हैं । १८८-१९०।

इति तस्यवचः श्रुत्वा पित्राऽभ्युदितिदिमितः ।

पप्रच्छचं ब्रह्मप्रश्नान्मोष्यवादीतयातया । १८१।

मयापि तव प्रोक्तोऽयं सातुकाप्रश्न उत्तमः ।

द्वितीयं शृणु त प्रश्नं पञ्चपवाद्भुतं गृहम् । १८२।

पञ्चभूतानि पंचैव कर्मज्ञानेन्द्रियाणि च ।

पञ्च पचाऽपि त्रिपया मनोबुद्ध्यहमेव च । १८३।

प्रकृतिः पुष्पञ्चैव पञ्चविजः सदाशिवः ।

पंचपवसिरेतस्तु निष्पन्नं गृहमुच्यते । १८४।

देहमेतद्विदं वेदं तत्त्वतो यात्यसौशिवम् ।

ब्रह्मण्या स्त्रियश्च ब्राह्मबुद्धिं वेदान्तवादिनः । १८५।

सा हि नानायेभ्यनाज्ञानाख्यं प्रपद्यते ।

धर्मस्यैतस्य तयोगाद्ब्रह्मसाध्यैकिकैव सा । १८६।

इति श्री वेद तत्त्वार्थशास्त्री नरकमाधुयात् ।

मुनिभिर्यद्य न प्रोक्तं यद्य मन्येतदवतान् । १८७।

वचनं तद्वुधाः प्राहूर्वन्धचित्रकथं त्विति ।

यज्ञकामान्वितवाक्पचमवाप्यतः शृणु ॥६८॥

सुक्तनु ने कहा--उम अपने पुत्र के इस वचन का श्रवण करके पिता अत्यन्त विस्मित हो गये थे । फिर पिता ने उमसे बहुत से प्रश्नों को पूछा या सो वे भी उसने ठीक २ बतला दिए थे । मेरे द्वारा जो प्रायका यही उत्तम मातृका प्रश्न कदा गया है । अब प्राय आना दूसरा प्रश्न मुनिवे जो कि पञ्च पञ्चाद्भुत गृहम् है ॥६१॥६२॥ पाँच तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच भूत होते हैं और पाँच ही इन्द्रियाँ हैं जो कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । इनके पाँच-पाँच ही विषय होते हैं । मन, बुद्धि, अहङ्कार, प्रकृति और पुष्प ये भी पाँच हैं इस प्रकार से पञ्चीस तत्वों से परिपूर्ण नद शिव हैं । इन्हीं पाँच-पाँचों से निष्पन्न गृह कहा जाया करता है ॥६३॥६४॥ इसको देह जानते हैं और तत्त्व से यह शिव को प्राप्त किया करता है । वेदान्त वादी लोग इस बुद्धि की ही बहुत से रूपों वाली स्त्री कहा करते हैं ॥६५॥ वह अनेक प्रकार के प्रयों का धेवन करने से नाना भक्ति के स्वरूप को प्राप्त कर लिया करती है । केवल एक धर्म का जब इसके साथ संयोग प्राप्त हो जाया करता है तो यह बहुत प्रकार की भी एक ही हो जाती है । इस प्रकार में जो भी कोई तत्त्वार्थ को जान लिया करता है वह फिर कभी भी नरक की प्राप्ति नहीं किया करता है । त्रिमूर्ति मुनियों ने नदी कहा है कि देवतों को नहीं मानना चाहिये । कुछ पुष्प किन्न कथा सुक्ता बन्ध वचन को माना करते हैं । जो अमान्वित वाक्प है प्रयाग पञ्चम है । इसलिये उसका श्रवण करो ॥६६॥६७॥६८॥

एको लोभो महान्प्राहोलीभात्पापं प्रवर्तते ।

लोभात्क्रोधः प्रभवतिलोभात्कामः प्रवर्तते ॥६९॥

लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परेष्मृता ।

अविद्याऽप्रज्ञा चैव सर्वं लोभात्प्रवर्तते ॥७०॥

हरणं परवित्तानां परदाराभिमर्शनम् ।
 साहसानां च सर्वेषामकार्षणीं क्रियास्तथा ॥१०१॥
 स लोभः सह मोहेन विजेत्तद्योजितात्मना ।
 दम्भोद्रोहश्च निन्दा च पैशुन्यं मत्सरस्तथा ॥१०२॥
 भवन्त्येतानि सर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम् ।
 सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुभ्रुताः ॥१०३॥
 छेतारः सशयानाश्च लोभप्रस्ताव्रजन्त्यधः ।
 लोभक्रोधप्रमत्ताश्च शिष्टाचारवहिष्कृताः ॥१०४॥
 मन्तः क्षुरावाङ्गधुराः कृपाश्चन्द्रास्तृणैरिव ।
 कुर्वन्ते ये बहून्मार्गास्तांस्तान्हेतुबलान्विताः ॥१०५॥

यह एक लोभ ही महान् घाह है । इस लोभ से पाप प्रवृत्त हुआ करता है । लोभ से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है । लोभ ही से काम समुदाग्र होना है । लोभ से ही मोड़, माया, मान, स्वप्न, परेप्सुता, अविद्या, अप्रज्ञता से सभी एक मात्र लोभ से ही प्रवृत्ति हुमा करते हैं ॥६६॥१००॥ पराये धनो का हरण, पराई स्त्रियों का अभिमर्शन, सभी प्रकार के साहसों का तथा प्रकाम्यों की क्रियायें भी लोभ के ही कारण से हुमा करते हैं अतएव वितात्म्या पुरुष के द्वारा यही लोभ मोह के सहित जीन लेना चाहिये । दम्भ, द्रोह, निन्दा, पैशुन्य तथा मत्सरता से सभी भ्रूतात्मा लुब्धक पुरुषों की ही हुमा करते हैं । बहुभ्रुत लोग अर्थात् ऐसे पुरुष जिन्होंने बहुत क्रुद्ध सुन रखा है बड़े २ दास्यों को हृदय में धारण किया करते हैं । ये लोग सभी तरह के संशयो का छेदन करने वाले होते हैं किन्तु जब ये लोभ से प्रसन्न हो जाते हैं तो इनका अर्थ धन ही बाया करता है । काम और क्रोध से प्रसक्त, शिष्ट पुरुषों के आचार से बहिष्कृत हुए—त्रिषही अन्तकरण तो उत्तरे के ममान कर्त्तन करने वाला होना है तथा वाली बहुत मधुर हुमा करती है जिस तरह से क्रुप नृणों से समाध्यादिन होते । ऐसे

लोग जो होते हैं वे बल से समन्वित हो हर उन-उन बहुत से मार्गों को किया करते हैं ।१०१—१०५।

सर्वमार्गं विलुम्पन्ति लोभाज्जातिषु निष्ठुराः ।
 घर्मावत्तसकाः क्षुद्रा मुष्णान्त इवजिनो जगत् ।१०६।
 एतेऽतिपापिनोऽज्ञया नित्य लोभसमन्विताः ।
 जनको युवनाश्वश्चवृषादभिः प्रसेनजित् १०७।
 लोभक्षयाद्विप्राप्तास्तथैवान्येजनाविपा. ।
 तस्मात्प्रजतियेलोभन्तेऽनिकामंतिसागरम् ।।०८।
 संसाराख्यमताऽन्ये ये ग्राह्यस्ता न सशयः ।
 अथ ब्राह्मणभेदास्त्वमष्टौ विप्रावधारय ।१०९।
 मायश्च ब्राह्मणश्चैव श्रौत्रिगश्च ततः परम् ।
 अद्वचानस्तथा भ्रूण ऋषिकल्प. ऋषिर्मुनिः ।।१०।
 एते ह्यष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणा प्रथमं श्रुती ।
 तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तिविशेषतः ।१११।
 ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रोऽयमवेत् ।
 अनुपेतः क्रियाहीनोमात्र इत्यभिधीयते ।११२।

लोभ से जातियों में महात् निष्ठुर सभी मार्गों को विलुप्त कर दिया क ते हैं । ये घर्मावत्तसक, क्षुद्र इनही लोग इन जगत् को ठगा करते हैं अर्थात् लोभ से डाल दिया करते हैं । इन लोगों को अत्यन्त अधिक पापी समझना चाहिए क्योंकि ये लोग नित्य ही लोभ से समन्वित रहते हैं । जनक, युवनाश्व, वृषादभि और प्रसेनजित् ने लोग लोभ के लय होने से ही दिव लोक को प्राप्त हो गये । इसी भाँति अन्य भी बहुत से जनावियों ने एकमात्र लोभ का परित्याग करके स्वर्गलोक की प्राप्ति की है । इसलिए जो लोग इस लोभ का परित्याग कर दिया करते हैं वे इस संसार की सागर को पार करके तैर जाया करते हैं । यह संसार नाम वाला सागर है । जो अन्य पुरुष होते हैं वे इसमें ग्राह से

ग्रस्त ही रहा करने हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। इसके अनन्तर हे विप्रदेव ! पात्र सब पाठ प्रकार के जो ब्राह्मणों के भेद होते हैं उनका अवधारण कर लो। मात्र, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, इसके भागे अनुचान, भ्रूण, ऋषिकल्प, ऋषि और मुनि ये पाठ ब्राह्मणों के भेद होते हैं जोकि ब्राह्मण समुद्दिष्ट किए गए हैं। श्रुति में प्रथम ही इनको बतलाया गया है। इन पाठ प्रकार के भेदों में जो भागे भागे बतलाया गया है वह ही अविश्रय श्रेष्ठ होता है और विद्या तथा धरित्र से युक्त होने वाला विशेष रूप से श्रेष्ठ माना गया है। जो ब्राह्मणों के कुल में समुत्पन्न हुआ है और तेजस जाति में ही जन्म ग्रहण करने वाला होता है तथा सब प्रकार से अनुपेत एव क्रिया से होन हुआ करता है वह ब्राह्मण 'मात्र' इस नाम से कहा जाया करता है। १०६—११२।

एकोद्देश्यमतिक्रम्य वेदस्याऽऽचारवानृजुः ।

स ब्राह्मणइतिप्रोक्तोनिभृतः सत्यवाग्धृणो ॥११३॥

एका शाखां सकल्पांचपङ्क्तिरङ्गैरधीत्यच ।

पट्वमनिरतो विप्र श्रोत्रियोनामधर्मवित् ॥११४॥

वेदवेदागतस्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः ।

श्रेष्ठः श्रात्रियवान्प्राज्ञः सोऽनुचानइतिस्मृतः ॥११५॥

अनुचानगुणोपेतोयज्ञस्याध्यायन्वितः ।

भ्रूण इत्युच्यते शिष्टैः शेषभोजीजितेन्द्रियः ॥११६॥

वैदिकंलोकिकं चैव सर्वज्ञानमवाप्य यः ।

आश्रमस्थाः वशोनित्यमृषिकल्प इतिस्मृतः ॥११७॥

ऊर्ध्वरेता भयस्वरन्धो नियताशी न संशयो ।

दावानुग्रहयोः शतः सत्यसधो भवेदृषिः ॥११८॥

निवृत्तः सर्वतस्त्वज्ञः कामत्रोषविवर्जितः ।

ध्यानस्थो निष्क्रमो दाग्तस्तुल्यमृताश्चनो मुनिः ॥११९॥

एकीदेश्य का प्रतिकरण करके जो वेद के आचार वाला होता है और परम सरल हुआ करता है वह 'ब्राह्मण' इस नाम से कहा गया है । जो परम निभृत, सत्य वचन बोलने वाला, पृणी तथा वेद की किसी एक शाखा की कल्प के सहित एवं छँ प्रज्ञो से तयुत अध्ययन करणं पट् कर्मों में जो धर्म का वेत्ता सदा निरत रहा करता है हे विप्र ! उसको 'श्रोत्रिय' कहा जाता है । ११३। ११४। जो वेदों और वेदों के अङ्ग शास्त्रों के तत्वों का पूर्ण ज्ञाता होता है, शुद्ध आत्मा वाला, पापों से रहित, परम श्रेष्ठ, श्रोत्रियवान्, प्राज्ञ होता है वह 'मनूवान्' कहा गया है । जो अनूतान में रहने वाले समस्त गुरुओं से सुसम्पन्न तथा यज्ञ और स्वाध्याय में यन्त्रित रहने वाला होता है उसको 'भ्रूण' इस नाम से शिष्टो के द्वारा कहा जाया करता है । जो शेष भोजी इन्द्रियों का धपने बरा से रखकर जीत लेने वाला, वैदिक और लौकिक सभी प्रकार के ज्ञान को प्राप्त कर लेने वाला, आश्रम में संस्थित, निह्य बन्धी अर्थात् सदा आपने आप पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाला होता है वह 'ऋषियन्त्र' इस नाम से कहा गया है । जो कर्मरेता, प्राम, नियत ध्यान करणं वाला, समय से रहित तथा ज्ञाप देने में एवं अनुग्रह करने में पूर्ण शक्ति रखने वाला, सत्य प्रतिज्ञा करने वाला होता है वह 'ऋषि' इस नाम से कहा जाया करता है । जो सभी प्रकार की प्रवृत्तियों से निवृत्त रहने वाला, सब प्रकार के तत्वों का पूर्ण ज्ञाता है, काम और क्रोध से रहित है, ध्यान में स्थित रहने वाला, निष्क्रिय, परम दमन शील तथा मिट्टी और सुवर्ण दोनों में समान भावना रखने वाला होता है वह 'मुनि'— इस नाम से कहा जाया करता है । ११५ — ११६।

एवमन्वयविद्याभ्यां वृत्तेन च समुच्छ्रिताः ।

त्रिशुक्जानामविप्रेभ्द्राः पूज्यन्ते सवनादिषु । १२०।

इत्येवंविधविप्रत्वमुक्तं शृणु युगादयः ।

सवमी कार्तिके शुक्ला कृतादिः परिकीर्तिता । १२१।

वैशाखस्य तृतीया या शुक्ला त्रेतादिश्च्यते ।

माघे पञ्चदशीनाम द्वापरदिः स्मृतावुर्धः । १२२।

त्रयोदशी नभस्येच कृष्णासाहिकलेः स्मृतः।।

युगादयः स्मृताह्येतादत्तस्याक्षयकारकाः । १२३।

एताश्चतस्रस्तिथयो युगाद्या दत्तं हुतं चाऽक्षयमाशु विद्यात् ।

युगे युगे वर्षंशतेन दान युगादिकाले दिवसेन तत्फलम् । १२४।

युगाद्या कथिता ह्येता भन्वाद्याः श्रुणु साम्प्रतम् ।

अश्वयुवद्युक्कलनवमी द्वादशी कार्तिके तथा । १२५।

तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च ।

फाल्गुनस्यत्वंमासास्यापीषस्यैकादशीतथा । १२६।

इस गीति से वन और विद्या तथा चरित्र से जो समृद्धिजन होते हैं वे ही त्रिशुक्ल पर्यान्तीना प्रकार से शुक्ल पित्रेन्द्र सत्र प्रभृति में पूजा करने के योग्य हुपा करते हैं। इस तरह से विषों की किस्में में आपको बतला दी है। अब युगादि के विषय में आप श्रवण करिये। कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की जो नवमी तिथि होती है जिसको अक्षय नवमी कहते हैं वही कृतयुग के अदि का दिन कीर्तित किया गया है अर्थात् नवमी से ही कृतयुग का आरम्भ होना है। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की जो तृतीया तिथि है जिसको अक्षय तृतीया कहते हैं उसी दिन से त्रेता युग का आरम्भ होता है अर्थात् वही त्रेता का अदि दिन है। माघ मास की पञ्चदशी तिथि पर्यान्ती पूर्णिमा द्वापर युग का अदि दिवस है जिसकी बुधों के द्वारा कहा गया है। नभस्य मास की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि कलियुग का अदि दिवस है। इस तरह से युगों के अदि दिवस बनना दिए गये हैं जो कि दिये हुए दानों के अक्षय करने वाले होते हैं। ये चार तिथि। युगों के अदि दिन हैं। इन तिथियों में दिया हुआ दान, हवन शीघ्र ही अक्षयता को प्राप्त हो जाता करता है—ऐसा जान ली। युग-युग में भी वर्ष तक जो दान का फल

होता है वह गुरुओं के भादि दिवस में दिए हुए दान का फल हूँषा करता है । ये गुरुों के भादि दिवस तो कहे दिए गये हैं । अब मनुष्यों के भी भादि दिवस मृत लीजिए । श्राद्धिन मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तथा कार्तिक मास की द्वादशी, चैत्र मास की तृतीया तथा भाद्रपद मास की वृतीका, फाल्गुन मास की समावस्या और वीर मास की एकादशी ।
 ११२०-२२६।

आषाढस्याऽपि दशमीमासमासस्य सप्तमी ।
 श्रावणस्याष्टमीकृष्णान्तथापाटीचपूर्णिमा ११२७।
 कार्तिकी फाल्गुनीचैत्री ज्येष्ठेपञ्चदशीसिता ।
 मन्वन्त रादश्र्वेतावनस्याध्वकारकाः ११२८।
 यस्यां तिस्रो रथं पूर्वं प्राण देवो दिवाकरः ।
 सा तिस्रिः कथिता विप्रमाघेयारथमन्तमी ११ ६।
 तस्या दत्तं हृतं चेष्टं सवमेवाऽऽजय मठम् ।
 सर्वदादिदधमन्तं मास्वरप्रोतये मतम् ११३०।
 नित्योद्देष्टकमाहुषं बुधास्तंशृणुतत्वतः ।
 यश्चयाचतिकोनिस्थत स स्वर्गस्य भाजनम् ११३१।
 सद्देवयति भूतान यथा चौरास्तथैव सः ।
 नरकपातिपापत्मानित्योद्देष्टकरस्त्वमी ११३२।
 इहोपमात्तमं न केन कसेणा वद च प्रयातव्यमितो मयेति ।
 विचार्यं चैवं प्रतिकारकारी बुधैः स चोक्तो द्विज ! दक्षदक्ष ।
 ११३३।

आषाढ मास की दशमी, माघ मास की सप्तमी, श्रावण मास की अष्टमी, माघाकी पूर्णिमा, कार्तिकी, फाल्गुनी, चैत्री और ज्येष्ठ मास की सिता पञ्चदशी ये सब तिथियाँ मन्वन्तरी की भादि तिथियाँ हैं । इन तिथियों में दिया हुआ दान प्रक्षय करने जाना होता है । जिस तिथि में सबसे पूर्व दिवाकर ने रथ की प्राप्ति की थी वह विशेष के द्वारा नाव

मास में जो रथ सप्तमी होती है वही कही गयी है । उस तिथि का भी बड़ा अधिक महत्व होता है । उस रथ सप्तमी के दिन म दिया हुआ धान, हवन तथा भग्न्य भी इष्ट आदि की उपासना सभी कुछ भक्ष्य हो जायग करता है । यह समस्त प्रकार की दरिद्रता के शमन करने वाला होता है क्योंकि इसमें कुछ भी पुण्य कर्म करने भगवान भास्वर देव परम प्रसन्न हुआ करते हैं । जिसको युध पुष्य नित्य ही उद्वेग उपन्न करने वाला कहा करते हैं उनके विषय में भी भव प्राय नात्तिक रूप से श्रवण करिए । जो नित्य ही याचना करने वाला होता है वह कभी भी स्वर्ग प्राप्त करने का अधिकारी नहीं हुआ करता है । यह समस्त मूलों को उद्विग्न किया करता है जिस तरह से चोर उद्वेजक होते हैं वैसे ही यह भी हुआ करता है । ऐसा व्यक्ति भयग्न्य पापभ्रमा होता है और नरक में गमन किया करता है क्योंकि यह नित्य ही उद्वेग के करने वाला होता है । यहाँ सप्तर में मेरी किस कर्म के द्वारा उपपत्ति होगी और मुझे यहाँ से कहाँ पर प्रयाण करना चाहिये इस तरह से जो विचार करके प्रतिकार करने वाला पुरुष होता है युधो के द्वारा वही पुरुष है द्विज ! दशो में भी परम दश कहा गया है । १२७ — १३३ ।

मासंरष्टभिरह्ला च पूर्वेषु वयसाऽऽपुषा ।
 तत्कर्म पुरुष. कुर्याद्येनान्तेसुखमेवते । १३४ ।
 अनिधूमश्च मार्गो द्वावाहुर्वेदान्तवादिनः ।
 अचिषा याति मोक्षश्च धूमनाऽऽवर्ततेपुनः । १३५ ।
 यशोरासाद्यते धूमो नैष्कर्म्येणाचिराप्यते ।
 एतयोरपरो मार्गः पाखण्ड इति कीर्त्यते । १३६ ।
 यो देवान्मन्यतेनैवधर्माश्चमनुभूचितान् ।
 नैती सयातिपरधानीतत्त्वार्थोऽय निरूपितः । १३७ ।
 इतितेकीर्तिताः प्रदनाः दावत्यान्नाह्यणसत्तम ।
 साधुवाग्माधुवाग्नुहिश्यापयाऽऽश्मनमेवच । १३८ ।

पुरुष को प्राप्त मान पूर्व, दिन, क्य और अपनी वायु के द्वारा वही कर्म करना चाहिए जिससे भ्रत में सुख का लाभ होता है । १३४। वेदान्त वादी विद्वान् प्राचि और घूम ये दो मार्ग बतलाया करते हैं । प्राचि नामक मार्ग के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति किया करता है और घूम मार्ग से पुनः आवर्तन किया करता है । यज्ञों से द्वारा घूम प्राप्त किया जाता है और निष्कर्मता प्राचि का समासादन किया जाता है । इन दोनों मार्गों से प्रतिरिक्त हमारा मार्ग परमार्थ कहा जाता है । जो पुरुष वेदों को नहीं मानता है और अनुसूचित धर्मों को भी नहीं मानता है । वह इन दोनों मार्गों में नहीं जाया करता है —यही सबका तदर्थ निरूपित कर दिया गया है । इसी रीति में ये सब धर्मों के किये गये प्रश्नों का उत्तर दे दिया गया है । यह उत्तर साधु धर्मयु है—यह हमको बतलाए और अपने आपका भी परिचय प्रदान करे । १३५-१३६।

१६— शिवपूजनमाहात्म्यवर्णन

अथ ते दृश्युः पाणं संयमस्थं महामुनिम् ।
 क्रियायोगसमायुक्तं तपोमूर्तिषटं यथा । १।
 अथाखिलवर्णस्नानकपिलाः शिरसातदा ।
 धारयन्तलोमशाख्यमाज्यसिपतमिवाऽनलम् । २।
 सव्यहस्ते कृणीष्व च ऋधामार्थं विप्रसत्तमम् ।
 दक्षिणे चाक्षमाला च विभ्रत भैत्रमार्गं यम् । ३।
 कर्हिसयन्दुस्वताद्यैः प्राणिनो भूमिचारिणः ।
 यः सिद्धिं मेति ज्वयनसमैत्रो मुनिश्च्यते । ४।
 ब्रह्मभूषद्विजालुकगृध्रकूर्मा बिलोक्य च ।
 नेमुः कलापयामे तं चिरन्तनतपोनिधिम् । ५।
 स्वामानासनसत्कारेणामुदात्तेऽतिसरकृताः ।
 यथोचितप्रतीठास्तमाहुः कार्थं हृदि स्थितम् । ६।

देवपि श्री नारद जी ने कहा — हे शार्ङ्ग ! इनके अनन्तर उन्होंने समय में सूर्यियन और क्रिया योग से सुसंज्ञित तपोभूति को धारण करने वाले महा मुनि का दर्शन किया था । उस समय में लोमश नाम वाले वे मुनिवर तीनों कालों में सगुण्य के निमित्त किये जाने वाले स्नान से कपिल वर्ण शानी जटाश्री को शिर में धारण करने वाले ये जो घृत से सिक्त प्रग्नि के ही गुह्य दिव्यलाई दे रहे थे । सव्य हस्त में धामा के लिए तूण का समूह था, दक्षिण कर में धर्मों की माना धारण किए हुये ये तथा मैत्र मार्ग में गमन करने वाले विप्र श्रेष्ठ को देखा था । शरणागते दुष्ट उक्तियों के द्वारा भूमि पर सखरण करने वाले प्राणियों को हिंसित न करने हुए जो जप्य के द्वारा भिद्रि की प्राप्ति किया करता है वह मैत्र मुनि कहनावा है । बरु, भूप, द्विज, उलूक, गृध्र और कूर्म सब उन विरन्तन तपोनिधि को देखकर कलाप ग्राम में प्रणाम किया करते थे । स्वाग्न, भाषन और सरकार के द्वारा इन मुनि से वे सब अत्यधिक सत्कृत हुआ करते थे । यथोचित रूप से ममाश्रित होते हुए वे सब करने हृदय में स्थित काय उम महा मुनीन्द्र से कहा करते थे । ४, ५, ६ ।

इन्द्रद्युम्नोऽयमवनीपतिः सत्रिजनाप्रणी ।
 कीतिलोपाश्रितस्तोऽयं वैधसानाकपृष्ठतः । ७ ।
 मार्कण्डेयादिभिः प्राप्यकीर्त्युद्धारं न सत्तम ।
 नायं कनमयतेस्वर्गेषुन पातादिभीषणम् । ८ ।
 भवताऽनुगृहीतोऽगमिहेच्छति महोदयम् ।
 प्रणोद्यास्तदयं भूपः शिष्यस्ते मगवन्मया । ९ ।
 एवत्सनाशमिहाऽऽनोतो ब्रूहि साध्वस्य वाञ्छितम् ।
 परंपकारण नाम साधूनां प्रवमाहितम् ।
 विदोषतः प्रणोद्याना शिष्यवृत्तिमुषेयुषाम् । १० ।

अप्रणोद्येषु पापेषु साधु प्रोक्तमसंशयम् ।
 विद्वेषं मरणं चाऽपि कुरुतेऽन्यतरस्य च ॥११॥
 अप्रमत्तः प्रणोद्येषु मुनिरेव प्रयच्छति ।
 तदेवेति भवानेवं धर्मं वेत्ति कुतो वयम् ॥१२॥

कर्म ने कहा—यह भवनी का स्वामी इन्द्रद्युम्न सत्री नती में प्रणोद्य है किन्तु कीर्ति के लोप हो जाने से देवा के द्वारा यह नाक (स्वयं) के पृष्ठ भाग से निरस्त कर दिया गया है। हे सत्तम ! माकण्डेय आदि महर्षियों के द्वारा भवनी कीर्ति का उद्धार प्राप्त करके यह फिर पुनः पात आदि के होने के कारण भतीव भीषण स्वयं के पाने की कामना ही नहीं करता है। भापके द्वारा यह अनुग्रहीत होना चाहिये कि यह यहाँ पर इस महान् उद्यम की इच्छा कर लेवे। इस राजा को ऐसी प्रेरणा देनी ही चाहिए। यह राजा आपका ही शिष्य है और मेरे द्वारा आपका समीप में लाया गया है। आप कृपा करके इसको साधु वाञ्छित बोलिए। दूसरों का उपकार कर देना ही साधु पुरुषों का व्रत कृपा करता है और विशेष रूप से शिष्य वृत्ति को प्राप्त हुए श्रणोद्यो का उपकार करना उनका प्राहित व्रत है। जो प्रेरणा करने के योग्य नहीं हैं ऐसे पापियों के विषय में बिना मक्षय के साधु कहा है। अन्य तर का विद्वेष और परण भी किया करते हैं। जो प्रणोद्य हैं उनके विषय में अप्रमत्त यह मुनि वह ही प्रदान किया करते है—आप ही इस प्रकार के दुर्ग धर्म को जानते हैं हम लोग इस विषय में अधिक क्या जानकारी रख सकते हैं ॥७—१२॥

कर्म ! पुनर्तमिदं सर्वं त्वयाऽभिहितमद्य नः ।
 धर्मशास्त्रोपनर्ततत्स्मारिताः स्मपुरातनम् ॥१३॥
 ब्रूहि राजभ्युविश्रब्धं सन्देहं हृदयस्थितम् ।
 कस्ते किमत्रवीक्ष्येषं वक्ष्याम्यहंनसंशयः ॥१४॥
 भगवन्प्रथमः प्रश्नस्तावदेव समोच्यताम् ।
 श्रीधमकालेऽपि मध्यस्थेरचोकिनतवाश्रयः ॥१५॥

कुटीमात्रोऽसि षच्छाया तृणैः सिदसि पाणिमैः । ११६।
 मूर्तव्यमस्यवस्य च काम एष पतिष्पति ।
 कस्याऽप्ये क्रियते गेहमनित्यं भवमध्यगैः । ११७।
 मस्य मृत्युर्भवेत्पित्रं वीतं चाऽमृतमृत्तमम् ।
 तस्यैतदुचितं वक्तुमिदं मे श्रोभविष्यति । १२०।
 इदं युगमहस्रेषु भविष्यमभवद्दिनम् ।
 तदप्यद्यस्वमापन्नं का कथा मरणाद्यधे । ११९।
 कारणानुगतं कार्यमिदं शुक्रादभूद्गुणैः ।
 कथं विशुद्धिमाप्सति क्षालिताङ्गपरवद । १२०।
 तदस्माऽपि कृते पापं क्षत्रपङ्कगनिजिता ।
 कथङ्कारं न लज्जन्ते कुर्वाणा नृपसत्तम । १२१।

महा महर्षि लोमश जी ने कहा — हे गुण ! आज आपने जो
 यह हमसे कहा है वह बहुत पुण्य है । समुचित है । आपने यह पुरातन
 धर्म शास्त्र से उगत बात का हमको स्मरण दिला दिया गया है । हे
 राजन् ! आज आपने हृदय में यिन मन्त्र को पूर्ण विषय रूप से
 बोलिये । आपको कितने क्या दिया है ? सोच में आपको बतला दूंगा—
 इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ११३ १४। राजा इन्द्रियन्त ने कहा—हे
 भगवान् ! मरना सबसे प्रथम प्रबल जो बहो है उसे आप बतलाइये कि
 इस महान घोर शीघ्र मान में भी मर विरति गहव में स्थित है इस
 आपके प्राथम में वह क्यों नहीं है ? आपके माने क्षय में रहने जाने
 हुएों से जो तिर पर हैं आपकी इस कुटी मात्र पर यह दावा कैसे है ?
 महर्षि लोमश जी ने कहा—मरना तो अवश्य ही है घोर यह बाया
 अवश्य ही विर जायेगी । इस अनित्य ससार के मध्य में लसन करने
 वालों के द्वारा निरखे लिए पर किया जावे ? त्रिगुण मृत्यु मित्र है
 बाहे उराने उत्तम मृत्यु ही क्यों न पोया हों उसकी नहीं रहना उचित
 है कि यह गुणै बन ही हो जायगी । राहस्यो युगों में होने कासा यह

दिन हुआ है वह भी अराधन को प्राप्त हो गया है । इन मरण की अवधि के विषय में तो कहना ही क्या है । १५-१६। प्रत्येक कार्य कारण के ही अनुगत हुआ करता है । यह शरीर शुक्र (बीज) से समुत्पन्न हुआ है । प्राण ही बतलाइए, यह क्षालित अङ्गार की भाँति किस प्रकार से विद्युद्धि को प्राप्त हो सकता है । तो ऐसे इस अनित्य एवं अविद्युद्ध शरीर के ही लिए छँ सन्तुष्टों के द्वारा निजित हुए मनुष्य पाप किया करते हैं । हे 'नृश्रेष्ठ' इन तरह पाप कर्मों को करते हुए भी वे मनुष्य क्यों नहीं लज्जित हुआ करते हैं । २०—२१।

तद्ब्रह्मण इहोत्पन्नः सिकताद्वयसम्भवः ।
 निगमोक्तं पठञ्छृण्वन्निदं जीविष्यतेकथम् । २२।
 तथापि वेषणवो माया माह्वयत्यविवेकिनम् ।
 हृदयस्थं वेदं च जानन्तिहागिमृत्यु शतायुषः । २३।
 दन्ताञ्जलाञ्जला लक्ष्मणोर्वीवन जीवित नृप ।
 चलानलमती वेद धानमेवं गृह नृणाम् । २४।
 इति विज्ञाय संसारमसारं च चलाचलम् ।
 कस्याऽयं क्रियते राजकुटजादिपरिग्रहः । २५।
 चिरायुर्भगवानेव श्रूयते भुवनत्रये ।
 तदर्थमहमायातस्तत्किमेव वचस्तव । २६।
 प्रतिवत्सपं मच्छरीरादेरुरोमपरिक्षयः ।
 जायते सवनाशे च मम भावि प्रमापणम् । २७।
 पश्य जानुप्रदेश मे द्दवङ्गुलं रोमवर्जितम् ।
 जात वपुस्तद्विभेमिमत् व्यसति किं गृहैः । २८।

यहाँ पर उस ब्रह्मा से सिकता द्वय से सम्भव उत्पन्न हुआ है — निगम के द्वारा कश्चिन् इनकी पढने एवं श्रवण करते हुए कैसे जीवित रहेगा । तो भी वह वेषणवो माया ऐसी अद्भुत है कि विवेकहीन पुद्गल को मोहित कर दिया करती है । मनुष्य तो वष' की प्रायु वाले भी

मरने हृदय में स्थित भी मृत्यु का ज्ञान नहीं रखा करते हैं । ये शरीर में रहने वाले दैन्य चलायमान अर्थात् अस्थिर होते हैं—यह शरीर भी चलायमान अर्थात् कभी भी एक के पास स्थिर रहने वाली नहीं है—यह जीवन और यह जीवन भी चल है अर्थात् स्थिरता से रहित ही होते हैं हे वृष ! यह सारा मैं रहने वाले सभी कुछ चलायमान है अतएव मनुष्यों का दान ही गृह होता है । यही ज्ञान प्राप्त करके इस संसार को चलायमान एवं स्थिर समझकर हे राजन् । कुत्त, घोड़े का परिग्रह किये के लिए किया जाके (२२३-२५) इन्द्रास्त्र ने कहा— इस भुवन जगत् में एक मात्र ही चिरायु है—ऐसा ही तुम्हा जाता है । इसलिए मैं यहाँ पर सन्निधान हुआ है कि आपका यह वचन क्यों है ? (२६) महर्षि भीमराज ने कहा—१-येक वन्य में इस भेरे शरीर में एक रोम का परिग्रह होता है । सर्वनाश होने पर भयवद् भवती होने वाला प्रमाण होता है । आप भेरे इन जानुओं के भाग को देखो—यह जो अङ्गुल तरु रोमों से रहित है । ऐसा यह शरीर सब ऐसा ही गया है तो मैं तरात हूँ कि करता ही है कि फिर यहाँ में भयला क्या प्रयोजन है । (२७-२८)

इथ निशम्यतद्वाचयसप्रहृष्यार्जनिर्विस्मितः ।

भूयानस्तस्य पप्रच्छकराणुतादृशाधपः । (२६)

पृच्छामि न्वापहं बहुभ्यदायुरिदमादृताम् ।

तव शीघ्रप्रभावोऽधीदानस्यत्तवसोऽवा । (२७)

शृणु वृष ! प्रवदयामि पूर्वजन्मसामुद्भवाम् ।

शिवधर्मगुणो पुण्याकया पापप्रणाशनीम् । (२८)

अहमाहं पुरा दूरो दरिद्रोऽज्ञोऽमूढले ।

भ्रमामि वनुषापृष्ठे ह्यदानपरोऽज्ञो भृशम् । (२९)

सरो मया महल्लिङ्गं जालिमध्यगतं तदा ।

मध्याह्नेऽयं जलाधारो दृष्टश्चैवऽविदूरतः । (३०)

ततः प्रविश्य तद्वारि पीत्वा स्नात्वा च शाम्भवम् :

तल्लिङ्गं स्नापितं पूजा विहिता कमलैः शुभैः ।३४।

अथ क्षुत्क्षामकण्ठोऽहं श्लोकं तं तमस्य च ।

पुनः प्रचलितो मार्गं प्रमोतो नृपसत्तम ।३५।

देवर्षि नारद जी ने कहा—इस रीति से लोमस महर्षि के उस यवन का श्वशुर करके वह राजा हुँसकर अत्यन्त ही विस्मय से युक्त हो गया था । फिर उस राजा ने उससे उस तरङ्ग की प्रायु का कारण पूछा था । इन्द्रद्युम्न ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं आपने यह पूछना हूँ कि आपकी यह ऐसा प्रायु कैसे है ? क्या आपके परम विशाल दान श्रवण का यह महान प्रभाव है ? महर्षि लोमस जी ने कहा—हे राजन् ! अब मैं आप से पारो के प्रणाम करने वाली, शिव धर्म से युक्त, पूर्व जन्म में होने वाली परम पुण्य कथा का वर्णन करूँगा उसे आप अब श्वशुर कीजिये । मैं पहिले ब्रह्म था और इन भूतल में अत्यन्त ही दरिद्र का । मैं इस भूमि के पृष्ठ पर भोजन के लिए भी अत्यन्त पीड़ित होकर भ्रमण किया करता हूँ । इसके उपरान्त उस समय में मैंने जालि के मध्य में स्थित एक महान शिव लिङ्ग का दर्शन प्राप्त किया था । मन्मथ के समय में इसका जलाधार ममीन में ही मैंने देखा था । इसके पश्चात् उसके द्वार में मैंने प्रवेश किया था । वहाँ पर मैंने उस शम्भु भगवान के परम शक्ति जल का पाव किया था तथा स्नान किया था । फिर उस शिव लिंग का भी स्नान कराया और वाम शुभ कमल के पुष्पों से शिव लिंग की अर्चना की थी । हे नृपखण्ड ! इसके अनन्तर क्षमा से, क्षाम कण्ठ वाला मैं भगवान श्लोक को नमस्कार कर फिर प्रमीत होना हुआ मार्ग में चल दिया था ।२६—३५।

ततोऽहं ब्राह्मणमृहे जातो जातिस्मरः सुतः ।

स्नापनाच्चिद्वलिङ्गस्य सकृदकमलपूजनात् ।३६।

स्मरन्विलसितं मिथ्या सत्याभासमिदं जगत् ।
 अविद्यामयमित्येवं ज्ञात्वा मूकत्वमास्थितः ।३७।
 तेन विप्रेण वार्धवये समाराध्य महेश्वरम् ।
 प्राप्तोऽहमिति मे नामईशानइतिकल्पितम् ।३८।
 ततः स विप्रो वात्सल्यादगदान्सुबहूग्मम ।
 चकार व्यपनेष्यापि मूकत्वमितिनिश्चयः ।३९।
 मन्त्रवादाग्बहून्वंद्यानुपायानपरानपि ।
 पित्रोस्तथा महामायासम्बद्धमनसोस्तथा ।४०।
 निरीक्ष्य मूढता हास्यमासीन्मनसिमेतदा ।
 तथा यौवनमासाद्यनिशिहित्वानिजंगृहम् ।४१।
 सम्पूज्य कमलैः शम्भुं ततः शयनमभ्यगाम् ।
 ततः प्रमोते पितरि मूढइत्यहमुज्जितः ।४२।

इसके पश्चात् भगवान् शिव के स्नान कराने से तथा केवल
 एक ही बार कमल की पुष्पों के द्वारा पूजन करने से मैं एक ब्राह्मण के
 घर में जातिस्मर का पुत्र होकर समुत्पन्न हुआ था । मैंने इस सात्त्विक
 विनाश की पूर्णतया मिथ्या स्मरण करते हुए तथा इस अस्तव्य जगत्
 की सत्य का आभास मात्र जानकर और यह सब अविद्यामय ही है—
 ऐसा ज्ञान प्राप्त करने मूकत्व में समास्थित हो गया था क्योंकि मैं किसी
 से भी न बोलकर एकदम गुंगा बन गया था । उक्त ब्राह्मण ने वृंदावस्था
 में भगवान् महेश्वर की समाराधना करके ही मुझे प्राप्त किया था । इध-
 निए मेरा नाम “ईशान”—यह कल्पित किया गया था । इसके अनन्तर
 उक्त विप्र ने वात्सल्य भाव होने के कारण से मेरी बहुत ही शोचपियाँ
 की थीं और उनका ऐसा निन्दन ही गया था कि इस बालक की इस
 मूढता को मैं दूर कर दूँगा ।३६-३९। महामाया से सम्बद्ध मन वाले
 उन माता-पिता के मन्त्र बारी, बहुत से बंधों और दूसरे उपायों को देख-
 कर जोरि एक महा मूढता से परिपूर्ण थे उस समय मैं मेरे मन में

हास्य हो रहा था इसके उपरान्त मैं अपनी गीत की सवस्वा पर पहुँच गया था और उस समय पे रात्रि में अपने गृह का त्याग करके बाहिर चला गया तथा कमल पुष्पों में शम्भुदेव का पूजन करके पुनः जपन पर प्रात हो गया था । इसके उपरान्त यिद के प्रतीत होने पर मुझे 'मूढ' यह कहकर त्याग दिया था १४०—१४१।

सम्बन्धिभिः प्रतीतोऽत्र फलाहारमवस्थितः ।

प्रतीतः पूजयामीशमन्त्रैर्बहुविधैस्तथा १४३।

अथ वर्षशनम्यान्ते नरदः शशिशेखरः ।

पर्यलो याचितो देहि जगमरणसक्षयम् १४४।

बजरामरता नास्ति नामरूपमृतो यतः ।

ममाऽपि देहपातः स्वश्रद्धां कुरु जीविते १४५।

इति शम्भोर्बन्धुः श्रुत्वा मया वृत्तमिदमदा ।

कल्पान्ते रोमपातोऽस्तु मरणा सर्वसङ्क्षये १४६।

ततस्तव गणो भूयश्मिति मेऽभीप्सितो वरः ।

तमेत्सूक्त्वा स भगवान्हरश्चाब्दशन गतः १४७।

अहं तपसिनिष्ठश्च ततः प्रभृति चाऽभवम् ।

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते शिवपूजनात् १४८।

ब्रह्मनाजैरितरर्वाऽपिकमलैर्नऽमत्तं क्षयः ।

एवकुरु तद्गाराजःत्वमप्याध्यसिवाञ्जितम् १४९।

समस्त सम्बन्धियों के द्वारा मेरी मूर्खता की प्रतीति हो गई थी और मेरा परिस्वाप भी कर दिया गया था । इसके पश्चात् मैं फलों के आहार पर ही अवस्थित हो गया था । मैं पूर्णतया प्रतीत होकर बहुत तरह के कामगों में ईश की पूजा किया करता था । इसके अनन्तर जब ही वर्ष पूरे हो गये तो भगवान् शशि शेखर वरदार देने वाले मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गये थे । मैंने भी उनसे जरा-मरण का मन्त्री-भूति लय प्रदान करो— ऐसी ही याचना की थी । भगवान् ईश्वर ने कहा—

नाम घोर रूप को धारण करने वाले को मजरती घोर अमरता नहीं हुआ करती है क्योंकि मेरे देह का पात होगा इसलिए जीवित में कोई व्यवधि करो । इस प्रकार के इस भगवान शम्भु के वचन का श्रवण करके उस समय में मैंने यही वरदान माँगा था कि कल्प के अन्त में मेरे एक रोम का पात होवे घोर जब सदा सशय हो जावे तो मरण होवे । इसके अनन्तर मैं फिर धारका गण हो जाऊँ—यही मेरा अभी-पिप्त वरदान है । तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कहकर वह भगवान हर अदर्शन को प्राप्त हो गये थे । ४३-४७। तभी से लेकर मैं तप-श्रम में निष्ठा वाला हो गया था । भगवान शिव के पूजन से ब्रह्म हत्या आदि महापापों से मनुष्य छुटकारा पा जाया करता है । अस्त्रास्त्रों के द्वारा मयका इतर कमलो के द्वारा हे महाराज ! इस प्रकार से याद भी शिव का पूजन करें । घात घाता अभिवाञ्छित अशय हो प्राप्य कर सँगे—इसमें कुछ भी सशय नहीं है । ४८-५६।

हरभक्तस्य लोकस्य त्रिलोक्या नास्ति दुर्लभम् ।
 वहिः प्रवृत्ति स गृह्य ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि च । ५०।
 लयः सदाशिवे नित्यमन्तर्योगोऽयमुच्यते ।
 दुष्करत्वाद्बहिर्योगशिव एव स्वयंजगो । ५१।
 पञ्चभिश्चाऽचनं भूतैर्विशिष्टफलदं ध्रुवम् ।
 वलेशकर्मविपाकाद्यं राशयैश्चाऽप्यसमुत्तम् । ५२।
 ईमानमाराध्य जपप्रणवं मुक्तिमाप्नुयान् ।
 सर्वपापक्षये जाते शिवे भवति भावना । ५३।
 पापोपहतबुद्धीनां शिवे वाताऽपि दुर्लभा ।
 दुर्लभं भारते जन्म दुर्लभं शिवपूजनम् । ५४।
 दुर्लभं जाह्नवीस्नानं शिवे भक्तिः सुदुर्लभा ।
 दुर्लभं ब्राह्मणे दानं दुर्लभं वह्निपूजनम् । ५५।
 अल्पपुण्यं च दुष्प्रापं पुण्योत्तमपूजनम् । ५६।

भगवान् हर के सक्त लोक के लिए इस त्रिलोकी में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। वह बहिः प्रकृति का तथा ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों का प्रदण करके नित्य ही भगवान् सदाशिव में लय को प्राप्त हो जाता यह भक्त्योग कहा जाता है। यह भगवान् शिव ने ही स्वयं गान किया था क्योंकि बहिर्योग अत्यन्त दुष्कर होता है। पाँचों भूतों के द्वारा जो भजन किया जाता है वह निदवय ही विशिष्ट फल प्रदान करने वाला होता है। वक्षेय नाम विपाकादि पापों से प्रसंयुत ईशान का समा-राधन करके तथा प्रणव का जाप करता हुआ मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति कर लिया करता है। समस्त प्रकार के पापों के क्षय हो जाने पर भगवान् शिव में भावना उत्पन्न करती है। जिनकी बुद्धि पापों के कारण अग्रहत होती है उन मनुष्यों को तो दिग्ग के विषय में वार्ता करना भी परम दुर्लभ होती है। इस महा पुत्र पद भारत देश की भूमि में जन्म ग्रहण करना ही अत्यन्त दुर्लभ होता है उसमें भी भगवान् शिव का पूजन करने का अवसर प्राप्त करना परम दुर्लभ होता है। प्रमादवी पापों के प्रणाश करने वाली जाङ्गली में स्थान दुर्लभ है और भगवान् शिव में भक्ति करना भी महान् दुर्लभ हुआ करता है ब्राह्मण को दान देना तथा बलिदेव का पूजन करना इस संसार में दुर्लभ है। अत्यल्प पुण्यों के द्वारा पुण्योत्तम प्रभु का भजन करना महान् दुर्लभ होता है।

।५०—५६।

लक्ष्मण धनुषां योगस्तदर्धेन हुताशनः।

पात्रं शतसहस्रेण रेशा रुद्रश्च पष्टिभिः ।५७।

इतीदमुक्तमखिलं मया तव महीपते !।

यथायुरभवद्दीर्घं ममाराध्य महेश्वरम् ।५८।

न दुर्लभं न दुष्प्रापं न चाऽमाध्यंमाहात्मनाम् ।

शिवभक्तिकृतांपुंसां त्रिलोक्यामितिनश्चितम् ।५९।

नन्दीश्वरस्य तेनैव वपुषा शिवपूजनात् ।
 सिद्धिमाल क्यको राजञ्छङ्कुर न नमस्यति ।६०।
 श्वेतस्य च महोपस्य ध्याकण्ठच नमस्यतः ।
 कालोऽपिप्रलययात वस्तमीश न पूजयेत् ।६१।
 यदिच्छया विश्व मिदं जायते व्यवतिष्ठते ।
 तथा मन्वीयनचान्ते कस्त न शरणं व्रजेत् ।६२।
 एतद्रहस्यामदमेव नृणां प्रधानं

वतव्यमथ शिवपूजनमेव भूप ! ।६३।

यस्याऽन्तरायपदोमुयान्ति लोकाः

सद्या नर. शिवनतः शिवमेति सत्यम् ।६४।

एक लक्ष मनुष्यो मे योग होता है उसने मर्ष माग से इंवाशन तथा घन महाम व पात्र और माठ से रेखा और रुद्र हुमा करता है । हे मन्वीयते ! मैंने मागने आगे यह सब कहकर वनला दिया है । जिस प्रकार से मापु दीर्घ हुई है वह महेश्वर भगवान के समाराधन के करने में ही ही गई है । ५७। ५८। भगवान शिव को भक्ति करने वाले महात्मा पुरुषों के लिये इस सार में क्या विनोकी में भी पुत्र भी दुर्लभ दुष्प्राय और समाध्य नहीं है वह परम निश्चित ही है । ५८। नन्दीश्वर की उगी शरीर में भगवान शिव के पूजन करने से शक्ति की देगकर हे राजन् ! गया कीन मा पुरुष है जो साह्यर को नमन नहीं करेगा ? भगवान श्री कण्ड का नमस्कार करने वाले श्वेत मङ्गीय काल भी प्रलय को प्राप्त हो गया मा एक उम ईश का कीन पूजन नहीं करेगा ? जिसकी छद्मा से ही यह मन्मूण विश्व समुदाय होता है नियम रूप से व्यवस्थित रहा करता है तथा मन्मलय को प्राप्त हुमा करता है ऐम उम ईश्वर की शरणागति में रौन जाकर प्राप्त नहीं होगी ? हे भूप ! वह एक परम रहस्य है और मनुष्यों के लिए परम प्रधान है । यहाँ पर भगवान शिव का पूजन ही जाना चाहिये जिनकी अन्तराय पदवी की सोच

प्राप्त हुआ करते हैं। मनुष्य शिव को तमन करने वाचा तुरन्त ही भगवान् शिव की सन्निधि को प्राप्त कर लिया करता है—यह सत्य है। ६०-६४।

॥ विविध शिव क्षेत्रों का शक्ति सहित वर्णन ॥

स्थानं त्वया मुने पृष्ठमस्ति माहेश्वराग्रणि ।
 चराचराणां सर्वेषां भूतानामपि जर्मणो ।१।
 प्रकल्पितं हि देवेन तत्रात्कर्मानुगुण्यतः ।
 शरीरभाजां जननं तामुतास्वपि योनिषु ।२।
 त्वया शुभ्रपितृतेषां हिताय महते ह्यलम् ।
 भगवथा संसृतेर्हानिः कल्पकोटिशतैर्नहि ।३।
 स्वल्पैर्हि कर्मभिर्ज्ञानैरपि प्राप्ता पुनः पुनः ।
 घटीयन्त्रनयाज्जन्ममरणो नैव शाम्यतः ।४।
 कथं तु विरतो देही गर्भमोकसमागमात् ।
 विश्रान्तये प्रकल्पेत विशुद्धज्ञानतो विना ।५।
 प्रदेशाः कथिताः पूर्वं प्रसङ्गवशातो मया ।
 ऋषिभेदादिकं तेषु निवासः कृत्तिवाससः ।६।
 केचिन्दीरेषु गङ्गायाः केचित्सारस्वतेतटे ।
 कासिन्दीतीरयोरन्ये कतिचिच्छोणरोवसि ।७।

नन्दिकेदवर ने कहा—हे मुने ! आप तो महेश्वर भगवान् के भक्तों में आगयी हैं। इन समस्त चराचर भूतों के कल्याण के लिए जो आरामे स्थान पूछा है। देव ने उन सब कर्मों के आनुगुण्य से शरीर धारियों का जन्म उन-उन योनियों में प्रकल्पित किया है। १। २। आरामे उनके महान् हित के लिए वर्षाप्त शुभ्रपा की है भगवथा इस संसृति का हानि हो जाती जो सैकड़ों करोड़ कल्पों से भी पूर्ण नहीं होती। ३। स्वल्प कर्मों से तथा स्वल्प जानों से भी पुनः-पुनः प्राप्त ये घटी यन्त्र के न्याय से ये जन्म तथा मरण कभी भी धम को प्राप्त नहीं होते हैं। ४।

नमं के मोरु के ममागन मे विरन हुआ यह देहघारी विगुद ज्ञान के बिना का विप्रान्ति के लिए प्रकल्पित हो सकता है ? पहिल मने प्रसङ्ग बश होने के कारण ये प्रदेश कथित कर दिए गये हैं । श्रुति भेदादिका धीर उनमे कृत्तिवाग (निव) का निवास होता है । उनमे कुछ सी भाभीरयो गङ्गा के तीरे मे निवास किया करते हैं - कुछ सरस्वती नदी के तट पर रहते हैं - अन्य कालिन्दी (यमुना) के तीरे पर धीर कुछ क्षीण के तट पर निवास किया करते हैं । ६-७।

अपरे नमंदातीरे परे गोदावरीतटे ।
 कतिचिद्गामतीतोरेष्वन्ये हैमवतीतटे । ६।
 समुद्रपार्श्वेष्वतरे द्वीपेष्वन्ये सरस्वताम् ।
 मुमुषु रचित्सन्धूना सम्भेदेष्वपि केचन । ६।
 कृष्णावेगीतटे वैचित्तङ्गभद्रान्तिके परे ।
 उपवेण्या कांतपथे परे पावःप्यापगान्तिके । १०।
 कावेरीतीर इतरे केचिद्देगवतीतटे ।
 धन्ये तु साअपण्याश्च कतिचिन्मुरसातटे । ११।
 वैचिद्रगामतीनीरे त्वितरे यातुकाङ्गिके । १२।
 वन्यातटेपु कतिचित्कतिचिष्कुमारीतीरे
 परे च तमसावहणान्तिकेऽन्ये ।
 मन्दाकिनीसन्धिपरितरे परेऽपि
 शिवानटे परिसरेपु परे सरग्गाः । १३।
 विषामाश्याश इतरे धातद्रुतितटे परे ।
 चमप्यस्युपरधेऽन्ये वैचिद्भोमरथीतटे । १४।

दूमरे नमंदा के तट पर, कुछ गोदावरी के तीर पर, कुछ गोमती नदी के तट पर धीर अन्य हैमवती नदी के तट पर निवास करते हैं । ६। इतर समुद्र के पार्श्व मे धीर अन्य ताम्बुको के द्वीपों में रहते हैं । कुछ मिन्तुर्षों के मुनी म नवा कुछ गम्भेरी के भी निवास

करते हैं। कुछ कृष्ण बेणी के तट पर, दूसरे तुङ्ग भद्रा के समीप में
रहा करते हैं। कुतिरय उपबेणी में श्रीर दूसरे सस्त्वगण के समीप में
निवास करते हैं। इतर कावेरी के तट पर, कुछ वेणवती के तीर पर,
अन्य ताअपणी के तट पर और कुछ मुरला नदी के तीर पर रहा करते
।६।१०।११। कुछ ऐरावती के तीर पर, इतर यातुका के समीप में,
कलिचित् कन्या के तट पर, कुछ कुमारी के तीर पर अथ तमसा और
वल्गु के तटों पर ही रहा करते हैं। इतर मन्दाकिनी के समीप वाले
स्पर्शों में, दूसरे शिवा के तट पर एव सरयू के परितरों में निवास किया
करते हैं।१२।१३। इतर विषाखा के समीप में रहते हैं। और दूसरे
घटद्रुति नदी के तट पर निवास किया करते हैं। कुछ धर्मपत्नी के
उपकण्ठ में और अन्य भीमरथी नदी के तीर पर रहते हैं।१४।

केचिद्विन्दुसरोऽम्पणोपरेपम्पासरस्तट ।
अभ्यर्णकऽपिर्भ रव्याः कनिचिन्कोशिकीतटे ।१५।
अपरे मालिनीतीरे परे गन्धवतीतटे ।
कलिचिन्मानसोफान्ते केचिदच्छोदरोधसि ।१६।
इन्द्रचुम्नसरस्यम्य एके तु मणिकणिके ।
परे तु वरदातीरे ताप्या कतिचनापरे ।
पातालगगासविधे सरवत्यन्तिके परे ।१७।
लोहित्याकनयोः केचित्कतिचिदकालमातटे ।
वितस्तोपान्तिके त्वम्ये चन्द्रभागान्तिके परे ।१८।
सुरलोपान्तिके केचित्पयोष्णीतीरयोः परे ।
केचिन्मधुमतीतीरेकेचनाऽनुपितकिनीम् ।१९।
उक्तवाराणसीक्षेत्रं कोशपञ्चकपावनम् ।
देवस्तथाऽविमुवहास्योविभालाश्यासमर्चितः ।२०।
कपालमोचर्तं यत्रयत्राऽस्तेकालभौरवः ।
मृतानांयत्र स्रष्टव काशीचिदि हि तां मुने ।२१।

कुछ विन्दुसर के समीप में, दूसरे पम्पा सरोवर के तट पर, कतिपय भैरवी के निकट में और कतिचित् कौशिकी नदी के तट पर रहते हैं । दूसरे मालिनी नदी के तीर पर, कुछ गन्धवती के तट पर, कुछ मानस के उपान्त में और कतिपय शोष के तीर पर रहा करते हैं । कुछ अन्य इन्द्रधुम्न के नाम वाले सर पर और अन्य गणिकणिक पर, दूसरे वरदा के तीर पर तथा दूसरे कुछ तापी नदी पर रहा करते हैं । कुछ पाताल गङ्गा के समीप में, दूसरे कुछ दारावती के समीप में, कुछ लोहिती के बूली पर, कुछ कालगा के तट पर, अन्य वितस्ता के उपान्तिक में तथा दूसरे चन्द्रभागा नदी के समीप में निवास किया करते हैं । ११५-१८। कुछ मुरला के समीप में, दूसरे पयोष्णी नदी के तट पर रहते हैं । कतिपय मधुमती नदी के तीर पर और कुछ पिनाकिनी नदी के साथ २ रहते हैं । इस प्रकार से वाराणसी का क्षेत्र पाँच क्षेत्र का परम पावन क्षेत्र कह दिया है । वहाँ पर विशालाशी के द्वारा समचित्त भविमुक्त नामधारी देव विराजमान रहने हैं । कपाल मोचन जहाँ पर हैं और जिस क्षेत्र में काल भैरव रहा करते हैं । हे मुने ! जहाँ पर मृत हुए प्राणियों को स्वत्व की प्राप्ति हुमा करती है उसकी काशी ममभूता चाहिए । ११६। २०। २१।

गयाप्रयागावपि ते कथितो सर्वसिद्धिदो ।
 यत्र पिण्डप्रदानेन तुष्यति पितरः किल । २२।
 आर्कणितं च वेदार यस्मिन्महिपरूपधृक् ।
 देवोऽपच हतोदेव्यासर्वश्रेयस्करोनृणाम् । २३।
 सर्वसिद्धकरं पुंसां क्षेत्रं बदरिकाश्रमम् ।
 यत्राऽऽस्ते ष्वम्बका देव्या नरनारायणचिनः । २४।
 श्रुतं हि नैमिष क्षेत्रं त्वया यत्र महेश्वरः ।
 देवदेवाभिषः पुण्या देवो सारङ्गधारिणी । २५।

धमरेनामिति स्थानं प्रोक्तं नर्वायं साधकम् ।

अकारनामातत्रे शश्रुण्डिकाख्यामहेश्वरी ॥२६॥

पुष्कराख्यं महास्यात श्रुतं ते कथितं मया ।

यत्र देवो सज्जोगन्धिवः पुरूरुता महेश्वरी ॥२७॥

आपाढीनाम ते स्थानं पावनं कथितं मया ।

आपादेशो हरस्तत्र रतीशा परमेश्वरी ॥२८॥

सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले वे गण और प्रयाग भी कथित कर दिए गये हैं जहाँ पर पिण्डों के प्रदान करने से पितृपण परम नुष्ट हुआ करते हैं । केदार का भी समाकरण किया है जिसमें महिष के स्वरूप को धारण करने वाले देव भी देवी के द्वारा निहत हुए हैं जो मनुष्यों के सब तरह के श्रेय को करने वाले हैं ॥२२-२३॥ बदरिकाश्रम क्षेत्र पुरुरो की सभी सिद्धियों का करने वाला है जहाँ पर नर-नारायण के द्वारा समस्त देवी का अस्बक प्रभु विराजमान है । आपने नैमिष क्षेत्र का श्रवण किया ही होगा जहाँ पर वैवदेव नामधारी पुण्य रूप भगवान महेश्वर हैं और सारङ्ग धारिणी देवी विराजमाना हैं ॥२४-२५॥ समरेक्ष—इस नाम वाला एक स्थान है जो सभी अर्थों का साधक कहा गया है वहाँ पर अकार नाम वाले ईश विराजमान हैं और चण्डिका नामधारी महेश्वरी हैं ॥२६॥ पुष्कर नाम वाला एक परम महान स्थान है जिसे मेरे द्वारा आपने कहा हुआ श्रवण किया ही होगा जहाँ पर सज्जोगन्धिव देव हैं और पुत्र हुता नाम वाली देवी महेश्वरी हैं । आपाढी नाम वाला एक पावन स्थान है जो आपकी मैंने कहा है वहाँ पर आपादेश देव विराजमान रहते हैं और रतीशा नाम वाली परमेश्वरी हैं ॥२७-२८॥

दण्डिमुण्डीसमाख्यां च स्थानं ते कथितं मया ।

यत्र मुण्डी महादेवो दण्डिका परमेश्वरी ॥२९॥

लाकुलनाम ते स्थानं संशुद्धं कथितं मया ।

लाकुलीशो हरोपस्मिन्नङ्गा सर्वमगला ॥३०॥

भारभूतिरितिस्थानं भवतोऽभिहितंमया ।
 यत्रभाराभिघः शम्भुभूत्यास्याभूधरात्मजा ।३१।
 अरालकेश्वरंनाम स्थान ते कथितंमया ।
 यत्र सूक्ष्माभिघः शूलिसूक्ष्मास्याशीलनन्दिनी ।३२।
 गयानाम महाक्षेत्रं तत्र प्रस्तावितं मया ।
 मंगलारथा शिवा यत्र शङ्करः प्रपितामहः ।३३।
 कुरुक्षेत्रमिति स्थान भवते विनिवेदितम् ।
 यत्र स्थाणुप्रियादेवोदेवः स्थाणुसमाह्वयः ।३४।
 उक्तं कनखलं नाम मया ते स्थानमुत्तमम् ।
 उग्रो यत्र पुरारातिरुग्रा गिरिवरात्मजा ।३५।

मैंने आपको दण्डो-मुण्डो नाम वाला एक स्थान बतलाया था जहाँ पर मुण्डो नाम वाले श्री महादेव हैं और दण्डिका नाम वाली देवी परमेश्वरी विराजमान रहा करती है ।२६। मैंने आपकी एक लक्ष्मण नाम वाला परम तशुद्ध स्थान बतलाया था जिस स्थान में लक्ष्मण नाम श्री हर हैं और सर्वमंगला मनङ्गा देवी है ।३०। भारभूति — इस नाम वाला एक स्थान है जो मैंने आपकी बतलाया है जहाँ पर भार नाम वाले शम्भु हैं और भूति नाम वाली भूधरात्मजा देवी है ।३१। एक अराल-केश्वर — इस नाम वाला स्थान है जिसको मैंने आपकी पहिले हरि बतला दिया है जहाँ पर सूक्ष्म नाम वाले भगवान शूलि हैं तथा सूक्ष्मा नाम धारिणी देवी शील नन्दिनी विराजमान रहती हैं । गया नाम वाला एक महा क्षेत्र है मैंने जिनके विषय में प्रस्ताव किया है जिस क्षेत्र में मंगला नाम वाली देवी शिवा हैं और प्रपिता मह भगवान शङ्कर विराजमान है । एक कुरुक्षेत्र नाम वाला स्थान है जिसके बाबत मैंने आपसे पहिले निवेदन किया था जहाँ पर स्थाणु प्रिया नाम वाली भगवती देवी हैं और स्थाणु नामधारी भगवान देव विराजमान रहते हैं । मैंने आपसे एक कनखल नाम वाले परमोत्तम स्थान के विषय में भी

कहा था जिस स्थान में उग्र नाम वाले भगवान् पुराणति विद्यमान रहा करते हैं और उग्र नामधारिणी साक्षात् त्रिवरात्मजा देवी विराज-माना है । ३२ - ३५।

तालकाख्यं महाक्षेत्रं मार्कण्डेयमयोदितम् ।
 देवी स्वामम्भुवी यत्र स्वयम्भूः परमेश्वरः । ३६।
 अट्टहासमिति प्रोक्तं महास्थानं मया तव ।
 यत्राऽर्कः पूजयित्वेवमासीत्पूरांभनोरथः । ३७।
 कृत्तिवासाभिर्घं क्षेत्रमुक्तं तेवेदवित्तम । ।
 यः कैलासादपिदलाध्योनिवासः कृत्तिवाससः । ३८।
 भ्रमराम्बिकया देव्या महेशो मल्लिकार्जुनः ।
 शोभीते सृष्टिसिद्ध्यर्थं पूजितः परमेष्ठिना । ३९।
 सुवर्णं मुखरीतीरे कालहस्तीति शङ्करः ।
 व्यासन्नाराधितो भृङ्गमुखरालकयाऽम्बया । ४०।
 काञ्च्यामेकाग्रमूलस्यः कामाक्ष्या कामशासनः ।
 तपस्यन्त्याऽभिसंश्लिष्टी वलयेनाऽङ्कितोऽभवत् । ४१।

तालक नाम वाला एक महाक्षेत्र है । हे मार्कण्डेय ! मैंने इसको भी आपको बतलाया है जिस क्षेत्र में स्वामम्भुवी देवी हैं और स्वयम्भू परमेश्वर हैं । मैंने एक अट्टहास नाम वाला महान् स्थान आपको कहा था जहाँ पर भगवान् मार्कण्डेय ने ईश्वर का पूजन करके अपना मनोरथ पूर्ण किया था । ३६, ३७। हे देवी के क्षेत्रों में परम श्रेष्ठ ! मैंने आपकी सेवा में एक कृत्तिवास नाम वाले क्षेत्र की चर्चा की थी जो कैलासगिरि से भी अधिक प्रशस्तनीय है और कृत्तिवासा प्रभु का निवास स्थान है । वहाँ पर भ्रमराम्बिका नाम वाली देवी के सहित यल्लिकार्जुन महेश्वर की श्री शैल में सृष्टि की निधि के लिए परमेष्ठी ब्रह्माजी के द्वारा पूजा की गयी थी । सुवर्णं मुखरी के तीरे पर कालहस्ती—इस नाम वाले भगवान् शङ्कर हैं जिनकी भृङ्ग मुखरालका देवी के सहित श्री व्यास देव

ने प्राराधना की थी । ३८। ३९। ४०। काञ्ची में कामाक्षी के साथ एकाम्बूनस्य काम नामन प्रभु विराजमान रहने हैं जो तप करती हुई के द्वारा अग्नि सदिनष्ट होने हुए वनय से प्रद्विज हो गये थे । ४१।

अस्ति व्याघ्रपुरं नाम तिलिकाननमध्यगम् ।

यत्र नृत्यन्तमौशानं पर्युपासने पतञ्जलिः । ४२।

श्वेतारण्यमिति स्थानमुक्तं तत्र मया पूरा ।

भग्नमैरावतोदन्त भेजे यत्र शिवाचंभात् । ४३।

सेतुवन्धमिति स्थानमवोचं तत्र राघवः ।

रामनाथारयया देवमंहोष्णं प्रत्यतिष्ठित् । ४४।

गतप्रत्याह्वयस्थान विद्यते वृषभध्वजः ।

यत्र जम्बूनरोमूले जगद्रक्षार्थमाश्रितः । ४५।

मणिमुक्तानदीमन्ववक्षोत्रे वृद्धाचलाह्वये ।

नित्य सन्निहिता देव इत्याकृणित एव ते । ४६।

श्रीमन्मध्याजुंनं नाम श्रुत स्थानमनुत्तमम् ।

यस्मिन्श्वरप्रदो नित्य गीरोसहजरो हरः । ४७।

प्रास्थितं सोमनाथेन सोमतीर्थं त्वया श्रुतम् ।

यत्र त्यक्तवता देह न भूयो भववन्धनम् । ४८।

तिलिक नामक जगन के मध्य में रहने वाला व्याघ्रपुर नाम वाला स्थान है जहाँ पर नृत्य करते हुए ईशान की पतञ्जलि ने पर्युपासना की थी । ४२। एक श्वेतारण्य नाम वाला स्थान है जिसके विषय में मैंने पहिले ही भागकी वतलाया था जिसमें भगवान शिव के प्रचन के करने से ऐरावत ने अपना भग्न हुआ दन्त प्राप्त कर लिया था । ४३। एक सेतुवन्ध नामक स्थान है जिसकी मैंने भागकी बोला था वहाँ पर श्री राघवेन्द्र प्रभु ने रामनाथ—इस नाम से पापों के नाशक देव की प्रतिष्ठा की थी जो रामेश्वर नाम से सब विख्यात है । एक गत प्रत्याह्वय नामक स्थान विद्यमान है जहाँ पर वृषभ ध्वज प्रभु जम्बु (जामुन) तट के मूल में इस जगत् की रक्षा करने के लिए आश्रय ग्रहण करके विराजमान

रहते हैं । ४४।४५। वृद्धावन नाम वाले क्षेत्र में मणि-भुवना नदी के साथ देव नित्य ही मॉसहिर रदा करते हैं—गह लो पापने सुना ही है । यी मन्मथ्याजुंन नाम वाला प्रतीक उत्तम स्थान आपने खखण किया ही होया जहाँ पर नित्य ही भगवती मोरी के साथ मखरण करने वाले भगवान हर गरी के प्रदान करने वाले होने हैं । भगवान सोममाय के द्वारा ममास्विन सोम तीर्थ आपने सुना ही है जिसकी ऐसी महिमा है कि जो प्राणी इस स्थान पर अपने देह का त्याग किया करते हैं उनकी फिर इन संसार का बन्धन रहना ही नहीं है । ४६— ४७।

आकर्षणर्तौह भवतास्तेव सिद्धवटाह्वयम् ।
यत्र सिद्धाः समर्चन्तिज्योतिर्लिङ्गमनुत्तमम् । ४६।
अभ्यावि खलु ते क्षेत्रं कमलालयसञ्जकम् ।
बहमीकेसाचंनस्लेभेश्चत्रीजीविता हरेः । ४७।
श्रुतवानमि गङ्गादि यत्र मन्निहितो हरः ।
इदानीमभ्युपानाने मोसाय ब्रह्मपेशवो । ४८।
श्रीमददोशपुरं वेन्मि पस्मिन्कलियुगक्षये ।
सौकामालह्वानद्वयोद्युमिते पार्वतीपतिः । ४९।
धृतं ब्रह्मपुरनाम क्षेत्रं यत्रन्द्रजित्पुरा ।
अर्थानुष्करिणीतोरे स्थापयामाम धूर्जटिम् । ५०।
श्रीकौटिकाख्यं जानामिक्षेत्रं यत्रन्दुर्भेतरः ।
समाराधयतां पशुं पाशकोटीव्यंपोहति । ५१।
आकर्षितं च गोकर्णं शिव यत्सन्निधानतः ।
आरिराधयिषुः स्वर्गं जामदग्नौ न काङ्क्षति । ५२।

आपने सिद्ध वट नामक क्षेत्र के विषय में श्रवण किया ही होया जहाँ पर सिद्ध पुरुष सर्वोत्तम भगवान ज्योति विग का सपार्चन किया करते हैं । आपने कमलाचम संज्ञा वाले क्षेत्र के विषय में भी श्रवण किया ही होया जिसमें भगवान वन्दिहेश की भर्चना से श्री ने हरि की

जीविता का लाभ प्राप्त किया या १४६।५०। आपने कङ्कालि को मुना होगा जहाँ पर सतिहित भगवान् हर की ब्रह्म भीर केचय आज भी मोक्ष की प्राप्ति के लिए उपामना किया करते हैं । आज श्रीमान् द्रोणपुर को जानते ही है जिसमें कलिबुग के दाय होने पर समुद्र के क्षीम से युक्त होने पर पार्थी के पति भगवान् शम्भु नीरु पर समधि खूब हुए थे । ब्रह्मपुर नामक क्षेत्र के विषय में आपने श्वण किया ही होगा जहाँ पर पहिले इन्द्रजित् ने आप्यं पुष्करिणी के तट पर भगवान् पूजंरि की स्थापना की थी १५१।५३। श्री कोटिक नाम वाला ज्ञान को शोभित है जहाँ पर भगवान् इन्द्र शेरर समाराधन करने वाले पुष्यो के पापी श्री कोटि का विदारण कर दिया करते है १५४। आपने गोकण्ठ नामक स्थान को मुना ही होगा जहाँ पर शाराधना करने वाले जामदग्न्य ऋषि शिव के सन्निधान में रहते हुए वहाँ से स्वर्ग जैसे परमोत्तम स्थान में जाने की भी आशीसा नही किया करते है १५५।

त्रिपुरान्तकमुक्तं ते क्षेत्रं यत्र त्रियम्बकः ।

निराकरोति निराद्भयं दृष्टयतां नृणाम् । ५६।

उक्त कायाञ्जन क्षेत्रं यद्वाशोकतलवन्धरः ।

• निर्वापयति भवनानां घोरसंसारसंज्वरम् । ५७।

प्रियालवणमाख्यातं क्षेत्रं यत्राऽम्बिकापतिः ।

पयोऽधिनेपथः सिन्धुं विततारोपमग्भवे । ५८।

क्षेत्रं प्रभाममुक्तं ते यत्र सण्डेन्दुशेखरः ।

पूजितः शीरिसीरिम्यां दत्तवानक्षयं फलम् । ५९।

वेदारण्यं विजानोषेयस्मिन्प्रमथनायकः ।

ऋषयितोऽभूमोशार्धदक्षेणप्रावृत्तागसा । ६०।

हेमकूटं त्वमश्रीषीः स्थानं विषमचक्षुषः ।

पुंसं तपस्यतां यत्र पुनजननतो न भीः । ६१।

क्षेत्रं वेणुवनं नाम विद्यते पापनाशनम् ।
यत्र वंशलतागभिर्जिज्ञातो मुखवामणिः शिवः ।६२।
जालधरमिति स्थानत्वकारेस्त्वयाभूतम् ।
तेभ्ये गणपता तत्र तपस्याभिर्जलन्वरः ।६३।

मैंने त्रिपुरास्तक क्षेत्र के विषय में आपसे कहा था जहाँ पर नियम्बक भगवान् दर्शन प्राप्त करने वाले मनुष्यों का नरक के भय का निश्चरणा कर दिया करते हैं । मैंने आपसे कालाञ्जन नाम वाले क्षेत्र के विषय में भी आपको बतलाया था जिस क्षेत्र में काय कन्वर प्रभु निवास किया करते हैं और अपने भक्तों के घोर मत्सर के संज्वर को निर्धारित कर दिया करते हैं । मैंने प्रिया लवण नामक क्षेत्र के विषय में आपको कहा था जहाँ पर अम्बिका प्रति प्रभु ने पद्म के भर्षी उपमन्यु के लिए पयः सिन्धु त्रि ऊर कर दिया था । १५६। १७। १८। प्रभास नामक क्षेत्र के बावत मैंने आपको बतलाया था जिस क्षेत्र में लम्बे-दुबे-लम्बे भयवान् शिव शैरि और शेरि इन दोनों भाईयों के द्वारा पूजित होकर इनको उन्होंने प्रथम फल प्रदान किया था । वेदरम्य नामक स्थल को आप मसी-भक्ति जानते ही हैं जिसमें प्रमथ नामक प्रभु को पहिले किए हुए अपराध करने प्रताप ले दखते अपने मोक्ष की प्राप्ति के लिये चर्मर्चना की थी । १२१। ६०। आपने हेमकूट के विषय में श्रवण किया ही होगा जो स्थान अशुभ का विष है और जहाँ पर तपप्रर्षा करने वाले पुरुषों का पुनर्जन्म धारण करने का मय सर्वथा रहता ही नहीं है । ६१। एक वेणुवन नाम वाला उत्तम क्षेत्र है जो समस्त पापों का नाश करने वाला है जहाँ पर वंशलता के चर्म ने मुत्क्षमणि शिवः 'ममुत्तम हुमा था । १६२। एक जालधर नामक स्थान है जो अन्धकार में है आपने इसके विषय में सुना ही होगा । वहाँ पर जलन्वर ने घोर तपप्रर्षा के द्वारा गणों के प्रति का पद प्राप्त कर लिया था । ६३।

ज्वालामुखमिति स्थानमज्ञासीः कथितं मया ।
 यत्र ज्वालामुखी देवी कालरुद्रमपूजयत् ।६४।
 अस्ति भद्रवटीनाम क्षेत्रमुक्तं श्रुतं त्वया ।
 त्र्यम्बक यत्र हेरम्बः सम्पदे पर्यपूजयत् ।६५।
 त्र्यप्रोधारण्यमुक्तं ते यत्रोद्योनिर्ममे किल ।
 उच्चण्डताण्डवकाल्यासाकंसङ्घर्षमेयिवान् ।६६।
 गन्धमादनसञ्ज्ञं तत्क्षेत्रमाकर्णितं त्वया ।
 आज्ञनेयेन रचितं यत्र मृत्युञ्जपाचनम् ।६७।
 गौरवंतमिति स्थानं शम्भोः प्रख्यापितमया ।
 यत्र शरणिनिनालेभेर्वयाकरणिकाग्रयना ।६८।
 चीरकोष्ठमिति क्षेत्रस्थानं नन्ववधारितम् ।
 यत्र प्रचेतसा लेभे तपसा कविमुख्यता ।६९।
 महानीयमिति प्रोक्तं जानीषेयत्र शम्भुना ।
 अध्यापितास्मुपवाणः सर्वेऽपिद्रुहिणादयः ।७०।

एक ज्वालामुखी नाम बाला स्थान है । मैंने इसके बाद सभी
 कहा था : यात्र इतना जान रखने ही होंगे । जिस क्षेत्र में ज्वालामुखी
 देवी ने कालरुद्र का पूजन किया था ।६४। एक भद्र बट नाम वाला क्षेत्र
 है । मेरे द्वारा कहा हुआ था जो इसके यात्रण प्राप्त ही श्रवण किया
 होगा । जहाँ पर हेरम्ब ने भगवान त्र्यम्बक ही सम्पदा की प्राप्ति के
 लिए अर्चना की थी ।६५। एक त्र्यप्रोधारण्य नामक उत्तम क्षेत्र है जिसे
 मैंने धारणी बतना दिया है जहाँ पर उद्य ने ही निर्माण किया है । वहाँ
 प्रभु जानी के साथ उच्चण्ड ताण्डव करते हुए परम सङ्घर्ष को प्राप्त
 हो गये थे ।६६। एक गन्धमादन मंजा वाला क्षेत्र है जिसको धारणे मुन
 रचना है जहाँ पर आज्ञनेय ने भगवान मृत्युञ्जय का अर्चन किया था
 ।६७। एक गौ पर्वत स्थान भगवान शम्भु का है जिसको मैंने प्रख्यापित
 किया था जिस पर महान विद्वान पाण्डित महर्षि ने व्याकरण शास्त्र के

विद्वानों में प्रमुखता प्राप्त की थी । एक वीर कोयु नामक क्षेत्र स्थान है इसका मानने मयवाणु विद्या हो हीमा । जिस पर प्रवेला ने तप-धर्म के द्वारा कवियों में प्रधानता प्राप्त की थी । महातीर्थ यह कहा गया है । इसे माय जानते ही हैं जहाँ पर भयवान शम्भू ने सुपर्वाओं को भीर समस्त द्रुहियादि को अध्यापित किया था । ६८:६६७०।

मयूरपुरमुक्तं ते क्षेत्रं माहेश्वरं मया ।

तेने मय व्रतस्येन ह्यादिनी वज्राणिना । ७१।

श्रीसुन्दरमिति क्षेत्रमुक्तं वेगवतीतटे ।

कलावति युगे यस्मिन्देवदेवेन दीपते । ७२।

कुम्भकोणमिति स्थानं जम्भाकविति हि यत्र मा ।

गङ्गाऽपि माये मान्निध्यं कुर्वते स्वाशशान्तये ॥७३॥

वनुगोदावरीतीरं व्यम्बकनाम ते श्रुतम् ।

शक्तिं यत्र गृह्ये तेभ्ये तारकामुन्मथानिनीम् । ७४।

श्रीपाटलं व्याघ्रपुरमास्पातं वेदनित्तम ।

नशङ्कुना जानिशुद्धये यत्र गङ्गावरोऽचिरः । ७५।

क्षेत्रं रुदम्बयुट्वास्त्रियमप्रता चात्रघातिम् ।

रक्तकुतेष्वनसूतेन कृतान्तशम्भुरक्षिणोत् । ७६।

अविनाशकप्रमुक्तं ते क्षेत्रं यत्र वृषभजः ।

सान्निध्यं पडिकुण्डायविततान्प्रसेदियान् । ७७।

श्रीने स्वर्ग माहेश्वर मयूरपुर क्षेत्र के विषय में प्राप्त कहे हैं जहाँ पर वर में अस्थित होने वाले वज्राणि रुद्रदेव ने ह्यादिनी के प्राप्त करने का व्रत किया था । ७१। श्री सुन्दर इस नाम वाला क्षेत्र वेगवती के तट पर बताया जा चुका है जिसमें इस महा वीर कलियुग में भी देवों के देव कोणमान हुआ करते हैं । ७२। कुम्भ कोण नामक एक जम्भू का स्थान है जिसका मानने ही हैं जहाँ पर वह गङ्गाभी साय माय में मयव पापी की शक्ति के लिये सान्निध्य किया करती है

१७३। गोशवरी नदी के तट के साथ २ अम्बक नाम का स्थान है जो प्राप्ते सुना ही होगा जहाँ पर भगवान् गृह्य ने तारका सुर के घात करने वाली शक्ति का लाभ किया था। हे वेद विद्वान् ! धी पाटल व्याघ्रपुर आस्थान किया गया है जहाँ पर निशङ्कु ने मपनी-मपनी जति की सृष्टि के लिए भगवान् गङ्गाधर का समावेन किया था। एक कदम्बपुरी नामक क्षेत्र है जिनका प्रवधारण किया ही होगा जहाँ पर माप ही के लिये शूल के द्वारा भगवान् शम्भु ने कृत्वात्त की क्षीण किया था। प्रापकी मैंने एक प्रविनाश नाम वाला क्षेत्र बनवाया था जहाँ पर भगवान् वृषभञ्ज ने प्रमेदिवान् होकर पटिकुण्ड के लिए साग्निध्य की स्थापित किया था। १७४—१७७।

रवनकाननमाख्यात मया क्षेत्रं तवाऽनघ ! ।

मित्रावरुणायोयत्र रुद्रोऽजनि वरप्रदः ॥७८॥

श्रीहाटकेश्वर क्षेत्रं पातालस्थ त्वया श्रुतम् ।

यत्र चरोचनिर्देव स्वपदप्राप्तयेऽर्चति ॥७९॥

वेत्सि शम्भोः प्रियायासंकैलासनित्यसेवकः ।

यत्रयक्षेश्वरस्त्र्यक्षमभ्यर्चयतिभक्तिः ॥८०॥

स्थानानिखण्डपरशोरित्युक्तानिमयागुरा ।

त्वयाप्यवधृताग्येवकिम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥८१॥

इत्युचिवानेव शिलादनन्दनो

मुनेर्मृकण्डोस्तानय मुनीश्वरम् ।

भक्त्यानिमन्त पदयोः करेण

पस्पर्श मौली करुणारसाद्रः ॥८२॥

हे अनघ ! मैंने प्रापकी एक रक्त कानन नामक क्षेत्र बनवाया था जहाँ पर भगवान् रुद्र मित्रावरुण दोनों के लिये वरदान करने वाले होगये थे ॥७८॥ श्री हाटकेश्वर नाम वाला एक क्षेत्र है जो पाताल लोक में स्थित है। प्राप्ते वस्तु विषय में प्रवण किया ही है जिन क्षेत्र

मे वंदीचति भवने पद की पाति के लिए देव की भवना किया करता है । भाई भगवान् वाग्नु के परम प्रिय आवास स्थान की बात भलो-भाति जानते ही हैं जहाँ पर निश्च ही सेवा करने वाला महेश्वर भक्ति की भावना से भगवान् व्यक्त की प्रभुवन्दर किया करता है । मैंने पहिले खंड पर शुभगदान के ये स्थान बतना दिये थे घोर भावने भी प्रचक्षी तरह से इनका व्यवहारण भी कर ही लिया था । अब पुनः इनके व्यवहार करने की क्यो इच्छा कर रहे हो ? इस प्रकार वे शिवादर्शन ने मूर्च्छु मुनि के पुत्र मुनीश्वर से कह था जोकि भक्ति भाव से चरखो से नमन कर रहे थे । इसके अनन्तर कथना राम ने याद होकर हमने प्रवने कर के तिर में स्थान किया था । ७६—८२।

१८ — अक्षराचलस्थरहस्यस्थानवर्णन

- भगवन्वचनेनाऽन त्वदेकप्रवणेभयि ।
 किमाहशोऽस्तितेशिष्यस्तच्छुर्वाऽत्रमाक्षिणी । १।
 स्थानिषु प्राक्त्वदुक्तेषु फलानिचपृथक्पृथक् ।
 यद्य सर्वफलप्राप्तिः स्थानतद्दमेवभो । २।
 चराचरगणां भूतानां ज्ञाननामप्यज्ञानताम् ।
 यस्य स्मरणमात्रं एा मुनिनम्यद्दद देशिक । ३।
 पदपतेन सर्वकेन भगवाज्ञानुराधसे ।
 सर्वैरप्येतदर्थं हि मुनिभिः परिवार्यसे । ४।
 पुत्रहेन पुत्रस्त्येन वशिष्ठेन मरीचिता ।
 अगस्त्येन दवाचेन नक्रुण्डे भृशुणाऽत्रिणा । ५।
 आवालिनो जैमिनिना धौम्येन जमदग्निना ।
 उपयोजेन यज्ञेन भगतेतार्चरोवता । ६।
 धिष्णन्वादेन कण्वेन कुमुदेनोपमन्युना ।
 कुमुदाक्षेण कुत्सेन वरसेन वरतन्तुना । ७।

महा महर्षि मार्कण्डेयजी ने कहा—हे भगवान् आपने चरणों में ही एक मात्र प्रवण होने वाले मेरे विषय में वञ्जन न कीजिये । यह आपका शिष्य किस प्रकार का है उगकी तो एक मात्र साक्षिणी यहाँ पर उनकी कृपा ही है । १। आपने द्वारा पहिले कहे हुए स्थानों में पृथक् २ फल होते हैं । हे विभी ! जिन स्थान पर सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है वही स्थान अब आप कृपया बतलाइये । २। हे देशिक ! चर घोर अचर प्राणियों को जो जानते हैं और जो सर्वथा ज्ञान ही नहीं रखते हैं उनको जिनके केवल स्मरण से ही मुक्ति हो जाया करती है उसे ही अब बतलाइये । ३। प्राण देखिए, यह मेरे एक के ही द्वारा भगवान् की आराधना नहीं की जा रही है । इस समाराधना करने के लिए सभी मुनियों के द्वारा ऐसा अनुरोध किया जा रहा था । ४। उन सब मुनियों के नामों का परिगणन करके बतलाता हूँ—पुनह के द्वारा—पुनस्त्य, वशिष्ठ मरीचि, भगस्य के द्वारा, दधीच, नक्रु, भृगु, अत्रि, जात्रालि, जैमिनि, धीम्य के द्वारा तथा जमदग्नि के द्वारा, उपवाज, याज्ञ, भरत अश्वीवान्, पिप्पलाद, कण्व, कुमुद, उपमन्यु, कुमुदाश, कृत्तम, वृत्तम और वसन्तु के द्वारा भी इस समाराधना के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का अनुरोध किया जा रहा है । ५। ६। ७।

विभाण्डयेन व्यासेन वषपरीजेना कण्डुना ।
 माण्डव्येनमनन्देनभुक्षिणामाण्डकर्मिणा । ६।
 चण्डरीशकशाण्डित्यशानटापनकीशिकैः ।
 गणावतेमधुच्छन्दोगर्गमीभरिरोमशौ । ७।
 आपस्नभ्यपृथुस्तम्भार्ग्वोदन्त्यर्षतः ।
 भारद्वाजेन दान्भ्येन दान्तेन द्येनवेनुना । ८।
 कीण्डिन्यपुण्डरीकाम्यां रैभ्येण वृण विन्दुना ।
 चात्मोहिना नारदेन वह्निना दृटमन्धुना । ९।

वीघायनसुबोधाम्पां ह्यरोतेन मृकण्डुना ।
 दुर्वाससातिक्रोदयोः जलपादेन शक्तिना ॥२१॥
 काव्यार्थेण नदन्तेन देवदत्तेन न्यङ्कुना ।
 सुयुक्ता अग्निवेशेन गालवेन महत्त्वता ॥२२॥
 नाकाक्षिणा विश्रवसा संन्धवेन मुमस्तुना ।
 शिशुपायनमौद्गल्यपथ्यवाननमस्तुरैः ॥२३॥

विभाण्डक, व्यास, कण्वरीय, कण्डु, माण्डव्य, मतङ्ग, कुशिक,
 माण्डकृशिक, चण्ड, कौशिक, साण्डिल्य, साकटायन, कौण्डिन्य, आतानप,
 मनुचन्द्र, गर्ग, सोमरि, रोमश, आपस्तम्ब, पृथुलम्ब, भागव,
 उदङ्ग, पर्वत, मारद्वज, दान्म्य, दान्वा, ज्वेत वेतु के द्वारा भी ऐसी ही
 ऋगुगोष क्रिया जा रहा है ॥२१॥२०॥ कौण्डिन्य, पुण्डरीक, रैम्य, तुणा-
 विन्दु, वान्मिरीक, नारद, बह्नि, दम मर्यु, वीवायन, सुबोध, हारीत,
 मृकण्डु, दुर्वास षनि तीक्ष्ण, जनशर, शक्ति, काव्यर्थ, नदन्त, देवदत्त
 न्यङ्कु, सुयुक्त अग्निवेशन, गालव, महत्त्वता, नाकाक्षि, विश्रवा, संन्धव,
 मुमस्तु, शिशुपायन, मौद्गल्य, पथ्य, वायन और मातुर इन सबके द्वारा
 इसी क ज्ञान प्राप्त करने का ऋगुगोष क्रिया जा रहा है ॥२१-२३॥

ऋष्यश्रुङ्गैकपात्कौन्वदृढगोमुखदेवर्षे ।
 अङ्गिरोवापदेशीर्वगतत्र लेकपिञ्जलीः ॥२४॥
 सतत्कुमारमनकमनन्दतमनातानैः ।
 हिरण्यनामत्यास्यवासाशनमुहोतुभिः ॥२६॥
 मैत्रेयपुष्पजित्मत्यतपः शारीप्यशोशरैः ।
 निदाघोतयप्रमवर्साशौल्कायनिपराशरैः ॥२७॥
 वैशम्पायनकौशल्यशारद्वतकपिध्वजैः ।
 कुक्षस्वाचिककैचल्ययाज्ञवल्क्यमाश्वलायनैः ॥२८॥
 कृष्णातपीत्तमानन्तकवणामलकप्रियैः ।
 चरकेण पवित्रेण कपिलेन कणाशिना ॥२९॥

नरनारायणाभ्या च दिव्यैश्चान्यैर्महर्षिभिः ।

मन्त्रज्ञानस्तरुभूपात्तरैः प्रत्यवेदयन्ते ।२०।

महिषैश्चास्यगण्यैर्षवैः समस्यायमपारगः ।

व्याप्तश्च सर्वलोकेषु यस्मात्तदनुसर्षि नः ।२१।

सृष्ट्य मृग, एक पातु, कोख, हृद, गोभुज, देवत, अंगिरा, वाम-
देव, दपतुति, नरिष्वन, मत्त कुमार, मन्त्र सनन्दन, सतप्तन, द्विरभ्य-
नाम, मत्स्यान्त्र, वलाशन, मुहोता, मंत्रेष, पुण्यजित्, मत्स्य, तपः पालीपत्र,
शैशिर, निदात, उलम्ब, मन्वत्तं, लोत्कायनि, पराशर, वैशम्पायन,
कोशल्य, शाक्यन कशिपव, कृष्ण, स्वादिक, कवलय, याज्ञवल्क्य, धम्म-
सयन, कृष्णा नव उत्तम, मन्त्रा वदणामनक शिष्य, वरक, पवित्र,
करिन् वल्लभा नर, नारायण शीर अग्न शिष्य महर्षिषो के द्वारा
एसा ही अनुगोप किया जा रहा है । ये मन्त्री मेरे धरनोत्तर को सुधुपा
में तत्पर होकर प्रत्यवेदना कर रहे हैं । धार ही महेश्वर के परम
अवतार मन्वन्त है जोर मन्त्र प्राणियों के पारगायी विद्वान् महापुरुष
हैं । धार मन्त्र लोको म भी व्याप्त हैं इसी कारण से धार हम सबको
मनुगायन कीश्रियमा ।१९ - २१।

त्वन्मुखादव भगवन्वचमेते मुनिक्षिताः ।

पूर्वमत्र त्वया देव किं वाज्यदुपपद्यते ।२२।

शिवप्राणपुत्राणांनि द्रष्टव्यः परमेश्वरः ।

कान्त्यापनीवास्तुदीवाभगवान्वायवाभवान् ।२३।

रविव सप्तमि नो भक्तिर्वा चाऽन्मातु ते यदि ।

रहस्यानिदमुदात्त प्रसाद कर्तुमहसि ।२४।

इत्य मृगच्छुभयन स नन्दितशो ।

विज्ञानेन सकिमस मगधमानमभवम् ।२५।

तं प्राह पातनर शिवभक्तिमत्सु ।

प्रारभानतापितशिवप्राणरीर्त्तनाडम् ।२६।

हे भगवन् ! हम सब लोग आपके ही मुख से निकले हुए बचना-
मृत्यु के द्वारा सुशिक्षित होंगे । हे देव ! आपने पहिने ही हमको विद्या
प्रदान की है भयवा कुञ्ज अन्य उपरस होता है । दिव्य आशम, पुराण,
परमेश्वर, कातवायनी भयवा स्कन्द या भगवान् हिन्दा आप कौन
देखने के योग्य हैं ? आपके चरणों में यदि हम सबकी भक्ति है और
यदि हम आपके ऊपर आपका श्यामाव है तो इस परम गोपनीय रहस्य का
उद्घाटन करके हम सबके ऊपर आप प्रसन्नता करने के योग्य होते हैं ।
इस प्रकार से महर्षि मृच्छन्तु के पुत्र मार्कण्डेय के द्वारा जब विनय पूर्वक
विज्ञापित किए गये थे तो विनोत भाव से समन्वित स्वयंभात मुख वाले
वया शिव की भक्ति वाले मे परम उन्नत और प्रथम भक्ति के द्वारा
सन्तुष्ट किये हुए भगवान् त्रिव से सम्प्राप्त नारीर की सिद्धि वाले मार्क-
ण्डेय ऋषि तन्दीश्वर ने कहा था । २२—२६।

१६—अच्छाचलस्थानमाहात्म्यवर्णन

मुनेमनः परीक्षार्थं तथा त्व भाषितोमया ।
 तत्रचेन्नाभिधास्यामिकस्यवान्यस्यकथ्यते । १।
 त्वाहगन्धोऽस्ति किलोकेतिवधम परायणः ।
 येनस्वल्पायुषाऽप्येवंतित्येनाभाविभक्तिवत् । २।
 कस्याऽधरयकृतेदेव स्वस्यैवाजाकरयमम् ।
 क्रुद्धो नियन्त्रयामास चरणाङ्गुष्पीडितम् । ३।
 त्वमेवशाङ्करान्धमन्तिवन्विद्विरहस्यतः ।
 योऽप्रेऽसिकालवद्भ्रान्तः परिषवत्रोऽसिचेतसा । ४।
 त्वयैवाऽन्येनकेनाऽहमेवशुश्रूषितश्चिरम् ।
 त्वयीवकस्मिन्नन्यन्मिन्ममापिप्रोतिरीहशो । ५।
 उपदेक्षयामिते क्षेत्रं गुप्तं तद्धमेकासनैः ।
 भक्त्याऽवधारणोर्यं यद्भक्तिर्कैवल्यकाङ्क्षिभिः । ६।

आदरादनुयुञ्जानंशिष्यंघोदेशिकः स्वयम् ।

उपदेशेन सम्पुष्टं न करोति स किगुरुः ।७।

नन्दिकेश्वर ने कहा—हे मुने ! मैंने आपके मन की परीक्षा करने के ही लिए इस प्रकार से आपके बातचीत की थी । यदि ऐसा रहस्य मैं आपकी ही नहीं बनलाऊंगा तो फिर अन्य ऐसा कौन है जिससे यह कहा जा सकता है ।१। इस लोक में आपके तुल्य दिव के धर्म में परायण अन्य कौन हैं जो अपनी स्वला आयु वाला होकर भी इस नित्य धर्म से भक्ति-भाव पूर्वक मुक्त हो गया था । किम अन्य के लिए देव ने क्रुद्ध होकर चरण के मङ्गुल्य से पीडित अपनी ही मात्रा को करने वाले यम को नियन्त्रित किया था ।२।३। आप ही एक रहस्यपूर्वक सम्पूर्ण साक्षर धर्मों का ज्ञान रखने हैं । जो आपके काल के समान भ्रान्त है वह चित्त से परिपक्व हो ।४। अगर किसी ने भी नहीं, केवल आपने ही इस प्रकार से विरवात पर्यन्त मेरी सुश्रूषा की है । पारके समान अन्य किम म मेरी भी ऐसी प्रीति होगी अर्थात् आपके अनिश्चित ऐसी प्रीति अन्य किसी में भी नहीं हो सकती है । मैं आपकी उम ठीक का उपदेश दूंगा जो उम धर्म के धामनों के द्वारा भी गुप्त है । भक्ति से ही कवल्य की इच्छा रखने वालों को भक्ति की भावना ही से उमका अवधारण करना चाहिये ।५।६। आदर म अनुयुञ्जान शिष्य ही जो आचार्य स्वयं उपदेश ने द्वारा सम्पुष्ट नहीं किया करता है वह गुरित्त ही गुरु होता है ।७।

समाहितमनाभूत्वा विश्वासं कुरु शास्त्रतम् ।

मयोपादिश्यमानेऽस्मिन्नहस्ये पारमेश्वरे ।८।

स्मर स्मरान्तक देवं वदस्वाश्रयाय शाङ्करीम् ।

उपासूचारयोद्धारं श्रेयस्ते महदागतम् ।९।

अस्ति दक्षिणदिग्भागे द्वाविडेपु तपोधन ।

अरण्यारय महाधेयं तदस्योद्गुणिसामगोः ।१०।

योजनत्रयविस्तीर्णमुपस्यं शिवयोगिभिः ।
 तद्भूमेहृदयं विद्धि शिवस्य हृदयङ्गमम् ॥११॥
 तत्र देवः स्वयं शम्भुः पर्वताकारतां गतः ।
 अष्टांगचलसञ्ज्ञावानस्तिनोकहितावहः ॥१२॥
 आवासः सर्वमिद्वानामहर्षीणांमुपवैशास्यम् ।
 विद्याधराण्यक्षाणां गन्धर्वाभिरसामपि ॥१३॥
 सुमेरोरपि कैलासादप्यसौ मन्दरादपि ।
 मानवीयो महर्षीणां यः स्वयं परमेश्वरः ॥१४॥

समाहित मन वाला होकर शाश्वत विश्वास करो । जो मेरे
 द्वारा यह परमेश्वर रहस्य उपदिश्यमान किया जा रहा है इसमें पुण्य
 विरक्तता करना चाहिये । यः कामदेव को मस्मीभूत करने वाले देवेष्वर का
 स्मरण करो और अश्याष शाङ्करी की कवना करो । उमासु होकर
 प्रोद्धार का उच्चारण करो, मापकी महादेव श्रेय समागत ही है । ११॥
 हे तपोधन ! इक्षिता दिशा के भाग में द्वाविट् देवों में एक अष्टांग नाम
 वाला महान क्षेत्र है जो त्रिशुलु सिखा मण्डिका का ही क्षेत्र है । १२॥ यह
 क्षेत्र तीन योजन के विस्तार से युक्त है और शिव के योगियों के द्वारा
 उपासना करने के योग्य है । यह इस भूमिका हृदय ही जगत नी तथा
 भगवान शिव के हृदयङ्गम है । वही पर देव शम्भु स्वयं ही एक पर्वत
 के आकार को प्राप्त हुए है । यह 'अष्टांगचल' — इस सना वाला है और
 लोको के हित का आह्वान करने वाला है । यह सब सिद्धो का निवास
 स्थान है और इसमें सनामुपवा तथा महर्षिणां का आवास होता है । यह
 विद्याधरों, यक्षों, गन्धर्वा और अक्षराओं का भी स्थल है । यह सुमेरु
 से भी, कैलास से भी और मन्दराचल से अधिक मानवीय है तथा मह-
 र्षियों का भी मानवीय है क्योंकि यह ही स्वयं ही मायात् परमेश्वर है ।
 १११—१४॥

स्पृहयन्ति यदीयेभ्योजन्तुभ्योऽपि दिवोकसः ।
 अयत्नलभ्यमुक्तिभ्यो दिवा वासप्रवञ्चिताः । ११५।
 न कल्पवृक्षाः सदृशाः यत्र तपानाम्महीरुहाम् ।
 पत्रपुष्पफलैर्नित्यं येऽच यन्ति गिरीहरम् । ११६।
 हिंसकं रुचयो व्याधा अपि स्वानुसारतः ।
 अनन्ता यत्र देवस्य प्रादक्षिण्यफलास्पदम् । ११७।
 यदुद्देशचरामेघाः शिखराण्यभिवन्धकाः ।
 गगावतो हिमवतोऽप्यधिकस्वं विजानते । ११८।
 कलारावाः सगा यत्र क्ष्वण्णते कीचका अपि ।
 यक्षकिन्नरगन्धर्वैर्लभ्यते दुर्लभं पदम् । ११९।
 स्मरन्तो यत्र खद्योताः कृष्णपक्षे निशागमे ।
 थारातिकप्रदातृणां देवस्याऽऽनुवते पदम् । १२०।
 निष्प्रत्यूहकृताश्लेषा नित्यं यत्तदिनीरुहाः ।
 सोभायगर्वन्तो देवीमगर्णामयमन्वते । १२१।

इसमें निवास करने वाले बहुत जन्तुओं से भी स्वर्ग के निवास करने वाले देवगण भी स्पृहा करते हैं क्योंकि यहाँ के सभी निवासी बिना ही किसी मटा के मुक्ति का लाभ प्राप्त करने वाले हैं । देवगण तो यहाँ पर दिवा वास से भी वञ्चित रहा करते हैं । ११५ गहाँ पर रहने वाले वृक्षों के सदृश माधान् बला वृक्ष भी नहीं है क्योंकि जो वृक्ष नित्य ही पत्र-पुष्प और फलों के द्वारा इस पवन में मगधान हट का प्रचलन किया करते हैं । एकमात्र हिता करने की हवि रखने वाले व्याघ्र भी रूपों के अनुसार प्रगन्न है जहाँ पर देव के प्रादक्षिण्य फल के आस्पद (स्वान) होते हैं । त्रिकके उद्देश में सवरण करने वाले मेघ जो शिखरों के अभिवन्धक हैं वे गङ्गा यात्रे और हिमवात ये भी अधिक अपने आरती मगका करते हैं ? जहाँ पर कीचक भी (याग भी) बन प्यनि वाले सभी जैसी इति वाले होकर बरलुन किया करते हैं । यत्र,

किन्नर गन्धर्वों के द्वारा दुर्लभ पद का लाभ प्राप्त किया जाता है । जहाँ पर कृष्ण पक्ष में निशा के क्षापन होते पर स्मरण करते हुए सद्योव देव की भारती देने वाले लोगों के पद का भजन किया करते हैं । जहाँ के तटिनी रुद्र विना किसी विघ्न तथा अडचन प्राप्तेय कर, वाले होते हैं । ये अपने सोमाग्न के गर्व से देवी अर्पणा का भी सम-मानन किया करते हैं । ११६—२१।

यस्योत्तुङ्गस्य शृङ्गाश्रसङ्गमात्रपितारकाः ।
जात्मनोलब्धसामान्याश्चन्द्रेण बहुमन्वते । २२।
मृगाः सर्वेऽपि सततं चरन्तो यत्र सानुषु ।
पाणिप्रणयिन शम्भोरेणामप्यवजातते । २३।
यस्य पादान्तिकचरैः प्रायेण शबरैरपि ।
निकुम्भकुम्भसादृश्यमयत्नादुपलभ्यते । २४।
किं बहुवत्याभ्यसूयन्ते द्वैमातुरकुमारयोः ।
यदङ्गुलुडास्तरवस्तिर्यञ्चः शबरा अपि । २५।
सिंहव्याघ्रद्विपायस्मिन्कालेत्यक्तकलेवराः ।
वासप्रदत्वान्भाम्यन्तेऽनुवशोऽष्टादिशम्भुना । २६।
अस्यमास्करनामाद्रिः पूर्वस्मादिशि दृश्यते ।
यत्रस्थितः सदावज्जीसेवतेशोणपर्वतम् । २७।
प्रचोच्यां दिशि दण्डादिरिति कश्चिन्महीधरः ।
प्राचेतसस्तदगगः सेवतेऽहणपर्वतम् । २८।

जिस उन्नत गिरि के शृङ्ग (चोटी) के पर्यन्त माग के साथ में सङ्गम प्राप्त करने वाले भी तारे सामान्य रूप से इसको प्राप्त करते हुए अपने मापको चन्द्रमा से भी अधिक मानते थे । जिस गिरि पर चोटियों में निरन्तर चरण करने वाले मृग भी शम्भु के पाणि का प्रणयी जो मृग था उसको भी अवमानित किया करते थे अर्थात् अपने मापको उससे किसी भी दशा में कम नहीं समझा करते थे । जिस गिरि के पाद

के समीप में सञ्चरण करने वाले शकरो ने भी बिना ही किसी प्रयत्न के मिकुम्म-कुम्म की सदृशता प्राप्त कर लिया था । अधिक कथन से बचाने के लिये इस गिरि के शङ्ख में समाहित होने वाले तरुवृन्द, तिर्यक्, योनि वाले प्राणि वर्ग और शकरो भी भगवान् शिव के साक्षात् पुत्र मणेश और स्वामी कार्तिकेय को भी कुछ नहीं समझा करते हैं । जिस गिरि में कान के प्राप्त होने पर अपने कसेवरो के त्याग करने वाले सिंह व्याघ्र और हाथी उस गिरि में वास के प्रदान होने के कारण से शोणादि शम्भु के द्वारा द्रुव माने जाया करते हैं । २२ — २६। भास्कर नाम वाला पर्वत इस गिरि की पूर्व दिशा में दिखलाई दिया करता है जहाँ पर सदा अवस्थित हुआ वज्री (इन्द्र) शोण पर्वत का सेवन किया करते हैं । इसकी पश्चिम दिशा में कोई दण्डादि नाम वाला पर्वत स्थित है । उसकी उत्तर पर समवस्थित होकर प्राचेनम ग्रहण पर्वत की सेवा किया करते हैं । २७ — २८।

दक्षिणस्या च शोणाद्रे रद्विरहत्यमराचलः ।

कालः शोणाद्रिरोवायंमध्यास्ते तदधित्यकाम् । २६।

उत्तरेऽस्मिन्ह्रिद्भागे सिद्धाध्यासितकन्दरः ।

विराजतेप्रशूलाद्रिः श्रीदेनपरिपालितः । २७।

तत्पर्यन्तप्रभूतानामाग्येषामपि भूमृताम् ।

तटकेधनपरे चैव दिक्पालाः पर्युपासते । २८।

धारिता येन सततं सर्वेऽपि धरणीरुहाः ।

आराधनादप्यधिकमधिगच्छति वैभवम् । २९।

पश्चिमिनिरीशेसंष्टे मेनातुहिनभूमृतोः ।

समानसम्बन्ध तया प्रमोदी वर्द्धतेतराम् । ३०।

तरपल्लवतक्षेण सद्यमाणजटाधरः ।

स्यावरोऽयं स्वयं घम्भुरिहेशः इव जङ्गमः । ३१।

ज्योतिष्मत्तोपशृङ्गस्य द्विपार्श्वस्थेन्दुभास्करः ।

अपनवित स्वस्य लोकेभ्यस्तेजस्त्रयनेत्रताम् ।३५।

वर्षासुशिखराधस्तादभितोलबलाहकः ।

विराजते यः कण्ठेन कालकूर्दमिवोद्वहन् ।३६।

शोणाद्रि की दक्षिण दिशा में एक अमराचल नाम वाला अद्रि है । कान इसकी प्रधियका में शोणाद्रि का सेवन करने के विराजमान रहा करता है ।३५। इसके उत्तर दिशा के भाग में शिखों के द्वारा अभ्या-
मित कन्दराओं वाला श्रीद के द्वारा परिपातित त्रिशूनाद्रि विराजमान है । इसके पर्वन्त भाग से होने वाले अन्य जो पर्वतों के तत्प्रदेशों में हमारे दिग्गन्ध उपायना किया करते हैं । जिनमे निरन्तर सभी घरणी रही की धारण किमे हैं वे माराधना से भी अधिक वैभव को प्राप्त किया करते हैं । भगवान गिरीश के द्वारा जिनके देखे जाने पर समान सम्बन्ध होने के कारण मेना और हिमवान् पर्वत का प्रमोद और अधिक बढ जाया करता है । तदमी के पत्नियों के लक्ष से नद्यमायु अटावर स्वा-
वर यह शम्भु स्वय यहाँ पर जङ्गम ईश की भाँति विराजमान हैं । ज्योति से सयुक्त तोय शृंग के दोनो पार्श्व भागों में स्थित चन्द्र और भास्कर वाला उसका अपना तेज लोको के लिए तीन नेत्रों का होना व्यक्त किया करता है ।३० — ३६।

सहस्रपादः साहस्रशीर्षो यः पर्वतेश्वरः ।

उक्तो न केवलं श्रुत्वा साक्षादप्युपलक्ष्यते ।३७।

शिरोलीनामरसरित्त्रोवाः प्रागिति नाद्भुतम् ।

गिरीशोऽद्यापि यः शृङ्गलीनानेकसरिद्गगुः ।३८।

आसादितापकटकः शारदर्यः पयोधरैः ।

विडम्बयति गोश्रेष्ठमारुढवृषपुङ्गवम् ।३९।

यत्र शृङ्गाग्रसंलग्नसंलग्ननीललोहितः ।

स्थानाद्वैतं स्थानवन्धैव एतद्वन्दैव श्रीमन्मया ।४०।

सुदुर्गमत्वादुग्रस्त्वमपि घत्ते न नामतः ।
 धुद्रा सरोसृरा यत्र कटकेषु कृतास्पदाः ।४१।
 तक्षकानन्तसर्पाद्यः स्वर्षन्तेभुजगेश्वरः ।
 अष्टामिर्योऽभितः कोर्णराविभूतोविभूतिभिः ।४२।

वर्षा नाल के प्रवसरो में इसके शिखर के नीचे के भाग में अभिनील बलाहक विराजमान रहा करता है जो कंठ के द्वारा कालकूट विष को ही उद्धहन करने वाला प्रतीत हुआ करता है । सहस्र पादों वाला और सहस्र शीपों वाला जो यह पर्वतेश्वर है वह केवल श्रुति के द्वारा ही नहीं कहा गया है यहाँ पर यह साक्षात् उल्लिखित हुआ करता है । ज्वरों की सरिता भागीरथी गंगा भगवान शिव के शिर में लीन है और पहिले स्त्रोत्र भी थे—यह बात कुछ भी मद्मन नहीं है । घात्र भी गिरीश जो हैं उनके श्रुतों में घनेक सरिताशो के समुदाय लीन हैं । १३६।३७।३८। शरत्काल के मेषों से जो प्राप्तहित धपकरक वाला होता है वह समाह्वय धृषों में धरिष्ठ गोश्रेष्ठ की ही विडम्बना किया करता है ।३९। त्रिमये श्रुती के प्रथम भाग में नीच लोहित संलग्न रहते हैं उक्त समय में स्व वरता होने से स्यागुत्त और गहनता होने से भीमता और सुदुर्गम होने के कारण उग्रता को यह धारण किया करता है । केवल नाम से ही नहीं प्रत्युत वस्तुतः इनका स्वरूप उग्र हो जाया करता है । जहाँ पर धुद्र सरो सृरा (सर्प) कटकों में प्रास्पद बनाने वाले हैं जो कि भुजगेश्वर तक्षक एवं घनघ्न सर्प घादि के साथ स्वर्षा किया करते हैं । जो शोनों और घाठ कोर्णों से और विभूतियों से प्राविभूत रहा करता है ।४०।४१।४२।

सुस्पष्टं विशिनष्टीव स्वकीयामष्टमूर्तिताम् ।
 येर्ष्या (आया) दक्षितरङ्घ्रिष्वोरिडापिङ्गलवोः स्वयम् ।४३।
 शिवस्यश्रुद्धतो मध्येमुपुम्नाकमलापगा ।
 ज्योतिः स्तम्भस्वरूपस्वभूलाग्नेयस्यधीक्षानुम् ।४४।

कोलहंसाकृतीनालं ब्रह्मविष्णुवभूवतुः ।
 ताम्नाचप्रापितः शम्भुस्तस्मिन्मानिव्यवानभूत् ॥४५॥
 अष्टाचलनाथास्य प्रपन्नः प्रमदं समम् ।
 गौतमस्तत्र योगीन्द्रः सहस्रं परिवत्सरान् ॥४६॥
 तप्त्वा तपांसि वीत्राणि साक्षाच्चक्रे सदाशिवम् ।
 प्रालेपशालकन्यापितत्रकृत्वा तपः पुर ॥४७॥
 अलक्ष्यवामदेहाद् मन्मथारैः प्रसेदुषः ।
 गौर्या प्रतिष्ठितं तत्र प्रवालाद्रीश्वराभिधम् ॥४८॥
 लिङ्गं भोगप्रदं पुंसां कंबुधाय प्रकल्पते ।
 तत्र गौरीनिदेशेन दुर्गा महिषमदिनी ॥४९॥

बहुत ही स्पष्ट रूप से यह प्रपनी घट मूर्तियों वाचा होना मानों प्रकट किया करता है । प्राचा घनित वरुणिसी ये दोनों स्वयं इडा और पिंगला है । शिव के शृंग से मध्य में कमला सागर (नदी) सुगुप्ता है । जिस ज्योतिः स्तम्भ स्वरूप के मूनाग्र में देखने के लिए है ॥४३॥४४॥ वहाँ पर कोल और हंस की साहसि वाले ब्रह्मा तथा विष्णु हुए थे । उनके द्वारा प्रायंता किए हुये भगवान शम्भु ने उसमें साक्षिण्य किया था ॥४५॥ वहाँ पर योगीन्द्र गौतम ऋषि अनदो के साथ अष्टाचल नाथ धाम वाले प्रभु के स्वरूप में सहस्र परिवत्सर तक प्रपन्न हुआ था । इसने प्रति नीत्र तपश्चर्या करके भगवान सदाशिव प्रभु का साक्षात्कार प्राप्त किया था । वहाँ पर पहिले प्रालेप शैल की मर्गात् हिमशान् पर्वत की कन्या ने तप करके समवस्थित काम के नाशक त्रि। के वामदेह के सब साग को प्राप्त किया था । वहाँ पर प्रवाल से ईश्वर नामधारी की गौरी ने प्रतिष्ठा की थी । यह भगवान शिव का लिंग पुरुषों को भोगी का प्रदान करने वाला था और कंबुध (भोज) की प्राप्ति के लिए भी प्रकल्पित होता है । वहाँ पर गौरी के निदेश से दुर्गा महिषासुर के मर्दन करने वाली हुई थी ॥४६-४९॥

साक्षाद्भूय नतां दत्तो मन्त्रसिद्धिमविघ्नतः ।
 सङ्गतीर्थमतिरुयात् तत्र गीर्वाथमेनवम् ॥५०॥
 सकृन्निमज्जनान्नुणां पञ्चपातकमाशनम् ।
 दुर्गं वा चाचितं लिङ्गं पापनाशननामकम् ॥५१॥
 सकृत्प्रणाममात्रेण सर्वपापप्रणाशनम् ।
 तत्र वज्राङ्गदो राजा वित्तसारो व्यतिक्रमात् ॥५२॥
 पुनस्तदभक्तिमाहात्म्याच्चिद्वसायुज्यमाप्तवान् ।
 तस्यप्रदक्षिणेनैवकान्तिशालिकलाधरो ॥५३॥
 विद्याधरेश्वरी भुवतो दुर्वासाः शापबन्धनान् ।
 नास्ति शोणाद्रितः क्षेत्रं नास्ति पञ्चाक्षरान्मनुः ॥५४॥
 नास्ति माहेश्वरादर्मो नास्ति देवो महेश्वरात् ।
 नास्ति ज्ञानं शिवज्ञानात्नास्ति श्रोत्रतः श्रुतिः ॥५५॥
 नास्ति शंवाग्रणीविष्णोर्नास्ति रक्षा विभूतितः ।
 नास्ति भवतेः सदाचारो नास्ति रक्षाकरादगुरः ॥५६॥

यह देवी साक्षात् होकर सस्पुरुषों की बिना किसी विघ्न बाधा के मन्त्रों की सिद्धि प्रदान किया करती है । वहाँ पर उस गीरी के प्राथम में नूतन सग तीर्थ इस नाम से विख्यात हुआ था ॥५०॥ वहाँ पर एक ही बार निमज्जन करने से मनुष्यों के पाँच पातकों का विनाश हो जाया करता है । दुर्गादेवी के द्वारा घर्जना किया हुआ यह लिङ्ग पाप नाशन नाम वाला होता है । एक ही बार प्रणाम कर देने मात्र से यह सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला होता है । वहाँ पर वज्राङ्गद राजा वित्तसार व्यतिक्रम से फिर उत्तमो भक्ति के माहात्म्य से भगवान् शिव की सायुज्यता को प्राप्त करने वाला हो गया था । उसकी प्रदक्षिणा से ही कान्तिशाली और कलाधर ये दोनों विद्या धरेश्वर दुर्वासा के शाप के बन्धन से मुक्त हो गए थे । शोणाद्रि से अधिक उत्तम कोई भी क्षेत्र नहीं है और पञ्चाक्षरी (ओं नमः शिवाय, मन्त्र से अधिक कोई

भी अन्य मन्त्र नहीं है । ११—५४। माहेश्वर से अधिक उत्तम अन्य कोई भी मन्त्र नहीं है । और देव माहेश्वर से बड़ा अन्य कोई भी देव नहीं है । शिव के ज्ञान से बड़ा अन्य कोई भी ज्ञान नहीं है और श्री छद्म से बड़ा अन्य कोई भी श्रुति नहीं है । १५। विष्णु से बड़ा अन्य कोई मयखी देव नहीं है और विभूति से अधिक कोई भी रक्षा नहीं है । भक्ति से बड़ा कोई अन्य सदाचार नहीं है और रक्षा करने वाले से बड़ा कोई अन्य गुरु नहीं । १५—१६।

नास्ति रुद्राक्षतो भूषा नास्ति शास्त्रं शिवागमात् ।

नास्ति विल्वदलाश्वत्थं नास्ति पुष्पं मुवर्णकात् । १७।

नास्ति वैराग्यतः सौख्यं नास्ति सुवर्ते. परं पदम् ।

नारुणाद्रोः समा मेरुर्न कंलातो न मन्दरः । १८।

ते निवामा गिरिव्यासाः सोऽयन्तु गिरीशः स्वयम् । १९।

इति वदति शिवादनन्दने मुदितमनाः स मृकण्डुतन्दनः ।

पुनरपि बहुश. प्रणम्य त चाकृतमना भवता व्यजिज्ञपत् । २०।

किं किं तृणा कर्म भवाय जायते ।

कथं नु तत्तत्परकार श्रूयते ।

तेषां च तेषां च कथं प्रतिक्रिया

कथं न तत्तन्मम कथ्यतामिति । २१।

छद्राम के समान अन्य कोई भी भूषा (आभूषण) नहीं है और शिव के सामग्य से अधिक बड़ा कोई भी सामग्री नहीं है । विल्व इन से अधिक महिमा वाला कोई भी पत्र नहीं है और मुवर्णक से अधिक कोई महान पुष्प नहीं है । १७। इस अगत् के वैराग्य से अधिक अन्य कोई भी सुख नहीं है और जन्म-मरण के बारम्बार आवापदन से छुटकारा दिलाने वाली मुक्ति से बड़ा अन्य कोई भी परम पद नहीं है । इस अरुण पर्वत के समान न मेरु है, न कंलात है और न मन्दराचल ही है । १८। वे सभी पर्वत भगवान गिरीश के निवास स्थान होने के

कारण इतने अधिक महत्काली हुए हैं और यह भयानक तो स्वयं ही साक्षात् गिरीश है । १६। इस तरह से शिला नन्दन के यह कहने पर वह मृकण्डु के पुत्र अत्यन्त ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे और फिर भी उनको बहुत बार प्रणाम करके शक्ति मन वाले होते हुए उनसे मार्कण्डेय मुनि ने जिज्ञासा की थी । १७। हे भगवन् ! कौन-कौन से कर्म ऐसे हैं जो मनुष्यों को ससार के बन्धन में जल देने वाले होते हैं और कौन से कर्म ऐसे होते हैं जो मनुष्यों को उन-उन नरकों में डाल दिया करते हैं । उन कर्मों की क्या-क्या प्रतिक्रियाएँ होती हैं जिनके करने से उन समस्त और कष्टों से मनुष्यों का छुटकारा हुआ करता है—यह सभी आप महती कृपा करके मुझे बतलाइये । १८।

॥ माहेश्वर खण्ड समाप्त ॥

स्कन्द पुराण

वैष्णव खण्ड

२०—वैष्णवाचल महात्म्य

पावनेनैमिषारण्ये शीनकाद्या महर्षयः ।
चक्रिरे लोकस्वार्थं सत्र द्वादशवर्षिकम् ॥१॥
तानभ्यगच्छत्कथको व्यसशिष्यो महामतिः ।
मुनिष्यश्च नाप रोमहर्षसुसम्भवः ॥२॥
सभ्यगम्यचित्तस्तीर्षामृतः वीरार्णकोरामः ।
कथयामास तद्विष्यंपुराणांस्कन्दनामकम् ॥३॥
सृष्टिसंहारवंधानावंशानुचरितस्य च ।
कथामन्वन्तराणां च विस्तरात्स न्यवेदयत् ॥४॥
कथास्तोत्रप्रभावाणां श्रुत्वा ते मुनिपुङ्गवाः ।
ऊचरे वंशिनसूतकथाश्रवणकाङ्क्षया ॥५॥
रोमहर्षेण सर्वज्ञ पुराणार्थविशारद । ।
माहात्म्यंश्रोतुमिच्छामोगिरीन्द्राणां महीवने ॥६॥
ब्रूहि त्वं नो महामाग । के प्रधाना महीवराः ।
एतमेव पुरा प्रश्नपृच्छं ब्राह्मवीतटे । ।
व्यास मुनिवरश्चेष्टं सोज्ज्वलीन्मे गुरुत्तमः ॥७॥

नोको की रक्षा के लिए बारह वर्ष में पूर्ण होने वाला एक
यज्ञ किया था ।। उनके समीप में श्री व्यास देव का शिष्य महा

मस्तिमान् कथायै कहने जाने, रोमहर्षण से समुद्रमंजुष्य मुनि समागत हुए थे । १। पौराणिकों में परम श्रेष्ठ सूतजी उनके बहुत अधिक प्रशंसित हुए थे । फिर उन श्री सूतजी ने भक्त्यन्त दिव्य स्कन्द नामक पुराण की कथा था । २। सृष्टि, संहार, बंसी का वर्णन तथा बंसी के अनुचरित का कथन श्री मन्वन्तरो का विस्तार पूर्वक वर्णन उनसे निवेदिन किया था । ३। उन मुनि पुङ्गवों ने तीर्थों के प्रभावों की कथा का श्रवण करके उन वंशी श्री सूतजी से विशेष रूप से श्रवण करने की इच्छा से यह कहा था । ४। ऋषि वृन्द ने कहा — हे रोमहर्षण, पाप ही सर्वज्ञ है और पुराणों के अर्थ के ज्ञान के महान मन्वीषी हैं । हम लोग सब इस महीनल में गिरीन्द्रा के माहात्म्य को श्रवण करने की इच्छा करते हैं । हे महाभाग ! पाप हस्तों यह बताइए कि कौन से महीधर प्रधान है ? श्री सूतजी ने कहा पहिले जाह्नवी नदी के तट पर यह ही प्रधान मुनिवरी में परम श्रेष्ठ श्री व्यास देव जी से पूछा था । उन गुरुदेव ने मुझसे कहा था । ६। ७।

पुरा देवयुगे सूत नारदो मुनिसत्तमः ।
 सुमेरुशिखर गत्वा नानारत्नमुशीभितम् । ८।
 तन्मध्येविपुलं दीप्त ब्रह्मणो दिव्यमानयम् ।
 दृष्ट्वा तत्पयोत्तरे देवे विष्पलद्रुममुत्तमम् । ९।
 सहस्रयोजनाच्छ्राय विस्तीर्णं द्विगुणतया ।
 तन्मूलेमण्डपदिव्यनानारत्नसमन्वितम् । १०।
 पञ्चरागमणिस्तम्भं मङ्गलं समलङ्कृतम् ।
 बद्धममुत्तमणिभि कृतस्वस्तिकमानिकम् । ११।
 नवरत्नयमारीणं दिव्यतोरणशोभितम् ।
 मृगपक्षिभिरारीणं नवरत्नमयैः शुभं । १२।
 पुष्पराममहाद्वारं मत्तभूमितमोपुरम् ।
 सन्दीपवज्रमुत्कृतकवाटद्वयशोभितम् । १३।

प्रविश्याऽसौ ददसन्ति दिव्यमौक्तिकमण्डपम् ।
 वैदूर्यवेदिकं तुङ्गमारुरोह महामुनिः ॥४॥

श्री महर्षि व्यास जी कहा था—हे सूत ! पहिले पुरातन समय में मुनिवर्ण ने परम श्रेष्ठ देवर्षि नारद जी उस देव युग में नाना भाँति सुन्दर रत्नों से सुशोभित सुमेघ पर्वत की शिखर पर जाकर उसके मध्य में विशाल एवं दीप्तिमान ब्रह्माजी का एक दिव्य मण्डप उगहोने देखा था उसके उत्तर दिग्भाग में एक उत्तम पीपल का द्रुम था । उस पीपल के वृक्ष की ऊँचाई एक सड़स योजना थी तथा इससे दुगुना उसका विस्तार था । उस वृक्ष के मूल भाग में एक परम दिव्य मण्डप था जो अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त था वह मण्डप महलों ही पधारण मणियों से मनी-मौलि अनङ्कृत था और वैदूर्य मणि और मुक्ता भीती । ओ से उसकी स्वस्तिक मालिका की हुई थी । ८—११। नौ प्रकार के रत्नों से वह ममकीर्ण था और दिव्य तोरणों से परम शोभा युक्त था । नवरत्नों से परिपूर्ण अति सुम मृग और पक्षियों से भी वह संकुल था । १२। पुनराग मणियों से उसका महा द्वार निर्मित हो रहा था और उसका गोपुर तप्त भूमिक था । मनी-मौलि दीप्ति से युक्त बज्र (हीरा) मन्त्रे सुरचित दो किवाड़ों से वह भी शोभा वाला था । १३। चढ़ने उद्यर्त अन्दर प्रवेश करके उस परम दिव्य मौलिक मण्डप को देखा था जिसमें वैदूर्य मणियों से एक वेदिका बनी हुई थी । उस उच्च स्थान पर वह महामुनि चढ़ गये थे । १४।

तन्मध्ये तुङ्गमनुवं वामुपादविराजितम् ।
 ददसं मुक्तासङ्कीर्णं सिंहासनं महावृत्ति ॥१५॥
 तन्मध्ये पुष्करं दिव्यं सहस्रदलशोभितम् ।
 श्वेतं चन्द्रसहस्राभं कर्णिकारिकाकेसरीज्ज्वलम् ॥१६॥
 तस्य मध्ये समासीनं पूर्णचन्द्रायुतप्रभम् ।
 कैलासपर्वताकारं सुन्दरं पुरुषाकृतिम् ॥१७॥

चतुर्बाहुमुदारान्नं वराहवदनं शुभम् ।
 शङ्खचक्रामयवराण्विभ्रमाणं पुरुषोत्तमम् ॥१८॥
 पीताम्बरधरं देव पुण्डरीकायतेक्षणम् ।
 पूर्णन्दुसीम्यवदनं धूपगन्धिमुखाम्बुजम् ॥१९॥
 सामध्वनिं यज्ञमूर्तिं स्तुवतुण्डं स्तुवनासिकम् ।
 क्षीरसागरमञ्जरीं किरीटीज्ज्वलिताननम् ॥२०॥
 श्रीवत्सवक्षसं शुभ्रयज्ञसूत्रविराजितम् ।
 कौस्तुभश्रीसमुद्द्योतं समुद्रतमहोरसम् ॥२१॥

उसके मध्य भाग में पर्युच्च, पतुल, मुक्ताक्षी से संकीर्ण, महान
 द्युति से सुम्नत्र आठ पादों से विराजित एक सिंहासन देखा था । उसके
 मध्य में एक महत्स दलों से लोभा वाला परम दिग्ध पुण्डर या जो
 सहस्र रत्न चन्द्रों की आना के सहस्र आभा वाला था और कणिका की
 बेशरी से प्रतीव समुज्ज्वल था । उसके मध्य में अमृत पूर्ण चन्द्रों की
 प्रभा से मुक्त, कलास पङ्कत के सहस्र आकार वाले, परम सुन्दर पुण्ड
 के तुल्य आदृति वाले को मन्मथीन देखा था । उनके चार बाहुओं परी—
 परम उदार अङ्ग या और परम शुभ वराह के जैसा मुक्त था । शङ्ख,
 चक्र और अमय दान के वर को धारण करने वाले परम उत्तम पुण्ड
 थे ॥१५ - १८॥ वह मङ्गापुण्ड पीताम्बर धारी थे और वह देव पुण्डरीक
 (कमल) व समान विशाल नेत्रों वाले थे । पूर्ण चन्द्र और मुख्य सीम्य
 मुख से मुक्त तथा धूप की गन्ध से समन्वित मुख कमल वाले थे ॥१९॥
 साम वेद की ध्वनि से मुक्त, यज्ञ मूर्ति, स्तुवतुण्ड वाले और स्तुवा के
 समान नासिका वाले थे । और नागर के समान तथा किरीट से समुज्ज्व-
 लित आना (मुख) धारण था । उनके अशः स्थान पर श्री वत्स का
 शुभ चिह्न या और प्रतीव शुभ्र यज्ञ सूत्र से लोभायमान थे । कौस्तुभ
 मणि की श्री की समुद्योति से समन्वित थे तथा समुद्रतमहोरस एवं
 स्थान वाले थे ॥२०-२१॥

जाम्बूनदमयैदिव्यैः सुरन्नाभरणैर्मुत्तमम् ।
 विद्युन्मालापरिक्षिप्तशरन्मेषमित्रोज्ज्वलम् ॥२२॥
 वामपादतलाक्रान्तपादपीठविराजितम् ।
 कटकान्गदकेयूरकुण्डलोज्ज्वलितं सदा ॥२३॥
 चतुर्मुखवसिष्ठात्रिमाकण्डेयैर्मुनीश्वरैः ।
 मृगादिभिरनेकैश्च सेव्यमानमहर्निशम् ॥२४॥
 इन्द्रादिलोकपालैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
 सेवितं देवदेवेश प्रणयत्याजभिमन्य च ॥२५॥
 दिव्यैरुपतिपद्भागैरभिष्टुभ घराघरम् ।
 नारद. परमप्रीतः स्थितो देवस्य सन्निधौ ॥२६॥
 एतस्मिन्नन्तरेचामूद्दिव्यदुन्दुभिनिः स्वनः ॥२७॥

जाम्बूनद (मुवर्ण) से पूर्ण, परम दिव्य और सुन्दर रत्नों
 वाले आभरणों से शोभा वाले थे उन समय उनकी शोभा
 ऐसी ही हो रही थी जैसे विद्युन्मानामों से परिक्षिप्त
 शरत्काल का उज्ज्वल मेष ही विराजमान हो । वामपाद से
 समाक्रान्त पादपीठ पर विराजमान थे और सर्वदा सुवर्ण रचित कटक,
 घण्टा, केयूर और कुण्डलो से समुज्जरनित थे । ब्रह्मा, वसिष्ठ, अत्रि
 और मार्कण्डेय मुनीश्वरों ने तथा मृगु आदि अनेक महापुरुषों के द्वारा
 महर्निश सेव्यमान थे । इन्द्र प्रभृति लोकपालों के द्वारा तथा गन्धर्व और
 अप्सरार्यों के गणों के द्वारा वे देवों के भी देवेश्वर सेवित थे जो उनकी
 वाग्द्वारा अभिमन्य करके प्रणाम कर रहे थे । उन घराघर देव की
 देवि नारद जी ने दिव्य उपतिपद्भागों से स्तवन किया था । यह परम
 प्रसन्न होते हुए उन देव की सन्निधि में ही स्थित हो गये थे । इस बीच
 में परम दिव्य दुन्दुभियों की ध्वनि वहाँ पर हुई थी ॥२२—२७॥

दत्तस्सनागता देवी घराणी सन्निधयुता ।

सरत्तसागराकारदिव्याम्बरसमुज्ज्वला ॥२८॥

सुमेरुमन्दराकारस्तनभारावनामिता ।
 नवदूर्वादिलश्यामा सर्वाभरणभूषिता । २६।
 इलवा वै पिगलया सखीभ्यां च समन्विता ।
 ततस्ताभ्यां समानीतं पुष्पाणां निचय मही । २७।
 श्रीमद्वराहदेवस्य पादमूले विकीर्य च ।
 प्रणम्य देवदेवेश कृताञ्जलिपुटा स्थिता । २८।
 ता देवी श्रीवराहोऽपि ह्यालिङ्गत्वाऽङ्गे निधाय च । २९।
 पप्रच्छ कुशलं पृथ्वी प्रीतिप्रवणमानसः । ३०।
 त्वा निवेश्यमहादेवि ! शेषशोषेसुखावहे ।
 लोक त्वयिनिवेश्येवत्वत्सहायाग्धराघरान् ।
 इहाऽऽगताऽस्म्यद् देवि ! किमर्थं त्वमिहाऽऽगता । ३१।

इसके अनन्तर वहाँ पर सखियों से समन्वित धरणी देवी समा-
 गत हो गई थी जो रत्नों के सहित भागर के समान आकार वाली तथा
 दिव्य शम्बरों से समुज्ज्वल देव वाली थी । सुमेरु धीरे मन्दर पर्वतों के
 आकार वाले स्तंभों के मार से यह धरणी देवी सब नभित हो रही थी ।
 नवीन दूर्वा दल के समान बल्ले वाली श्यामा मोर सब प्रकार के मालू-
 पणों से विभूषित थी । २६—२६। इना मोर विगना नामधारिणी दो
 सखियों के साथ थी । इसके अनन्तर यह यही उन दोनों सखियों के द्वारा
 पुष्पों के निचय के समीप में प्राप्त की गई थी पर्याप्त सखियों के द्वारा
 पुष्पों का समूह उक्त धरणी देवी के समीप में उपस्थित किया गया था ।
 उन पुष्पों के समूह को धरणी देवी ने श्रीमत् वराह देव के चरणों के
 मूल में बिकीर्ण कर दिया था और उन दोनों के देवेश्वर प्रभु की यह
 प्रणाम करने दोनों हावों को जोड़कर वहाँ पर स्थित हो गई थी । श्री
 वराह देव ने भी उस देवी का समानिगत करके उसकी पदनी मोद में
 बिठा लिया था । फिर परम प्रीति से प्रवण मन वाले देवेश्वर ने उन
 धरणी से कुशल पूछा था । श्री वराह देव ने कहा—हे देवि ! परम

सुखावह रोप के मस्तक पर निवेशित करके और तेरे ऊपर लोक को निवेशित करके तथा तेरे महाप्रक यथाधरो को निवेशित करके हे देवि ! मैं यहा पर समागत हो गया हूँ । अब माया महों पर किस प्रयोजन से पाई है । ३०—३४।

मां समुद्भूत्य पातालात्सहस्रफणशोभिते ।
 रत्नपीठे श्वोत्तूङ्गे सरस्नेऽनन्तमूर्धनि ।
 कृत्वा मां सुस्तिरश देव ! भूधरान्संनिवेश्य च । ३५।
 मद्धारणक्षमान्पुण्यास्त्वन्मयान्पुरुषोत्तम ।
 तेषु मुह्यन्मद्भावाहो मदाधारान्वदस्व मे । ३६।
 सुमेरुहिमवान्विद्योमन्दरो गन्धमादनः ।
 सालग्रामश्चिद्रुद्रो माल्यवान्पारियात्रकः । ३७।
 महेन्द्रो मलयः सह्यः सिंहाद्रिरपि रंघतः ।
 मेरुपुत्रोऽञ्जनो नाम शैलः स्वर्णमयो महान् । ३८।
 एते शैलवराः सर्वे त्वदाधारा वसुन्धरे ।
 ये मया देवसङ्घे च पिसङ्घे च सेविताः । ३९।
 एतेषु प्रवरान्वक्ष्ये तत्त्वतः शृणु मामभिः ॥ ।
 सालग्रामश्चिंहारिद्रशैलेन्द्रोगन्धमादनः । ४०।
 एते शैलवरा देवि दिश हैमवती श्रिताः ।
 दक्षिणस्यां प्रतीतांस्तु वदये शैलान्वसुन्धरे । ४१।
 सध्वण्द्रिर्हस्तिशैलो गृध्राद्रिर्घण्टिकान्तलः ।
 एते शैलवराः सर्वे क्षीरनद्यास्सर्मापगाः । ४२।

पृथिवी ने कहा—मायने मुझको पाताल से समुद्भूत करके सहस्रो फलों से घोभा वाले रत्न निर्मित पीठ की भाँति प्रति उत्तूङ्ग (उपर) रत्न सहित अनन्त के मस्तक पर हे देव ! माया मुझको सुस्तिर करके तथा भूधरों को मेरे ऊपर निवेशित कर चुके हैं । हे पुरुषोत्तम । ये भूधर परम पुण्यमय हैं—मेरे धारण करने के सम हैं और पापसे

परिपूर्ण है । हे महाबाहो ? उनमें सब प्राण मेरे आधार भूत मुख्य जो भी हों उनको मुझे बनलाने का कृपा कीजिए । ३५।३६। श्री वराह देव ने कहा — हे वसुधरे ! सुमेध, हिमवान्, विन्ध्य, मन्दर, गन्धमादन, सालग्राम, चित्रकूट, मान्यवान्, पारियात्रिक, महेन्द्र, मलय, मह्य, सिंहाद्रि, रंवन, मेरुपुत्र, पञ्चन नाम वाला शैल जो स्वर्ण मय शीत महान् है । ये सब परम वरिष्ठ शैल हैं जो कि प्रायः के आधार हैं । ये वे शैल हैं जिनका सेवन मैंने स्वयं तथा देवों के समुदायों ने एवं ऋषियों के समूह ने किया है । हे माधवि ! इनमें भी जो परम प्रवर हैं उनको मैं तात्त्विक रूप से बनलाऊँगा, उनका प्रायः सब ध्वस्त करों । सालग्राम, सिंहाद्रि और गन्धमादन शैलेन्द्र हैं । हे देवि ! ये वरिष्ठ शैल हैं जो हिमवती दिशा में समाश्रित हैं । हे वसुधरे ! दक्षिण दिशा में जो प्रवीण होता है उन शैलों को भी बनलाता हूँ—प्ररुणाद्रि, हस्ति शैल, गृष्माद्रि, पटिनावल ये सब श्रेष्ठ शैल हैं जो शीत नदी के समीप में मगन करने वाले हैं । ३७—४२।

हस्तिशैलादुत्तरतः पञ्चयोजनमात्रतः ।
 सुवर्णमुखरोनाम नदीनाम्प्रवरा नदी । ४३।
 तस्या एवोत्तरे तीरे कमलारण्य सरोवरम् ।
 तत्तीरे भगवानास्ते शुक्रस्य धारदो हरिः । ४४।
 बलभद्रेण समुक्तः कृष्णोभक्तातिनाशनः ।
 वैशानसैर्मुनिगणैर्नित्यमाराधिताःसतः । ४५।
 कमलाक्षयस्य सरस उत्तरे काननोत्तमे ।
 क्रोशद्वयार्धमात्रे तु हरिकन्दनशोभिते ।
 श्रीवेङ्कटाचलो नाम वामुदेशालयो महान् । ४६।
 सप्तयोजनविस्तारः शैलेन्द्रायोजनोच्चिद्रतः ।
 अस्तिस्वर्णमयोदविररनसानुभृदायतः । ४७।
 इन्द्राद्या देवतगणा वसिष्ठाद्यामुनीश्वराः ।

सिद्धाः साग्नाञ्चमल्लोदानवादैत्यराक्षसाः ।

रम्भाद्या अप्सरः सङ्घा वसन्ति नियतं घरे ! १४८।

हास्त शैल से उत्तर दिशा में पाँच योजन परिमाण वाली सुवर्ण मन्थरी नाम वाली नदियों में बरिष्ठा एक नदी है । उसी नदी के उत्तर तट पर एक कमल नाम वाला सरोवर है । उसके तीर पर नुक को वरदान प्रदान करने वाले हरि भगवान हैं । वनभद्र से सधुक्त्र नक्तों की श्रांति का नाश करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण हैं । वे वहीं पर नित्य ही वैष्णव-तम (सन्यासी) और परम विमल मुनिगणों के द्वारा ममाश्रयित होते हैं । उस कमलास्य सरोवर के उत्तर दिशा में वाले उत्तम वन में केवल ढाई कोश की दूरी पर हरि चन्दन के वृक्षों से सुशोभित वन में श्री वेङ्कटमवल्ल सुभ नाम वाला एक महान् भगवान् वासुदेव का भ्रातृभय है । १४३-१४६। वहीं पर सात योजन विस्तार वाला और एक योजन ऊँचा एक शैलेन्द्र है । हे देवि ! यह परम ध्यान रत्नों की सिखरों से समन्वित वह शरणस्थ है । हे घरे ! वहीं पर इन्द्र आदि देवगण, वनिष्ठ प्रभृति, मुनिगण, मित्र, नाथ्य, भद्रदमण, दानव, दैत्य, राजन, रम्भा आदि अप्सराओं के समुदाय में सब नियत रूप से वहीं पर निवास किया करते हैं । १४७-१५०।

तपश्चरन्ति नागाञ्च महडा. किन्नरास्तथा । १४९।

एतेराषमितास्तप्रसरितः पुण्यदशानाः ।

सरानिविविधात्यत्रसन्ति दिव्यानिमाषधि ।

तीर्थानाञ्चैव सर्वपाश्रुणुष्व प्रवराणि वै । १५०।

चक्रतीर्थन्दैवतीथ वियद्गङ्गा उर्थेव च ।

कुमारधारिका तीथस्यापनाशनमेव च ।

पाण्डुर्य नामतीर्थञ्च स्वामिपुष्करिणी तथा । १५१।

सप्तशानि बराण्याहूनारायणगिरी शुभे ।

एतेषु प्रवरा देवि स्वामिपुष्करिणी शुभा । १५२।

अस्यास्तु पश्चिमे तीरे निवसामि त्वया सहः ।
 आस्तेऽस्या दक्षिणे तीरे श्रोनिवासो जगत्पातः । १५३।
 गंगाद्यः सकलोस्तीर्थैः समासासागराम्बरे ।
 त्रैलोक्येयानितीर्थानिसरांसिसरितस्तथा ।
 तेषां स्वामित्वमापन्नं घरे ! स्वामिसरोवरे । १५४।
 स्वामिपुष्करिणीपुण्यांसेवितुं दिव्यभूधरे ।
 वसन्तिसर्वतीर्थानितपासख्यावदामिते । १५५।
 पट्पष्टिकोटितीर्थानि पुण्येऽस्मिन्भूधरोत्तमे ।
 तेषु चारयन्तमुह्यानि पट् तीर्थानि वसुन्धरे । १५६।
 पश्चाना तीर्थराजाना तुम्बोगर्भसमामहान् ।
 गर्भवासभयवसो स्वातानाम्भूधरोत्तमे । १५७।

वहाँ पर नाम, गहड़ तथा किन्नर गण तपश्चर्या किया करते हैं ।
 इनसे प्रविष्टित वहाँ पर परम पुण्य दर्शन वाली सरितायें हैं । हे
 माधवि ! वहाँ पर अनेक दिव्य सरोवर हैं । हे देवि ! जब रामस्व तीर्थों
 में जो परम श्रेष्ठ हैं उनका भी श्रवण कर ना । १४६ ५०। चक्र तीर्थ,
 देव तीर्थ, विषद गङ्गा, कुमार धारिका, ये तीर्थ गंगा के नाम करने
 वाले हैं । पाण्डव नाम वाला तीर्थ तथा स्वामि पुष्करिणी—ये सात
 उम पुत्र नारायण गिरि में अति श्रेष्ठ तीर्थ हैं । हे देवि ! इन सबमें
 भी परम पुत्रा एवं प्रवर स्वामि पुष्करिणी तीर्थ है । इसके पश्चिम तट
 पर मैं तुम्हारे माघ में निवास किया करता हूँ । इसके दक्षिण तीर पर
 जम्बू के पनि श्रोनिवास निवास किया करता हूँ । १५१—१५३। वह गंगा
 प्रादि रामस्व तीर्थों के समान गंगराम्बरे में हैं । इन तीर्थों में जो
 भी तीर्थ हैं, सरोवर हैं और सरितायें हैं हे परे ! स्वामी सरोवर में
 उन सबका स्वामित्व प्राप्त हो गया है अर्थात् हमने सम्पूर्ण तीर्थों के
 स्वामी होने का पद प्राप्त कर लिया है । हे दिव्य रूपरे ! परम पुत्र
 स्वामि पुष्करिणी स्वामि पुष्करिणी को सेवा करने के निरुसभी तीर्थ वहाँ

पर नियान किया करते हैं । अब मैं उनकी संख्या भी आपकी बतलाता हूँ । इस परम पुण्यमय भूवरोत्तम में छयासठ करोड़ तीर्थ हैं । उनमें भी जो अत्यन्त मुख्य हैं वे हैं वसुन्धरे ! केवल छह ही तीर्थ हैं । १५४-१५६ हे भूवरोत्तम ! इन पाँच तीर्थों राजी में तुम्हें महान् गर्भ के समान है । इसमें जो स्नान करने वाले मनुष्य हैं उनके गर्भवान् के भय को ह्वंस करने वाले हैं । १५७।

पट्तीर्थानिमहाबाहो ! त्वयोत्तानि महीधरे ।
 माहात्म्यवदतेषामे यथाकालं यथाविधि ।
 फलानि तेषु स्नाताना नाराणाम्बुधरे ! १५८।
 नारायणाद्रिमारात्म्य वदामि शृणु माधवि ।
 देवाश्च शृणुयश्चैव योगिनः सनकादयः १५९।
 कृतेञ्जनाद्रि वेताया नारायणागार तथा १६०।
 द्वापरे सिंहशंखच कलो श्रीवङ्कटाचलम् ।
 प्रवदन्तीह विद्वांसः परमात्मालयगिरिम् १६१।
 योजनाना महस्मान्ते द्वीपान्तरगतोऽपि वा ।
 यो नमोद्भूधरेन्द्र तद्दिगमुद्दिश्य भक्तितः ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो दिप्सुलोकं स गच्छति १६२।
 तौस्तन्पदतोषमाहात्म्यं यथाकालं वदामि ते १६३।

धरणी ने कहा - हे महाबाहो ! महीधर पर आपने छह तीर्थों बतलाये हैं । बाप श्रीर विधि के अनुसार उन छह तीर्थों का मुझे माहात्म्य बतलाने की कृपा कीजिए । १५८। हे भूधर ! उन छह प्रमुख तीर्थों में जो मनुष्य स्नान किया करते हैं उनको क्या फल प्राप्त होते हैं यह भी पाप कृम करके मुझे बतलाइये । १५९। श्री वराह भगवान ने कहा - हे माधवि ! मैं अब नारायणादि का माहात्म्य तुमको बतलाता हूँ उसका श्रवण कही । ममस्त देवमण, सब शृणु वन्द, सम्पूर्ण योशीजन श्रीर सकल प्रादि कुतमुग में अञ्जनाद्रि को, वेता में नारायण गिरि को,

द्वार में सिंह शैल की धीरे कनियुग में श्री वेङ्कटाचन की बतलाया करते हैं । यहाँ पर विद्वान् लोग गिरि की परमात्मा प्रालय करते हैं । एक सहस्र योजनो के भी भन्त में तथा भन्प द्वीप में भी रहते हुए जो कोई इस भूधरेन्द्र को उसकी दिशा मात्र का उद्देश्य ग्रहण करके भक्ति भाव से नमस्कार किया करता है वह समस्त पापों से विनिमुक्त होकर सोपे विष्णु लोक को चले जाया करते हैं । उसमें छे तीर्थों का माहारम्य भी मैं यथाशक्त आपको बतलाऊँगा । ६० — ६३।

शृणुष्ववावहिताभद्रे सर्वपापप्रणाशनम् ।
 कुम्भसस्थेरवौमाद्ये पौर्णमास्याम्नहातिथी । ६४।
 मघानक्षत्रयुवनायां भूधरेन्द्रे वसुधरे ।
 कुमारधारिकाराम सरसौ लोकापावनी । ६५।
 यत्रास्तेपावन्तीमूनुः कार्तिकेयोऽग्निसम्भवः ।
 देवसेनासमायुक्ता श्रीनिवामाचंकोऽमले । ६६।
 तस्या यः स्नातिमध्याह्ने तस्यपुण्यफलं शृणु ।
 गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यः स्नातिनियमाद्धरे । ६७।
 द्वादशाब्द जगद्धात्रि ! तत्फलं समवाप्नुयात् ।
 योऽत्रं ददाति तत्तीर्थं शकत्या दक्षिणयान्वितम् ।
 स तावत्फलमाप्नोति स्नाने तूक्तं फलं यथा । ६८।
 मीनसंस्थे सवितरि पौर्णमासीतियो धरे ।
 उत्तराफाल्गुनी युक्ते चतुर्थे कालउत्तमे । ६९।
 पश्चानामपि तीर्थानां तुम्बोऽथ गिरिगह्वरे ।
 यः स्नाति मनुजो देवि पुनर्गर्भे न जायते । ७०।

हे भद्र ! भव आप बहुत ही गावधान होकर श्रवण करो जो सब प्रकार के पापों का विनाश कर देने वाला है । हे वसुधरे ! भूधरेन्द्र में कुम्भ रात्रि पर रवि के संस्थित होकर, माघ मास में, पूर्णिमा महानिधि में जोति मया नक्षत्र से समन्वित हो ऐसे गुणो

के प्राप्त होने पर कुमार शारिका नाम वाली सरसी परम लोक पावनी है । ६४-६५। जहाँ पर पार्वती के पुत्र, अग्नि से सम्भूत होने वाले कार्तिकेय विराजमान रहा करते हैं । देव सेना से समायुक्त होकर ठे घमसे ! यह भगवान् श्रीनिवास की अर्चना करने वाले हैं । उसमें जो भी मध्याह्न के समय में स्नान किया करता है उसके पुष्प-फल का प्राप सब प्रवण करो । हे धरे ! गङ्गा आदि समस्त तीर्थों में जो नियम पूर्वक स्नान किया करता है हे जगद्धात्रि ! जो बारह वयं तक स्नान करता है उसी फल को यह प्राप्त कर लेता है जो कोई उस तीर्थ में दक्षिणा से युक्त अन्न का दान किया करता है और अपनी शक्ति के अनुसार करता है वह भी उतना ही फल प्राप्त किया करता है जो फल हमने स्नान करने का बतलाया है । ६६, ६७, ६८। हे धरे ! सूर्य के मीन राशि पर संस्थित हो जाने पर पीछं मागी तिथि में जोकि उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र से युक्त हो चतुर्थ उत्तम काल में पाँचों तीर्थों में प्रमुख गिरि गङ्गा तृम्ब तीर्थ में जो स्नान किया करता है हे देवि ! वह सगुण्य पुनः गर्भ से नहीं जाया करता है । ६९-७०।

अग्निवाहस्थितो भानो चित्रानक्षत्रसंयुते ।
 पूर्णिमास्थेतिथौपुष्ये प्रातःकालेत्तथैवच । ७१।
 वाकाशमङ्गासरितिस्नातो मोक्षवाप्नुयात् । ७२।
 वृषभस्थे रवौ राधे द्वादश्यारविदासरे ।
 शुक्लेवाप्यश्रवा कृष्णे पक्षेभौमसमन्विते । ७३।
 शुक्ले वाप्यथवा कृष्णे मानुवारेण संयुते ।
 पुष्पनक्षत्रसंयुक्ते हस्तक्षेत्रा युतेऽपिवा । ७४।
 तीर्थे पाण्डवनाम्बयत्र सङ्गवे स्नाति यो नरः ।
 नेहदुः रामवाप्नोति परत्र सुखमश्नुते । ७५।
 शुक्ले पक्षेऽथवा कृष्णे यास्कंवारेण सप्तमी ।
 पुष्यनक्षत्रसंयुक्ताहस्तक्षेत्रायुतापिवा । ७६।

तस्यां तिथौ महाभागे पापनाशनसंज्ञके ।

तीर्थेयः स्नाति नियमाद्भूधरेन्द्रस्य मस्तके ।

कोटिजम्माजित्तः शपैर्मुच्यते स नरोत्तमः ॥७७॥

अग्नि वाह (मेष) राशि पर सूर्य के आ जाने पर हे घरे ।
चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा परम पुण्य तिथि में प्रातःकाल क समय
में जो आवाण गंगा सरिता में स्नान किया करता है वह मनुष्य निश्चय
ही मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है ॥७१॥७२॥ वृषभ राशि पर सूर्य के
संस्थित होने पर अनुराधा नक्षत्र में रविवार से युक्त द्वादशी तिथि में,
सुक्ल पक्ष हो अथवा कृष्ण पक्ष हो भीम बार से युक्त, शुक्ल अथवा
कृष्ण पक्ष में रविवार से युक्त में, अथवा पुण्य या हस्त नक्षत्र में युक्त
में पाण्डव नाम वाले तीर्थ में सङ्गम में जो मनुष्य स्नान किया करता
है वह वहाँ लोक में किमी भी तरह का कोई दुःख नहीं प्राप्त किया
करता है और मृत्यु के पीछे परलोक में भी वह सुखी का ही उपभोग
करता है । सुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष हो जो रविवार से युक्त सप्तमी
तिथि हो और वह पुण्य या हस्त नक्षत्र से समन्वित हो तो उक्त तिथि में
हे महाभागे ! इस पापों के विनाश करने वाले तीर्थ में जो भी स्नान
कर लेता है और भूधरेन्द्र के मस्तक में नियम से स्नान किया करता
है वह गरों से परम श्रेष्ठ करोड़ों जन्मों में अजित किए हुए पापों से
विमुक्त हो जाया करता है ॥७३-७७॥

शृणु देवि परं ह्यमनन्तस्थे महागिरी ।

महिव्यानयवावश्ये शिखरे गिरिगह्वरे ।

देवतीर्णमतिख्यातं तटाकमतिशोभनम् ॥७८॥

तस्मिन्पुण्यतमे देवि ! स्नानशालम्बदामि ते ॥७९॥

गुरुपुण्ये व्यतीपाते सोमश्रवणके तथा ।

दिनेऽप्येतेषु यः स्नाति तस्यपुण्यफलं शृणु ॥८०॥

यानि कान्तीह पापनिजानाज्ञानकुमानिच ।
 तानि सर्वाग्निनश्यन्ति देवतीर्थेऽतिपावने ॥२१॥
 पुण्यान्यपि च वयन्ते देवतीर्थं निमज्जनात् ।
 दोषं मायुरवाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
 अन्ते स्वर्गं साप्ताष्टाद्य चन्द्रलोकं महीयते ॥२२॥
 सद्दिनेष्वन्नदो देवि यावज्जीवात्तदो भवेत् ।
 अतिगुह्यतमं देवी प्रोक्तत्तुभ्यं वसुन्धरे ॥२३॥
 श्रुत्वाऽथ पृथिवी देवी प्रीतिप्रवणमानसा ।
 इष्टाभिर्वाग्भिरतुलं तुष्टाव धरणीधरम् ॥२४॥

हे देवि ! अब आप परम गोपनीय विषय का ध्वस्त करो । इस
 अतन्त नाम वाले मशान गिरि में मेरे इस दिव्य आनन्द के वाग्व्य कोण
 वाले धिखर में विरि मङ्गल में एक देवतीर्थ विख्यात है । वहाँ पर एक
 अति शोभा से युक्त नखरु है । हे देवि ! इस परम पुण्यतम तीर्थ में
 जो स्नान करने का काल है उसे मैं आपको बतलाता हूँ ॥२१-॥२४॥ गुरुवार
 युक्त गुह्य क्षेत्र में, अतीपाल में, सोमवार से समन्वित अथवा नक्षत्र में,
 इन दिनों में जो भी कोई मनुष्य इस तीर्थ में स्नान किया करता
 है उसके पुण्य-फल का अत्र अत्रण करो — जो भी कोई पाप होने हैं चाहे
 वे ज्ञान पूर्वक दिए गये हों या अज्ञान में तिरु गये हों वे सभी पाप इस
 अति पावन देव तीर्थ में नष्ट हो जायेंगे । इस देव तीर्थ में निमज्जन
 करने से केवल पापों का ही विनाश नहीं होता परशुत पुण्यों की भी
 वृद्धि हुआ करती है मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करने में पुत्र-पौत्रों से
 समन्वित होकर दोष आयु की भी प्राप्ति किया करता है । इन सप्तर
 को छोड़कर मृत्यु होने पर अन्त में स्वर्ग-लोक में पहुँचकर फिर चन्द्र-
 लोक में प्रतिष्ठित हो जाया करता है ॥२०॥२१॥२२॥ हे देवि ! उपर्युक्त
 दिनों में जो अन्न का दान करने वाला है वह यावज्जीवन अन्न का दाता
 होगा है । हे देवि ! मैंने यह अत्यन्त गुह्यतम आपको हे वसुन्धरे ।

बतला दिया है । ८२। श्री व्यास देव जी ने कहा— इसके अनन्तर इसका श्वरण करके पृथिवी देवी प्रीति से परम प्रवण मन वाली हो गई थी । फिर धरणी ने उन अनुल धरणीधर देव इष्ट वाणियों के द्वारा स्तवन किया था । ८४।

नमस्ते देवदेवेश ! वराहवदनाऽच्युत ।
 क्षीरसागरसङ्काश वज्रशृङ्ग ! महाभुज ! । ८५।
 उद्धृताऽस्मि त्वया देव ! कल्पादो सागराम्भसः ।
 सहस्रबाहुना विष्णो ! धारयामि जगन्त्यहम् । ८६।
 अनेकदिव्याभरणयज्ञसूत्रविराजित । ।
 अरुणारुणाम्बरधर दिव्यरत्नविभूषित । ८७।
 बन्धद्भानुप्रतीकाश पादपद्म नमोनमः ।
 बालचन्द्राभ दष्ट्राग्रमहाबल पराक्रम ! । ८८।
 दिव्यचन्दनलिप्ताग ! तप्तकाञ्चनकुण्डल ! ।
 इन्द्रनीलमणिद्योति हेमागदविभूषित ! । ८९।
 वज्रदंष्ट्राग्रनिभिन्न हिरण्याक्ष महाबल ।
 पुण्डरीकाभिरामाक्ष ! भामस्वनमनोहर । ९०।
 श्रुतिसीमन्त भूपात्मन्सर्वात्मश्रारुविक्रम ! ।
 चतुरानशम्भुभ्यां वन्दिताऽऽयतलोचन । ९१।

धरणी देवी ने कहा— हे देवों के भी देवेश्वर ! आपको नमस्कार है । आप वराह के समान मुझ वाले हैं । हे अच्युत ! आप क्षीरसागर के तुल्य वाणें वाले हैं । हे वज्रशृङ्ग ! आप महान मुजाबो वाले हैं । हे देव ! आपने ही मेरा उद्धार किया था जबकि कल्प के आदि काल में मैं सागर के अल में निमग्न थी । हे विष्णो ! आप तो सहस्र बाहुओं वाले हैं । मैं अब इन जगती धारण करती हूँ । ८५। ८६। आप अनेक दिव्य आभरणों तथा यज्ञ सूत्र से शोभा सम्पन्न होकर विराजमान हैं आप पहण वणें वाले वस्त्रों के धारण करने वाले हैं श्रीर परम

दिव्य स्तनों में विभूषित है । आप उदीयमान सूर्य के सदृश तेज से युक्त हैं आपके चरण कमलों-में बारम्बार नयनहार है । आप बाल चन्द्रमा की भाँसा के तुल्य भासा वाले हैं और आप अर्पनी दाढ़ के अग्र भाग में महान् यज्ञ और पराक्रम से युक्त हैं । आपके अङ्ग, परम दिव्य चन्दन से लिये हैं तथा आप उत्त सुवर्ण के निर्मित कुण्डलों को नारण करते वाले हैं । आपके जग की दीप्ति इन्द्र नील मणि के तुल्य है । हे देव ! आप सुवर्ण रचित अमरी की शोभा वाले हैं । आपने ब्रह्म के तुल्य दाढ़ के अग्रभाग से हिरण्याल को निर्मित कर दिया था । हे महाबल ! आपके नेत्र पुण्डरीक (कमल) के समान परम सुन्दर हैं और आप सप्त वेद की ध्वनि से परम मनोहर ही रहे हैं । हे शक्ति सीमन्त स्यात्मन् ! आप सभी की आत्मा हैं और आपका विक्रम अतीव सुन्दर है । ब्रह्मा और अम्बु इन दोनों के द्वारा आपको अन्वता को मई है । आपके परम विशाल नेत्र हैं । ७७—६१।

सर्वविद्यामयाकार शब्दातीत नमो तयः ।
 जानन्दविग्रहाऽनन्त कालकाल नमोतमः । ६२।
 इति स्तुत्वाऽचला देवो बवन्दे पादयोर्विभुम् ।
 वन्दमानां समुद्रीक्ष्य देवः फुल्लविलोचनः । ६३।
 उद्घृत्य धरणीं देवीमालिलिङ्गैश्चवाहुनि ।
 आश्रयधरणीवक्त्रवामाङ्कुसत्रिवेश्यच । ६४।
 आरुह्य गरुडैस्तान् जयाम वृषभावलम् ।
 मुनीन्द्रं नारदाद्यंश्च स्तूयमानो महीपतिः । ६५।
 स्वामिपुष्करिणी तीरे पश्चिमे लोकपूजिते ।
 आस्ते वराहवदनो मुनीन्द्रं स्तत्रपूजितः ।
 वैखानसमं हाभागैर्न ह्यतुल्यं महात्मभिः । ६६।
 त दृष्ट्वा नारदः सूत ! मुनीनामृक्तवान्पुरा ।
 तदेतदहमश्रीर्षं तत्र वै मुनिशसदि । ६७।

यत्पृष्टोऽहं त्वयासूतमाहारम्यंघरणीभृताम् ।
मया तूक्तं यथावद्धि नारदाच्चपुराश्रुतम् ।६८।

हे भगवान् ! आप समस्त विद्याप्रो से परिपूर्ण आकार वाले हैं और शब्दों से परे की वस्तु हैं अर्थात् शब्दों के द्वारा आपका वर्णन नहीं किया जा सकता है । आपके चरणों में वारम्बार नमस्कार है । आपका कोई भी पद नहीं है और आपका यह विग्रह पूर्ण आनन्दमय है । आप इस महान् काल के भी काल हैं । आपको पुनः-पुनः मेरा प्रणाम है ।६२। इस प्रकार मे उम प्रवला देवी देवेश्वर वराह भगवान की स्तुति करके फिर उसने विभु के चरणों में वन्दना की थी । उस वन्दना करती हुई धारणी देवी को देखकर भगवान वराह देव के लोचन प्रकृतिलत हो गए थे ।६३। फिर वराह भगवान उस देवी की प्रपत्नी बाहुओं से उठाकर उमका सम लिंगन किया था । वराहेश्वर ने धरणी के मुन का आघ्राण करके उसे अपने ही वाम भाग की गोद में बिठा लिया था । इसके अनन्तर वह गहडेशान पर समाहूढ होकर वृषभाचल को चले गए थे । नारद आदि महा मुनीन्द्रों के द्वारा स्तवन किये गए तथा मुनिगणों के द्वारा पूजित होते हुए वराह के गमान मुख वाले मही के स्वामी लोको के द्वारा पूजित उम पश्चिम दिग्भाग वाले स्वामि पुष्करिणी व तट पर निराजमान हैं । वहाँ पर बड़े २ वैखानस, महा-भाग ब्रह्मा के तुल्य महात्माप्रो के द्वारा वे पूजित होते हैं ।६४।६५।६६। श्री व्यास देव जी वडा—हे सूत ! देवपि नारद जी ने पहिले मुनिया से यह कहा था । वही पर मुनियों की सभा में यह मैंने भी श्रवण किया था ।६७। हे सूत ! तुमने जो मुझम धरणी धारण करने वाली पर्वती का माहात्म्य पूछा था वह मैंने जोपहिा नारद जी से श्रवण किया था यथावत् सब तुमको बतला दिया है ।६८।

य इदं धर्ममम्बादमावयाः सूत ! पावनम् ।

पटेद्वा देवपुरतो ब्राह्मणानां पुरन्तथा ।६९।

सर्वेषामपि चरुणां शृण्वतां भक्तिपूर्वकम् ।

स प्रतिष्ठां वाप्नोति पुत्रपीत्रैः समन्वितः । १००।

शृण्वतामपि सर्वेषां यदिष्टं तद्भक्तिष्यति । १०१।

इति मे भगवान्भयासुः प्रोवाच मुनिसन्वितः ।

यथाश्रुतं मया पूर्वं कृष्णहृत्पायनाद्गुरोः । १०२।

तत्तथा सर्वमेवाऽऽत्र मयाप्युक्तं भुक्तो धरः ।

श्रुत्वा सुतवचस्तिष्ठतश्च ते प्रीतमनसोऽभवन् । १०३।

सुत ! त्वयोक्तं भूवि पर्वतेषु

पुण्येषु पुण्यस्य महो धरस्य ।

साहात्म्यमस्माकमहोन्द्रनाम्नः

पापापहं मोक्षफलप्रदायकम् । १०४।

ततो वृषादिं सम्प्राप्य वराहो धरणीभूतः ।

किमुक्तिवान्धरण्यं स तन्नो ब्रूहि महामते । १०५।

हे सुत ! हमारे प्रायश्च दोनों के इस धम्म के सम्वाद को जो कि परम पावन है जो कोई देस यथवा वाङ्मयों के भाग्य पड़ेया या सभी वर्णों के द्वारा यत्नित भाव के साथ श्रवण करेया वह पुत्र-पौत्रों से समन्वित होकर परम प्रतिष्ठा को प्राप्त किया करता है । जो इसको सुना करते हैं उन सबको भी उनके घरों में ही प्राप्ति हो जाया करती । १६६। १००। १०१। श्री सूतजी ने कहा—यह सब मुनियों के द्वारा भक्ति भगवान् ध्यामदेव ने कहा था । मैंने उंसा भी यथसा क्रिया है पहिले अपने मुखसे कृष्ण हृत्पायन व्यास जी से वह नसी उसी प्रकार से हे सुत ! आगे ! मैंने कहकर प्रायको बतला दिया है । इस याति सूतजी के वचन को सुनकर समस्त मुनीश्वर परम प्रसन्न मन वाले हो गये थे । शृण्णिण ने कहा—हे सूतजी ! प्रायने इस भूमण्डल में परम पुण्यस्य पर्वतों में ही परमविक्र पुण्यस्थानों महो धर का जितका महोन्द्र नाम है, साहात्म्य कहा है । यह साहात्म्य पापों को दूर कर देने वाला मोक्ष

के फल की प्रदान करने वाला है । १०२।१०३।१०४। हे महामते ! इसके मन्त्र फिर व भगवान् बराह देव घरणी से युक्त होकर वृष पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने घरणी देवी से क्या कहा था वह सब आप हमको बतलाने की कृपा करें । १०५।

२१-श्री वाराह मन्त्राराधन विधि वर्णन

शृणुध्व मुनय सर्वे कथाम्पुण्यां पुरातनीम् ।
 वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं कृते पुण्यतमे युगे । १।
 नारायणाद्रौ देवेश निवसन्त क्षमापतिम् ।
 वाराहर्ूपिण देवं घरणी सखिभिवृता । २।
 प्रगम्य परिपप्रच्छ रक्तपद्मायतेक्षणम् । ३।
 आराध्यकेन मन्त्रेण भवान्प्रीतो भविष्यति ।
 त मे वद त्व देवेश यः प्रियो भवतः सदा । ४।
 जपता सर्वसम्पत्तिकारकं पुत्रपौत्रदम् ।
 सावभौमत्वदञ्चैव कामिना कामदं सदा । ५।
 अन्ते यस्त्वत्पदप्राप्तिं ददाति नियमात्मनाम् ।
 एवम्भूत वद प्रीत्यामपि वाराहमानद । ६।
 इ त पृष्टस्तथा भूम्या प्राह प्रीतिस्मिताननः । ७।

श्री सूत जी ने कहा—हे मुनिगणो ! सब आप सब लोग परम पुरातनी पुण्यमयी कथा का श्रवण कीजिए । पहिले परम पुण्यतम कृत युग में वैवस्वन मन्वन्तर में नारायण नामक पर्वत में निवास करने वाले भूमि क स्वाभी बराह रूपवारी देवेश्वर से जिनके नेत्र रक्त-प्रायत और पद्म के तुल्य थे सतिषो से परिवृत्त घरणी देवी ने विनय पूर्वक प्रमाण करते पूछा था । १।२।३। घरणी ने कहा हे भगवन् ! किस मन्त्र के द्वारा आराधित हाकर आप परम होगे ? हे देवेश्वर ! जो आपको सदा परम प्रिय हो उभी मन्त्र को आप मुझे बतला

दीक्षिए । वह ऐसा मन्त्र होना चाहिए जिसके जाप करने वाले मनुष्यों को वह सम्पत्ति कर देने वाला हो, पुत्र, पौत्रों को देने वाला हो, सावं-भोमत्व के पद को प्रदान करने वाला हो और जो कामी हो उनकी तदा कामता के देने वाला हो । निम्न आशमा वाले पुत्रियों को अन्त समय सम्प्राप्त होने पर आपके ही घरलों के पद की प्राप्ति प्रदान करने वाला हो । हे भान के प्रदान करने वाले ! हे वाराह देव ! मुझ पर परम प्रीति करके इस प्रकार के मन्त्र को बनसाइये । ४।५।६। श्री सूत जी ने कहा—इस रीति से घरली देवी के द्वारा पूछे गये भगवान् वरह देव ने प्रीति से स्मितमुक्त मुँह वाले होते हुए कहा था । ७।

शृणु दधि परं गुह्यं सद्यः सम्पत्तिकारकम् ।

भूमिवं पुत्रवं भोष्यम्प्रकाशयकदाचन । ८।

किं च शुभं धवे वाच्यं भक्त्याय निमतात्मने । ९।

ॐ नमः श्रीवराहाय घरभ्युद्धरणाय च ।

बह्निनायासमायुक्तः तदाजप्योभुमुमुक्षुभिः । १०।

अथं मन्त्रो घरादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकः ।

श्रयिः सङ्क्षुर्षणः प्रोक्तोदेवता त्वहमेव हि । ११।

छन्दः पङ्क्तिः यमाख्याता श्रीबीजं समुदाहृतम् ।

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं सद्गुरोर्लब्धतन्मनुः । १२।

जुहुयात्पायगाभ्रम्बैक्षीद्रसपिः समन्वितम् ।

अथध्यानमध्वर्यामिमनः बुद्धिप्रदायकम् । १३।

श्री वराह भगवान् ने कहा—हे देवि ! परम भोषणीय, सुरन्व ही सम्पत्ति के कर देने वाले, भूमि प्रदान करने वाले, पुत्र देने वाले मन्त्र का श्रवण करा किन्तु यह ध्यन्त ही गुप्त रखने के योग्य है और किसी भी समय में प्रकाशित करने के योग्य नहीं है । जो परम थदा से व्यवहृ करने वाला, नियत भाक्षा वाला और भक्त हो उसी को बतनाया चाहिए । ८।९। जो मुक्ति की प्राप्ति करने के इच्छुक हो उन्हें

परम सनातन होकर सदा—“ॐ नमो श्री वराहाय षरष्णुडरराप
वह्नि जाय”-इन मन्त्र का जाप करना चाहिए । हे वरादेवि ! यह मन्त्र
सब तरह की सिद्धियों का प्रदान करने वाला इन मन्त्र के श्रुति
सङ्ग्रहों कहे गये हैं और इनका देवता मैं ही हूँ । इसका छन्द पञ्चि
है और श्री इसका बीज है । इन मन्त्र का चार लाख जाप करना
चाहिए और किसी सद्गुरु से इस मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करे । १०।११।
।१२। यहद और पृथ से युक्त पापताम्र (खीर) का हवन करे ।
इसके उपरान्त मैं इसका ध्यान बतलाता हू जो मन की शुद्धि का प्रदा-
यक होता है । १३।

शुद्धिस्फटिकरत्नं लाम्ब रक्तपद्मदलेक्षणम् ।
वराहवदनं सौम्यञ्चतुर्बाहुं किरीटिनम् । १४।
श्रीवत्सवक्षसं चम्पशङ्खानयकराम्बुजम् ।
वामारस्थितयायुक्तं त्वया मा सागराम्बरे । १५।
रक्तपीताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितम् !
श्रीकूर्मपृष्ठमध्यस्थशेषभूत्यङ्गसन्धितम् । १६।
एव ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं तदा चाऽष्टोत्तरशतम् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति मोक्षश्चाऽप्येव ब्रजेद् ध्रुवम् । १७।
प्रोक्तमया ते षरणिषत्पृष्टोऽहृत्वयाऽमले ।
अतः किन्ते व्यर्वात्तम्रूहि तद्धिमलानने । १८।
एतच्छ्रुत्वा ततो भूमिः पप्रच्छपुनरेवतम् ।
केनवाञ्जुष्ठितदेव पुराप्राप्तम्कनञ्च किम् । १९।
इति पृष्टः पुनर्देवः श्रीवराहोऽब्रवीदिदम् ।
पुरा कृतयुगे देवि धर्मोनाम मनुर्महान् । २०।
ब्रह्मणोऽमुं मनुं लब्ध्वा जप्त्वाऽस्मिन्धरणीधरे ।
माञ्च दृष्ट्वा वरं लब्ध्वा प्राप्तोऽमूर्त्तमामकम्पदम् । २१।

विशुद्ध स्कटिक के शील की प्राप्ति के लक्ष्य प्राप्ति से युक्त, रक्त कमल के दल के तुल्य नेत्रों वाले, वराह के मुख के समान मुख वाले, चार बाहुओं से सम्पन्न, किरीट धारी, परम सौम्य वसःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न धारण करने वाले, चारों हाथों में शङ्ख, चक्र, भ्रमण धोर भस्त्रुज ग्रहण किये हुए, वाम ऊरु पर स्थित तुम से युक्त सागरा-म्बर में विराजमान, पीताम्बरधारी, रक्त वस्त्रों के प्राभरणों से भूषित, श्री कूर्म के पृष्ठ के मध्य में स्थित, शेष की मूर्ति एवं शंख पर समव-स्थित मेरा इस प्रकार से ध्यान करके सदा ही एक माना श्रेष्ठतर घट का जप करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य सम्पूर्ण काम-नाशों का प्राप्त कर लेता है और श्रुत समय में मोक्ष को प्राप्त हो जाया करता है । यह निश्चित ही है । हे भगवन् ! धरणि ! प्राप्ति जो मुझसे यह पूछा है वह मैंने तुम को बतला दिया है । हे विमलानने ! सन्निष्ठा शिव तुमने क्या निश्चय किया है यह मुझे बतला दो । १४।१२। १५।१७। १६। श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके इसके पश्चात् सप्त भूमि ने फिर भी उनसे पूछा था—हे देव ! इसका अनुष्ठान किसने किया था और पहिले इसका क्या फल प्राप्त किया था ? इस मन्त्रि पुनः पूछे गये देव वर श्री वराह ने यह कहा था—हे देवि ! पहिले कृतयुग में धर्म नाम वाला एक महात्मा मनु था । उसने ब्रह्माजी से इस मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करके इस धरणी धर पर उसका जाप किया था । इसका फल उसे यह मिला था कि उसने मेरा दर्शन प्राप्त किया, वरदान प्राप्त किया और श्रुत में वह मेरे ही स्थान को प्राप्त हो गया था । १६।२०।२१।

इन्द्रोर्वाससः शम्पात्पुराभ्रट्खिविष्टपात् ।
 अनेनेष्ट्वाऽथ मां देवि पुनःप्राप्तस्त्रिविष्टपम् । २२।
 अन्येऽपि मुनयो भूमे ! जपत्वा प्राप्ताः पराङ्गतिम् ।
 अनन्तः पद्मगाधीशो ह्यमुं लब्ध्वाऽथ कथयत् ॥ २३।

ज्वेतहीमे जपित्वं व भूव नरसीधरः ।
 तस्मात्प्रप्यः सदा तेह मनुष्यश्च वरायिनिः । २४
 एतच्छ्रुत्वाप्य सुप्रोवा पुनः प्राह वराधरम् । २५
 वेङ्कटाक्षेमहात्मने श्रोत्रियासोजगत्पतिः ।
 कदात्यायाविवेश श्रीभूमिसहितोऽमलः । २६
 कथं कल्पान्तरस्थाद्यौ भविष्यति जनादनैः ।
 एवद्ब्रूहि नगाहंममहृत्वीतूहल मम । २७

पुरातन समय में एक बार इन्द्र दुर्वासा ऋषि रंश पत्नी त्रिलिष्य
 (स्वर्गमित्र) से अष्ट हो गया था। हे देवि ! इस इन्द्र ने यहाँ पर मेरा
 यजन करके पुनः अपने स्वर्गमित्र को प्राप्त कर लिया था। हे भूमे !
 स्कन्द भी मनुष्यगणों ने इस मेरा मन्त्र का जाप करके परम शक्ति को
 प्राप्त किया है। यह पन्नगों का असीधर जनत ने भी इस मन्त्र की
 वीक्षा कल्पवृक्ष में प्रह्लाद की वी घोर स्वेनद्वीप में उसने इसका जाप
 किया था और वरसीधर हो गया था। इसलिए इस मन्त्र का मन्त्र ही
 जाप करना चाहिए। जो मनुष्य वरा की चाहना करने वाले हैं
 उनको यहाँ स्वयं अपने असीधर की पूजा के लिए इस मन्त्र का जाप
 करना चाहिए। श्री कृष्ण जी ने कहा— यह अथर्व वरके वह वरसीधर
 पर साधक प्रसन्न हुई थी और वह फिर वरा के कारण करने वाले
 प्रभु से बोली— वरणी ने कहा— हे देवेश ! जगत् के स्वामी श्री निवास
 श्रीभूमि के अस्मिन् अमल स्वरूप वात वेङ्कुर नाम धारी जैन पर कब
 आया करते हैं और कैसे वहाँ पर कल्पान्तर पयन्त स्थायी भगवान्
 जनादन होगे ? हे वरहृ स्वर्गधारी प्रभो ! जाप मुझे यह वरनाह्ये
 मेरे हृदय में इसकी जानने के लिए महाद् कीर्तन है । २४।२५।२६।
 २७।२८।२९।

२२-रामानुजाख्यद्विजवृत्तान्तवर्णन

भोभोस्तपोधनाः सर्वनैमिषारण्यवासिनः ।
 आकाशमङ्गातीर्थस्यमाहात्म्यंप्रददाम्यहम् ॥१॥
 आकाशमङ्गानिकटे सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
 रामानुज इतिह्यशोविष्णुभवतो जितेन्द्रियः ॥२॥
 तपस्वकार धर्मात्मावैखानसमतेस्थितः ।
 श्रीरूपश्चाग्निमध्येस्योविष्णुध्यानपरायणः ॥३॥
 जपमण्डाक्षरं मन्त्रं ध्यायन्हृदि जनादेनम् ।
 वर्षास्वाकाशगो तिस्रं हेमन्तेषु जलेशयः ॥४॥
 सर्वभूतहितोदान्तः सर्वद्वन्द्वद्विवाजितः ।
 वर्षाण्यकतिचित्तोऽयंजीर्णपणाशानोभवत् ॥५॥
 कश्चित्कालं जलाहारो वायुमङ्गः कियत्समाः ॥६॥
 अथ तत्तपसा तुष्टोभगवान्भक्तवत्सलः ।
 प्रथमशतीमगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥७॥

महामहर्षि श्री श्रुत जी ने कहा—हे सब नैमिषारण्य के निवासी करने वाले तपोधन तपस्वियो ! मय में आकाश मङ्गा नाम वाले तीर्थ का माहात्म्य आप लोगों को बतना चाहूँ ॥१॥ आकाश की गंगा के निकट में मण्डपुण्य आसनों के धरों का पारगापी महान् विद्वान् रामानुज इस नाम से विख्यात द्विज ने तप किया था । यह विप्र परम विष्णु का भक्त था और जितेन्द्रिय था । यह धर्मात्मा वैखानस मठ में स्थित रहा करता था । श्रीरूप श्रुतु में श्री पाँच मणियों के मध्य में सम-दक्षिण होकर यह भगवान् विष्णु के ध्यान में परायण रहा करता था । "श्री कृष्णः धारण मन"—इस शक्ति मन्त्रों वाले मन्त्र का जप करता हुआ हुआ अपने हृदय में जनादेन श्रुतु का ध्यान किया करता था । धरों के काल में तिस्र ही आकाश में समन करने वाला रहता

अब रामानुज तपस्वी के समक्ष प्रकट होकर दर्शन देने वाले प्रभु के स्वरूप का वर्णन किया जाना है — विकसित कमल के दल के समान उनके परम सुन्दर एवं विशाल नेत्र थे, करोड़ों सूर्यों की प्रभा के तुल्य उनकी प्रभा थी, विनता के पुत्र गण्ड पर वे समा रूढ़ थे और छत्र एवं चमरों से सुसोभित थे । हार केयूर और मुकुट धारण किये हुए थे । उनके करो से सुन्दर कटक विराजमान थे । उनके साथ में विश्वक्सेन और सुनन्द आदि पार्षद विद्यमान थे । वीणा, वेणु, मृदङ्ग प्रभृति वाद्यों के बजाते वाले नारद आदि के द्वारा उनके गुण-गणों का गान किया जा रहा था । सुन्दर विभव से सम्पन्न, पीताम्बर धारण करने वाले थे । जिनके उरः स्थल में लक्ष्मी देवी विराजमान थी । नीलमेघ के तुल्य छवि से युक्त थे । उनके दोनों पार्श्व भागों में सनक प्रभृति महान् योगीजन सेवा कर रहे थे । १५।१।१०।११। भगवान् मुक्त पर ऐसी मन्द मुस्कराहट थी जिससे तीनों भुवनो को मोहित कर रहे थे । अपने भङ्ग की दिव्य कान्ति से सभी दिक्षाओं को प्रकाशयुक्त करते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो सर्वत्र विराजमान हो रहे हो । दया की खान भगवान् वेङ्कटेश देव सुन्दर भरतो को ही सुलभ होने वाले हैं । इस के अनन्तर वे रामानुज महामुनि के सन्निकट में प्राप्त हुए थे । १२।१३। उस महामुनि रामानुज ने उस समय में प्रत्यक्ष प्रकट हुए कृपा के निधि, पीताम्बरधारी श्री निवास देव का दर्शन प्राप्त किया तो उसकी अत्यधिक तृप्ति हुई थी और परम भक्ति से युक्त होकर उसने जगदीश्वर प्रभु की स्तुति की थी । १४।१५।

नमो देवाधिदेवाय सहस्रचक्रमदाभृते ।
 नमो नित्याय शुद्धाय वेङ्कटेशाय ते नमः । १६।
 नमो भक्तार्तिहृत्त्रैते हृद्यकव्यस्वरूपिणे ।
 नमस्त्रिमूर्तयेतुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे । १७।

घारी, वेङ्कट शक्ति पर निवास करने वाले भगवान्, वामुदेव आपके लिए मेरा वाग्द्वार नमस्कार है । २०।२१।

इतिस्तुत्वावेङ्कटेशांश्रीनिवासजगद्गुरुम् ।
 रामानुजोमुनिस्तूष्णीमास्तेविप्रवरोत्तमः । २२।
 श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिसुखा स्तुतस्तस्य महात्मनः ।
 अवापपरमंतीर्थं वेङ्कटाचलनायकः । २३।
 अयालिङ्ग्य मुनिं शौरिश्चतुर्भिराहुमिस्तदा ।
 वभाषे प्रीतिसंयुक्तो वरं वैन्नियतामिति । २४।
 तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्यस्तोत्रेणाऽपिमहामुने ।
 नमस्कारेषु च प्रीतो वरदोऽहन्तवागतः । २५।
 नारायणं रमानायं श्रीनिवासं जगन्मय ।
 जनादेन जगद्धामं गोविन्दं नरकान्तक । २६।
 त्वद्दर्शनात्कृतायोऽस्मि वेङ्कटाद्रिशिरोमणो ! ।
 त्वां नमस्यन्ति घमिष्ठा यतस्त्व घमंपालकः । २७।
 यं न वेत्ति भवोऽत्रहायनवैलिनयोतथा ।
 त्वावेच्चिरमात्मानं किंपस्मादधिकं परम् । २८।

वह विप्रवरो मे परम वरिष्ठ रामानुज मुनि दम प्रकार से जगत् के गुरु श्रीनिवास भगवान् वेङ्कटेश की स्तुति करके चुप हो गया था । उस महान भारमा वाले के द्वारा की गई कानो की परम सुख प्रदान करने वाली स्तुति का श्रवण करके भगवान् वेङ्कटाचल के नायक को परम तीर्थ प्राप्त हुआ था । उस समय में भगवान् शौरि ने अपनी चारों बाहुओं से मुनि का आनिङ्गन करके परम प्रीति से समन्वित होकर 'अरदान माग लो'—यह बोले थे । आज मैं तुम्हारे इस परमोप तप-यर्षी से बहुत अधिक सन्तुष्ट हो गया हूँ । हे महामुने ! आपके इस स्तवन के स्तोत्र से भी मुझे परम तीर्थ प्राप्त हुआ है । मैं आपकी नमस्कार से भी पत्यधिक प्रसन्न हो गया हूँ । इस समय में तुमको वरदान प्रदान करने के

मे साक्षात् मापके दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ—इससे अधिक और क्या वर-दान होगा । हे जगत् के स्वामिन् ! हे वेङ्कटेश देव ! इतने ही से मैं तो परम कृतार्थ हो गया हूँ । त्रिमके शुभ नाम के स्मृति मात्र से ही महान् पातक करने वाले लोग भी भुक्ति को प्राप्त हो जाता करते हैं उन प्रभु को मैं हस्त ममम में साक्षात् देख रहा हूँ । मैं तो भाषकी सेवा में यही भाषना कहूँगा कि आपके चरण कमलों में मेरी निश्चल भक्ति हो जावे । २६।३०।३१। श्री भगवान ने कहा—हे महापति वाले रामानुज ! मुझमें तेरी परम हृद भक्ति होगी । हे द्विज ! तुम ध्वज करो । मैं एक दूसरा काश्य भी तुमसे कहता हूँ—जो मनुष्य मानु के भेष राशि पर सङ्क्रमण करने पर जबकि पुण्यमासी तिस्रि के दिन बिना नक्षत्र विद्यमान हो गंगा में हे द्विज ! स्नान किया करते हैं वे लोग उस परम धाम को प्राप्त हो जाया करते हैं जहाँ पहुँच कर इस संसार में पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है । हे रामानुज द्विज ! अब तुम विषद्वगगा के समीप में ही निवास करो । ३२-३५।

एतत्प्रारब्धदेहान्ते यत्स्वरूपमवाप्स्यसि ।
 बहुना किमिहोक्तेन विषद्वगङ्गाजने शुभे । २६।
 स्नान्तिये वै जनाः सर्वेते वै भागवतोत्तमाः ।
 भवन्तिमुनिशार्दूल ! नात्रकार्याविचारणा । ३०।
 किलक्षणा भागवता जायन्ते केन कर्मणा ।
 एतदिन्द्राम्यहं श्रौतुं कौतूहलपरो यतः ।
 लक्ष्म भागवताना तु शृणुष्व मुनिसत्तम ! । ३०।
 वक्तुं तेषा प्रभाव तु शक्यते नाऽऽदकोटिभिः । ३१।
 येहिताः सर्वजगत्तुनागतासूयाविमत्सरः ।
 जानिभोनिः स्पृहाः शास्तास्तेर्वभागवतोत्तमाः । ३०।
 कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते ।
 व्यपरिग्रहशोलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः । ३१।

सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः ।

मत्पादाम्बुजभक्तायेतेवैभागवतोत्तमाः । ४२।

इस प्रारब्ध देह के मृत हो जाने पर जिम स्वरूप को तुम प्राप्त करोगे—इस विषय में बहुत अधिक कथन करना व्यर्थ ही है। इस परम शुभ विषद्गंगा के जल में जो जन स्नान किया करते हैं वे सभी भागवतो मे परम उत्तम होते हैं। हे मुनिशार्दूल ! इस विषय मे तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। ३६।३७। रामानुज ने कहा—भागवतो के क्या लक्षण हुआ करते हैं और वे किस कर्म के द्वारा जाने जाया करते हैं—यह मैं आपके ही श्री मुख से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ और मुझे इसमें बड़ा भारी कीतूहल होता है। भगवान श्री वेङ्कटेश ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! सब आप भागवतो के लक्षण का श्रवण करो। जैसे भागवतो का जो प्रभाव होता है वह तो करोडो वर्षों मे भी वर्णन नहीं किया जा सकता है। ३८।३९। जो समस्त जीवधारियों की मलाई करने वाले तथा चाइने वाले होते हैं—जिनके हृदय में असूया की भावना लेशमात्र भी नहीं रहा करती है—जो मात्सर्य दोष से पूर्णतया रहित हुआ करते हैं, जो बिल्कुल निःस्पृह होते हैं, जो ज्ञान वाले हैं, जो परम शान्त होते हैं वे ही उत्तम कोटि के भागवत हुआ करते हैं। भागवत जन मन, कर्म और वचन से कितनी भी प्रकार से दूसरो को पीडा नहीं दिया करते हैं। भागवत जन परिग्रह करने के स्वभाव वाले नहीं होते है, ऐसे जो पुरुष होते हैं वही उत्तम श्रेणी के भागवत जन हुआ करते हैं। जिनकी सत्पुत्रों की कथा के श्रवण करने में सात्त्विकी मति होती है और मेरे श्रवण कमल में जिनकी सुदृढ़ भक्ति होती है वे ही उत्तम भागवत जन होते हैं। ४०—४२।

मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वते ये नरोत्तमाः ।

ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका नराः ।

पूजा दृष्टा तु मोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः । ४३।

वशिन्तां च यतीनां च परिचर्यापराञ्च ये ।
 परनिन्दामकुर्वाणस्ते च भागवतोत्तमाः ।४४।
 सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः ।
 वेगुणप्राप्तिर्यो लोकेस्तेवैभागवतोत्तमाः ।४५।
 आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः ।
 तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु तेवैभागवताः स्मृताः ।४६।
 धर्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताञ्च ये ।
 तेषां शुश्रूषवी ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।४७।
 व्याकुर्वन्ति पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा ।
 तद्वक्त्रि च भक्ताद्येतेवैभागवतोत्तमाः ।४८।
 ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वन्ति सततं नराः ।
 तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।४९।

जो पुरुषो मे परम श्रेष्ठ अपने माता-पिता की सेवा किया करते हैं और जो सर्वदा देवों के प्रर्चन में रति रखते हैं जो मनुष्य उनकी चावना करने वालों में होते हैं और जो पूजा की देखभाल प्रसन्न होते हैं वे भागवतोत्तम हुमा करते हैं । ४५। वरुणों पुरुषों की तथा यतियों की परिचर्या करने में जिनकी रति हुमा करती है और सर्वदा उत्तर रहा करते हैं जो पराई निन्दा नहीं किया करते हैं वे भागवतोत्तम हुमा करते हैं । जो उत्तम नर सभी के हित करने वाले वाक्य बोलते करते हैं और जो इस लोक में गुणों के करने वाले होते हैं वे ही पुरुष उत्तम कोटि के भागवत हुमा करते हैं । जो नरोत्तम तथा सर्वो प्राणियों को अपने ही समान देखा करते हैं और जो शत्रुता रखने वाले तथा मित्रों में तुल्य भावना रखते हैं वे ही भागवत कहे गये हैं । जो धर्मशास्त्र के प्रवक्ता होते हैं और जो सत्य वचनों में रति रखते हैं तथा जो उनकी शुश्रूषा करने वाले हुमा करते हैं वे ही भागवतोत्तम हुमा करते हैं । जो पुराणों को व्याख्या किया करते हैं अथवा जो पुराणों का अर्थ किया करते

हैं तथा जो पुराणों के वक्षता पुरुष में भक्ति-भाव रखते हैं वे ही उत्तम भागवत होते हैं । जो गौ और ब्राह्मणों को धुंधूपा सदा किया करते हैं और तीर्थाटन करने में तत्पर रहते हैं वे ही भागवतोत्तम होते हैं । १४४-४६ ।

अन्येषामुद्य दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ।

हरिरामपर ये च ते वै भागवतोत्तमाः १५०।

आरामारोपण रतास्तटाकपरिरक्षकाः ।

कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः १५१।

ये वै तटाककर्तारो देवसद्यानि कुर्वते ।

गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः १५२।

येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वाऽतिहृषिताः ।

रोमाश्विजशरीराश्चतेवैभागवतोत्तमाः १५३।

तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः ।

तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः १५४।

तुलसीगन्धमाघ्राय सप्तोषं कुर्वते तु ये ।

तन्मूलमृद्धरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः १५५।

स्वाश्रमाचारनिरतास्तर्धवाऽतिथिपूजकाः ।

ये च वेदार्यववतारस्ते वै भागवतोत्तमाः १५६।

जो दूमरों का प्रभुदय देखकर उसका हादिक अभिनन्दन किया करते हैं तथा जो केवल श्रीहरि के ही नाम में परायण होते हैं वे उत्तम भागवत जन कहे जाते हैं । जो उद्यानों के समारोह करने की रति रखते हैं तथा तटाकों के जो परिरक्षक होते हैं एवं कासार और कुम्भों के जो बनवाने वाले होते हैं वे भागवतोत्तम हूमा करते हैं । १५०-१५१। जो तटाकों के निर्माण कराने वाले एवं देवालियों को बनवाने वाले होते हैं और गायत्री मन्त्र में जो निरत रहा करते हैं वे ही भाग-

वतीराम होते हैं । जो श्री हरि के शुभ नामों का प्रमिन्दन किया करने हैं और भगवन्नाम का श्रवण कर जो पञ्चान्त हृषित होते हैं एवं श्रवण करके और उच्चारण करके जिनके प्रज्ञ पुलकित हो जाया करते हैं वे ही उत्तम मागवत हुआ करते हैं । जो तुलसी के वन को देखकर नमस्कार किया करते हैं और तुलसी के काष्ठ से जिनके कर्ण अद्भुत रहते हैं वे भागवतोत्तम होते हैं । जो तुलसी की मन्थ का धारण करके परम सन्तोष प्राप्त किया करते हैं जो तुलसी के मूल की मृत्तिका की मस्तक पर धारण किया करते हैं वे ही उत्तम मागवत हुआ करते हैं जो अपने आश्रम और आचार में निरत रहते हैं तथा सर्वदा प्रति-पियो की पूजा एवं सत्कृति किया करते हैं और जो वेदों के प्रथों को बोला करते हैं वे ही उत्तम श्रेणों के मागवत हुआ करते हैं । ५२-५६।

विदितानि च शास्त्राणि परार्थप्रचदन्तिये ।

सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवतोत्तमाः । ५७।

पानीयदाननिरता ह्यन्नदानरताश्च ये ।

एकादशीव्रतपरास्ते वै भागवतोत्तमाः । ५८।

गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ।

मदर्थं कर्मकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः । ५९।

मन्मानसाश्च मदभवता ये मदभजनलोलुपाः ।

मन्नामस्मरणासक्तास्ते वै भागवतोत्तमाः । ६०।

बहुनाऽव किमुक्तेन संक्षेपात्तं यद्यीम्यहम् ।

सद्गुणाय प्रवर्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः । ६१।

एते भागवता विप्राः केचिदत्र प्रकीर्तिताः ।

ममाऽपि गदितुं शक्या नाऽब्दकीटिशतैरपि । ६२।

रामानुज ! महाभाग ! मदभवताना च लक्षणम् ।

मयि भवते त्वयि प्रीत्या युक्तं किल महामते । ६३।

२३-श्रीवेङ्कटाचल सर्वपुण्यतीर्थाधारत्ववर्णन

वेङ्कटाद्रो महापुण्ये सर्वसङ्कटनाशने ।
 सन्ति वै कति तीर्थानि सूतपौराणिकोत्तम ! ११।
 तेषां संख्यां च मे ब्रूहि कति मुख्यानि तत्र वै ।
 तत्राप्यत्यन्तमुख्यानि वद मे मुनि सत्तम ॥ १२।
 सद्धर्मरतिदान्यत्र कति मुख्यानि तानि च ।
 कानि ज्ञानप्रदायत्र भक्तिर्वैराग्यदानि च ॥ १३।
 मुक्तिप्रदानि कान्यत्र तानि मे वद सुव्रत ! ॥ १४।
 पट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्यायत्र नगोत्तमे ।
 अष्टोत्तरसहस्राणि तेषु मुख्यानि सुव्रत ! ॥ १५।
 सद्धर्मरतिदान्यत्र सन्ति चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
 सहस्रैश्च मुख्यानि पृथक्तेभ्यश्च तानि च ॥ १६।
 भक्तिर्वैराग्यदान्यत्र पष्टिरष्टोत्तरे शते ॥ १७।

श्रुविण्ण ने कहा—हे पौराणिकों मे सर्वोत्तम ! हे सूत जी ! मगसत सङ्कटो के नाश करने वाने, महान् पुण्य मय उस वेङ्कट पर्वत में कितने तीर्थ हैं ? उन तीर्थों की संख्या प्राय हमको बतनाइये । उन समस्त तीर्थों में भी कितने तीर्थ प्रमुख कहे जाते हैं और उन प्रमुखों मे भी अत्यन्त मुख्य कौन से हैं ? हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको प्राय कृपया हमको बतनाइये । ११२। सद्धर्म में रति प्रदान करने वाले उनमे कौन से परम प्रमुख तीर्थ हैं और कौन-से ऐसे परम प्रमुख हैं जो केवल ज्ञान के ही प्रदान करने वाले हैं तथा वैराग्य की भावना को उत्पन्न करा देने वाले हैं ? ऐसे कितने प्रदान तीर्थ हैं जो मानवो के हृदय में भक्ति की भावना पैदा करा देते हैं ? हे सुव्रत ! कौन से ऐसे तीर्थ हैं जो मुक्ति के प्रदान करने वाने हैं ? प्राय हमको शव यह बतनाइये । १३। श्री सूतजी ने कहा—हे सुव्रत ! इस उत्तम अचल मे छियासठ करोड़ परम पुण्यमय

तीर्थ हैं । उन सब में एक सहस्र आठ परम मुख्य तीर्थ हैं । इस पर्वत में एक सौ आठ तो ऐसे तीर्थ हैं जो सद्धर्म में रति उत्पन्न कर देने वाले हैं । ये उन एक सहस्रो से भी पृथक् परम मुख्य हैं । जो भक्ति और वंशाय के प्रदान करने वाले हैं वे एक सौ साठ तीर्थ हैं । १५६।७।

मुक्तिदान्यत्र पट् चैववेङ्कटाचलमूर्धनि ।
 स्वामिपुष्करिणी चैव विषद्गङ्गा ततः परम् । ८।
 पश्चात्पापविनाशं च पाण्डुतीर्थमतः परम् ।
 कुमारधारिकातीर्थं तुम्बोस्तीर्थमतः परम् । ९।
 कुम्भमासे पौर्णमास्या मघायोगो यदा भवेत् ।
 कुमारधारिका यांति सर्वं तीर्थानि हे द्विजाः । १०।
 तत्र यः स्नाति विप्रेन्द्रा राजसूयफल लभेत् ।
 मुक्तिश्च भविता तत्र नात्र कार्या विचारणा । ११।
 अन्नदानविधिस्तत्र सार्धं दक्षिणया द्विजाः ।
 उत्तराफल्गुनोयुक्तशुक्लपक्षोयपर्वणि । १२।
 तुम्बोस्तीर्थं मौनसस्थ रवौ तीर्थानि सर्वशः ।
 अपराह्णे समायांति तत्र स्नातो न जायते । १३।
 मौञ्जीवर्य विवाह च कारयेद्द्रव्यदानतः ।
 मेघसङ्क्रमणे भानी चित्रानक्षत्रसयुते । १४।

इस वेङ्कटाचल की शिखर पर छँ ऐसे तीर्थ हैं जो केवल मुक्ति के प्रदान करा देने वाले हैं । वे छँ तीर्थ में हैं—एक उनमें स्वामी पुष्करिणी तीर्थ है । इसके पश्चात् विषद्गङ्गा तीर्थ है । फिर पाप विनाश नामक एक तीर्थ है । इसके आगे एक पाण्डु तीर्थ है । फिर कुमार धारिका नाम वाला तीर्थ है और उनके बाद हैं तुम्बो तीर्थ है । कुम्भ मास में पौर्णमासी तिथि में जिस में मघा नक्षत्र का योग आकर पड़े उस अवसर पर सभी तीर्थ हे द्विज गण ! कुमारधारिका तीर्थ में जाया करते है । ८। ९। १०। हे विप्रेन्द्रो ! उस अवसर पर

जो भी कोई वहाँ पर स्नान किया करता वह राजसूय यज्ञ करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है । वहाँ पर मुक्ति तो आवश्यक ही हो जाया करती है— इसमें कुछ भी विचारणा करने की आवश्यकता नहीं है । ११। हे द्विज वृन्द ! उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र से युक्त शुक्ल के पर्व दिन में वहाँ पर दक्षिणा के साथ धस के दान कर देने की विधि है । तुम्हो नामक तीर्थ में मीन राशि पर जब सूर्य सस्यित होते हैं तब समस्त तीर्थ सभी ओर से अपराह्न के समय में वहाँ पर समायात होते हैं । वहाँ पर उस समय में जो स्नान करता है वह फिर जन्म नहीं लिया करता है । मोड़ी वर्ष और विवाह द्रव्य के दान को देकर जो कर्हा कराता है । जब कि मेष राशि पर सूर्य का सक्रमण हो और चित्र नक्षत्र से संयुत हो, इससे भी पुनर्जन्म नहीं होता है । १२। १३। १४।

पोणमास्यां समायान्ति वियद्गङ्गां तथैव च ।

तत्र स्नात्स्नानरः सद्यः शतक्रतुफलतभेद् । १५।

सुवर्णं तत्र दातव्यं कर्थादानं विशेषतः ।

वृषभस्ये रवौ विप्रा द्वादश्यां हरिवासरे । १६।

शुक्ले वाऽप्यथ कृष्णे वा भीमेनाऽपि समन्विते ।

पाण्डुतीर्थं समायान्ति गङ्गादीनि जगत्त्रये । १७।

तत्र स्नात्वा च गांस्त्वा मुच्यते प्रतिबन्धकात् ।

आश्वयुक्शुक्लपक्षे च समन्यां भानुवासरे । १८।

उत्तराषाढयुक्तायां तथा पापविनाशनम् ।

चत्तरमाद्रयुक्तायां द्वादश्या वा समागतः । १९।

शालग्रामशिलां दत्त्वा स्नात्वा च विधिपूर्वकम् ।

मुच्यते षड्वर्षपापं जन्मकोटिशतोद्भवैः । २०।

घनुमसि सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये ।

आयान्तिसर्वतीर्थानि स्वाभिपुष्करिणीजले । २१।

पौर्णमासी तिथि के दिन समस्त तीर्थ विदग्द्धा में प्राया करते हैं । उस अवसर पर वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य तुरन्त ही सो ऋतुमो के करने का फल प्राप्त कर लिया करता है । वहाँ पर सुवर्ण का दान और विशेष कर कन्या का दान करना चाहिए । वृष राशि पर सूर्य के समायात होने पर हे विप्रो ! द्वादशी तिथि में हरिवासर में चाहे वह शुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष हो किन्तु भोम वार से समन्वित होना चाहिए । उस अवसर जगत्त्रय में गङ्गा आदि समस्त तीर्थ पाण्डु तीर्थ में प्राया करते हैं । उस पर वहाँ स्नान करके और गो का दान करके मानव प्रति बन्धक से मुक्त हो जाया करता है । आश्वयुक् शुक्ल पक्ष में सप्तमी तिथि तथा रविवार में जबकि उत्तराषाढा नक्षत्र से युक्त हो पाप विनाशन को भी उसी प्रकार से सब तीर्थ प्राया करते हैं । अथवा उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र से युक्त द्वादशी में समागत होवे । वहाँ पर शालग्राम शिला का दान करके तथा विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य संकटो करोड जन्मों में किये हुए सब प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है । धनुर्मास में, शुक्ल पक्ष में, द्वादशी तिथि में, अरुणोदय के समय में वहाँ पर सम्पूर्ण तीर्थ प्राते हैं और उस स्वामि पुष्करिणी के जल में आकर एकत्रित हुमा करते हैं । ११-२१।

तत्र स्नात्वा तरः सद्योमुक्तिमेति न संशयः ।

यस्य जन्मसहस्रेषु पुण्यमेवाञ्जितं पुरा । २२।

तस्य स्नान भवेद्विधा नाप्यस्य त्वकृतात्मनः ।

विभवानुगुणं दानं कार्यं तत्र यथाविधि । २३।

शालिग्रामशिलादानं गां दद्याच्च विशेषतः । २४।

ये शृण्वन्ति कथां विष्णोः सदा भुवनपावनीम् ।

ते वं मनुष्यलोकेऽस्मिन्विष्णुभक्ता भवन्ति हि । २५।

यद्यशक्तः सदा श्रोतुं कथां भुवनपावनीम् ।

मूर्हतं वातदधं वाक्षरं वाविष्णुसत्कथाम् ।

यः शृणोति नरो भक्त्या दुर्गतिर्नास्ति तस्य हि ।२६।
यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ।
मकुत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः ।२७।
कतो धुमे विशेषेण पुराणश्रवणाद्विदे ।
नाऽस्ति धर्मः परः पुंसां नाऽस्तिभुक्तिप्रदंपरम् ।२८।

उस भक्त पर उस तीर्थ में स्नान करके तुरन्त ही मुक्ति को प्राप्त कर लिया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जिसके पहिले सहस्रों जन्मों में पुण्य ही अर्जित किया हुआ ही। हे विप्रो ! उभी का वहाँ पर स्नान हुआ करता है और अन्य अकृतात्मा का स्नान कभी नहीं हो सकता है। वहाँ पर अपने धर्म के अनुसार यथाविधि दान करना चाहिए ।२२।२३। घालपाम की गिला का दान और विशेष रूप से गौ का दान वहाँ देवे ।२४। जो भोग भगवान् विष्णु को परम-पावनो कथा का श्रवण किया करते हैं। एक मुहूर्त मात्र, इससे भी आधे समय तक शयना सम मात्र भी जो श्री विष्णु की स्तुतिया को सुनना है और सदा इस भुवन पावनो कथा के श्रवण करने में प्रसमर्थ रहना है तथा मन्त्र से एक क्षण भी सुन लेता है तो उस मनुष्य को कभी दुर्गति नहीं हुआ करती है ।२५। जो विष्णु भगवान् को सदा ही भुवन पावनो कथा को सुनने हैं वे इस मनुष्य लोक में विष्णु के सबत हुमा करते हैं ।२६। जो फल मन्त्रों के करने में होता है और जो पुण्य-फल सभी प्रकार के दानों के देने में होता है वही पुण्य-फल मनुष्य एक ही बार पुण्यों के श्रवण करने पर प्राप्त कर लिया करता है। विशेष करके इस कलिपुत्र में पुराण श्रवण के बिना पुण्यों का परम धर्म है ही नहीं जो कि मुक्ति के जैसे परम पद का प्रदान करने वाला होता है ।२७।२८।

पुराणश्रवणं विष्णोर्नामसङ्कीर्तनं परम् ।
उभे एव मनुष्याणां पुण्यद्रुममहाफले ।२९।

पिबन्नैवाऽमृतं यत्नादैकः स्यादजरऽमरः ।
 विष्णोः कथामृतंकुपतिकुलभेवाजरामरम् । ३०।
 बालो युवाऽथवृद्धोवा दरिद्रो दुर्भंगोऽपि वा ।
 पुराणज्ञः सदा वन्द्यः स पूज्यः सुकृतात्मभिः । ३१।
 नीचबुद्धि न कुर्वति पुराणज्ञे कदाचन ।
 यस्य वक्त्रोद्गतावाणो कामधेनुः शरीरिणाम् । ३२।
 भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वा वसीदताम् ।
 यो ददात्यपुनर्वृत्तिकोऽन्यस्तस्मात्परोगुरुः । ३३।
 व्यासासनसमाऽऽहृदो यदा पौराणिको द्विजः ।
 आसमाप्तेः प्रसङ्गस्य नमस्कुर्वन्नि कस्यचित् । ३४।
 न दुर्जनसगाकीर्णो न सूद्रश्यापदावृत्ते ।
 देशे न ह्यतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः । ३५।

पुराणों का ध्वण और विष्णु भगवान् का पर नाम सञ्जीवनी
 ये दोनों ही मनुष्यों के महान् फलों वाले पुण्य द्रुम हैं । ३०। एक हत
 यत्न से अमृत को पीता हुआ ही अजर और अमर हो जाया करता
 है । जो भगवान् विष्णु की कथा रूपी अमृत को ग्रहण किया करता है
 उसका तो पूर्ण कुल ही अजरामर हो जाता है । बालक हो, युवा हो
 वृद्ध हो, दरिद्र हो अथवा दुर्भंग भी क्यों न हो जो पुराणों का ज्ञाता
 है वह सुकृतात्मा पुरुषों के द्वारा सर्वदा पूज्य एवं वन्दना करने के
 योग्य होता है । जो पुराणों का ज्ञाता है उसमें कभी भी नीच बुद्धि नहीं
 करनी चाहिए जिसके मुख से उद्गत हुई वाणों शरीर धारियों के लिए
 कामधेनु के ही सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली हुमा करती है ।
 सहस्रो करोड़ सात्त्विक जन्मों में जन्म ले-लेकर उद्योहित होते हुए पुरुषों
 को जो अपुनरा वृत्ति अर्थात् मोक्ष प्रदान किया करता है बतलाइये,
 उससे अधिक कौन गुरु है ? व्यास की गद्दी पर जब पौराणिक द्विज
 समाहृद् होता है उस समय में प्रस्तुत वर्णन किये जाने वाले प्रसङ्ग की

समाप्ति पर्यन्त उसे किसी को भी गमन्कार नहीं करना चाहिए वही मने ही वहाँ गुरुदेव ही क्यों न उपस्थित हो गये होंवे । ३०। ३१। ३२। ३३। ३४। सुधी पुरुष का कर्तव्य है कि जो स्थल दुर्जनों से समाकीर्ण हो तथा शूद्रों और श्वापदों से समावृत्त हो एवं जो छूत क्रीडा का घर हो वहाँ पर कभी भी मून कर पुराणों की परम पुण्यकथा को न ब न कहे । ३५।

मुग्रामे मुजनाकीर्णं मुक्षेत्रे देवतालये ।
 पुण्ये वाऽथ तदीतीरे यदेत्पुण्यकथासुधीः । ३६।
 श्रद्धामवितससायुक्ता नाऽप्यकार्येषु लालसाः ।
 वाम्यताः शुचयोऽप्यथाः श्रोतारः पुण्यभागिनः । ३७।
 यमवत्या ये कथां पुण्या शृण्वन्ति मनुजाधमाः ।
 तेषां पुण्यफलं नाऽस्ति दुःखं जन्मनि जन्मनि । ३८।
 पुराणं ये तु सम्पूज्यतान्मूलार्थरूपायनैः ।
 शृण्वन्ति च कथां मवत्यानदरिद्रानयापिनः । ३९।
 कथार्या कथ्यमानामायेगच्छन्त्यन्मतीनराः ।
 भोगान्तरंप्रणश्यन्तितेषांदाराऽसम्पदः । ४०।
 मोक्षणीयमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम् ।
 ते बालकाः प्रजायन्ति पापिनो मनुजाधमाः । ४१।
 तान्मूल मक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्तिपावनीम् ।
 श्वविष्टाभक्षयन्त्येतेनरकेचपतन्तिहि । ४२।

जो भवि सुन्दर ग्राम हो और जो स्थल मुजन पुरुषों से समाकीर्ण हो, सुन्दर क्षेत्र या देवालय हो पक्का कोई परम पुण्य नदी का तट हो वहाँ पुराणों की पुण्य कथा को कहना चाहिए । जो धरण करने वाले श्रोता मण श्रद्धा एवं भक्ति से समावृत्त हों और जिनकी लाल मन्य सांसारिक कार्यों में नहीं होवे, वाम्यत (मौन या कम बोलने वाले), शुचिता से पूर्ण, व्यग्रता से रहित होते हैं वे परम पुण्य से

भागी हुआ करते हैं । ३६।३७। जो प्रथम मनुष्य बिना ही भक्ति की भावना के पुण्य कथा का श्रवण किया करते हैं उनको कोई भी पुण्य फल नहीं हुआ करता है और जन्म-जन्म में दुःख ही होता है । ३८। जो ताम्बूल आदि उचित प्रार्थना के उपचारों के द्वारा पुराण को भली भाँति पूजा किया करते हैं और फिर भक्ति पूर्वक उनकी कथा का श्रवण करते हैं वे कभी दरिद्र एवं पापी नहीं होते हैं । कथा के कथ्यमान होने पर मर्त्यान् मोरम्भ हो जाने पर जो मनुष्य कहीं उसे छोड़ कर अन्यत्र चले जाया करते हैं उनके भोगान्तर में दारण्य और सम्पत्तियाँ विनष्ट हो जाया करती हैं । जो मस्तक पर उष्णीष (पगड़ी आदि) धारण किये हुए पावनी कथा का श्रवण करते हैं वे मठामूढ़ बालक महान् पापी और मनुष्यों में परम प्रथम हुआ करते हैं । ३९-४१। ताम्बूल का भक्षण करते हुए जो पावनी कथा को सुनते हैं वे कुत्ते की विद्या का भक्षण करते हैं और नरक में जाकर गिरा करते हैं । ४२।

ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ।

अक्षय्याभरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः । ४३।

ये च बीरासनारूढा ये च सिंहासनस्थिताः ।

शृण्वन्तिसत्कथातेर्धं भवन्त्यजुनपादपः । ४४।

असम्प्रणाम्य शृण्वन्तो विषवृक्षा भवन्ति हि ।

तथाशयानाः शृण्वन्तो भवन्त्यजगराहिते । ४५।

यः शृणोति कथा वक्तः समानासनसंस्थितः ।

गुरुतरूपसमपापं सम्प्राप्य नरकं व्रजेत् । ४६।

ये निन्दन्ति पुराणज्ञं सत्कथां पापहारिणीम् ।

ते वै जनशमशतमर्त्याः शूनकाश्च भवन्ति हि । ४७।

कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुश्तरम् ।

ते गदंभाः प्रजायन्ते कृकलासास्ततः परम् । ४८।

कदाचिदपि ये पुण्यां नभृष्वन्तिकर्यांनराः ।

ते मुक्त्वाभरकान्घोरान्भवन्तिवत्सूकराः । ४६।

जो मानी पुण्य जँचे किसी आसन पर विराजमान होकर परम दान्मिक कथा का श्रवण किया करते हैं वे अज्ञाय नरकों को भोगकर अन्न में लायस (कौप्रा) की योनि प्राप्त किया करते हैं । ४६। जो-बोरसन पर समाच्छ है या मिहामन पर बैठकर सरकया का श्रवण - किया करते हैं वे अर्जुन पादय होते हैं । जो कथा को प्रणाम न करके ही श्रवण करते हैं वे दूसरे अन्न में किसी विष के वृक्ष होकर उत्पन्न होते हैं । जो रायन करते हुए ही कथा को सुनते रहा करते हैं ने अन्नगर की योनि प्राप्त करते हैं । जो वक्त्र के समान आसन पर ही संस्थित होकर कथा सुना करते हैं उनको मुहुतुल्य के समन करने के समान ही पाप होता है और वे नरकगामी हुआ करते हैं जो पुराणों के ज्ञाता पुण्य की निन्दा किया करते हैं तथा पापों के हरण करने वाली सरकया की निन्दा किया करते हैं वे मनुष्य भी जन्मों तक मुनक हुआ करते हैं । कथा के कीर्त्यमान होने पर अर्थात् कथा के कहे जाने पर दुस्तर कहा करते हैं वे पहिले तो गवे की योनि प्राप्त करते हैं और फिर कुकलास होते हैं । जो नर कभी भी पुण्य कथा का श्रवण कही किया करते हैं वे घोर नरकों को भोग कर अन्न में वन के (जङ्गली) सूकर हुआ करते हैं । ४६—४६।

कथायां कीर्त्यमानायां विघ्न कुर्वन्ति ये नराः ।

कोट्यब्दं नरकान्मुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः । ४७।

येकथामनुसोदन्तेकीर्त्यमानानरोत्तमाः ।

अशृष्वन्तोऽपि तेषान्तिशाश्वत्पदमव्ययम् । ४८।

ये श्रावयन्तिमनुजाः पुण्यांपौराणिकीकथाम् ।

कलाकोटिशतंसाप्रतिश्रुतिव्रह्मणः पदे । ४९।

आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ।

कम्बलाजिनवासंसि तयामञ्चकमेववा । ५०।

स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।
 स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं याति निरामयम् ॥५४॥
 पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सूत्रं नवं वरम् ।
 भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवन्ति भवे भवे ॥५५॥
 ये महापातकयुक्ता ह्युपपातकिनश्च ये ।
 पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमम्पदम् ॥५६॥
 वेङ्कटाद्रिस्तु माहात्म्यं श्रुत्वा तच्छ्रयस्ततः ।
 व्यासप्रसादसम्पन्नं सूतं पौराणिकोत्तमम् ।
 पूजयित्वा यथान्यार्यं महर्षमनुलं गताः ॥५७॥

पौराणिक कथा के कीर्त्यमान होने पर जो मनुष्य उसमें विघ्न उत्पन्न
 किया करते हैं वे एक करोड़ वर्षों तक नरको की यातनाओं को भोगकर भन्त
 में ग्राम सूकर की योनि में जन्म लिया करते हैं । जो उत्तम कर कीर्त्य-
 मान कथा का अनुमोदन किया करते हैं वे कथा का श्रवण न करते हुए
 भी अव्यय शश्वत पद को प्राप्त किया करते हैं । जो मनुष्य परम पुण्य-
 मयी पौराणिकी कथा का श्रवण कराया करते हैं वे ब्रह्मा के पद पर
 जो साग्र एव परमोत्तम है पातकोटि कल्पों तक स्थित रहना करते हैं । जो
 मनुष्य पुराणों के ज्ञाता विद्वान के लिए सासन के वास्ते कम्बल, मञ्जिन और
 वस्त्र समर्पित किया करते हैं तथा मज्जक ही दान में देते हैं वे स्वर्गलोक
 को प्राप्त कर यथेप्सित भोगों के सुख का उपभोग करके तथा ब्रह्मादि
 लोकों में स्थित होकर फिर निरामय पद को प्राप्त किया करते हैं ।
 ॥५०—५४॥ जो पुराण ग्रंथ के लिए नूतन एव परमोत्तम सूत्र प्रदान
 किया करते हैं वे जन्म-जन्म में भोगी और ज्ञान से सुसम्पन्न हुमा करते
 हैं । जो महा पातको से युक्त होते हैं तथा जो उपपातकी हुमा करते हैं
 वे केवल पुराणों के श्रवण करने ही से परम पद को प्राप्त कर लिया
 करते हैं ॥५५—५६॥ इसके अनन्तर वे उमस्त श्रुतिमण वेङ्कटाद्रि के
 माहात्म्य का श्रवण करके फिर श्री व्यासी देव जी के प्रसाद से सम्पन्न

श्री पौराणिकों में परम श्रेष्ठ सूतजी का उन सबने पूजन किया था जैसा कि शास्त्रोक्त विधान है फिर वे सब परम हृषीकेश की प्राप्त हो गये थे । १५७।

१४ — ब्रह्मा की प्रार्थना पर विष्णु का प्रकट होना

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
 देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदारयेत् । १।
 भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ ! सर्वतोर्थमहत्त्ववित् ।
 कथितं भद्रवया पूर्वं प्रस्तुते तीर्थकीर्तने ।
 गुरुषोत्तमाख्यं सुमहत्क्षेत्रं परमगाननम् । २।
 यथाऽऽस्ते दारुवतनुः शोशोमानुपलोलया ।
 दर्शनान्मुक्तिदः साक्षात्सर्वतोर्थफलप्रदः । ३।
 तन्नो विस्तरतो ब्रूहि तत्क्षेत्रं केन निमित्तम् ।
 ज्योतिः प्रकाशो भगवान्साक्षात् नारायणः प्रभुः । ४।
 कथं दाहयस्मिन्स्मितास्ते परमपूतवः ।
 च द त्वं वदता श्रेष्ठ ! सर्वलोकगुरो मुने ! । ५।
 श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कीलूहलं हि तव ।
 शृणुष्वं मुनयः सर्वे रहस्यं परमं हि तव । ६।
 अर्चयन्त्यानां श्रवणो भक्तिस्तत्र न जावते ।
 यस्य सङ्कीर्तनादेव सकलं लीयते तमः । ७।
 यद्यप्येष जगन्नाथः सर्वगः सर्वभावनः ।
 एकान्देन कथितं पूर्वं श्रुत्वा शम्भो मुखात्पुजात् ।
 सन्ति क्षेत्राणि चाऽन्यानि सर्वपापहराणि च । ८।

भगवान् नारायण की प्रणाम करके फिर नरोत्तम नर को नमस्कार करे । देवी सरस्वती की प्रणाम करके श्री व्यास देव जी को नमन करे । इसके पनन्तर जय शब्द का उच्चारण करना चाहिये ।

मुनि वृन्द ने कहा—हे भगवन् ! माप तो समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हैं और सम्पूर्ण तीर्थों के महत्त्व के भी वेत्ता हैं । तीर्थों के कीर्तन करने के प्रस्ताव के प्रस्तुत होने पर पहिले आपने पुरुषोत्तम नाम वाले परम पावन सुमहान् क्षेत्र के विषय में कहा था ॥१२॥ जिस क्षेत्र में भगवान् शीत मानव लीला से काष्ठ मयी मूर्ति धारण करके विराजमान हैं । उनके दर्शन मात्र से ही वे मुक्ति का प्रदान कर देने वाले हैं और साक्षात् समस्त तीर्थों के पुण्य-फल को देने वाले हैं ॥३॥ हे भगवन् ! कृपा करके वसे अब थोड़ा सा विस्तार के साथ हमको बतला दीजिये कि उस क्षेत्र का निर्माण किसने किया था ? साक्षात् भगवान् नारायण प्रभु तो दिव्य ज्योति के प्रकाश स्वरूप हैं वह परम पुरुष वहाँ पर क्यों और किस रीति से दाहमय होकर विराजमान हो रहे हैं ? आप तो इसके बनलाने वाले में परम श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ हैं और हे मुने ! आप सब लोको के गुरु भी हैं अतः आप हमको यह बतलाइये । हे ब्रह्मन् ! हम सब सुनने की उत्कट इच्छा रखते हैं और हमारे हृदय में इसके श्रवण करने की बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥३॥४॥ महर्षि प्रवर जैषिनी ने कहा—हे मुनिगण ! आप सब सुनिये, यह एक बड़ा भारी रहस्य है । जो लोग वैष्णव नहीं हैं उनकी इसके श्रवण करने में भक्ति नहीं होती है । जिसके सङ्कीर्तन करने मात्र से ही सब तम लीन हो जाया करता है । यद्यपि यह जगत् के नाथ हैं—सर्वत्र गमन करने वाले और सब पर दया भाव रखने वाले हैं । पहिले भगवान् शम्भु कमल से श्रवण करके स्वामी स्कन्द ने कहा था । और भी समस्त पापों के हरण करने वाले क्षेत्र विद्यमान हैं ॥७—८॥

एतरक्षेत्रं परश्चाऽस्यवपुर्मूर्तमहारमनः ।

स्वर्यवपुष्मांस्तत्रास्तेस्वनाम्नाह्यापितंहितत् ॥६॥

तत्र ये स्यातुभिच्छन्ति तेषितर्वेहतांहयः ।

किपुनस्तत्रतिष्ठन्तोपश्यन्तिगदाधरम् ॥१०॥

अहोतत्परमं क्षेत्रं विस्तृतं दशयोजनम् ।
 तीर्थं राजस्य सलिलादुत्थितं बालुकाचितम् । ११।
 नीलाचलेन महता मध्यस्थेन विराजितम् ।
 एकस्तनमिव पृथ्व्याः सुदूरात्परिभाविमम् । १२।
 वाराहहृदिणा पूर्वं समुद्भृत्य वसुधराम् ।
 सर्वतः सुसमां कृत्वा पर्वतः सुस्थिरौ कृताम् । १३।
 सृष्ट्वा चराचरं सर्वं तीर्थानि सरिद्विचकान् ।
 क्षेत्राणि च यथास्थानं संनिवेश्य यथा पुरा । १४।

यह क्षेत्र इन महान् पुरुष का वपुभूत अर्थात् शरीरवारी सर्व-
 श्रेष्ठ है और वहाँ पर स्वयं वपुमान् विराजमान रहा करते हैं और
 अपने ही नाम से इस क्षेत्र को लोक में रूपायिन भी किया है । वहाँ पर
 जो भी स्थित होने की इच्छा किया करते हैं वे भी निष्ठा ही होते हैं
 और उनके विषय में तो कहा हो गया जावे जो वहाँ पर अपनी स्थिति
 रखते हैं और भगवान् गदाधर का नित्य दर्शन प्राप्त किया करते हैं ।
 मही ! यह सर्वोत्तम क्षेत्र है जो दश योजन के विस्तार से युक्त है ।
 तीर्थराज के जल से यह उत्थित हुआ है जो बालुका से वित्त है । मध्य
 में स्थित महान् नीलाचल से यह क्षेत्र विराजित है । बहुत दूर से ही
 पृथ्वी देवी के एक स्तन के समान परिभाविता होता है । पहिले वाराह
 के स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् ने इस वसुधरा देवी उद्धार
 करके इसे सभी ओर से सुसमान किया था और पर्वतों से इस ही सुस्थिर
 बनाया था । सभी चर और अचर सृष्टि का सृजन करके समस्त तीर्थ,
 नदियाँ, समुद्र और क्षेत्रों को पहिले यथाचित स्थान पर संनिवेशित
 किया था । १२—१४।

ब्रह्मा विचिन्तयामास सृष्टिभारनिपीडितः ।

पुनरेतां क्रियां गुर्वीं नारभेयकथन्तिवतिः । १५।

तापत्रयाभिभूताहि मुच्यन्ते जन्तवः कथम् ।
 एव चिन्तयमानस्यमतिरासीत्प्रजापतेः ।१६।
 मुक्त्येककारण विष्णुं स्तोष्येऽह परमेश्वरम् ।
 नमस्ते जगदाधार ! शङ्खचक्रगदाधर ।१७।
 यन्नाभिपङ्कजादेव जातोऽहं विश्वसृष्टिकृत् ।
 परमार्थं स्वरूप ते त्वं वै वेत्सिजगन्मय ।१८।
 यन्माययाजगत्सर्वनिमित्तं महदादिकम् ।
 यन्निःश्वाससमुद्भूत शब्दब्रह्म त्रिधाऽभवत् ।१९।
 उपजीव्यतदेवाऽहमसृजम्भुवनानि वै ।
 त्वत्तोनाऽन्यः स्थूलसूक्ष्मदार्षह्रस्वादिकिञ्चन ।२०।
 विचारभेदेभंगवस्त्वमेवेद चराचरम् ।
 कटकादि यथा स्वर्गं गुणत्रयविभागशः ।२१।

सृष्टि के भार से घटपन्त अधिक पीड़ित ब्रह्माजी ने विचार किया था कि इस बड़ी भारी क्रिया को पुनः कैसे पारम्भ करूँ । तीन प्रकार के तापो से अभिभूत ये जन्तुगण विचारे किस तरह से छुटकारा पायेंगे । इस तरह वेत्तिता में मग्न हो रहे थे कि अचानक प्रजापति के हृदय ऐसी मनि समुत्पन्न हो गई थी कि मुक्ति का एक कारण तो भगवान् विष्णु ही है अतएव मैं उसी परमेश्वर प्रभु का स्तवन करूँगा । ब्रह्माजी ने कहा—हे इस जगत् के आधार ! हे शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है । जिसके नाभि में स्थित कमल से ही मेरी उत्पत्ति हुई है जो इस विश्व की सृष्टि को करने वाला है । हे जगन्मय ! आपके परमार्थ स्वरूप को आप ही जानते हैं । जिसकी माया से यह सम्पूर्ण जगत् तथा महत् आदिक निमित्त हुए हैं । जिसके निःश्वास से समुत्पन्न यह शब्द ब्रह्म तीन स्वरूपों वाला हो गया है । हे देव ! मैंने तो इन भुवनो की सृष्टि करदी है आप इनको उपजीव्य करिये । आपसे अतिरिक्त अन्य कोई भी स्थूल,

ब्रह्मा की प्रार्थना पर विष्णु का प्रकट होना] [३१५

सूक्ष्म, पीघे और, ह्रस्व आदि नहीं है। विकारों के भेदों के द्वारा हे भगवन् ! यह सब चराचर आप ही स्वयं हैं। तीन गुणों के (सत्त्व, रज, तम) विभाग से यह सभी कुछ आपका ही स्वरूप है जैसे स्वर्ण कटक आदि के विभिन्न रूपों में रहता है। ११५—११।

स्रष्टासृज्यं त्वमेवाऽनपोऽप्योऽप्यज्ञात्प्रमो ।
 आघारो द्रियमाणश्च घर्ता त्वंपरमेश्वर । १२।
 त्वत्प्रेरितमतिः सर्वं श्रते च शुभाऽशुभम्
 ततः प्राप्नोति सदृशो त्वयैव विहितां गतिम् । १३।
 जगतोऽस्य गतिर्भर्ता साक्षी त्वं परमेश्वर ! ।
 चरान्तरगुरो ! सर्वजीवभूतकृपाभव ! ।
 प्रसीदाऽञ्जजगन्नाथ ! निश्च्य त्वच्छरण्यस्य मे । १४।
 एवं संस्तूयं मानश्च ब्रह्मणा गडडध्वजः ।
 नीलजीमूतसड काशः शङ्खचक्रादिचिह्नितः । १५।
 पतगेन्द्रसमारूढः स्फुरदुदनपङ्कजः ।
 आविरामोद् द्विजधेष्ठा विवक्षुः स्फुरिताघरः । १६।
 यदर्थं मां स्तुपे ब्रह्मन्नशक्यः प्रतिभाति सः । १७।
 अनाद्यविद्यामुदृढा दुक्लेशाकर्मवन्धनैः ।
 प्रभवन्त्यां कथं तस्या ह्रीयेतेमृतिजन्मनी । १८।

हे प्रमो ! यहाँ पर आप ही तो इस जगत् के सृजन करने वाले हैं और आप ही सृज्य प्रपत् करने के योग्य वस्तु जात हैं। इस जगत् पोषण करने वाले तथा पोषण के योग्य भी आप ही हैं। इस जगत् के आघार और आधेय दोनों ही आप स्वयं ही हैं। हे परमेश्वर ! इसकी चरण करने वाले भी आप ही हैं। आपके द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके ही जो गति होती है उसी से भव शुभ और अशुभ कर्मों किया करते हैं। इसके अनन्तर आपके द्वारा ही जो हुई सदृश गति को प्राप्त किया करता है। १२—१३। हे परमेश्वर ! इस जगत् की आप ही गति हैं, आप ही

इसके भरण करने जाते हैं और मान ही इसके साथी है । हे बराबर के गृहदेव ! प्राण तो समस्त जीवमूल कृणाम्य है । हे बगधाय ! अब प्राण प्रमत्त होइये । मैं नित्य ही चरम्य प्राणको ही चरणगति में रहने वाला हूँ । २४। महर्षि जैषिनी ने कहा — हे द्विजपेठो ! इस रीति से ब्रह्मा के द्वारा सस्तवन किये गये भगवान गरुडवज्र, नीलमेघ के समान कान्ति वाले, जल, चक्र आदि के विन्धों से युक्त, पद्मोद्भ (गच्छ) पर समासुद, स्फुरमाण मुग्न कमल वाले, स्फुरित पक्षरों से युक्त बोलने की इच्छा वाले बहो पर आविर्भूत हो गये थे । श्री भगवान ने कहा — हे ब्रह्मन् ! जिसके लिए प्राण मेरा स्तवन कर रहे हैं वह भगवत् ही प्रतीत होता है । यह अनाद्यविद्या परम सुदृढ़ है और कम बन्धनों से द्वारा य* छेदन करने के योग्य नहीं है । उसके होते हुए यह मृत्यु और जन्म कैसे शीघ्र हो सकते हैं ? २५ — २८।

तथाऽपि वेद कृतेष्ववसायस्तवाज्जगत् ।

क्रमेण येन हि भवेत्तत्तं वक्ष्यामि कारणम् । २९।

अहं त्वं त्वमहं ब्रह्मन्मन्मयश्चाखिलज्जागत् ।

रुचिस्ते यत्र मे तत्र नान्ययेतिविचारय । ३०।

सागरस्योत्तारेतीरे महानद्यास्तु दक्षिणे ।

स प्रदेद पृथिव्या हि सर्वंतीर्थफलप्रदः । ३१।

तत्र ये मनुजा ब्रह्मन्निवसन्ति मुबुद्धयः ।

जन्मान्तरकृतानाञ्च पुण्याना फलभागिनः । ३२।

नाऽप्यपुण्या प्रजायन्ते नाऽभवता मयिपवज ।

एकासकाननाद्यावदक्षिणोद्वितीरभूः । ३३।

पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमः क्रमात्परमपावनः ।

सिन्धुतीरे तु यो ब्रह्मन्नाजने नीलपर्वतः । ३४।

पृथिव्या गोपित स्थान तव चाऽऽपि सुदुर्लभम् ।

सुरासुराणां दुर्ज्ञेय माययाऽऽच्छादितं मम । ३५।

हे मनद्य ! तो भी इसके लिए मापका यदि व्यावसाय है तो जिसके द्वारा क्रम से यह हो जावे उस कारण को मैं मापको बताना हूँ । मैं जो हूँ वही तुम हो और जो तुम हो वही मैं हूँ । यह पूर्ण जगत् मन्मथ ही है । जहाँ मापकी रुचि है वही मेरी भी रुचि अवश्य ही है । इसमें अन्यथा कुछ भी नहीं है—इसे विचार नो । इस सागर के उत्तर तीर पर महा नदी के दक्षिण भाग में इस पृथिवी में ही वह प्रदेश विद्यमान है जो समस्त तीर्थों के पुण्य-फल का प्रदान करने वाला है । हे ब्रह्मन् ! वहाँ पर जो मनुष्य सुन्दर बुद्धि वाले निवाम किया करते हैं वे दूसरे जन्मों में किए हुए पुण्यों के फल मागी हुमा करते हैं । हे पद्म ! वहाँ पर मत्स्य पुण्यो वाले उत्पन्न नहीं हुमा करते हैं और जो मुसुमे मविन रखने वाले नहीं हैं वे भी वहाँ उत्तम नहीं होते हैं । एकाम कानन से से लेकर जहाँ तक दक्षिण भागर के तट की भूमि है पद से पद परम श्रेष्ठतम और इसी क्रम से वह परम भावन है । हे ब्रह्मन् ! सिन्धु के तट पर जो नील पर्वत शोभा देता है वह पृथिवी से परम शोविन स्थान है और वह मापको परम दुर्लभ ही है । वह मेरी माया से समाच्छादिन है मतएव सुरसर्पा मसुर सबके द्वारा दुर्ज्ञेय मर्दान् न जानन के योग्य ही है । २६-३१।

सर्वसङ्गपरिस्त्यक्तस्तत्र तिष्ठामि देहभृत् ।
 क्षराक्षरावतिक्रम्य वर्तोऽहं पुण्योत्तमे । ३६।
 सृष्ट्यालयेनमाक्रान्तं क्षेत्रम्मेपुरुषोत्तमम् ।
 यथासां पश्यसिब्रह्मरूपं चक्रादिचिह्नितम् । ३७।
 ईदृशं तत्र नरवेव द्रक्ष्यसे मां पितामह ! ।
 नीलाद्रंस्तरभुवि कल्पन्यशोषमूलतः । ३८।
 वारुण्यां दिशि यत्कुण्डं रोहिणा नाम विश्रुतम् ।
 तत्तीरे निवसन्तं प्रश्यन्तश्चर्मचक्षुषा । ३९।

तदम्भसाक्षीणापापा मम सायुज्यमाप्नुयुः ।
 तत्र ब्रज महाभाग दृष्ट्वा मां घ्यायतस्तव ।६०।
 प्रकाश यास्यते तस्य क्षेत्रस्य महिमाऽपरः ।
 आश्चर्यभूतः परमस्तवाऽपिचमविष्यति ।४१।
 श्रुतिस्मृतीहासपुराणगोपितं

मन्मायया तन्न हि कस्य गोचरम् ।

प्रसादतो मे स्तुवतस्तवाऽधुना ।

प्रकाशमायास्यति सर्वगोचरम् ।४२।

अहनिवासात्लभतेऽत्र सर्वं निःश्रासवासात्खलु
 चाऽऽश्वमेधिकम् ।४३।

इत्यादिश्य विधिं विप्रास्तदाऽसौ पुष्टपोत्तमः ।

पश्यतस्तस्य तत्रैव प्रभुरन्तरधीयत ।४४।

सब प्रकार के सङ्ग से परित्यक्त होकर मैं वहाँ पर देहधारी होकर स्थित रहा करता हूँ। धर और अक्षर को प्रतिफलण करके मैं पुष्टपोत्तम मे वर्त्तमान रहता हूँ। सृष्टि और लय से मेरा वह आकाञ्छ पुष्टपोत्तम क्षेत्र है। हे ब्रह्मन् ! जिस प्रकार से मुझको इस समय मे चक्रादि से विहित रूप आप देख रहे हैं। हे वितामह ! वहाँ पर जाकर भी आप ऐसा ही मुझको देखेंगे। नीलाद्रि के अन्तर भूमि मे बल न्यग्रोध के मूल से वाहणी दिशा में जो एक रोहिण्य इस नाम से विख्यात है ऐसा एक कुण्ड है। उसके तट पर निवास करने वाले मुझको चर्म्यं चम्पु से देखने वाले हैं उनके जल से क्षीण पापी वाले पुरुष मेरे सायुज्य को प्राप्त किया करते हैं। हे महाभाग ! प्राय भी वही पर चले जाइये वहाँ पर मेरा दर्शन प्राप्त करके मेरा ध्यान करते हुए आप प्रकाश को प्राप्त करेंगे। यह उस क्षेत्र की एक अपर महिमा है। वह परम आश्चर्यभूत वहाँ पर आपको भी होगा। समस्त श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणों मे भी परम गोपित है और वह मेरी माया से किसी को भी गोचर नहीं

होता है। मेरे प्रमाद से आपके इस स्तवन करने पर सब आपको वह प्रकाश सर्वगोचर हो जायगा। ३६—४२। अतो मे, तीर्थों में, यज्ञ और दानों में जो विमल आत्मा वालों का पुण्य बताया गया है वह एक दिन निवास करने से यहाँ पर सब प्राप्त होता है। निःश्वास की वास से निश्चय ही अश्वमेध यज्ञ के करने का फल होता है। हे विप्रो ! उस समय में पुरुषोत्तम प्रभु ने इस तरह से ब्रह्माजी को इसका आदेश प्रदान किया था और फिर ब्रह्माजी के देखते २ ही वे प्रभु वहाँ पर अन्तहित हो गये थे। ४३—४४।

२५—रथनिर्माणवर्णन

इत्युक्ते नारदः सोऽथ यथाशास्त्रं विचार्य वै ।
 आलेख्यक्रमतः पत्रे राज्ञे तस्मै स्यवेदयत् ॥१॥
 राज्ञोऽपि पत्रं तच्छ्रुत्वा सोऽवधारय पुनः पुनः ।
 प्रददौ पद्मनिघण्टे लिखिताप्यत्र यानि वै ॥२॥
 सम्पादय पद्मनिघण्टालां स्वर्णमयीं कुव ।
 ब्रह्मणः सदनं दिव्यं ब्रह्मर्षिणाश्च निर्मलम् ॥३॥
 इन्द्रादीनां सुराणां च सिद्धानां मर्त्यवासिनाम् ।
 मूर्तीन्द्वाणां निवासाय राज्ञा पातालवासिनाम् ॥४॥
 तथा च नागराजानां निघे ! अंलोकपवासिनाम् ।
 यथायोग्यात्मनैर्युक्तं गृहगृहमवन्दितः ॥५॥
 कार्याऽऽशु निघे ! द्रव्यसम्भारं यावदेव तु ।
 विश्वकर्माऽपि च तव साहाय्यं रचयिष्यति ॥६॥
 इत्यादिशब्दं स मुनिरिन्द्रयुम्नमुवाच वै ।
 सम्भारामृषगेतांश्च कर्तव्यं व्यवधानतः ॥७॥

महर्षि जैमिनि से कहा—इनका कहने पर वह देवर्षि नारद ने शास्त्र के अनुसार इसके अनन्तर विचार करके आलेख्य के क्रम से पत्र

मे उस राजा से निवेदन किया था उस राजा ने भी पत्र को सुनकर
 और पुनः-पुनः अवधारण करके उसने इसमें जो लिखे हुए थे उनको
 पत्र निधि के लिए दे दिया था । हे पत्रनिधि ! शला का सम्पादन करो
 और उसको स्वर्णमयी कर दो । ब्रह्माजी का परम दिव्य सदन बना दो
 ब्रह्मर्षियों के लिए प्रति निर्मल सदन का निर्माण कर दो । इन्द्रादि देवों
 का, सिद्धों का, मर्त्यलोक में निवास करने वाले मुनीन्द्रों का निवास
 स्थान निर्मित करो तथा पाताल लोक में वास करने वाले राजाओं के
 निवास करने के लिए सदन बना दो । १-४। हे निधि ! उसी भाँति
 त्रैलोक्य में निवास करने वाले नागराजों के लिए सदन का निर्माण
 करो तुम अतन्द्रित होकर यथा योग्य पत्तों से युक्त गृह-गृह निर्मित
 करो । हे निधि ! द्रव्य का सम्पार जितना भी लगे इन सबका निर्माण
 प्रति शीघ्र कर दो । आपके इस कार्य के सम्पादन करने में विश्वकर्मा
 भी सहायता करेंगे । वह मुनि इस प्रकार से आदेश प्रदान करने वाले
 इन्द्रधुम्न से बोले—सम्भारो को व्यञ्जान से यह पृथक् ही करना
 चाहिये । १-७।

स्वर्णैः सुघटित साधुरथ त्रयमलङ्कृतम् ।
 दुकूलरत्नमालाद्यैर्बहुमूर्त्यैर्दण्डं महत् । ५।
 श्रीवासुदेवस्य रथो गरुडध्वजचिह्नितः ।
 पद्मध्वजः सुभद्राया रथमूर्द्धनि धार्यताम् । ६।
 रथः षोडशचक्रस्तु विष्णोः कार्यः प्रयत्नतः ।
 चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश । १०।
 हस्तषोडशविस्तारो रथश्चक्रधरस्य तु ।
 चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश । ११।
 आसनं जगतां भूयः स्वयं स्वासनविग्रहः ।
 यद्याने जगता नाशस्ततो यानं न विद्यते । १२।

पश्येच्चराक्षरं विश्वं ज्ञानादथ सुनिर्मले ।
स्थितो हस्ततले निरयं निर्मलस्तस्यदर्पणः । १३३।
तलस्फटवोदगौ तालः सदा तेनाङ्कितः प्रभुः ।
ततः स एव शेषस्य बलभद्रावतारिणः । १३४।

सुवर्णों से सुषटित अति सुन्दर समलङ्कृत तीन रथ बनाओ जो वृकूल (वक्र) और रत्नों की भाँसा आदि से जो कि बेश कीमती हो उन्हें महान घोर परम मुदह बनाइये । १३३। श्री रामुदेव भगवान का रथ मरुदध्वज के चिह्न से युक्त करो । सुवर्ण के रथ के मस्तक पर पद्म बन बनाओ भगवत् चारणु करो । भगवान विष्णु का रथ सौतह पहिले धाना प्रयत्न पूर्वक बनाता चाहिए । बनराम जी का रथ चौदह पहिले वाला और सुवर्ण के रथ के बारह पहिले बनाने चाहिए । चक्र-धर का रथ सोलह हाथों के विस्तार वाला होना चाहिये । मन के रथ का विस्तार चौदह हाथों का और सुवर्ण के रथ का विस्तार बारह हाथों का होना चाहिये । अपने आसन के विषह वाले स्तय जगलों के पुनः आसन है । उनक यान में जपती का नाम होता है षट्पय यान नहीं है । १२—१२। इस चराक्षर विश्व को ज्ञान से देखो । सुनिर्मल हस्त-तन में उसका निर्मल दर्पण निरय हो स्थित रहता है । तनस्य होने से यह ताल है उसमें महा प्रभु अङ्कित है । इसी से वही बलभद्रावतारी शेष का है । १३—१४।

अथवासीरिणः कार्यसौरमेवध्वजोत्तमम् ।
ध्वजः सुनिर्मलः कार्यस्तस्मात्तालध्वजोमतः । १३५।
न वासितव्यो देवोऽमावप्रतिष्ठे रथे नृप ! ।
प्रासादेमण्डपे वापिपुरेतन्निष्फलं भवेत् । १३६।
तस्मात्प्रतिष्ठा प्रथमं हरेः कार्पायस्य वै ।
सम्भारः क्रियतांस्तस्य ह्यनुष्ठेयामयावुसा । १३७।

इत्याज्ञांमत्पितुर्नन्द्या श्रीमन्मायाम्यहं नृप ! ।
 तस्य तद्वचनंश्रुत्वाघटितस्फन्दनत्रयम् ॥१५॥
 निधिसम्पादितं त्रैश्वरेकाह्लाद्विश्वकर्मात्मा ।
 स्वसं सुचक्रं सुस्तम्भं सुविस्तीर्णं नुनोरणम् ॥१६॥
 सुध्वजं नृपताकं च नानाचित्रमतीहरम् ।
 विचित्रदन्वमिभ्युत्पुत्तलीवलयाग्नितम् ॥ २०॥
 बद्धं हाटकनिर्व्यूटं साक्षाद्रविरथोपमम् ।
 मेघगम्भीरनिर्घोषं दृष्ट्वा कर्पणुणैयुतम् ।
 वातरहोहयंयुक्तं शतसङ्ख्यैः सितप्रभैः ॥२१॥

षड्वा नीरि (बलनद) का सीर ही उत्तम ध्वज करना
 चाहिये । सुनिर्मल ध्वज करना चाहिये । इनलिए ताल ध्वज माने गये
 हैं । हे नृप ! यह देव अप्रतिश्रु रथ में कभी भी निवान इनका नहीं
 करना चाहिये । शानाद भण्डव में षड्वा पुर में जो नहीं करे कर्णिक
 वह निष्कल हो जायगा । १५।१६। इन कारण से सर्वप्रदत्त श्रीरि के
 रथ की प्रणिष्ठा करनी चाहिये । उसका समानर सब तैयार करो । वह
 प्रणिष्ठा भेदे द्वारा ही करनी चाहिये यह शाना भेदे विता की भेदे प्राप्ति
 की है । हे नृप ! मैं शीघ्र ही माया हूँ । उसके इस दवन का ध्वज
 करके तीन ग्यन्दन (रथ) घटित किए गये हैं । १७ — १८। विश्वकर्मा
 के द्वारा एक ही दिन में निधि से सम्पादित द्रव्यों से सुन्दर पक्षों वाता,
 मनोहर पहियों से समन्वित, मन्दे स्तम्भों से युक्त, सुन्दर विहङ्गार
 वाला, सुनोरण, सुध्वज, सुपताक और मनेक प्रकार के चित्रों से मनो-
 हर, विचित्र दन्व वापी पुननिर्घोषों के जोड़ों और वचनों के सहित, षड्
 हाटक (सुवर्ण) से निर्व्यूट सप्तसूर्य के रथ के तुल्य भेज के गम्भीर
 निर्घोष वाले और कर्पणुणों से युक्त देखकर जो वायु के समान वेग
 वाले, अति प्रभा से युक्त सी सतन वाले षड्धों से युक्त थे । १९-२१।

यथाशास्त्रविधानेन नारदेन प्रतिष्ठितम् ।
 सुलग्ने सुमुहूर्त्तं च सुतिथौ ज्योतिषोदिते ।२२।
 भगवन्मिने ! ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि मतो हि नः ।२३।
 विधिना केन हि रथः प्रतिष्ठाप्योहरेरथम् ।
 यथावद्वद नोयेनजानीमोविधिविस्तरम् ।२४।
 यथाप्रतिष्ठितं तेन नारदेन महात्मना ।
 तद्वो यदिष्यामि विधिं यथा दृष्टं पुरा मया ।२५।
 रथस्येशानदिरभागेशालांकृत्वासुशोभनाम् ।
 तन्मध्येमण्डपंकृत्वावेदिनप्रमुनिर्मलाम् ।२६।
 चतुरस्रां चतुर्हस्तमितां हस्तोच्छ्रितां द्विजाः ।
 प्रतिष्ठापूर्वदिवसेरात्रावुत्तरतः शुभे ।२७।
 मुहूर्त्तं स्वस्तिवाच्याऽथ कारयेदङ्कुरार्णम् ।
 द्वात्रिंशद्देवताभ्यश्च बलिदत्त्वायथाविधि ।२८।

नात्र के विधान के अनुसार सुलग्न में, ज्योतिष में कहे हुए
 सुमुहूर्त्त में और सुतिथि में नारद ने प्रतिष्ठा की थी। मुनिगण ने
 कहा:—हे भगवन् ! हे जैमिने ! भगवन् प्रायः हमको बतलाइये क्योंकि
 हम लोग तो आपको सर्वज्ञ ही मानते हैं। यह हरिको रथ किस विधि
 में प्रतिष्ठित करना चाहिये। आप इसको यथाविधि बतलाइये जिससे
 हम लोग इसकी विधि के विस्तार को जान लें। २२।२३।२४। महर्षि
 जैमिनि ने कहा—जिस रीति से उन महात्मा नारद जी ने उसकी
 प्रतिष्ठा की थी उस विधान की मैं आपको बतलाता हूँ जैसा कि मैंने
 पहिले देखा था। रथ के ईशान दिशा के भाग में एक परम शोभन छाला
 का निर्माण करके उसके मध्य भाग में मण्डप की रचना की गई थी
 जिसमें सुनिर्मल वेदी थी। वह वेदी चौकोर थी और चार हाथ विस्तार
 से युक्त एवं हे द्विजगण ! एक हाथ ऊँची थी। प्रतिष्ठा होने के एक दिन
 पूर्व रात्रि में उत्तर की ओर शुभ मुहूर्त्त में स्वस्ति वाचन करके मङ्कुरों

का अर्पण कराता चाहिए । फिर बत्तीम देवों को दयाविधि बलि देनी चाहिए । २२ - २८।

प्रातस्ततो वैदिकायां मध्ये मण्डलमालिखेत् ।
 पद्मं वा स्वस्तिकं वाऽपि कुम्भं तत्र निधापयेत् । २९।
 पञ्चद्रुमकषायं च तन्मध्ये पूरयेत्सुधीः ।
 गङ्गादिपुण्यतोयानि पल्लवान्स समृत्तिजाः । ३०।
 सर्वगन्धान्श्चरत्नवर्षविगणं तथा ।
 पूरयित्वा विधानेन आचार्यः प्राङ्मुखः शुचिः । ३१।
 विष्णुं स्मरन्पञ्चगव्यं पञ्चादपि प्रपूरयेत् ।
 दुकूलवेष्टितकण्ठे माल्यैर्गन्धैः सुरोमनं । ३२।
 फलपल्लवसयुक्तं कृतकौतुकमङ्गलम् ।
 पूरयेत्तत्र देवेश नरसिंहमनामयम् । ३३।
 मन्त्रराजेन विधिवदुपचारैस्तथान्तरै ।
 प्रार्थयित्वाप्रसादाद्यतस्मिन्नावाह्य त हरिम् । ३४।
 बाह्योपचारविविधौ पूजयेद्विधिवद्विजा ।
 वायव्यांतस्यकुम्भस्यसमिदाज्यचहंतथा । ३५।

इसके उपरान्त प्रातःकाल के समय में उस वैदिका में मध्य भाग में मण्डल का आलिखन करे, पद्म, स्वस्तिक अथवा वहाँ पर कुम्भ निधापित करना चाहिए । २९। सुधी पुष्ट्य को चाहिये कि पाँच द्रुमों का कषाय ग्रहण करके उसके मध्य में पूरित कर देवे । गङ्गा आदि के परम पवित्र जल, पल्लव, मृत्तिका, सर्वगन्ध, पञ्चरत्न और सर्वोपधि गण को विधि-विधान से पूरित करके आचार्य को प्राङ्मुख अर्थात् पूर्व दिशा में मुख बाना तथा शुचि होकर वहाँ पर स्थित होना चाहिये । भगवान् श्री विष्णु का स्मरण करते हुए पीछे पञ्चगव्य को पूरित करे । वस्त्र से वेष्टित करे । सुन्दर गन्ध वाले परम शोभन माल्यों से कण्ठ में वेष्टन करे । फल एवं पल्लवों से संपुन, कृत कौतुक मङ्गल वाले देवेश

अनाभय नरसिंह को वहीं पर पूरित करे । विधि पूर्वक मन्त्र राज के द्वारा तथा अन्तर उपचारों से प्रयाद के लिए प्रार्थना करके उन श्रीहरि का उसमें आवाहन करना चाहिए । हे द्विजगण ! विधि के सहित विविध बाह्य उपचारों के द्वारा उनका अर्चन करे । उस कुम्भ के वायव्य दिशा में समिधा, घृत और चरु स्थापित करे । ३०—३५।

अष्टोत्तरसहस्रं च जृहुयाद्विधिवद्गुरुः ।

सम्पातान्प्रापयेत्तत्र कुम्भमध्ये तदन्ततः । ३६।

रथं सुशोभनं कृत्वा पताकागन्धमाल्यकैः ।

सर्वाङ्गसेचयेत्तस्यगन्धचन्दनवारिभिः । ३७।

धूपयेत्कालाग्रहणा शङ्खकाहाननिस्वनैः ।

व्रजे तस्य नृसिंहस्य प्रतिष्ठाप्य समीरणम् । ३८।

पूजयित्वा विधानेन रक्तस्रग्गन्धमाल्यकैः ।

इमं मन्त्रं समुच्चार्य सुपर्णप्रार्थयेत्ततः । ३९।

यो विश्वप्राणहेतुस्तनुरपि च हरेर्यनिकेतुस्वरूपो,

यं सञ्चिन्त्यैव सद्यः स्वयमुरगवधूवर्गगर्भाः पतन्ति ।

चञ्चच्चण्डोरुतुण्डत्रुटितफणिवसारक्तपद्माकितास्यं,

चन्द्रे छन्दोमयं त खगपतिममल स्वर्णवर्णं सुपर्णम् । ४०।

ब्रह्मघोषैः शङ्खनादैर्नानावाद्यमुविस्तरैः ।

रथमूर्ध्नि स्थापयेत्त चारुमुक्तं समुच्चरन् । ४१।

तस्योपरिष्ठात्तं कुम्भं समन्तात्प्लावयद्ययम् ।

धिरुच्चरन्मन्त्रराज सेचयेद्ब्रह्मणा सहः । ४२।

गुरु का वहीं पर नर्तव्य है कि एक सौ अठार बार विधि के सहित हवन करे । वहीं पर उसके अन्त में कुम्भ के मध्य भाग में सम्पातों को प्राप्त करावे । परम शोभा से सुसम्पन्न पताकां सुगन्धित माल्यों से रथ को सुसज्जित करके उसके सम्पूर्ण ब्रह्मा को गन्ध वाले चन्दन के जल से सेवन करना चाहिये । फिर शङ्ख का हान एवं नियो के

सहित कालामुह निमित्त घूम देवें उन भगवान् नृसिंह के ध्वज में वायु को प्रतिष्ठापित करके रक्त, स्रक्, और गन्ध माल्यो से विधिपूर्वक पूजन करके इस निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करके सुपूर्ण देव की प्रायना करे १३६-३६। जो विश्व के प्राणों का कारण सूर्य है और तनु होते हुए भी थी हरि के मान का केतु स्वरूप वायु है - त्रिम मन्त्रिन करके ही तुष्ट ही स्वयं उरग वधुओं के समुदाय के शर्म गिर जाया करते हैं, जो चञ्जर् चण्ड और ऊरु नृसिंह फणियो के वना एवं रक्त के पङ्क से प्रकृत मुख वाले हैं उन क्षत्रिय, स्वर्ण के समान वर्ण वाले, ममन खगो के स्वामी सुण की से वन्दना करता है १४०। ब्रह्म षोषो से, दासो की वनियो से और अनेक भाँति के सुविस्तर दावों से उबड़ो सुन्दर सूक्तों का समुच्चारण करते हुए रथ के मूर्धा पर स्थापित करे । उसके ऊपर उस कुम्भ को चारो ओर से रथ को सम्प्लावित करते हुए वेदों के तीर बार मन्त्ररात्र का उच्चारण करते हुए सेवन करना चाहिये १४१-४२।

ततः पूणहिति दत्त्वा ब्रह्मणेदक्षिणा ददेत् ।
 आचार्येदक्षिणादद्यात् न तुप्यतितद्गुरुः १४३।
 ब्राह्मणान्भोजयेदन्ते पायसं मधुसपिषा ।
 द्वादशाक्षरमन्त्रेण बलमद्रस्य कारयेत् १४४।
 लागलं च परिवरवग्मन्त्रः स्यात्सलान्जलध्वजे ।
 अथवा द्विपङ्कवर्णोपिमूलमन्त्रः प्रकीर्तितः १४५।
 तदमीसूवतेनमद्रायाः प्रतिष्ठाप्योरथस्तथा ।
 नाभिहृदागमुरारेस्त्वं ब्रह्माण्डावलिह्वधृक् १४६।
 आसनं चतुरास्यस्य श्रियो वास ! स्थिरो भव ।
 इमं मन्त्रं समुच्चार्य ध्वजपदमं समुच्छ्रयेत् १४७।
 इयान्विशेषो हविषा त्रयाणां च पृथक्पृथक् ।
 पश्चपश्चभिर्होतव्यमेकैकं तु विभागशः १४८।

इत्थं शयान्प्रतिष्ठाप्यसुवर्णं गांचवत्कम् ।
धान्यचदक्षिणां दद्यात्सग्यन्देवस्य भविततः । १४६।

इसके अनन्तर पूर्णा ह्वनि समर्पित करके ब्राह्मण को दक्षिणा देवे । धान्यादि को दक्षिणा देने के लिए जिससे यह मद्गुरु पूर्णा तथा सन्तुष्ट हो जावे । इस मन्त्र विधान के अन्त में मधु और घृत से सयुक्त पापमात्र के शोध्यों को मोक्त कराना चाहिए । द्वात्रिंश प्रश्नों वाले मन्त्र से चतुस्र का कराना चाहिए । १४३-१४४। लाङ्गल ध्वज में लाङ्गल परिवर्द्धन् मन्त्र होता है अथवा द्विषड्वर्णं धाना भी मूलमन्त्र कीति कृपा गया है । लक्ष्मी मुक्त के द्वारा मद्रा के रथ की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । सुरादि के नात्रि लोको हृद से प्रायः इस ब्राह्मण के अथनि रूप को धारण करने वाले हैं । ह श्री के वास । यह चतुरानन का आसन है इस पर प्रायः स्थिर होवे—इस मन्त्र समुच्चनारण करके ध्वज पत्र की समुच्चिन करे । १४५-१४६। इन तीनों के हवि म पृषक्-पृषक् यह इतना ही विशेष है । एक-एक को विनाय से पाँच-पाँच के द्वारा हवन करना चाहिए । इस रीति से रथों की प्रतिष्ठा करके फिर सुवर्ण, वज्र, गौ, धान्य और दक्षिण । सलो-सोत देव की भक्ति-भावना से देने चाहिये । १४५ - १४६।

एव प्रतिष्ठिते तत्र स्थन्दनेऽथ सुभूषिते ।
आरोप्य देव विधिवद्ब्रह्मपापपुरः सरम् । १४७।
जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यपुरः सरं ।
चामरान्दोलनैर्धूपः पुष्पवृष्टिभिरेव च । १४८।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्नीयते स्म रथं प्रति ।
हृद्यैः सुलक्षणैर्दानैर्बलीवर्दैरग्राणि वा । १४९।
पुरुषैर्विष्णुभवनैर्वा नेतव्या ह्यप्रमादतः ।
प्रीणयित्वा जनं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिलेपनैः । १५०।

रथस्योपरि देवेभ्यो बलिमन्त्रेणभोद्विजाः ।
 बलिगृह्णन्तुभोदेवाभादित्यावसवस्तथा ॥५४॥
 मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ।
 मसुरायानुधानाश्च रथस्थाश्चैव देवताः ५५॥
 दिक्पाला लोकपालाश्चयेचविघ्नविनायकाः ।
 जगतः स्वस्तिकुर्वन्तुदिवतामहर्षयस्तथा ॥५६॥

इस भाँति वहाँ पर सुभतिष्ठित रथ में जो मन्त्री तरह में भूषित
 किया गया हो देव को विधि पूर्वक ब्रह्म घोष के (वेद ध्वनि के) उसमें
 समारोहित करना चाहिए जब मङ्गल घोषों से, अनेक भाँति के वाद्यों
 से, चमरों के घान्दोलनों से, धूप दानों से और पुष्पों की वृष्टियों से
 वह रथ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के द्वारा ले जाया जाता है अच्छे
 लक्ष्णों वाले मन्त्रों, दमनशील बली वदों के द्वारा भी उस रथ का
 वहन किया जाता है । या विष्णु के परमभक्त जनों के द्वारा बिना
 प्रमाद के वे रथ वहन कर ले जाने चाहिए । मद्य भोजन और लेपन
 प्रादि के द्वारा सब जनों को प्रसन्न करके रथ के ऊपर ही द्विजगण !
 बलि के मन्त्र के द्वारा देवों को बलि देवे । हे देवगणो ! प्रादित्यो !
 वसुगणो ! हे मरुद्गणो ! हे अश्विनीकुमारो ! रुद्रगणो ! सुपर्णो !
 पन्नग गणो ! ग्रह गणो ! मसुरो ! यातुधानो ! और रथ में स्थित
 देवताभो ! दिक्पालो ! लोकपालो ! विघ्न विनायको ! दिव्य महर्षि
 गणो ! प्राय सब लोग इस जगत् का स्वास्ति (कल्याण), करिये ।
 ॥५०-५६॥

अविघ्नमाचरन्त्वेतेमा सन्तु परिपन्थिनः ।
 सौम्या भवन्तुतृप्ताश्चदैत्याभूतगणास्तथा ॥५७॥
 ततस्तु नीयते देवः समभूमौ समुच्चरन् ।
 मन्त्रं वैष्णवगायत्री विष्णोः सूक्तं पवित्रकम् ॥५८॥

वामदेव्यैः पवित्रैश्च मानस्तोक्ये रथस्तरैः ।
 ततः पुण्याहघोषेणकृतवादित्रनिः स्वनम् ।२६।
 क्षतैः शनैरथो नेयो रथःस्नेहात्तचक्षिणः ।
 तत्रोत्पातान्प्रवक्ष्यामिरथेऽत्रद्विजसत्तमाः । १६०।
 ईषामङ्ग द्विजभयं भग्नेऽग्ने क्षत्रियक्षयः ।
 तुलामङ्गे वैश्यनाशः शम्या सूद्रभयं भवेत् ।६१।
 घुरामङ्गे त्वनावृष्टिः पीठमङ्गे प्रजाभयम् ।
 परचक्रागमं विशाचक्रमङ्गे रथस्य तु ।६२।
 ध्वजस्य पत्तने विप्रा नृपोऽथो जायतेध्रुवम् ।
 प्रतिमामङ्गनायांतुराज्ञोमरणमादिशेत् ।६३।

हे विप्रो ! पथ्यंस्त रथ मे मे परिपन्थी गण स्रज भक्षिर्भो को
 करें और सीम्य हो जावे । सगस्त वैश्यमण धीर भुतगण वृत्त ही
 जावे । इसके उपरान्त ममतज भूमि मे देव को लाया जाता है । मन्त्र,
 वेष्णुव त्रयन्त्री, पवित्र वैष्णुव मूक्त, पवित्र वाम देव्यों, मानस्तोकों,
 रथन्तरों से और इसके उपरान्त पुण्याह घोष के द्वारा वादियों के
 निःस्वन पूर्वक मधवान् चक्री के रथ को स्नेह से धीरे-धीरे ले जाना
 चाहिए । हे द्विज सत्तमो ! यहाँ रथ पर जो चरपात होते हैं उनको
 में वतनाता है । ईषा के भङ्ग हो जाने पर द्विजों को भय होता है,
 मक्ष के भङ्ग होने पर क्षत्रियों को भय होता है । तुला के भग्न होने
 पर वैश्यो का भय होता है, शमी के भङ्ग होने पर सूद्रो को भय
 होता है । रथ के घुरा के भङ्ग हो जाने पर भनावृष्टि होती है । पीठ
 के भग्न होने पर प्रजा को भय होता है । रथ के भंग होने पर परचक्रा-
 गम जानना चाहिए । हे विप्रो ! ध्वज के चक्र के पतन होने पर निदचय
 ही शन्य नृप हुमा करता है । प्रतिमा के भग्न होने पर राजा का मरण
 हुमा करता है ॥५७ ६३॥

पर्यंस्ते तु रथे विप्राः सर्वजानपदक्षयः ।
 उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्वशुभेषु च ।६४।
 बलिकर्म पुनः कुर्याच्चिद्वान्तिहोमं तथैवच ।
 ब्राह्मणान्भोजयेद्भूयो दद्याद्वाशान्तिचैवहि ।६५।
 पूर्वोत्तरे च दिग्भागे रथस्याऽग्निं प्रकल्पयेत् ।
 समिद्धिघृतमन्वाज्यमूलाग्राभिश्च होमयेत् ।६६।
 पालाशाभिद्विजथ्रेष्ठे मन्त्रराजेन दीक्षितः ।
 सोमायाऽग्नयेप्रजाम्य प्रजानां पतये तथा ।६७।
 ग्रहेभ्यश्च ब्रह्मणे च दिक्पालेभ्यस्तदस्ततः ।
 यत्र यत्र रथे दोषास्तत्र तत्र चदीक्षितः ।६८।
 जुहुयात्प्रतिष्ठामन्त्रेण विशेषः सर्वतो भवेत् ।
 ब्राह्मणै सहितः कुर्याद्ब्रामान्ते शान्तिवाचनम् ।६९।
 स्वस्ति भवतु विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञेऽस्तु नित्यशः ।
 गोभ्यः स्वस्ति प्रजाम्यस्तु भगतः शान्तिरस्तु वै ।७०।
 स्वस्त्यस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे ।
 श प्रजाम्यस्तथैवाऽस्तु स तथाऽऽत्मनि चास्तु नः ।७१।
 शान्तिरस्तु च देवस्य भूर्भुवः स्वः शिवं तथा ।
 शान्तिरस्तु शिव चाऽस्तु सर्वतः स्वस्तिरस्तु नः ।७२।
 त्वं देव ! जगतः स्रष्टापोष्टाचैव त्वमेव हि ।
 प्रजाः पालय देवेश ! शान्तिकुरु जगत्पते ।७३।
 यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य च भूपते ! ।
 दुष्टान्ग्रहास्तु विज्ञायग्रहशान्तिं समाचरेत् ।७४।

हे विप्रगणो ! मनुष्यों के उत्पन्न होने पर तथा इस तरह के
 उत्पातों के होने पर दर्यंस्त रथ में सम्पूर्ण जनपदों का क्षय हुआ
 करता है । अतएव पुनः बलि कर्म करना चाहिए तथा उसी भाँति
 शान्ति होम करे । फिर ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिये तथा

मन्त्री का दान करना चाहिए । रथ के पूर्वोत्तर दिग्भाग में अग्नि की प्रकल्पना करे । घृत, मधु और समिधाभो से होम करना चाहिए । १५।६५।६६ हे द्विज श्रेष्ठो ! मन्त्र राज की दीक्षा से सयुक्त होकर पलाश की समिधाओं से सोम के लिए—अग्नि, प्रजावन, प्रजाघो के पति, अहगण, ब्रह्मा और दिक्पालों के लिए उसके अन्न में जहाँ-जहाँ पर रथ में दोष हों वही पर दीक्षित होकर प्रतिष्ठा मन्त्र से हवन करना चाहिए । सभी घोर विशेष होता है । ब्राह्मणों के सहित होकर होम के अन्त में शान्ति वाचन करना चाहिये १६।७।६८।६९। विप्रों का वत्सलाग्ण होवे और नित्य ही राजा का मंगल होवे, गौत्रो का तथा प्रजा का वत्सलाग्ण हो एवं सम्पूर्ण जगत् को शान्ति प्राप्त होवे । ७०। द्विपदो मे नित्य ही शान्ति होवे तथा चतुष्पादो में शान्ति हो उषी शान्ति प्रजाप्रो को मंगल होवे और हमारी आत्मा में शान्ति होवे । देव को शान्ति होवे तथा भूमिः स्व. शिव हो । शान्ति हो और शिव हो । हमारा मभी घोर मंगल होवे । ७१।७२। हे देवेश्वर ! आप ही इस जगत् के लक्ष्मण-पौष्टा हैं ! हे देव ! आप इस प्रजा का पालन करें । हे जगत्पते ! आप शान्ति करें । हे भूगते ! जहाँ पर अक्षरण सूत पुरुष के दृष्टमह हों उन्हें जानकर शहशान्ति का समाचरण करें । ७३।७४।

२.-रथयात्रामहोत्सवविधिकथन

अतः ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि महावेदी महोत्सवम् ।
 अज्ञानतिमिरान्धोर्षि येन सा स्वल्पदक्षजेत् । १।
 वैशाखस्याऽमले पक्षे तृतीयापापनाशिनी ।
 स्वयमाविष्कृता चैषा प्राजापत्यर्क्षसंयुता । २।
 तस्यां संकल्प्य नृपतिरानापरिवरपेच्छुचिः ।
 एकं त्रीनथ तक्षाणां दृष्टकर्माणांमादरात् । ३।
 वृषुमाह्वनया गायत्र्या लङ्करणादिभिः ।
 तक्षाणां सार्द्धं वनं गत्वा साधुवृक्षगणकुलम् । ४।

तन्मध्ये वह्निमाधायमन्त्रराजेनमन्त्रशित् ।
 अष्टोत्तरशतंहुत्वासम्पाताज्यविमिश्रितम् ।५।
 आज्यं तरूणां मूलेनुप्रत्येकमभिधारयेत् ।
 दिक्पालेभ्योबलिदत्त्वाक्षेत्रपालपशूस्तथा ।६।
 वनस्पतये जुहुयात्क्षीरोदनशताहुतिम् ।
 ततः परशुमादाय वृक्षमूलेषु दिक्षु वै ।७।

श्री जैमिनि महर्षि ने कहा—इसके भागे में महावेदों के महोत्सव का वर्णन करता है जिससे अज्ञान के तिमिर से भन्धा भी पुरुष भास्कर के पद को प्राप्त कर लिया करता है। वैशाख मास के प्रथम (शुक्ल) पक्ष में तृतीया तिथि पापों के नाश करने वाली हुमा करनी है। यह प्राजापत्य नक्षत्र से सयुक्त स्वयं ही प्राविष्कृत हुई है। उसमें सङ्कल्प करके राजा आचार्य का वरण करे और परम शुचि होकर एक तीन तक्षामो का भी वरण करे जिनका कि काम पहिले देल लिया गया हो। बहुत ही मोदर के साथ वनयाग के लिए धन्न तथा मलङ्कार आदि से इनका वरण करना चाहिए। बहुत अच्छे वृक्षों के गण से सकुल वन में तक्षामो के साथ गमन करे। उनके मध्य में मन्त्रवेत्ता को मन्त्रराज के द्वारा वह्नि का आधान करना चाहिए। वहाँ पर सम्पाताज्य से विमिश्रित आज्य की एक सौ आठ बार आहुतियाँ देवे। तक्षामो के मूल में प्रत्येक को अभिधारण करे। दिक्पालों को बलि समर्पित करके तथा क्षेत्रपाल पशुओं को बलि देकर एक सौ आहुतियाँ क्षीरोदन की वनस्पति के लिये देवे। इसके अनन्तर वृक्षमूलों की दिक्षामो में परशु ग्रहण करके गमन करना चाहिए ।१-७।

आज्यसंस्कृतिदेशेषु आचार्यो मन्त्रमुच्चरन् ।
 किञ्चित्किञ्चिच्छेदयेद्द्वै चिन्तयन्गरुडध्वजम् ।८।
 नदरसु तूर्यघोषेषु गीतमङ्गलवादिषु ।
 नियोज्य वद्विकि तत्र आचार्यः स्वगृहं व्रजेत् ।९।

अथवास्थानलब्धानिदारुणिरथकर्मणि ।
 उक्तसंस्कारविधिनासंस्कृत्यत्कल्पितेऽनले ॥१०॥
 आरभेत रथं कृत्वा विघ्नराजमहोत्सवम् ।
 षोडशारैः षोडशभिश्चक्रैर्लोहमयैर्दंडैः ॥११॥
 युक्तं विष्णो रथं कुर्याद्दृढार्क्षं दृढकूबरम् ।
 विचित्रघटनाकक्षपुत्तलीपरिवेष्टितम् ॥१२॥
 नानाविचित्रबहुलमिक्षुखण्डविराजितम् ।
 चतुस्तोरणसयुक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१३॥
 नानाविचित्रबहुल हेमपट्टविराजितम् ।
 द्वाविंशतिकरोच्छायं पताकाभिरलङ्कृतम् ॥१४॥

याचाय्यं घर को प्राज्य से सङ्कति सम्पन्न देशों में मन्त्र का उच्चारण करते हुए भगवान् गरुडध्वज की चिन्ता करते हुए कुछ-कुछ छेदन करना चाहिए । १०। तूर्यों की ध्वनियों के बजने पर गीत मंगलों के होने पर वहाँ पर दंड कि वो नियुक्त करके याचाय्यं घर को अपने घर पर चले जाना चाहिए । ११। प्रथवा रथ के कर्म में स्थान में प्राप्त काष्ठों का उक्त संस्कार विधि से कल्पित अनल में संस्कार करे । रथ को बना कर विघ्न राज के महोत्सव का समारम्भ करना चाहिए । सोलह धराभों वाले लोहमय अक्षुःख मुट्ट सोलह चक्रों (पहिए) वाले दृढार्क्ष और मुट्ट कूबर रथ भगवान् का बनवावे । वह रथ विचित्र घटना कक्ष और पुत्तनिकाओं से परिवेष्टित होना चाहिए । वह अनेक प्रकार की विचित्र बाहुल्यों से समन्वित तथा इक्षु खण्ड से शोभित होवे । चार तरंगों वाला, चार द्वारों से युक्त, पर्यन्त शोभन, नाना अद्भुत अस्तुओं की बहुलता से समुत्, हम पहले विराजित बनवाने यह रथ बत्तीस हाथ के चाई वाला और पताकाओं से समलङ्कृत हो नाचाय्ये

गारुडं च ध्वजं कुर्याद्वक्त्रचन्दननिमित्तम् ।
 दीर्घनासस्थूलदेहंकुण्डलाभ्याविभूषितम् ॥१५॥
 चञ्चलप्रदष्टभुजगसर्वालङ्कारभूषितम् ।
 वितत्य पक्षतीव्योम्निउड्डीयस्तमिवोदितम् ॥१६॥
 दैत्यदानवसङ्घस्य बलदर्पविनाशनम् ।
 सर्वाङ्गं तस्य कनकैराच्छाद्य परिशीभयेत् ॥१७॥
 रथमेव हरेः कुर्यात्स्वासनं सुपरिष्कृतम् ।
 चतुर्दशरथाङ्गैस्त रथं कुर्याच्च सीरिणः ॥१८॥
 चक्रैर्द्वादशभिः कुर्यात्सुभद्रायारथोत्तमम् ।
 सप्तच्छदमयं कुर्यात्सीरिणोलाङ्गलध्वजम् ॥१९॥
 देव्याः पद्मध्वज कुर्यात्पद्मकाष्ठनिर्मितम् ।
 विरचय रथाग्राजाप्रतिष्ठां पूर्ववच्चरेत् ॥२०॥
 यथामन्त्र यथाशास्त्रविश्वसेद्ब्राह्मणेषु च ।
 ब्राह्मणाजगदीशस्यजङ्गमास्तनवः स्मृताः ॥२१॥

रक्त चन्दन से निमित्त गारुड ध्वज करे, दीर्घ नासा वाले, स्थूल देह वाला और कुण्डलो से विभूषित होना चाहिए ॥१५॥ यह गारुड ऐसा बनावे जो अपने पखों को फैला कर आकाश में उड़ान भरता हुआ सा प्रतीत होता हो । पक्षों और दानवों के सङ्घ के बड के दर्प की निनष्ट कर देने वाले उसके सर्वांग को सुवर्ण से समाच्छादित करके परिशीमित करे । जिसका धपना आसन सुपरिष्कृत हो ऐसा ही श्री हरि के रथ का निर्माण करावे । बलभद्र जी के रथ को चौदह रथोंको से युक्त निमित्त कराना चाहिए । सुभद्रा देवी के रथ को बारह चक्रों (पहियों) से युक्त बनवाना चाहिए । सीरी के लाङ्गल ध्वज को सप्त छदमय बनवावे । देवी सुभद्रा के पद्म ध्वज को पद्म के काष्ठ से निर्मित कराना चाहिए । इस तरह से इन तीनों रथों की विशेष रूप से रचना कराकर राजा का कर्त्तव्य है कि पूर्व की ही भाँति इनकी प्रतिष्ठा करावें । मन्त्रों और

साओ के ही अनुसार बाह्यो में विश्वास करे । ये व ह्यए भगवान् जगदीश्वर के साजान् जगम शरीर ही बनलाये गये हैं ।।६।१७।१८।
।१९।२०।२१।

इत्थं सुघटितं चक्रिन्नयं देवत्रयस्यै ।
आपाडस्य सिते पक्षे दिने विष्णोः शुभप्रदे ।२२।
प्रतिष्ठाप्य समृद्धेनविधिनापूर्वंवद्विजाः ।
रक्षणीयंतयातत्र नाऽऽरीहेत्कश्चनाऽभुः ।२३।
पक्षी वा मानुषो वाऽपि मार्जारनकुलादयः ।
ततो दिनत्रयार्वाग्रथानामुत्तरे कृते ।२४।
मण्डपे उत्सवाङ्गे वाप्रकुर्यादङ्कुरार्पणम् ।
अङ्कुरेष्वथ जातेषु शान्तिं कुर्यात्पुरोदिताम् ।२५।
रथामुसंस्कृताकार्यामहावेदोत्थाव्रजेत् ।
पाश्वर्योर्मण्डलंकुर्यात्पश्चिगुल्मादिभिः फलैः ।२६।
सुमनः स्तवकैर्मर्त्यैर्दुक्कलैश्चामरैस्तथा ।
यथा सुपुष्पिताऽरण्यराजो तत्र विराजते ।२७।
भूमिः समा च कार्या वै निष्पङ्क्ता सुखचारणा ।
निर्मला च सुगन्धा च सुदूराद्वजितोरकरा ।२८।

इम रीनि से अली मीति निमित्त कराये गए तीन देवों के तीन रथ जब तयार हो जावें तो आपाड मास के सित पक्ष में भगवान् विष्णु के शुभ प्रद दिन में हे द्विजो ! पूर्व की ही मीति समृद्ध विधि से प्रतीष्ठा करके वहाँ पर पूरी भावधानी से रक्षा करनी चाहिए उन पर कोई पशुम ममारोहण न करे । चाहे वह कोई पक्षी हो, मनुष्य हो, मार्जार हो प्रथवा न कुल प्रभृति कोई भी हो । इसके पश्चात् तीन दिन पहिले ही रथों के उत्तर में किए हुए मण्डप में प्रथवा उत्सवांग मे अङ्कुरार्पण करें । इसके अनन्तर श्रद्धभुत होने पर पहिले वर्णित शान्ति करनी चाहिए । रथों को सुन्दर संस्कार से युक्त करे फिर महावेदो पर गमन

करे । दोनों पार्श्व भागों में मण्डल की रचना करे । मार्ग में गुल्मादि से, फलों में, पुष्पों के गुच्छों से, मालाओं से, वस्त्रों से तथा चामरो से ऐसा बना देवे जैसे कोई सुन्दर पुष्पों से युक्त वन की राजि ही वहाँ विराजमान होवे । वहाँ की भूमि समतल, पङ्क से रहित और सुख पूर्वक सचरण करने वाली बना देनी चाहिए जो एकदम निर्मल, सुन्दर गन्ध से युक्त और दूर तक धूँडे-ककंट से पूर्णतया रहित होवे । २२। २३। २४। २५। २६। २७। २८।

धूपपात्राण्यनुपदं दिशांभोदकराणि च ।
 चन्दनाभ्रमः परिक्षेपो यन्त्रपातोत्करस्तथा । २९।
 बहूनि ऋतुपुष्पाणि पुष्पवृष्ट्यर्थमेव हि ।
 नटनर्त्तकमुख्याश्च गायना बहवस्तथा । ३०।
 बहवो बहुधा तत्र पताकाश्चित्रितान्तराः ।
 ध्वजाश्च बहवस्तत्र स्वर्णराजतनिर्मिताः । ३१।
 वैजयन्त्रयो बहुविधाभूमिगावाहनास्तथा ।
 हस्तिनश्चहयाश्चैवसुसन्नदाः स्वलङ्कृताः । ३२।
 एव सम्भूतसम्भारः क्षितिपालः शुचिदतः ।
 मुदा भक्त्या च परया यक्तः कुर्यान्महोत्सवम् । ३३।
 आपादस्य सिते पक्षे द्वितीयापुण्यसयुता ।
 अरुणोदयवेलाया तस्या देवं प्रपूजयेत् । ३३।
 ब्राह्मणैर्वेपथैः साद्धं यतिभिश्च तपस्विभिः ।
 विज्ञापयेद्देवदेव्यात्रायैसकृताञ्जलिः । ३५।

दिशांभो में आभोद देने वाले धूप पात्र अनुरद रहे चन्दन के जल का परिक्षेप ही और यन्त्रपात का उत्कर भी होवे । पुष्पों की वर्षा करने के लिए बहुत अधिक मात्रा में ऋतु पुष्प रहने चाहिए । नट तथा नृत्य करने वाले प्रभु सज्जन और बहुत से गायन करने वाले जन भी वहाँ पर रहे । रूप लावण्य तथा धनसूत्रों से विभूषित एवं

यौवन के गर्व से समन्वित वेदियाँ भी उस उत्सव में रहें । अनेक प्रकार के वाद्य जैसे मृदंग, पणव, भेरी और ढक्का आदि वहाँ हों । जिनके अन्तर विभिन्न हों ऐसी बहुत प्रकार की बहुत सी पताकाएँ होनी चाहिए । सुवर्ण और रजत (चाँदी) से निर्मित की हुई वहाँ पर अविना संख्या में ध्वजाएँ हों । बीजयन्ती हो और अनेक तरह के भूमि में पतन करने वाले वाहन भी वहाँ पर रहने चाहिए । हाथी और अश्व सुमन्य एवं मत्तौ भक्ति मलङ्कृत हों । इस प्रकार से सम्भूत सम्भार वाले तथा शुचि व्रत से संयुक्त राजा को बड़ी ही प्रसन्नता और पराभक्ति साथ इन महोत्सव को करना चाहिए । प्रापाढ मास के शुक्लपक्ष में जब द्वितीया तिथि पुष्प नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन महोत्सव की वेना में उसमें देव की प्रकृष्ट रूप से पूजा करे । ब्राह्मण, वैष्णवजन, पति वर्ग और सपस्वियों के साथ संस्काञ्जलि होकर गाथा के लिए देवों के भी देव प्रभु की सेवा में विज्ञापित करे । २६। ३०।३१।३२।३३।३४।३५।

२७—भगवताः शयनोत्सवविधिवर्णन

अतः परम्प्रवक्ष्यामिशयनोत्सवमुत्तमम् ।
 क्ष पाढोमर्वाधि कृत्वा हरेः स्वापस्तुककंटे । १।
 वार्षि कांश्चतुरो मासान्यावत्स्यात्कार्तिकी द्विजाः ! ।
 अथ पुण्यतमः कालो हरेराराधनम्प्रति । २।
 काश्यां बहुयुगं वासान्नियमवतसस्थितेः ।
 फल यदुक्तं तद्विद्यात्क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे । ३।
 चातुर्मास्यदिनैकेन वसतः सन्निधौः हरेः ।
 वापिकाणाञ्चतुर्णां तु यान्यहानिवसन्नयेत् । ४।
 पुण्यक्षेत्रे जगन्नाथसन्निधौ निर्मलान्तरे ।
 प्रत्यक्षं वाजिमेघस्य सहस्रम्पलभेत्फलम् । ५।

स्नात्वा सिन्धुजले पुण्ये दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।

चातुर्मास्यव्रतेतिष्ठन्नशोचतिकुतञ्चन ॥६॥

चातुर्मास्ते निवसति क्षेत्रेश्रीपुरुषोत्तमे ।

साक्षाद्दृष्टिर्भगवतस्तद्वयं मुक्तिसाधनम् ॥७॥

महर्षि जैमिनि ने कहा—इससे आगे मैं भगवान का अत्युत्तम श्रमणोत्सव का वर्णन करूँगा । आषाढी ऋषधि को करके ककंट में श्रीहरि का स्वाय होता है । हे द्विजगण ! ये वर्ष में चार मास होते हैं और जब तक कार्तिकी होदी है तब तक ये मास हुमा करते हैं । यह भगवान श्रीहरि की आराधना करने का परम पुण्यत काल हुमा करता है । १।२। निचमो और व्रतों की संस्थिति वाले पुरुष को काशी पुरी में बहुत युग पर्यन्त निवास से जो पुण्य फल होना है और बताया गया है वह इस श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र के निवास करने जानना चाहिये । चातुर्मास्य के एक ही दिन तक श्रीहरि की सन्निधि में निवास करने वाले को वार्षिक चार म सो के जितने दिन होते हैं उनमें वास करते हुए बिताते चाहिए । इस निर्मल अन्तर वाले परम पुण्य क्षेत्र में श्री जगन्नाथजी की सन्निधि में निवास करने वाले पुरुष को प्रत्यक्ष एक सहस्र पश्वमेव यज्ञो का पुण्य-फल प्राप्त हुमा करता है । सिन्धु के जल में स्नान करके जो परम पुण्य पूर्ण है और श्री पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन करके जो चातुर्मास्य के व्रत में स्थित रहता है वह कही भी शोक से युक्त नहीं हुमा करता है । जो चातुर्मास्य में श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास किया करता है उस पर भगवान का साक्षाद् दृष्टि होती है और वह मुक्ति का परम साधन होता है । ३—७।

तस्मात्सर्वाणि सन्त्यज्य श्रौतस्मार्त्तानि मानवः ।

प्रयत्नान्निवसेत्पुण्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥८॥

भोगिमोगासने सुमश्चातुमस्येषु वै प्रभुः ।

सर्वक्षेत्रेषुसात्निष्यन्करोति जगद्गुरुः ॥९॥

सत्र साक्षान्निकसति यथा वैकुण्ठवेश्मनि ।
 द्वादशास्त्रपि मासेषु भगवानत्र मूर्तिमान् ।१०।
 मुक्तिदम्बस्रुपा दृष्टश्चातुर्मास्ये विशेषतः ।
 अष्टमासनिवासेन दृष्ट्वा विष्णुं दिने दिने ।११।
 यदाप्नोति फलं तद्धि चातुर्मास्यदिनकृतः ।
 चातुर्मास्यनिकासेन सर्वे श्रीपुरुषोत्तमे ।१२।
 दिनं दिनं महापुण्यं सर्वक्षेत्रनिवासजम् ।
 फलं ददाति भगवान्क्षेत्रे वर्षनिवासित् ।१३।
 सर्वपापप्रसक्तोऽपि सर्वाऽऽचारव्युतोऽपि च ।
 सर्वधर्मबहिर्भूतो निवसेत्पुरुषोत्तमे ।१४।
 चातुर्मास्यमर्षक यः कुपयति पापकृत्तरः ।
 विहाय सर्वपापानि बहिरगतश्च निर्मलः ।
 नरोत्तमप्रसादेन वैकुण्ठनिवनं ज्ञेयम् ।१५।

इसलिये भगवत् श्रौत और स्थायी साधनों का परिचय करके
 मनुष्य को चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक परम पुण्यमय श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र
 में ही बाहर जाने कल्पार्थ प्राप्त करने के लिए निवास करे । साधु की
 खटा पर चतुर्विंशो में प्रयत्न करने वाले प्रभु उगन् गुह प्रत्य भगवत्
 क्षेत्रों में नात्रिण्य नहीं किय करते हैं । यही एक स्वतः ऐसा है जहाँ
 पर वैकुण्ठ के घर की भाँति वे मासात् निवास किया करते हैं यहाँ
 वर्ष के बारहो मासों में भगवान् मूर्तिमान् निवास किया करते हैं और
 अपने क्षेत्रों में दर्शन करने वाले को मुक्ति प्रदान करने वाले होते हैं
 और चातुर्मास्य में विशेष रूप से कृपा किया करते हैं । अन्य वर्ष के
 बाँठ मासों में प्रतिदिन विष्णु के दर्शन करने से भी फल प्राप्त होता है
 वह चातुर्मास्य के क्षेत्र एक ही दिन में दर्शन करने से हुआ करता
 है । श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में चातुर्मास्य के निवास से दिन-दिन में समस्त
 क्षेत्र से निवास से समुत्पन्न महा पुण्य हुआ करता है । वर्ष भर निवास

से क्षेत्र में भगवान फल देते हैं । जब पानी से प्रमत्त भी, समस्त पाचार से च्युत भी सब घन्नों से बहिर्भूत भी जो मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र में एक चातुर्मास्य में पापकारी निवास करता है वह सब पापों को त्याग कर बाहिर भीतर से निर्मल होता हुआ नरनिह के प्रसाद से वैकुण्ठ भवन में गमन किया करना है । १२—१५।

तस्मान्नरः सर्वभावंविष्णोः शयनभावितान् ।
 वापिकाश्वतुरोमासान्निवसेत्पुरुषोत्तमे । १६।
 कुर्यादन्यत्र वा कुर्याज्जन्मसाफल्यमृच्छति । १७।
 लापाटशुक्लीकादस्यां कुर्यात्त्रापमहोत्तवम् ।
 मण्डप रचयेत्तत्र शयनागारमुत्तमम् । १८।
 देवस्य पुरतः शय्यारत्नरत्यङ्घ्रिकोपरि ।
 स्वास्तोर्य सोपधानातु मृद्बुबोनीत्त रच्छदाम् । १९।
 कूर्परघूलिविक्षिप्तासाधुचन्द्रातपाशुभाम् ।
 सर्वतोवेष्टिनाद्धिद्वरहिनां चन्द्रनोक्षिताम् । २०।
 साधुद्वारा समां स्निग्धां नानाचित्रोपशोभिताम् ।
 एक स्वापगृहं कृत्वा निशीथे प्रतिमात्रयम् । २१।
 एह्य हि शयनागार सुखमत्र स्वप प्रभो ! ।
 इति सम्प्रार्थ्यं देवेशं स्वापयेत्पुरुषोत्तमम् । २२।
 सुदृढबन्धनेद्द्वारं विष्णोः शयनवेश्मनः ।
 स्वापयित्वाजगन्नायं लभते सुखमुत्तमम् । २३।
 वापिकाश्वतुरोमासान्प्रसुप्ते वै जनार्दने ।
 त्रैतरेकेनियमोर्मासान्वे चतुरः क्षिपेत् । २४।

इसलिए मनुष्य को सब प्रकार के पापों से मन विष्णु के शयन से आविष्ट वापिक चार मास तक उक्त श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास करना चाहिए । अन्य कुछ करे भयवा न करे यदि मानव-जीवन की

सफलता चाहती है तो यह व्यवस्था ही करना चाहिए । १९-१७। आषाढ शुक्ल पक्ष की एकादशी में इस स्वायम्भुव के महोत्सव को करे । वहाँ पर मंडा की रचना करे और उदाय नयनगार की रचना भी करनी चाहिए । देव के भागे एक रहन निमित्त पत्यङ्गिका के ऊपर शय्या रखे । उस पर सुन्दर आस्तरण बिछाकर उपधान रखे और अत्यन्त मृदु नारोक, उत्तरच्छद रखे । वह शय्या कपूर की धूलि से निक्षिप्त करे तथा माधु चन्दातप वाली बनावे । मध और से, वैशिन और छिद्रों से रहित एवं चन्दन से उलित करे । उस शय्या में एक बहुत मच्छा द्वार बनावे । शय्या घन, सिन्धु और मनेक चिबों से उपशोषित निमित्त करावे । ऐसा एक स्वायम्भुव बकाकर निशीय में (मर्ध रात्रि में) तीनों प्रतिभाषी का शयन कराना चाहिए । वहाँ पर प्रायचना करे - हे प्रभो ! इत शयनभार में शाय पक्षार्णु कीबिदे और वहाँ पर शाय मुखपूर्वक शयन कीजिए । इस तरह से मच्छी तरह प्रायचना करके देवेश श्रीगुरुभक्तम प्रभु को वहाँ पर शयन करावे । वहाँ के द्वार को सुहृदता से बन्धित कर देने जिससे कि भगवान विष्णु का शयन वेदम (गृह) हो । इस प्रकारसे भगवान जगन्नाथ को मुनाकर परमोत्तम सुव को मनुष्य प्राप्त किया करता है वर्ष में चार मास पर्यन्त भगवान जगद्गुरु के प्रभुस ही जाने पर अनेक नियमों तथा व्रतों के द्वारा वही पर चार मासों को स्थनीत करना चाहिये १९-२४।

कल्पस्थायीविष्णुलोके नरो मक्तो भवेद्भ्रुवम् ।
नियमवतानि गदनः शृणुष्वमुनयो गम ॥२५॥
पञ्चस्रष्ट्वादिशयनं वज्रयेभक्तिमाधरः ।
अनुत्ती न व्रजेद्भाय्या मासं मधु परीदेनम् ॥२६॥
राजगोपमतीस्त्रयस्त्वा नाऽऽरोहेत्तर्मपादुके ।
वापिकांश्रतुरो मासान् व्रतेन नृषेद्यदि ॥२७॥

जो ऐना करता है वह ननुष्य विष्णु लोक में एक ब्रह्म तल
 स्थित रहता है और वह नर निश्चित रूप से परम भक्त होता है । जो
 निन्दन एवं इत नीने बतनाये ये उनको भी सब है मुनिगण । मुन्ने
 खण करलो । मन्दिनाद् दनुष्य को मङ्ग और खड़ा घादि का
 शत्रु धार मात्र पर्यन्त त्याग देना चाहिये । ऋतुकाव के बिना कभी
 नो नाना का मनन न करे । मङ्ग, मङ्ग और पराज को त्याग देवे ।
 राज गौर पतिव्रों का त्याग करके चन्दे के पूत्रे न पहिने बार मात्र तक
 इसी तरह के इतों से रहना चाहिये । २५-२७।

तस्य पापस्य शान्तयर्थं कार्तिके वा इतो भवेत् । २८।

वनः कृष्णाय हरये वैशवाय नमोनमः ।

नमोस्तु नारात्तिहाय विष्णवे पापविष्णवे ।

सामन्त्रात्तदिवानघ्ये कर्मन्तिषु च योजयेत् । २९।

तस्य पापानि धोरानि चित्रानि बहुजन्मसु ।

निर्दहत्येव सर्वाणितुलराधिनिवानलः । ३०।

एकाहारोपताहारोविष्णुनिर्माल्यभोजनः ।

लासाटीभवाधिकृत्वाकार्तिक्यवधिभोजयेत् । ३१।

नक्तभोजी नवेद्वाप्रपि स्वर्गस्तत्याऽलकं फलम् । ३२।

उक्त पाप की शान्ति के लिए अथवा कार्तिका मास में इन तीर्थ
 से इतों बना होकर रहे । २८। श्रीकृष्ण हरि वैशव के लिए बारम्बार
 नमस्कार है । नारात्तिह, विष्णु पापों की जीतने वाले मनु के लिए बार-
 म्बार नमस्कार है । इनको सामन्त्रात्, प्रातःकाव और दिवा के मध्य
 में कर्मन्तिषु में इन मन्त्र का योजन करना चाहिए । २९। ऐना करने वाले
 पुराण को बहुत जन्मों में लखित पर घोर पापों का भी निन्देय रूप से
 बहन ही जाना करता है । ये समस्त ऐसे बतकर मन्त्र ही जाना करते
 है । अथे सुद के देर को मन्त्र जला दिसा करता है । एक समय में

आहार करे, नियत भोजन करे, भगवान् विष्णु के निमल्य का ही भोजन करे। इस तरह से भाषास्य मम की एकादशी की प्रवधि से कार्तिक मास की एकादशी की प्रवधि तक करना चाहिये प्रथवा केवल एक ही बार रात्रि में भोजन किया करे तो उस पुरुष के लिए स्वर्ग का वास प्राप्त होता तो बहुत ही स्वल्प फल होता है। ३०—३२।

३२—भगवत्-प्रसादनिर्माल्यादिमाहात्म्यवर्णन

इतिदत्त्वावरंतस्मैश्वेतराज्यायवैपुरा	।
जगामाऽन्नाहितोविप्राः प्रासादान्तः स्थितोहरिः । १।	
समस्तजगदीश्वरोः सृष्टिस्थितिविनाशकृत् ।	
वैष्णवीशक्तिरतुलाविष्णुदेहाद्यं हारिणी । २।	
सुषोपमं सुपक्वान्नं मुह्यते नारायणः प्रभु ।	
तदुच्छिष्टोपभोगो हिसर्वावश्यकारकः । ३।	
नतादृशस्मदुष्यन्तस्त्वस्तिपृथिवीतले	।
[प्रायश्चित्तज्ञेयाणाम्पापनापरिकीर्तितम् । ४।	
भगवत्पादपद्मानुप्रेक्षणोपासनादिभिः ।	
पापसंहार कर्तृणा सम्पत्कृत् न दुर्गतः । ५।	
पद्मायाः सन्निधानेन सर्वे तेषुत्रयः स्मृताः ।	
विष्णुबालयगतंतद्विनिर्माल्यंपतित्तादयः । ६।	
स्पृशन्त्यन्नं न दुष्टं तद्यथाविष्णुस्तथैव तु ।	
व्रतस्याविषवाश्च वसर्वेषुत्रिमास्तथा । ७।	

महर्षि जैमिनी ने कहा— हे विभनरु ! इस तरह से पहिले समय में उस श्वेतराज के लिए इस प्रकार से बरदान देकर प्रासाद के अन्दर स्थित श्री हरि प्रकटित होकर चले गये थे। १। समस्त इस जगत् की प्राणा और सृष्टि, स्थिति और विनाश के करने वाला, भगवान् वैष्णवी शक्ति भगवान् विष्णु के देहाद्य की धारण करने वाली है। २।

नारायण प्रभु धुषा के समान और सुपक्व भद्र को खाया करते हैं । उनके उच्छिद्य का उपभोग ही समस्त भ्रषो के लय को करने वाला होता है । इस पृथिवी में उसके समान पुण्य वस्तु अन्य नहीं है । यह श्रीभगवान के प्रासाद का उपभोग समस्त पापों का प्रायश्चित्त कहा गया है । ११४। श्री भगवान के चरण कमलों का अनुप्रेक्षण और उपासना आदि से पापों के सस्कार करने वालों के सम्पर्क से भी कोई दोष नहीं लगा करता है । ११। भगवती पद्मा के सन्निधान से वे सब शुचि ही कहे गये हैं । भगवान विष्णु के मालय में रहने वाला वह निर्मल्य है उसको जो पतित आदि पुरुष स्पर्श किया करते हैं वह भद्र दुष्ट नहीं होता है और जैसे विष्णु हैं वैसे वह भी होता है । जन्म में स्थित चाहे विधवा हो या किसी भी वर्ण में स्थित रहने वाले तथा किसी भी भाश्रम में स्थित हों उस प्रासाद के छाने से पवित्र हो जाया करते हैं । ११। ६। ७।

तत्प्राशनेन पूयन्ते दोसिताश्चाग्निहोत्रिणः ।
 द्रिद्र कृपणी वाऽपि गृहस्थः प्रभुरेववा । ६।
 स्वदेश्याः परदेश्या वा सर्वतत्रसमागताः ।
 नाभिमानप्रकुर्वोरन्विष्णोर्निर्मल्यभक्षणो ॥ ७।
 भक्त्या लोभात्कौतुकाद्वा क्षुधासंशमनेनवा
 धाकण्ठभक्षितं तद्धि पुनाति सकलाहसः ।
 सर्वरोगोपशमनं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्
 दारिद्र्यहरणं चैष्टं विद्यायुः श्रीप्रदं शुभम् । १०।
 पक्षपातो महांस्तत्रविष्णोरभिततेजसः ।
 निरदन्ति ये तदमृतं मूढाः पण्डितमानिनः । ११।
 स्वयं दण्डधरस्तेषु सहते ताऽपराधिनः ।
 येषामत्र स दण्डश्चेद्घृवातेषां हि दुर्गतिः । १२।

कुम्भीपात्रे महाघोरे पच्यन्ते तेऽतिदाहुर्यो ।
 न विक्रयः क्रयो दास्यि प्रसास्तस्तस्य भो द्विजाः ! १२३।
 निर्मल्य जगदीशस्य नार्जितत्वाञ्ज्नामि किञ्चन ।
 इति सत्यप्रतिज्ञो यः प्रत्यहं तच्च मक्षमेत् १२४।
 सर्वपापविनिमुक्तः शुद्धान्तः करणो नरः ।
 स शुद्धं वैष्णवस्थानं क्रमाद्याति न संशयः १२५।

उस महा प्रसाद के प्रादान करने से दोषित घोर घग्नि होश्री पवित्र हो जाते हैं । दरिद्र हो या कृष्ण हो, गृहस्थ हो या प्रभु हो, प्राग्ने देश के रहने वाले हो या किसी दूसरे देश के निवासी हों सभी वहाँ पर समागत हुए हैं वहाँ पर विष्णु के निर्मल्य के भक्षण करने से अपने जाति वर्ण घोर पद आदि अभिमान नहीं करना चाहिए । १२३। महा प्रसाद की भक्ति से, उदर पूर्ति के लोभ से अथवा सुषा के निवारण करने के कारण से किसी भी तरह से बन्ध पर्यन्त भक्षण किया हुआ वह महा प्रसाद (अग्न्याय जो का प्रसादी मात) सब प्रकार के पापों से मुक्त कर पवित्र कर दिया करता है । यह सब रोगों का उपशमन करने, बाला, पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करने वाला, दरिद्रता को दूर भगा देने वाला, विद्या, धातु और श्री को प्रदान करने वाला परम श्रेष्ठ एवं शुभ होता है । १२०। अशक्तिमत् वेद वाले भयवान् विष्णु का वहाँ पर महान् पक्ष-पात है । जो लोग उस घमून की निन्दा किया करते हैं वे महान् मूढ और पण्डित भावो हुआ करते हैं । स्वयं उनके लिए प्रभु दण्ड घर होते हैं और उनके अपराधों को वे सहन नहीं किया करते हैं । बिनकी यहाँ पर तो वह दण्ड होता है और उनकी निश्चित ही दुर्गति हुआ करती है । १२१। १२२। वे लोके अत्यन्त घोर कुम्भी पाक नामक नरक में जो अत्यन्त वाशुण होता है यातनाएँ भोगा करते हैं । हे द्विजराज ! उस महा प्रसाद का क्रय अथवा विक्रय भी प्रसात्त नहीं हुआ करता है । जगदीश के निर्मल्य को भक्षण करके अन्य कुछ भी नहीं खाऊँगा — इस

तरह से सत्य प्रतिज्ञा वाला जो होता है और जो प्रतिदिन उसका ही भक्षण किया करता है वह शुद्ध भन्तः करण वाला मनुष्य सभी तरह के पापों से विनिर्मुक्त हो जाता है तथा वह क्रम से परम शुद्ध वैष्णव स्थान को गमन किया करता है, इसमें कुछ भी सशय नहीं है । १३। १४। १५।

चिरस्थमपि सशुक्ल नीतं वा दूरदेशतः ।
 यथातथोपयुक्तं तत्सर्वं पापापनोदनम् । १६।
 कुबकुरस्य मुखाद्भ्रष्टं नदन्नं पतितं यदि ।
 ब्राह्मणेनाऽपि भोक्तव्यमितरेषातुकाकथा । १७।
 उत्तोष्य तिष्ठता वाऽपि नोपवासं च कुर्वता ।
 अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरन् ।
 प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं ताऽत्र कार्या विचारणा । १८।
 न वेद्यान्न जगद्भक्तुर्गर्ज्जितं वारि समं द्वयम् ।
 दृष्टेः स्वर्गादिसम्प्राप्तिर्भक्षणाच्चाऽघनाशनम् । १९।
 जगद्धात्र्या हि यत्पक्वं वैष्णवेऽनौ सुखं कृते ।
 भुङ्क्तेऽन्वहं चक्रपाणियुग्मन्वन्तरादिषु । २०।
 सप्तदीपधरामध्ये सान्निध्यं नेदृशं हरेः ।
 यादृशनीलगोत्रेऽस्मिन्व्याजमानुषचेष्टितम् । २१।

बहुत अधिक समय तक रहा हुआ, भनी भांति सूखा हुआ, दूर देश से लाया हुआ और जैसे-तैसे भी प्राप्त होने वाला यह श्री जगदीश भगवान् का महा प्रसाद सब पापों का अपनोदन करने वाला होता है । यदि वह फल कुबकुर के मुख से भी भ्रष्ट होकर पतित हो गया हो तो भी उसको ब्राह्मण के द्वारा खा लेना चाहिए मन्त्रों की तो बात ही क्या है । उपवास करके स्थित रहने वाले तथा उपवास न करने वाले को उसका भक्षण करना चाहिए । प्रशुचि हो प्रथवा धावार से हीन हो तथा मन से पापों का समावरण करने वाला हो कौसी भी दशा में क्यों न स्थित हो जैसे ही श्री जगदीश प्रभु का महा प्रसाद प्राप्त हो

वैसे ही तुरन्त ही उसका भक्षण कर डालना चाहिए—इसमें तनिक भी विचारणा नहीं करे । १६।१७।१८। जगत् के स्वामी का नैवेद्यान्न और गङ्गा का जल ये दोनों ही समान होते हैं । इनके दर्शन मात्र से स्वर्ग प्रादि लोकों की प्राप्ति होती है । और इनके भक्षण करने से यशों का नाश हुआ करता है । सुसंस्कृत वैष्णव अग्नि में जिसको जगत् की घात्रो के द्वारा पक्व किया गया है और युग मन्वन्तरादि में जिसको भगवान् चक्रमाणि स्वयं खाते हैं । इस सात द्वीपों वाली धरा के मध्य में ऐसा श्री हरि का साम्रिध्य नहीं है जैसा कि इस नील गोत्र में भगवान् का व्याज मानुष चेषित है अर्थात् मानव शरीर धारण करके एक वहाने से जैसी लीलाएँ यहाँ पर की हैं । १६।२०।२१।

दासृहपं परंब्रह्म सर्वचाक्षुषगोचरम् ।
 प्रकाशते भो मुनयो न दृष्टं न श्रुतं क्वचित् । २२।
 तस्मै प्रवृत्तिरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
 प्रवृत्तिरूपा शक्तिः श्रीः प्रवर्तयति यद्वविः । २३।
 तददर्शनात् जगन्नाथस्तच्छेषं दुरितापहम् ।
 किमत्र चित्रंभो विप्रायदुक्तंमुक्तिकारणम् । २४।
 नाऽल्पपुण्यवर्ता तत्र विश्वासश्च प्रजायते ।
 वेदाचारप्रधानेषु युगेष्वेतत्प्रकीर्तितम् । २५।
 महिमानं न वेदास्य विशेषाञ्छ्रूयतां कलौ ।
 घोरे कलियुगे तस्मिन्निपादो घर्मविप्लवः । २६।
 घर्मः स्यादेकपादस्तुक्कचित्तस्य भयाच्चरेत् ।
 सर्वेऽनृतप्रधानाहि दाम्भिकाः शठवृत्तयः । २७।
 प्रायश्च घर्मविमुखा जिह्वोपस्थपरायणाः ।
 न ध्यायन्ति तपस्यन्तिव्रतयन्तिकदाचन । २८।

हे मुनि गणो ! दास (काष्ठ) के स्वरूप में साक्षात् पर ब्रह्म यहाँ पर सबके चक्षुषों के द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन देने वाले हैं और प्रकाश

वाले ही रहे हैं—ऐसा कही पर भी न कभी देखा ही है और न कही पर श्रवण ही किया है । २२। उस प्रवृत्ति के स्वरूप वाले परमात्मा ब्रह्म के लिए प्रवृत्ति स्वरूप वाली शक्ति थी जिस हवि को प्रवृत्त किया करती है । उसी को श्री भगन्नाथ प्रभु भक्षण किया करते हैं । उसका जो दोष है वह, पापों को अपहरण करने वाला है । हे विप्रगण ! इसमें क्या अद्भुत बात है जिसको मुक्ति प्रदान कर देने वाला कारण कहा गया है । जो प्रति स्वल्प पुण्य वाले पुष्य होते हैं उनका उसमें विश्वास ही नहीं हुआ करता है । वेदाचार प्रधान युगों में यह प्रकीर्तित है । इस कलियुग में इसकी महिमा नहीं जानते हैं और विशेष रूप से सुनिये । इस महान् घोर कलियुग में त्रिपाद धर्म का विप्लव होता है अर्थात् धर्म के तीन पाद होते ही नहीं हैं । २३। २४। २५। २६। धर्म केवल एक ही पाद वाला है सो भी विचारा उस के भय से कही पर चरण विषा करता है । इस कलियुग में सभी लोग मिथ्या की प्रधानता वाले हैं—दम्भ से परिपूर्ण है और एक दम शठला की वृत्ति वाले हैं । इस युग में प्रायः मनुष्य धर्म से विमुख रहने वाले होते हैं और वे केवल जिह्वा के स्वाद के लालची तथा उपस्थ (जतनेन्द्रिय) के रसा-स्वादन करने में तत्पर रहा करते हैं । न तो ये लोग कभी कुछ ध्यान ही किया करते हैं, न कुछ तपश्चर्या करने की और इनका थोड़ा सा भी भुकाव होता है और न ये कोई व्रत एवं नियमों के ही पालक होते हैं । २७। २८।

अधर्मबहुलाः सर्वे हिंसका लोलुपाः परम् ।
 परेषा परिव्राजेन तुष्यन्ति स्वकृतं विना । २९।
 प्रसङ्गात्कौतुकाद्वाऽपि निघ्नन्ति परकर्म वै ।
 क्षुद्रकार्यशियात्स्वस्य परकार्यप्रवाधकाः । ३०।
 धर्मलब्धा स्त्रियं रम्यामवजाय स्ववेश्मनि ।
 परयोषिति निन्द्यायां प्रसक्ताः पशुचेष्टिताः । ३१।

अग्निहोत्रादिकं वाऽपि व्रतं नाऽन्यत्त्वच्चित्कच्चित् ।
 जीविका तद् द्विजातीनां येषां वा परलौकिकम् । ३२।
 अत्रेताधीतवेदेन अन्यायाऽऽप्तघनेन च ।
 वित्ताशाख्येन च कृतं न तथा फलदायि तत् । ३३।
 प्रायः कलियुगे भूपाः प्रजावनपराङ्मुखाः ।
 करोदानपरान्तर्यं पापिष्ठाश्रयो वृत्तयः । ३४।
 वरुणसङ्करिणः सर्वे शूद्रप्रायाः कलियुगे ।
 हर्तारः पायिवाः एव शूद्राश्च नृपसेवकाः । ३५।

सभी लोग भक्ति प्रपन्न करने वाले हैं, सब हिंसक, परम लोलुप और स्वकृत के बिना दूसरों की निन्दा करके ही सन्तुष्ट होने वाले हैं। प्रसङ्ग से भगवदा कोशुक से ही हमारे के कर्मों का हनन करने वाले हैं। प्रपन्न बहुत ही सुन्दर कार्यों के सिद्ध करने के विचार से दूसरों के बड़े-बड़े कार्यों के वाचक ही जाया करते हैं। धर्म विधि से प्राप्त हुई सुन्दर स्त्री का प्रपन्न घर में प्रपन्न करके पराई 'निन्दनीय' स्त्री में प्रसक्ति करने वाले पशु के समान बेटा वाले हैं। अग्निहोत्र आदि तथा व्रत भग्न कहीं-कहीं पर नहीं हैं, यही उनकी जीविका है जिसका पारलौकिक भी यही है। बिना व्रत वाले और बिना वेदों के अध्ययन वाले के द्वारा तथा अन्याय से प्राप्त किये हुए धन वाले के द्वारा और वित्त घातक वाले के द्वारा जो क्रिया गया है वह फलदायी नहीं हुआ करता है। बहुधा इस कलियुग में राजा लोग प्रपन्न प्रजा के मनुष्यों के विमुख ही हुमा करते हैं। निश्चय ही वे कर्मों के बसूल करने में लक्ष्मण, महा पापी और चोरों की वृत्ति वाले होते हैं। कलियुग में वरुणसङ्कर और प्रायः शूद्र ही होते हैं। राजा लोग हरण करने वाले हैं और नृपों के सेवक भी सब शूद्र होते हैं। (३६-३५)

श्रीतस्मात्तदिकं कर्म न तथाऽदनुष्ठितम् ।
 युगे चतुर्थे भो विप्राः परलोक्यायकल्पिते । ३६।

दानधर्मः परो ह्येष नाऽन्यो धर्मः प्रशस्यते ।
 कर्मणा मनसा वाचा हितमिच्छेद् द्विजन्मनाम् ॥३७॥
 इतिहोवाच भगवान् ब्राह्मणो मामकीतनुः ।
 ब्राह्मणायस्य सन्तुष्टाः सन्तुष्टस्तस्य चाप्यहम् ॥३८॥
 उभयत्र समो भूयाद् ब्राह्मणं च जनार्दन ।
 यद्वदन्ति द्विजावाक्यं ततस्वयं भगवान्वदेत् ॥३९॥
 यथा तथा वर्तमानो वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
 भगवानपि देवेशः सः साक्षाद् ब्राह्मणप्रियः ॥४०॥
 सदाऽवतारं कुरुते ब्राह्मणार्थं जनार्दनः ।
 तत्पालनार्थं दुष्टान्त्वं निगृह्णाति युगे युगे ॥४१॥
 ससर्ज ब्राह्मणानग्रे सृष्ट्यादौ स चतुर्मुखः ।
 सर्वे वर्णाः पृथक्पश्चात्तोषा वंशेषु जज्ञिरे ॥४२॥

हे विप्रो ! जो परलोक के लिये कलित है वे शीत और स्मार्ति
 आदिक कर्म उस प्रकार से मनी भाँति अनुष्ठित नहीं होते हैं यह शीषा
 युग कनियुग ऐसा ही है । यह दान का धर्म ही सबसे परम है और
 अन्य धर्म कोई भी प्रधान नहीं माना जाना है । मन-बचन और कर्म
 से द्विजन्माओं के हित की इच्छा करनी चाहिए ॥३६॥३७॥ भगवान् ने
 मही कहा था कि ब्राह्मण मेरा ही शरीर होता है । जिन पुत्र्य से ये
 ब्राह्मण सन्तुष्ट होते हैं उससे मैं भी परम सन्तुष्ट रहा करता हूँ । दोनों
 के प्रति अर्थात् ब्राह्मण तथा भगवान् जनार्दन मे सम भन्व जाना होना
 चाहिए । जो वचन ब्राह्मण लोग कहा करते हैं यह समझना चाहिए
 कि उसे स्वयं भगवान् ही कह रहे हैं । जंसा-संज्ञा भी वर्तमान रहने
 वाला ब्राह्मण सब वर्णों का गुरु होता है । देवेश्वर भगवान् भी साक्षत्
 ब्राह्मणों से प्यार करने वाले होते हैं । भगवान् जनार्दन इन ब्राह्मणों
 के ही हित सम्पादन करने के लिए ही सदा अवतार ग्रहण किया करते
 हैं । उनके पालन करने के लिए ही युग-युग में प्रभु दुष्टों का निग्रह

किया करते हैं । चतुर्मुख ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि काल में धारो ब्राह्मणों का ही सृजन किया था । अन्य सब वर्ण पीछे पृथक् उन्हीं के वंशों में समुत्पन्न हुए थे । ३८-४२।

तस्मात्कलियुगे तस्मिन्ब्राह्मणो विष्णुरेव च ।
 उभौ गतिश्च सर्वेषां ब्राह्मणानां हरिर्गतिः । ४३।
 हरिरेवाऽत्र सर्वेषां गतिः प्राप्तेकलीयुगे ।
 शालग्रामादिके क्षेत्रे स्मर्यते कीर्त्यतेऽपि च । ४४।
 तस्मिन्नीलाचनेपुण्ये क्षेत्रे क्षेत्रज्ञवर्ष्मणि ।
 जीवभूतः स सर्वेषां दाहव्याजशरीरभृत् । ४५।
 कलिकल्पनाशाय प्रायो दृक्कृतकर्मणाम् ।
 दर्शनस्तवनोच्छिष्टभोजनैर्मुक्तिदायकः । ४६।
 उच्छिष्टेन सुरेशस्य व्यामंयस्य कलेवरम् ।
 तदाहारस्तदात्पाहिलिप्यते न सपातकैः । ४७।
 निवेदनीयमण्यासु मूर्तिप्वीशस्य वर्तते ।
 पावनं तदपि प्रोक्तमुच्छिष्टं तु विमोचकम् । ४८।
 भुङ्क्ते त्वन्नं वभगवान्पश्यत्यन्यन्नक्षुपा ।
 पुराऽयं प्रार्थितो देवो योगिभिः परिवेष्टितः । ४९।
 निर्माल्योच्छिष्टभोगेन तव मायां जयेमहि ।
 जत्यन्तरितमिताक्षाणामनायासेन भुक्तिदः । ५०।

इसी लिए इस कलियुग में ब्राह्मण ही साक्षात् विष्णु हैं । सबको ये दोनों ही गति होते हैं अर्थात् उद्धार करने वाले हैं और ब्राह्मण की भगवाव श्री हरि हुमा करते हैं । ४३। इस कलियुग के प्राप्त होने पर सबकी गति यहाँ पर श्री हरि ही हुमा करते हैं । शालग्राम प्रादि क्षेत्र में श्री हरि का स्मरण तथा कीर्तन किया जाया करता है । उस पुण्य भय क्षेत्र नीलाचल में जो क्षेत्रज्ञ का वर्ष्म है । उसमें वह दाह के व्याज से शरीर को पारण करने वाले सबको जीव भूत है । कलि के

। कल्मषों के नाश के लिए जो कि बहुधा दुष्कृत कर्मों वाले मनुष्यों के होते हैं वह भगवान् अपने दर्शन, स्तवन, उच्छिष्ट भोजनों के द्वारा मुक्ति के प्रदान करने वाले होते हैं । ४४।४५।४६। सुरेश प्रभु के उच्छिष्ट-से जिस मानव या प्राणी का शरीर व्याप्त रहता है । उसी महा प्रसाद के साहार करने वाला तथा उसी में अपनी-आत्मा के व्याप्त को लगाने वाला पुरुष पातकों से कर्मों भी लिप्त नहीं हुआ करता है । अन्य मूर्तियों में जो निवेदीय होता है वह भी ईश का ही होता है । उसको भी परम पावन कहा गया है और वह उच्छिष्ट भी विभोजन करने वाला होता है । भगवात् यही पर भोजन किया करते हैं और चक्षु के द्वारा अन्यत्र देखते हैं । पहिले योगियों के द्वारा परिवेष्टित यह देव प्राथिन किये गये थे—हे भगवन् हम लोग पापके निर्माल्य उच्छिष्ट भोज के द्वारा ही आपकी इस माया पर विजय प्राप्त किया करते हैं । यह अत्यन्त स्थिति नेत्र वालों को अनायास से ही मुक्ति देने वाला होता है । ४७।४८।४९।५०।

२६—बदरिकाश्रमस्य सर्वतीर्थाधिकत्ववर्णन

सूतसूतमहाभाग ! सर्वधर्मविदाम्बर ! ।
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ! पुराणे परिनिष्ठित ! । १।
 व्यासः सत्यवतीपुत्रो भगवान् विष्णुरव्ययः ।
 तस्म्यत्प्रियशिष्यस्त्वत्त्वत्तो वेत्तानकश्चन । २।
 प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वधर्मबहिष्कृते ।
 जना वै दुष्टकर्माणः सर्वधर्मविवर्जिताः । ३।
 क्षुद्रायुषः क्षुद्रमाणबलवीर्यतपः क्रियाः ।
 अधर्मनिरताः सर्वे वेदशास्त्रविवर्जिताः । ४।
 तीर्थाद्यनतपोदानहरिभक्तिविवर्जिताः ।
 कथमेषामल्पकानामुद्धारोऽल्पप्रयत्नतः । ५।

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणामुत्तमं तथा ।

मुमुक्षूणां कुतः सिद्धिः कृत्रवाङ्मृपिसञ्चयः ।१।

कृत्रवाङ्मृप्रयत्नेन तपोमन्त्राश्च सिद्धिदाः ।

कुत्र वा वसति श्रीमाञ्जुगतामीश्वरेश्वरः ।

भक्तानामनुरक्तानामनुग्रहकृपालयः ।७।

श्री चीनक जी ने कहा—हे महर्भाग श्री सूतजी ! आप तो समस्त धर्मों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ हैं । आप सभी शास्त्रों के धर्मों के तत्त्वों को जानने वाले हैं । आप पुराणों में परिष्कृत विद्वान हैं । १। सत्यवती के पुत्र भगवान् अथर्व विष्णु श्री व्यामदेव हैं । उन व्यास जी के भाव परम प्रिय शिष्य हैं । अथर्वसे अधिक ज्ञाता अन्य कोई भी नहीं है । २। समस्त धर्मों से बहिष्कृत इस अत्यन्त घोर कलियुग में मनुष्य अत्यन्त दुष्ट कर्मों के करने वाले हैं और सब धर्मों से रहित होते हैं । लुब्ध भाषु, प्राण, बल, शीघ्र, तप और क्रिया वाले मनुष्य होते हैं । अधर्म में निरत रहने वाले और सब वेद तथा शास्त्रों के ज्ञान से हीन होते हैं । तीर्थों का अटन, तपस्या, दान और श्री हरि की मक्ति से वञ्चित मनुष्य होते हैं । इन अल्पको विचारों का उद्धार अल्प प्रयत्न से कैसे उद्धार होगा ? । ३। ४। ५। तीर्थों में अतीव उत्तम तीर्थ तथा क्षेत्रों में अत्यन्त उत्तम क्षेत्र कौन हैं ? जो मुक्ति के ईच्छुक जन हैं उनको सिद्ध कहाँ पर है अथवा ऋषियों का मञ्जु कहाँ पर है ? कहाँ पर अत्यल्प प्रयत्न से तप और मन्त्र सिद्धि के प्रदान कर देने वाले होते हैं और वह कौन सा क्षेत्र है जहाँ पर जपनों के ईश्वरेश्वर श्रीमान् स्वर्ग विभाग किवा करते हैं ? । ६। ७।

एतदन्वयश्च सर्वं मे परार्थकप्रयोजनम् ।

ग्रूहि भद्राय लोकनामनुग्रहविचक्षण ! । ८।

साधुसाधुमहाभाग ! भवान्परहिते -रतः ।

हरिमन्त्रकृतासक्तिप्रक्षालितमनोमतः । ९।

अथ मे देवकीपुत्री हृत्पद्ममधिरोहति ।
 प्रसङ्गात्तव विप्रर्षे ! दुर्लभः साधुसङ्गमः ॥१०॥
 हरति दुष्कृतसञ्चयमुत्तमां गतिमलं तनुते तनुमानिनाम् ।
 अधिकपुण्यवशादवशात्मनां जगति दुर्लभसाधुसमागमः ॥११॥
 हरति हृदयबन्धं कर्मपाशादितानां

वितरति पदमुच्चैरल्पजरूपकभाजाम् ।

जननमरणकर्मश्रान्तविश्रान्तिहेतुखिजगति

मनुजानां दुर्लभः सत्प्रसङ्गः ॥१२॥

अयं प्रश्नः पुरासाधो ! स्कन्देनाऽकारिसर्वतः ।

कलाशशिखरेरम्यश्रृपीणांपरिश्रृण्वताम् ।

पुरतो गिरिजाभर्तुः कर्तुं निःश्रेयसं सताम् ॥१३॥

मनुरक्त भक्तों के ऊपर अनुग्रह एवं कृपा के जो स्वयं मालय हैं उनके निवास का क्षेत्र कौन सा है ? हे भगवन् ! पाप तो लोगों पर अनुग्रह करने में परम विवक्षण हैं । मद्र अर्थात् कल्याण के लिए दूसरों का अर्थ ही अतिका एकमात्र प्रयोजन है ऐसे इस सबको मुझे पाप बतलाइये । ॥ श्री गूतजी ने कहा—हे महाभाग ! बहुत ही अच्छी बात है कि पाप दूसरों के हित करने में रति रखने वाले हैं और श्रीहरि भगवान की भक्ति में आसक्ति होने के कारण से आपने अपने मन के मल को प्रकाशित कर दिया है । इसके अनन्तर भगवान देवकीनन्दन भरे हृदय रूपी पद्म में अधिरोहण किया करते हैं । हे विप्रर्षे ! प्रसङ्ग से आपका साधु-सङ्गम दुर्लभ है । ॥१०॥ इस जगत् में साधु पुरुषों का समागम परमन्त ही दुर्लभ हुआ करता है जो दुरितों के सञ्चय का हरण कर दिया करता है और तनुमानियों की गति को असङ्कृत कर दिया करता है । यह अशारमाओं के अत्यधिक पुण्य से ही होता है । ॥११॥ इस जगत् के सत्पुरुषों का संगम मनुष्यों को बहुत ही दुर्लभ हुआ करता है । यह सत्पुरुषों का समागम बन्मों के पाप में अदित पुरुषों के हृदय

के बन्धन का हरण कर देता है और जो भ्रामन्त धरम-जल्प करने वाले मनुष्य हैं उनकी उष्ण पद वितरण कर देने वाला होता है । संसार में बारम्बार जन्म ग्रहण करने और मृत्यु प्राप्त करने के कर्म में जो परम ध्यान्त हैं उनको विधासि प्रदान करने का हेतु होता है । ११२। योसूतजी ने कहा—हे साधो ! पहिले पद्मे प्रथम परम रम्य कैलाश पर्वत के विश्वर पर समस्त ऋषि वृन्दों के अर्पण करते हुए श्री गिरिजा पति के सामने सत्पुरुषों का निःश्रेय करने के लिए स्वामी स्कन्द ने किया पा । १३।

मगधन्सर्वलोकानां कर्त्ता हर्त्ता पिता गुहः ।
 क्षेमाय सर्वजन्तूनां तपसेकृतनिश्चयः । ११४।
 कलिकाले ह्यनुशान्ते वेदशास्त्रविवर्जिते ।
 कुत्र वा वसति श्रीमान्भगवान्सांस्वतंस्रविः । ११५।
 क्षेत्राणि कानि पुष्पाणि तीर्थानि मरितस्तथा ।
 केन वा प्राप्यते साक्षाद्भगवान्मधुमदनः । ३।
 अदधानाय भगवन्कुपया वद ते पितः ! । ११६।
 बहूनि सन्ति तीर्थानि क्षेत्राणि च गडानन ! ।
 हरिवास निवासैकपराणि परमादिनाम् । ११७।
 काम्यानि कानि चिरसन्ति कानि चिन्मुक्तिदान्यपि ।
 इहाऽमुत्रार्चनान्येव बहुपुण्यप्रदानि वै । ११८।
 गङ्गा गोदावरीरेवातपती यमुनासरित् ।
 क्षिप्रा सरस्वतीपुष्पा गौतमीकोशिकीतगा । ११९।
 कावेरी ताञ्जपुर्णा च चन्द्रभागा महेन्द्रजा ।
 त्रिवोत्पला वेङ्गवती सरयूः पुष्पवाहिनी ।
 चर्मण्वती शतद्रुञ्ज पयस्विन्यसम्भवा । ३।
 गण्डिका बाहुदा सर्वाः पुष्पाः सिन्धुः सरस्वती । १२०।
 मुक्तिमुक्तिप्रदास्त्रैताः मेघमान्ना मुहुर्मुहुः ।
 अयोध्याद्द्वारिका काशी मथुराऽवन्तिका तथा । १२१।

कुक्षेत्रं रामतीर्थं काञ्ची च पुरुषोत्तमम् ।

पुष्करं ददुरं क्षेत्रं वाराहं विधिनिर्मितम् ।२२।

वदर्थ्याह्यं महापुण्यं क्षेत्रं सर्वार्थसाधनम् ।२३।

स्कन्दजी ने कहा था—हे भगवान् ! प्रायः समस्त लोकों की रचना करने वाले पिता, गुह्य और सहार कर देने वाले हैं । समस्त जन्तुओं के कल्याण करने के लिए ही प्रायः तपश्चर्या करने को निश्चय करने वाले हैं । इस महान् घोर कल काल के सम्प्राप्त होने पर जोकि वेदो और शास्त्रों से एकदम रहित हैं श्रीमान् सात्वतो के स्वामी भगवान् कहीं पर निवास किया करते हैं ? कौन से परम पुण्यमय क्षेत्र हैं तथा कौन से तीर्थ एवं ऐसी सरितायें हैं तथा किसके द्वारा भगवान् या मधुसूदन की प्राप्ति की जाया करती है ? हे पिताजी ! मुझे इसके जानने की प्रत्यधिक श्रद्धा है अतएव हे भगवान् ! प्रायः मुझे कृपा करके यह बतला दीजिए । १४।१३।१६। श्री महादेवजी ने कहा था—हे शदानन ! परमाधियों के लिए श्री हरि के वास, निवास में एक ही परामण्य बहुत से तीर्थ और क्षेत्र विद्यमान हैं । उनमें कुछ तो कामनाओं के ही पूर्ण कर देने वाले हैं । कुछ मानवों को जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा दिलाने वाले हैं । कुछ इस लोक और परलोक दोनों में भयों के प्रदान करने वाले हैं तथा प्रत्यधिक पुण्यों के देने वाले हैं । १७।१८। सर्वप्रथम उन पुण्यमयी सरिताओं के नाम मैं बताता हूँ । गंगा, गेदावरी, रेवा, तपती, यमुना सरित्, क्षिप्रा, सरस्वती, पुण्या गौमती, कौशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेंद्रजा, चित्रोत्पला, नेत्रवती, सरयू, पुण्यवाहिनी, चम्पावती, घतद्रु, पयस्विनी, घनि सम्भवा, गण्डिका, बाहुदा, सिन्धु, सरस्वती—ये सब सरितायें परम पुण्यमयी हैं और ये मुक्ति (सांसारिक सुखों का उपभोग) और मुक्ति (वारम्बार संसार में आवृत्तमान से छुटकारा) दोनों को प्रदान करने वाली हैं जबकि इन नदियों का पुनःपुनः सेवन किया जावे । अब कतिपय पुण्यमय क्षेत्रों

को बतलाता है—अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, प्रवन्तिका (उज्जैन), कुर्क्षेत्र, रामतीर्थ, काशी, पुरुपोत्तम, पुष्कर, ददुर क्षेत्र, वाराह, विवि निर्मित बदरीनाम वाला महान् पुण्यक्षेत्र है । जो सभी भयों का साधन करने वाला है । १७-२३।

अयोध्यां विधिवदृष्ट्वा पुरीं मुक्त्येकसाधनीम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् । २४ ।

विधिवविष्णुनिवेशेवणपूर्वकाचरितपूजननर्तनकीर्तनाः ।

गृहमपास्य हरेरनुचिन्तनाञ्जितगृहाजितमृत्युपराक्रमाः । २५ ।

स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामालयं शुचिः ।

न तस्यकृत्यंपश्यामिकृत्योभवेद्यतः । २६ ।

द्वारिकायां हरिःस क्षात्स्वालयं नैव मुञ्चति ।

अद्यापिभवनं कंश्चित्पुष्पवद्भिः प्रदृश्यते । २७ ।

शोमत्यां तु नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कृष्ण मुखाम्बुजम् ।

मुक्तिःप्रजायते पुंसो विना साङ्ख्यं पडानन ! । २८ ।

इस अयोध्या पुरी का विवि पूर्वक दर्शन करे जो कि मुक्ति का एकमात्र साधन कराने वाली है । इसका दर्शन करने वाले मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा पाकर श्री हरि के मन्दिर में प्रणाम किया करते हैं । २४। अनेक प्रकार से भगवान विष्णु का सेवन पूर्वक समाचरण, पूजन, नर्तन और कीर्तन करने वाले, अपने घर का त्याग करके श्री हरि का चिन्तन करने से जिन्होंने गृह में साजित मृत्यु को जीत लिया है ऐसे पराक्रमी पुरुष होते हैं । २५। स्वर्ग द्वार में मनुष्य स्नान करके परम शुचि होकर जो श्री राम के मालय का दर्शन किया करता है उसका तो फिर शोष रहने वाला कोई नो वृत्त्य में नहीं देखता हूँ क्योंकि इसी से वह मानव कृतकृत्य हो जाया करता है । २६। द्वारका पुरी में साक्षात् श्री हरि निवास किया करते हैं और वहाँ पर अपने मालय का कभी भी स्थाप्य नहीं करते हैं । आज भी कुछ पुण्यात्मा जनों के द्वारा उनका भवन

वहाँ पर देखा जाया करता है । गोमती नदी में मनुष्य स्नान करके तथा श्री कृष्ण भगवान् मुख कमल का दर्शन करता है हे पडानन ! उस पुष्प की बिना ही साक्ष्य के मुक्ति हो जाया करती है ॥२७१२८॥

असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चकोश्यां महाफलम् ।
 अमरा मृत्युमिच्छन्तिकाकथाइतरेजनाः ।२६।
 मणिकर्ण्यं ज्ञानवाप्याविष्णुपादोदके तथा ।
 हृदे पञ्चनदेस्नात्वावानमातुः स्तनपोभवेत् ।३०।
 प्रसङ्गेनापि विश्वेशं दृष्ट्वा काश्यांपडानन ! ।
 मुक्तिः प्रजायतेपुंसांजन्ममृत्युविवर्जिता ।३१।
 बहुना किमिहोक्तेन नैतत्क्षेत्रसमं क्वचित् ।
 तपोपवासनिरतो मथुरायां पडानन ।
 जन्मस्थान समासाद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।३२।
 विश्रान्तितीर्थे विधिवत्स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम् ।
 पितृनुद्धृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रगच्छति ।३३।
 यदि कुर्यात्प्रभादेनपातकं तत्र मानवः ।
 विश्रान्तेस्नानमासाद्यभस्मीभवति तत्क्षणात् ।३४।
 अवन्त्यां विधिवत्स्नात्वाशिप्रायांमाधवेनराः ।
 पिशाचत्वंनपश्यन्तिजन्मातरशर्तंरपि ।३५।

असी और वरुण के मध्य में पञ्चकोशी में महान फल होता है । वही पर देवगण भी अपनी मृत्यु होने की कामना किया करते हैं । अग्य दूसरो की वो बात ही क्या कही जावे । मणिकर्णी, ज्ञानवापी, विष्णु-पादोदक और पञ्चनदहृद में जो मानव स्नान कर लेता है वह फिर दूसरा इस संसार से जन्म ग्रहण करके माता का स्तन कभी भी नहीं पिया करता है । हे पडानन ! काशीपुरी में किसी अग्य प्रसङ्ग के वश होकर भी जो भगवान् विश्वनाथ जी का दर्शन प्राप्त कर लेता है ऐसे पुष्पों की जन्म और मृत्यु से रहित मुक्ति हो जाया करती है । अतएविक हम क्या कथन

करे केवल यही वचन पर्याप्त है कि इसके समान कहीं भी अन्य कोई स्थान नहीं है । हे पढानन ! क्या भीर उपवासों में निरत रहने वाला पुरुष यमुना पुरी में भगवान के जन्मस्थान की प्राप्ति करके समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ॥१६॥१७॥१८॥१९॥ जहाँ पर कंस को वध कर भगवान ने विश्राम लिया है उस विश्रामितातीर्थ में (यमुना में) विधि-विधान के साथ स्नान करके तिलोदक जो देता है वह मानव अपने पितरों को नरको से उद्घृत कर दिया करता है और स्वयं सीधा विष्णु-लोक में गमन किया करता है ॥२३॥ यदि कोई मनुष्य वहाँ पर प्रमाद से पातक करता है तो वह विश्राम पर स्नान करने से अपने पातक को तुरन्त ही मत्मीभूत कर दिया करता है ॥२४॥ भवन्तिका पुरी में जो मनुष्य माघव मास में शिवा में विधि पूर्वक स्नान करता है वह संकटों वगमान्तरे में भी पिशाचत्व नहीं देखा करता है ॥२५॥

कोटितीर्थे नरःस्नात्वाभोजयित्वाद्विजोत्तमान् ।

महाकालं हरदृष्ट्वासर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२६॥

मुक्तिक्षेत्रमिदं साक्षात्समं लोकैकमाधनम् ।

दानादृरिद्रवाहानिरिहलोके परत्र च ॥२७॥

कुरुक्षेत्रे रामतीर्थे स्वर्णं दत्त्वा स्वशक्तितः ।

सूर्योपरागे विधिवत्स नरो मुक्तिं भाग्भवेत् ॥२८॥

ये तत्र प्रतिगृह्णन्ति नरा लोभवशङ्कताः ।

पुण्यत्वं न तेषां वैकल्पकोटिशतैरपि ॥२९॥

हरिक्षेत्रे हरिदृष्ट्वा स्नात्वा पादोदके जनः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिणा सह मोदते ॥३०॥

खगगणा विविधा निवसन्त्यहो ऋषिगणाः फलमूलदलाशनाः ।

पवनसंयमनक्रमनिजितेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्विह ॥३१॥

विष्णुकाञ्च्यां हरिः साक्षाच्छिवकाञ्च्यां शिवः स्वयम् ।

अभेदादुभयोभंत्तया मुक्तिः करतले स्थिता ।

विभेदजननात्पुंसां जायते कुत्सिता गतिः ॥४२॥

उस अवन्तिका पुरो में मनुष्य कोटि तीर्थ में स्नान करके उत्तम
श्रेणी वाले द्विजों को भोजन करावे और महा कालेश्वर शिव का
दर्शन करे तो सभी तरह के पापों से छुटकारा पा जाया करता है । यह
मेरे लोक के प्राप्त करने का एकमात्र साधन साक्षात् मुक्ति का क्षेत्र है ।
दान करने से दरिद्रता की हानि इसलोक और परलोक में हुषा करती
है ॥३६॥३७॥ कुरक्षेत्र में रामतीर्थ में अपनी शक्ति के अनुसार सूर्य-
ग्रहण के अवसर पर विधि पूर्वक सुवर्ण का दान करके मनुष्य मुक्ति
प्राप्त कर लेने का पूर्ण अधिकारी हो जाया करता है । जो मनुष्य लोभ के
वश में पाकर वहाँ पर दान ग्रहण किया करते हैं उनको संकड़ो करोड़ो
वर्षों में भी पुरुषत्व नहीं हुषा करता है ॥३८॥३९॥ हरि क्षेत्र में
श्री हरि का दर्शन प्राप्त करके और पादोदक में जो स्नान करता है
वह समस्त पापों से मुक्त होकर भगवान् श्रीहरि के साथ ही आनन्द
प्राप्त किया करता है ॥४०॥ अहो ! यहाँ पर अनेक पक्षीगण निवास
किया करते हैं और फल, मूल तथा पत्तों का भक्षण करने वाले ऋषिगण
भी रहते हैं । पवन के समयन के क्रम से निजित इन्द्रियों वाले तथा
पराक्रमशील मुनिगण भी यहाँ पर निवास किया करते हैं ॥४१॥ विष्णु
काञ्चा में साक्षात् श्रीहरि विराजमान रहते हैं और शिव काञ्ची में
स्वयं भगवान् शिव विराजते हैं । दोनों में अभेद भाव जो भक्ति होती
है उससे मनुष्य के करतल में ही मुक्ति देवी स्थित रहा करती है । जब
इन दोनों देवों में विभेद की भावना उत्पन्न हो जाती है तो बहुत बुरी
कुत्सित गति हो जाती है ॥४२॥

सकृद्दृष्ट्वा जगन्नाथ मार्कण्डेयहृदे प्लुतः ।

विनाज्ञानेन योगेन न मातुः स्तनपोभवेत् ॥४३॥

रोहिण्यामुदधोस्नात्वा इन्द्रद्युम्नहृदेतथा ।
 भुक्त्वातिवेदितंविष्णोर्वैकुण्ठेवसतिलभेत् १४५।
 दक्षयोजनविस्तोरणं क्षेत्रंशङ्खीपरि स्थितम् ।
 चतुर्भुजत्वमायान्तिकोटा अपिनमंशयः १४६।
 कार्तिक्यां पुष्करे स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा सदक्षिणाम्
 भोजयित्वा द्विजान्मकत्या ब्रह्मलोके महीयते १४६।
 सकृत्स्नात्वाहृदे तस्मिन्पूर्वं दृष्ट्वासमाहितः ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो जायते द्विजसत्तम १४७।
 पष्टिवर्षं सहस्राणि योगान्म्यासेन यत्फलम् ।
 मौकरे विधिवत्स्नात्वा पूजयित्वा हरिं शुचिः १४८।
 सप्तजन्मकृत पापं तरस्यणादेव नश्यति ।
 तीर्थराज महापुण्य सर्वतीर्थनिषेदितम् १४९।

एक ही बार भगवान् जगन्नाथ जी के दर्शन करके तथा मार्कण्डेय हृद में निमज्जन करने वाला पुण्य बिना ही ज्ञान और योग के फिर दूसरा जन्म ग्रहण कर भयनी माता का स्नान प्राप्त नहीं किया करता है । रोहिणी में उदधि में स्नान करके एवं इन्द्रद्युम्न हृद में स्नान करके तथा भगवान् विष्णु देव के निवेदित महाप्रसाद का ग्रहण करके मानव वैकुण्ठ में निवास प्राप्त किया करता है १४३।१४४। बस मोक्ष के विस्तार वाला क्षेत्र शङ्ख के ऊपर स्थित है । वहाँ पर कोट भी चतुर्भुज रूप की प्राप्त हो आया करते हैं । कार्तिकी पूर्णिमा के दिन पुष्कर में स्नान करके दक्षिणा से युक्त श्राद्ध करे तथा भक्ति की भावना में द्विजों को भोजन करावे । फिर यह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है १४५।१४६। हे द्विवसन्तम ! छिष्ट द्विज एक बार हृद में स्नान करके तथा समाहित होकर मूष का दर्शन जो करता है वह सब पापों से विनिर्मुक्त हो आया करता है १४७। साठ हजार वर्ष तक योगान्म्यास करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है तीर्थ में विधि पूर्वक स्नान करके और परम शुचि होकर

श्रीहरि का पूजन करके पात्र जन्मों में किया हुआ पात्र उनी शरु में नष्ट हो जाता है । तीर्थंशर महान पुण्यशाली है और समस्त तीर्थों के द्वारा निवेदित होता है । ४८-४९।

कामिनां सर्वजन्तूनामोपित्तं कर्मनिर्भवेत् ।
 वेप्यां स्नात्वा शुचिभूत्वा कृत्वा माधवदर्शनम् ।
 भुक्त्वा पूष्यवता भोगान्ते माधवतां व्रजेत् । १५०।
 माघे मासि नरः स्नात्वा त्रिवेप्यां भक्तिभावितः ।
 बदरीकीर्तनात्पुष्यं तत्तमाप्नोति मानवः । १५१।
 दशान्वमेधिकं तीर्थं दशयज्ञफलप्रदम् ।
 सक्षेपात्कथितं पुत्र ! किं भूमः श्रोतुमिच्छसि । १५२।
 वदप्यत्यं हृद्ये क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
 क्षेत्रस्यं स्मरणादेव महापातकिनो नराः ।
 विमुक्तकिल्बिषाः सद्यो मरणा मुक्तिभागिनः । १५३।
 अन्यतीर्थे कृतं येन तपः परमदारुणम् ।
 तत्समा बदरीयात्रा मनसाऽपि प्रजायते । १५४।
 बहूनि सन्ति तीर्थानि दिवि भूमौ रसातले ।
 बदरीसदृश तीर्थं न भूतं न भविष्यति । १५५।
 अश्वमेघसहस्राणि वायुभोज्ये च यत्फलम् ।
 क्षेत्रान्तरे विशालायां तत्फलं क्षणमात्रतः । १५६।

वेणी में स्नान करके परम शुचि होकर श्री माधव का दर्शन करे तो कामताप रक्षने वाले पुरुषों के कर्मों से समस्त जन्मों का अमीष्ट सिद्ध हुआ करते हैं । पुष्यवान् पुरुषों के सुखीय भोगों को भोगकर अन्त में श्रीमाधव के स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं । १५०। माघमास में अनुप्य भक्ति की भावना से त्रिवेणी में स्नान करके मानव बदरी कीर्तन से उस पुष्य को समाप्त कर दिया करता है । १५१। यह तीर्थ दश अश्व-

मेघों के दश यज्ञों के फलों का प्रदान करने वाला होता है । हे पुत्र ! हमने यह प्रति सूक्ष्म रीति से आपको बतला दिया है । अब आगे फिर तुम क्या श्रवण करना चाहते हो ? श्रीस्कन्द प्रभु ने कहा — श्री हरि का बदरी नाम वाला क्षेत्र तीनों लोकों में परम तुल्य है । इस क्षेत्र के केवल स्मरण करने मात्र से महान पातकों के करने वाले नर भी तुरन्त ही विमुक्त पायों वाले हो जाया करते हैं और अन्त समय में मुक्ति प्राप्त करने के अधिकारी हो जाते हैं । १५२।१३। अन्य तीर्थ में जितने परम वाक्य उपस्थित की है उसके तुल्य तो मन से भी की हुई बदरिकाश्रम की यात्रा हो जाती है । दिवलोक, भूमण्डल और रसातल में बहुत से तीर्थ हैं किन्तु इस बदरी के महेश कोई भी तीर्थ न तो प्रब तरु हुआ और न होगा अश्वमेध सहस्रो के तथा वायु भोज्य में जो फल होता है और अन्य क्षेत्रों में जो परम विशाल हैं जो पुण्य का फल होता है वह यहाँ पर एक क्षण मात्र में ही हो आया करता है । १५४।१५५।१५६।

कृते मुनिसप्रदा प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा ।

विशाला ह्यपरे प्रोक्ता कली बदरिकाश्रमः । १५७।

स्थूलसूक्ष्मशरीरं तु जीवस्य वसतिस्थलम् ।

तद्विनाशयति ज्ञानद्विशालातेन कथ्यते । १५८।

अमृतं ज्वते या हि बदरोतद्योगतः ।

बदरी कथ्यते प्राज्ञैश्च पीणां यत्र सञ्चयः । १५९।

त्यजेत्सर्वाणि तीर्थानि काले काले युगे युगे ।

बदरीं भगवाग्विष्णुर्न मुञ्चति कदाचन । १६०।

सर्वतीर्थावगाहेन तपोयोगसमाधितः ।

तत्फलं प्राप्यते सम्यग्बदरीदशानाद् गुह ! । १६१।

यष्टिवर्षं सहस्राणि योगान्यासेन यत्फलम् ।

वाराणस्यां दिनेकेन तत्फलं बदरीं गतो । १६२।

तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानां वसतिस्तथा ।
ऋषीणां वसतिर्यत्र विशालातेनकथ्यते ।६३।

कृतयुग में मुक्ति के प्रदान करने वाली बताई गई है, त्रैतायुग में भोगों की सिद्धियों के प्रदान करने वाली कही गई है । द्वापर युग में परम विशाला होती है और इस कलियुग में वह बदरिकाश्रम ही होता है । १५७। जीव का सूक्ष्म, सूक्ष्म शरीर स्थल में बसता है । वह ज्ञान से विनाश को प्राप्त हो जाता है । इसी से विशाला कही जाती है । जो बदरी तरु के योग से अमृत का स्रवण किया करती है इसीलिए प्राज्ञ पुरुषों के द्वारा इसको बदरी कहा जाता है जहाँ पर ऋषियों का सञ्चय होता है । १५८-१६१। युग-युग और काल-काल में समस्त तीर्थों का त्याग कर देते हैं किन्तु भगवान् विष्णु बदरी को कभी भी त्याग नहीं किया करते हैं । १६०। हे शृङ्ग ! जो अन्य समस्त तीर्थों के अवगाहन करने से तथा तथा तथा योग की समाधि से पुण्य-फल होता है वह अच्छी तरह से बदरी के दर्शन मात्र से हो जाया करता है । १६१। साठ हजार वर्ष तरु योग के अभ्यास से जो फल होता है वह वाराणसी में एक दिन में और बदरी में गमन मात्र में ही हो जाया करता है । जहाँ पर तीर्थों का निवास है तथा देवों की जो वसति है एवं ऋषियों का जो आवास स्थल है इसी से यह विशाला कही जाती है । १६२-१६३।

३० — कार्तिकमासव्रतप्रशंसनवर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्च व नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत् ।१।
सूत ! नः कथितम्पुण्यं माहात्म्यञ्चिन्तय च ।
भूयोऽन्यच्छ्रोतुमिच्छामः कार्तिकस्य च वैभवम् ।२।
कली कलुषचिन्ताकां नराणां पापकर्मणाम् ।
संसारार्थीनिमग्नाभनापासेन कागतिः ।३।

को धर्मः सर्वघमणामधिको मोक्षसाधकः ।
 इहाऽपि मुक्तिदो नृणामेतत्त्वं कथय प्रभो ! १४।
 भवद्भिर्भयं दहं पृष्टस्तदेतत्पृष्टवाग्मुनिः ।
 नारदो ब्रह्माणः पुत्रो ब्रह्माणं तु जगद्गुरुम् १५।
 तथैव सत्यभामा च श्रीकृष्णं जगदीश्वरम् ।
 अपृच्छत् कार्तिकस्मैव वैभवं श्रवणोत्सुका १६।
 बालखिल्यंश्च ऋषिभिर्यदुक्तमृषिसंसदि ।
 श्रीसूर्यादिगणसंवादरूपेणाऽतिमनोहरम् १७।

महान श्री नारायण प्रभु के चरणों में नमस्कार करके तथा नरोत्तम नर को प्रणाम करके एवं देवी सरस्वती को प्रणाम करके इसके अनन्तर जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए (मङ्गला चरण श्लोक है) ऋषिगण ने कहा—हे श्री सूतजी ! आपने परम पुण्यमय माश्विन मास का माहात्म्य हमारे सामने वर्णन किया था । अब फिर हम लोग सब कार्तिक मास का वैभव आपके मुखारविन्द से श्रवण करना चाहते हैं । १४। इस महान घोर कलियुग में कल्पित चित्तों वाले पाप कर्मों में निमग्न मनुष्यों की जो इस सत्तार रूपी सागर बुदकियाँ खा रहे हैं उनकी बिना ही परिश्रम के क्या गति होगी ? ऐसा कौन सा समस्त धर्मों में भी अधिक धर्म है जो मोक्ष का साधक हो ? हे प्रभो ! जो इस लोक में भी मुक्ति प्रदान करने वाला हो उसे ही प्रायः अब तात्कालिक रूप से वर्णन कीजिए वही कृपा होगी । १५। श्रीसूतजी ने कहा—आपने जो मुझसे पूछा है यही ब्रह्माजी के पुत्र देवर्षि श्री नारद जी ने जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी से पूछा था । इसी प्रकार से सत्यभामा देवी ने जगदीश्वर प्रभु श्रीकृष्ण से पूछा था क्योंकि वे इस कार्तिक मास के वैभव के श्रवण करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थीं । बालखिल्य ऋषियों की समा में श्री सूर्य घोर प्रवण के सम्वाद के रूप से जो अत्यन्त मनोहर कहा था । १६। १७।

कैलासे शङ्करेणैवकार्तिकस्य च वभवम् ।
 वर्णितं षण्मुस्याऽग्रे नानाख्यानसमन्वितम् । ८।
 पृथग्प्रतिनारदेन कथितं च माहात्म्यकम् ।
 कार्तिकस्य च विप्रेन्द्रा श्रुत्वा ब्रह्ममुखात्पुरा । ९।
 एकदा नारदो योगी सत्यलोकमुपागतः ।
 पप्रच्छ विनयेनैव सर्वलोकपितामहम् । १०।
 पापेन्धनस्य घोरस्य शुष्काद्रस्य च भूरिशः ।
 को वह्निर्दहते ब्रह्मस्तद्भवान्वक्तुमर्हति । ११।
 नाऽज्ञातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्माण्डातगतस्य यत् ।
 विद्यते तव देवेश त्रिविधस्य सुनिश्चितम् । १२।
 मासनाम्प्रवरो मासो देवातामुत्तमोत्तमः ।
 तीर्थानि तद्विशेषेण कथयस्व पितामह ! । १३।
 मासानां कार्तिकः श्रेष्ठो देयानाम्मघुसूदनः ।
 तीर्थानारायणाख्यं हि त्रितयंदुर्लभं कलौ । १४।

कैलास पर्वत पर भगवान् षण्मुख के सामने अनेक आख्यानों से समन्वित कार्तिक मास का वैभव को भगवान् शङ्कर को वर्णित किया है । हे विप्रेन्द्राण ! ब्रह्माजी के मुख से श्रवण कर सर्वप्रथम श्री नारद जी ने कार्तिक मास का माहात्म्य पहिले कहा है । एक बार योगी राज श्री नारद जी भ्रमण करते हुए सत्यलोक में प्राप्त हो गये थे । उस सत्यलोक में पितामह से उन्होंने परम विनय के भाव से पूछा था । ८। ९। १०। देवर्षि ने कहा— हे ब्रह्मन् ! अधिकांश में शुष्क घोर मोर्द्र (भोगा हुए) घोर पाह रूपी ईंधन को कौन सी वह्नि है जो जलाकर भस्म कर सकती है ? इसे पाप कृपा करके हमको बतलाने के योग्य है । हे देवेश ! तीनों लोकों में ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तीन प्रकार के मास पदा जो सुनिश्चित हैं वह अज्ञात नहीं है अर्थात् सभी जानते हैं । हे पितामह ! सब मासों में जो प्रकट मास हो तथा सब देवों में जो उत्तमोत्तम

देव हो और जो भी खेप्ट तीर्थ हों उन्हें आप बताना दीजिए । ११-१३। श्रीप्रह्लादी ने कहा—समस्त मासों में कार्तिक मास खेप्ट होता है और सब देशों में भगवान भगुगुवन देव परम खेप्ट देव है तथा नारायण नाम वाला तीर्थ सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है । ये तीर्थों ही इस लोक में कलिमुग में परम ये तीर्थों दुर्लभ हैं । १४।

भगवंस्तव दासोऽस्मि भक्तोऽस्मि हरिवरुणभः ।
 वैष्णवाभ्युद्भि मे धर्मसर्वज्ञोऽसि पितामह ! । १५।
 आदो कार्तिकमाहारम्यं वक्तुमहंति मे प्रभो ! ।
 दीपदानस्य माहारम्यं प्रतिनानियमांस्तथा । १६।
 गोपीचन्दनमाहारम्यं तुलस्माश्च तथा विभो ! ।
 धान्याश्रय च माहारम्यं विधि स्नानादिकस्य च ।
 व्रतारम्भः कदा कार्यं उद्यापनविधि तथा । १७।
 यत्किञ्चिद्द्रव्यैर्वधमं तत्सर्वं वक्तुमहंति ।
 येनाऽहं त्वत्प्रसादेन पदं यास्याम्यनमयम् । १८।
 इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा हृषंसमन्वितः ।
 राधादामोदयं स्मृत्वा प्रोवाचतनुजम्प्रति । १९।
 साधुपृष्टं त्वया पुत्र ! लोकीद्वरणहेतवे ।
 कथयामि न सन्देहः कार्तिकस्य च वैभवम् । २०।
 एकतः सर्वतीर्थानिसर्वेयजाः सदाक्षिणाः ।
 कार्तिकस्यनुमासस्यकलानाहंतिपण्डितोऽशोम् । २१।

श्री नारदजी ने कहा—मैं तो आपका दास हूँ और श्रीहरि भगवान का भिय भक्त हूँ । हे पितामह ! आप ही सर्वज्ञ हैं । मुझे सब वैष्णव धर्म बतानाह्ये । १५। हे प्रभो ! सबसे आदि में कार्तिक मास का माहारम्य आप बतलाने के योग्य होते हैं । दीपदान का माहारम्य तथा ब्रह्मचारियों के नियमों को भी बतलाने की कृपा कीजियेगा । १६।

हे विभो ! गोपी चन्दन का तथा तुलसी का माहात्म्य भी बतलाइये । धात्री (श्रवणा) का माहात्म्य और स्नान आदि करने का विधान भी बतलाइये । इस व्रत का आरम्भ कब करना चाहिये तथा इसके उद्यापन करने की विधि क्या होती है ? जो कुछ भी वैष्णवों का धर्म हो वह सभी कुछ आप बतलाने के योग्य हैं । जिससे आपके प्रसाद से मैं घनामय पद को प्राप्त कर लूँगा । १७।१८। श्रीसूतजी ने कहा— इस तरह के अपने पुत्र नारद के वचन को सुनकर ब्रह्माजी परम हर्ष से सयुक्त हो गये थे । फिर भगवान् श्री राधा दामोदर जो के चरणों का स्मरण करके ब्रह्माजी ने अपने पुत्र से कहना आरम्भ किया यः । १९। श्रीब्रह्माजी ने कहा— हे पुत्र ! तुमने परम सुन्दर प्रश्न किया है । यह तुम्हारा प्रश्न तो समस्त लोगों के उद्धार का हेतु है । मैं इस कार्तिक मास के वैभव को कहूँगा— इसमें तनिक भी सन्देह मत करो । २०। एक और समस्त तीर्थ और दक्षिणा से समन्वित सभी यज्ञ हो और दूसरी ओर कार्तिक मास का माहात्म्य हो तो वे सब इस मास के वैभव की सोलहवीं कला को भी प्राप्त करके योग्य नहीं होते हैं । २१।

एकतः पुष्करेवासः कुरुक्षेत्रे हिमालये ।

एकतः कार्तिकः पुत्र सर्वपुण्यधिको मतः । २२।

स्वर्णानि मेरुतुल्यानि सर्वदानानिचैकतः ।

एकतः कार्तिको वत्स ! सर्वदाकेशवप्रियः । २३।

यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्तिके ।

तस्य क्षयं न पश्यामि मयोक्तं तव नारद ! । २७।

सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यंप्राप्यदुर्लभम् ।

तथाऽऽत्मानंसमादद्यान्नभ्रश्येतयथापुनः । २५।

दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यं कार्तिकोक्तं चरेन्नयः ।

धर्मं धर्मभृतांश्रेष्ठ ! समातापितृघातकः । २६।

कार्तिकः खलुर्व मासः सर्वमासेषु चोत्तमः ।

पुण्यानाम्परमं पुण्यं पावनानाञ्चपावनम् ।२७।

अस्मिन्मासेत्रयस्त्रिंशद्देवाः सन्निहिता मुने ।

अत्रत्नानिदानानिभोजनानिब्रतानिच ।२८।

हे पुत्र ! एक घोर तो गुह्यर में निवास तथा कुछ क्षेत्र में घोर हिमालय में निवास और दूसरी घोर कार्तिक मास का पुण्य हो तो यह कार्तिक सबसे अधिक पुण्य वाला होता है । सुमेरु पर्वत के समान सुवर्ण का राशि (डेर) और अन्य समस्त प्रकार के दान सब एक घोर है तथा एक घोर है वत्स ! सर्वदा भगवान् केशव का परम प्रिय कार्तिक मास है । कार्तिक मास में भगवान् विष्णु का उद्देश्य ग्रहण करके जो कुछ भी पुण्य किया जाता है हे नारद ! यह मैंने तुमको बतला दिया है कि यह कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं हुआ करता है ऐसा मैं देख रहा हूँ ।२२।२३।२४। इस परम दुर्लभ मनुष्य जीवन को प्राप्त करके यह स्वर्ग का एक प्रकार का सोपान जैसा ही है । यह मारमा को उस प्रकार से दे दिया करता है कि जहाँ से फिर कभी भ्रंश होता ही नहीं है ।२५। इस घटि दुःप्राप्य मनुष्य जीवन को प्राप्त करके कार्तिक मास में बतलाये हुए व्रतों एवं नियमों का जो समाचरण नहीं किया करता है हे धर्म धारियों में परम वरिष्ठ ! वह माता-पिता का धातक ही हुआ करता है । यह कार्तिक मास सभी अन्य मासों में अत्युत्तम मास होता है । यह पुण्यों में परम पुण्य है और पावनों में परम पावन होता है । हे मुने ! इस मास में तैत्तिरीय कठोड़ देवता सन्निहित हुआ करते हैं । इस मास में स्नान, दान, भोजन और व्रत सभी परम श्रेष्ठतम हुआ करते हैं ।२६।२७।२८।

तिलधेनुं हिरण्यञ्च रजतं भूमिवाससी ।

गौप्रदानानि कुर्वन्ति सर्वभाधेन नारद ! ।२९।

तानि दानानि दत्तानि गृह्णन्ति विधिवत्सुराः ।
 यत्किञ्च दत्तं विप्रेन्द्र ! तपश्चैव तथा कृतम् ॥२०॥
 तदक्षय्यफलं प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ।
 पापानां मोक्षणञ्चैव कार्तिके मासि शस्यते ॥२१॥
 तस्माद्यत्नेन विप्रेन्द्र ! कार्तिके मासि दीयते ।
 यत्किञ्चित् कार्तिके दत्तं विष्णुमुद्दिश्य मानवैः ॥२२॥
 तद्दक्षयं हि लभते अन्नदानं विशेषतः ।
 यथा नदीनाम्बिप्रेन्द्र शीलानाञ्चैव नारद ! ॥२३॥
 उदधीनाञ्च विप्रर्षे ! क्षयोर्नैवोपपद्यते ।
 दानं कार्तिकमासे तु यत्किञ्चिद्दीयते मुने ! ॥२४॥
 न तस्याऽस्ति क्षयो विप्र ! पापं याति सहस्रधा ।
 सम्प्राप्तं कार्तिकदृष्ट्वा पराश्रयस्तु वर्जयेत् ॥ २५ ॥

हे नारद इस महान पुण्यमय मास में तिल, धेनु, सुवर्ण, रजत (चांदी), भूमि, वस्त्र, गौ इनका सर्ग भाव से दान किए जाते हैं । इन किए हुये दानो को विधि के सहित देवगण ग्रहण किया करते हैं । हे विप्रेन्द्र ! जो कुछ भी इस मास में दिया गया है वह उस प्रकार का परम तप ही किया हुआ समझना चाहिये ॥२६॥३०॥ इसका प्रभ विष्णु श्री विष्णु भगवान ने प्रदत्त फल बतलाया है । समस्त पापों का मोक्षण कार्तिक मास में ही प्रशस्त बतलाया जाता है । हे विप्रेन्द्र ! इसीलिए यत्न पूर्वक कार्तिक मास में विष्णु का उद्देश्य करके यथावि रन्धी को समर्पण करने को बुद्धि रखते हुए मनुष्यों को जो कुछ भी हो दान करना चाहिये । वह भक्षय लाभ किया करता है विशेष रूप से अन्न का दान परम भक्षय होता है । हे नारद ! हे विप्रेन्द्र ! जिस प्रकार से नदियों का, शैलो का घोर है विप्रर्षे ! सागरों का कभी क्षय नहीं हुआ करता है । वैसे ही हे मुने ! कार्तिक मास में जो कुछ भी दिया जाता है हे विप्र ! उसका कभी क्षय नहीं होता है घोर पाप सहस्रों

ठुकड़े होकर मष्ट हो जाया करता है। कार्तिक मास को प्राप्त हुआ समझकर जो पदाये भद्र का प्रहण करना छोड़ देना है वह परम पुण्य किया रहता है । ३१-३५।

दिने दिनेऽतिकृच्छस्य फलम्प्राप्तोत्ययत्नतः ।
 न कार्तिकसप्तो मासो न कृतेन मम युगम् । ३६।
 न वैवस्वदश शास्त्रं न तीर्थं गङ्गाया समम् ।
 न चाऽन्नसहस्रं दानं न सुखंभार्ययाभ्रमम् । ३७।
 न्यायेनोपाजितं द्रव्यं दुर्लभं दानकारिणाम् ।
 दुर्लभं मर्त्यधर्मिणां तीर्थं च प्रतिपादनम् । ३८।
 कार्तिके मुनिशार्दूल ! शालग्रामशिलार्चनम् ।
 स्मरणं वासुदेवस्य कर्तव्यं पापभीरुणा । ३९।
 एतादृश कार्तिकश्च अकृतेर्नैव यो नयेत् ।
 पूर्वं कृतस्य पुण्यस्य क्षयमाप्तोत्यसंशयम् । ४०।
 अशक्तैः क्वं कार्यं कार्तिकव्रतमुत्तमम् ।
 येन तत्फलमाप्तोति तन्मे धद पितामह ! । ४१।

दिन-दिन में उस दूसरे के भद्र को त्याग कर देने वाले पुण्य को अतिकृच्छ्र महा व्रत करने का पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है और कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। इस कार्तिक के समान अन्य कोई भी मास नहीं है और कृतयुग के तुल्य कोई युग नहीं है । ३६। वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है और गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं है, अन्न के सहस्र कोई भद्र दान नहीं है और माया के सहस्र कोई दूसरा सुख नहीं होता है। न्याय से तपार्चित द्रव्य दान करते वार्त्तों को परम दुर्लभ होता है। मर्त्य धर्म वालों को तीर्थ में प्रतिपादन करना भी दुर्लभ है । ३७। ३८। हे मुनिशार्दूल ! कार्तिक मास में न शालग्राम शिला का अर्चन और मनवान वासुदेव का स्मरण पाप भीरु मनुष्य को भवदय ही करना चाहिये। ऐसे कार्तिक मास को जो शठव से ही व्यतीत करता

है वह पूर्व में किए हुये पुण्य का बिना सशय के क्षय प्राप्त किया करता है ।३६।४०। श्री नारद जी ने कहा—हे पितामह ! जो अशक्त हो उसे इस उत्तम कार्तिक का व्रत कैसे करना चाहिये जिससे कि वह उस फल को प्राप्ति कर लेवे, कृपा करके अब माप यही मुझे बतलाइए ।४१।

अशक्तस्तु यदा मर्त्यस्तदैवं व्रतमाचरेत् ।
 अन्यस्मैद्रवियं दत्त्वाकारयेत्कार्तिकव्रतम् ।४२।
 तस्मात्पुण्यं प्रगृह्णीत दानसङ्कल्पपूर्वकम् ।
 द्रव्यदानेऽप्यशक्तश्चेद्यदा देवपिसत्तम । ।४३।
 तदा तेन प्रकर्तव्यं पानं तीर्थजलस्य च ।
 तत्राऽप्यशक्तो यो मर्त्यस्तेन नित्यं हरेमुंदा ।४४।
 स्मरणं च प्रकर्तव्यं नाम्ना नियमपूर्वकम् ।
 अखण्डितं तदा तेन कार्तिकव्रतजं फलम् ।४५।
 विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ।
 शिवविष्णवोर्गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ।४६।
 दुर्गाटव्या स्थितो वाऽथ यदि वाऽऽपद्गतो भवेत् ।
 कुर्यादश्वत्थमूले तु तूलसीनां वनेष्वपि ।४७।
 विष्णुनामप्रवर्धाना गायनं विष्णुसत्तिघ्नौ ।
 गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोतिमानवः ।४८।
 वाद्यकृत्पुरुषश्चाऽपि वाजपेयफलं लभेत् ।
 सर्वतीर्थाविगाहोत्थ नर्तकः फलमाप्नुयात् ।४९।

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जब अनुष्य अशक्त एवं सामर्थ्य से हीन हो तो उसको इस व्रत का इस प्रकार से भाव रख करना चाहिये कि किसी अग्न्य को घन देकर इस कार्तिक मास के व्रत करावे ।४२। उससे दान और सङ्कल्प पूर्वक इस व्रत पुण्य को स्वयं ग्रहण कर लेवे । हे देवपि सत्तम ! जब अशक्त भी हो तो भी द्रव्य दान से इसको किया जा सकता है यदि द्रव्य देने की भी सामर्थ्य न हो तो उस समय में

उमको केवल तीर्थ के जल का पान ही करना चाहिए । यदि यह करने में भी अशक्त हो तो उसको प्रसन्नता से नित्य श्रीहरि का स्मरण नियम पूर्वक नाम से करना चाहिए । ४३।४४। तभी यह कार्तिक मास का व्रत का फल समझे प्रखण्डित होता है । भगवान् विष्णु भगवा भगवान् शिव के भालय में हरि जागर करना चाहिये । शिव तथा विष्णु के भालय के प्रभाव होने पर सभी देवी के भालयों में भी यह अवश्य ही करे । ४५।४६। दुर्गादेवी में स्थित यदि वा मापद्गत हो तो किसी अशक्त (पील) के भून में या तुलसी के वनों में हथे कर लेवेग ४७। भगवान् विष्णु की सन्निधि में विष्णु के नाम के प्रदम्बों का गायन करने से यह मानव एक सहस्र गोशो के प्रदान करने का फल प्राप्त किया करता है । वाशो के करने वाला पुरुष भी वाजपेय यज्ञ करने का पुण्य फल प्राप्त करता है । जो नृत्य करने वाला वहाँ पर नर्तक होता है वह भी सब तीर्थों के भद्रगाहन करने के पुण्य-फल की प्राप्ति कर लिया करता है । ४८।४९।

सर्वमेतत्तलभेःपुण्यमेतेषां द्रव्यदः पुमान् ।
 श्रवणादर्शनाद्वाऽपि पडशं फलमाप्नुयात् । ५०।
 आपद्गतो यदाऽप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नरः ।
 ध्यायितो वाऽथवा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि मार्जनम् । ५१।
 उद्यापनविधिं कर्तुं शक्नोति यो व्रतस्थितः ।
 ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्ब्रतसम्पूतिहेतवे । ५२।
 अशक्नो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत् ।
 तस्त वा रक्षणं कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि प्रयत्नतः । ५३।
 श्रीविष्णोः पूजनाऽभावे तुलसीघात्रिपूजनम् ।
 सर्वाऽभावे व्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवामपि ।
 तस्याऽप्यभावे मनसि विष्णोर्नाम्नाऽनुकीर्तनम् । ५४।
 ब्रह्मन् ! ब्रह्म विधेयेण धर्मान् कार्तिकसम्भवान् । ५५।

इन सब कर्मानुष्ठानों को करने वालों को जो द्रव्य देने वाला है वह पुरुष इनके सम्पूर्ण पुण्य को प्राप्त कर लिया करता है । इनके दर्शन करने से तथा श्रवण करने से भी छटवाँ भाग फल प्राप्त होता है । प्राप्ति भक्त पुरुष कही पर भी जिस समय में जल की प्राप्ति नहीं किया करता है प्रथवा वह किसी व्याधि से युक्त हो तो उसको चाहिये कि भगवान् विष्णु के नामों का उच्चारण कर मार्जन मान ही कर लिया करे । १५०।५१। जो कोई मनुष्य व्रत में स्थित होकर उसके उद्यापन की विधि के सम्पादन करने में असमर्थ हो तो उसको व्रत की सम्पूर्ति के लिए पीछे ब्राह्मणों का भोजन करा देना चाहिए । यदि दीपदान करने की भी शक्ति न रहना हो तो पराये दीपों को ही प्रबोधित कर देना चाहिए । प्रथवा दूसरों के द्वारा जलाये हुए दीपों की वायु आदि से प्रयत्न पूर्वक सुरक्षा करनी चाहिए कि वे बुझने न पावें । यदि भगवान् विष्णु के पूजन करने का प्रभाव ही हो तो केवल तुलसी प्रथवा धानी (माँडला) का पूजन करना चाहिये । यदि सभी का अभाव हो तो प्रती को ब्राह्मणों का एवं गोम्री का प्रर्चन करना चाहिये । यदि कोई ऐसा ही स्थल हो जहाँ इन सभी का प्रभाव हो तो केवल मन में विष्णु के नामों का कीर्तन कर लेवे । देवर्षि प्रवर नारद जी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! विशेष रूप से कार्तिक मास में होने वाले घर्मों को बतलाइये । ५२—५५।

३१—सर्वेशाखमासप्रशंसनं तथा स्नानमाहात्म्यवर्णनं

नारायणं नमस्कृत्य नरर्चैव नरोत्तमम् ।
 देवी सरस्वती व्यास ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
 भूयोऽप्यङ्गभुवं राजा ब्रह्मणा परमेष्ठिनः ।
 पुण्यं माघवमाहात्म्यं नारदं पर्यपृच्छत ॥२॥
 सर्वेषामपि मसानां त्वत्तो माहात्म्यमञ्जसा ।
 श्रुतं मया पुरा ब्रह्मण्यदाचोक्तं तदा त्वया ॥३॥

वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम् ।
 इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माघवत्स्य च ।३।
 श्रोतुं कौतूहलं ब्रह्मन्कथं विष्णुप्रियोह्यसौ ।
 के च विष्णुप्रियाधर्मासासेमाघवत्स्यमे ।४।
 तथाऽप्यस्य तु कर्तव्याः के धर्मा विष्णुवत्सभाः ।
 किं दानं किं फलं तस्य कमुद्दिश्याऽऽचरेदिमान् ।५।
 कर्तव्यैः पूजनीयोऽसौ माघवो माघवापमे ।
 एतस्मात् ! विस्तार्य मह्यं श्रद्धावतेवद ।६।
 मया पृष्ठं पुरा ब्रह्ममासधर्मनिपुरातनान् ।
 व्याजहारपुराप्रोक्तं यच्चिद्धमे परमात्मना ।७।
 ततो मासा विशिष्योक्ताः कार्तिको माघ एव च ।
 माघवस्तेषु वैशाखं सासानामुत्तमं व्यधात् ।८।

बङ्गलाचरण — नमस्कार नारायण को नमस्कार करके तथा
 नरोत्तम नर, देवी सरस्वती एवं व्यास को प्रणाम करके अब वाक्य का
 उच्चारण करना चाहिये । श्री सूतजी ने कहा — राजा ने फिर भी पर-
 मेष्ठी ब्रह्माजी के बङ्गभू (जनपद) श्री नारद जी से परम पुण्यमय
 श्री माघव का माहात्म्य पूछा था । राजा पम्बरीष ने कहा—हे ब्रह्मन् ।
 सभी मासों का माहात्म्य प्रज्ञानक ही परिले देने प्राप्त हो मुता था । जिस
 समय मे प्राप्ति रहा था उस समय में कहा था कि इन समस्त मासों
 में वैशाख नाम सबसे प्रवर धर्मान् धोष्ठ है—ऐसा निश्चित है । हे
 ब्रह्मन् ! यह सुनने का बड़ा भापी हृदय में कौतूहल है कि यह विष्णु
 का श्रिय कैसे है ? इस माघव श्रिय मास मे नमस्कार विष्णु के श्रिय के
 धर्म कौन से है ? वहाँ पर भी इसको कौन से विष्णु के वत्स्य धर्म
 करने के योग्य है । तथा दान है और उसका बड़ा फल है और इन
 सबका समाचरण किसका उद्देश्य लेकर करना चाहिये । १ - २। माघव
 के शासन में स्त्रिये इन्हीं से यह भगवान् माघव पूजने के योग्य होते हैं ?

हे नारद ! यह सब विस्तार के साथ ब्रह्मज्ञान मुक्तकी माप हुआकर के बतलाइये ।६। देखि प्रथम नारद जी ने कहा — पहिले मेरे द्वारा ब्रह्माजी पुरातन मासों के घर्मों के विषय पूछे गये थे । परमात्मा श्री नारायण ने जो श्री देवी से पहिले बतनाया था वह कहा था । इसके अनन्तर विशेष करके कार्तिक और माघ ये दो मास बताने गये थे । उनमें माघव ने वैशाख को मासों में उत्तम कहा था ।७।८।

मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्ट प्रदायकः ।
दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः ।६।
धर्मयज्ञक्रियासारस्तपः सारः सुरार्चितः ।
विद्यानां वेदविद्यं व मन्त्राणां प्रणवोयथा ।१०।
भूरुह्याणां सुरतर्ष्वेनूनां कामधेनुवत् ।
शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ।११।
देवानां तु यथाक्षिप्णुर्वर्णानांब्राह्मणो यथा ।
प्रणवत्प्रियवस्तूनां भार्येवसुहृदांयथा ।१२।
आपगानां यथा गङ्गा तेजसांतुरविषंया ।
आयुधानां यथा चक्रं घातूनांकाञ्चनंयथा ।१३।
वैष्णवानांयथाहृदीरत्नानांकीस्तुभोयथा ।
मासानां धर्महेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा ।१४।

जैसे समस्त जीवों की माता हुमा करती है उसी भाँति सर्वदा धनीष्ट वस्तु का प्रदान करने वाला यह वैशाख मास हुमा करता है । इसकी ऐसी महिमा है कि यह दान, व्रत और स्नानों के द्वारा समस्त पापों का विनाश करने वाला है ।६। यह मास धर्म-यज्ञ और क्रियाओं का सार स्वरूप है तथा तपस्या का सार है और सुरों के द्वारा समर्पित है । समस्त विद्याओं में वेद विद्या के समान ही है । सम्पूर्ण मन्त्रों में जैसे परम प्रधान प्रणव होता है वैसे ही यह समस्त मासों में प्रमुख है । ऋषियों में कल्प वृक्ष के तुल्य तथा धेनुओं में कामधेनु के सदृश यह मास सर्वमें

श्रेष्ठ माना गया है । सब नागों में शेष और पक्षियों में गरुड़ की भाँति होता है । सब देवों में जैसे भगवान् विष्णु है—समस्त वर्णों में जिस तरह ब्राह्मण हैं वैसे ही यह मास होता है । प्रियतम वस्तुओं में प्राण के समान और हित के चिन्तक गृह्णों में भार्या के ही सदृश यह होता है । नदियों में भागीरथी गङ्गा जैसे सर्वश्रेष्ठ है तथा तेजस्वियों में जिस प्रकार से रवि होते हैं—माघुषों में सुदर्शन चक्र, धातुओं में सुवर्ण, वैष्णवों में रुद्रदेव, रत्नों में कोस्तुम होता है ठीक उसी भाँति से धर्म

मासों में वैशाख हुआ करता है ११०-१४।

नाग्नेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ।

वैशाखस्नाननिरस्ते मेघे प्रागर्थमोदयात् ११५।

लक्ष्मीसहायो भगवात्प्रीति तस्मिन्करोत्यलम् ।

जन्तूनांप्रीणान्पद्मदन्नेवहिजायते ११६।

तद्दृष्ट्वास्तस्मिन्नेन विष्णुः प्रीणात्यसंभयम् ।

वैशाखस्नाननिरस्ताञ्जनादृष्ट्वाऽनुमोदते ११७।

तावत्तापिविमुक्तोऽर्चैर्विष्णुलोकेमहीयते ।

सकृत्स्नात्त्वामेपसंस्थेसूर्येप्रातः कृताह्निकः ११८।

महापार्षद्विमुक्तोऽसी विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।

स्नानार्थं मासि वैशाखे पादमेकं चरेद्यदि ११९।

सोऽश्वमेघायुतानांश्वफलमाप्नोत्यसंशयम् ।

अथवाकूटचितास्तुकुर्यात्सङ्कल्पमानकम् १२०।

सोऽपि क्रतुशतंपुष्प लभेदेव न सशयः ।

यो गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मेपगते रवौ १२१।

सर्वबन्धविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।

श्लोकेषु यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च १२२।

इसके समान श्लोक में भगवान् विष्णु की प्रीति का विधायक प्रत्य कोई भी मास नहीं है । अर्पण (सूर्य) के उदय होने से पूर्व मेघ

के सूर्य के समय में जो पुष्य वंशाख मास में स्नान में निरत रहा करता है उस पर लक्ष्मी देवी के माय भगवान् प्रत्यधिक प्रीति किया करते हैं । जिस तरह से जन्तुओं की प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि भक्त से ही हुमा करती है उसी प्रकार से वंशाख मास के स्नान से निःसंशय भगवान् विष्णु प्रसन्न एवं वृत्त हुमा करते हैं । जो वंशाख मास के स्नान में निरत रहने वाले पुरुषों को देखकर मनुमोदिन होता है उतने मात्र के करने से भी मनुष्य पापों से विमुक्त हो जाता करता है और मन्त में विष्णु लोक जाकर प्रतिष्ठित होता है । एक बार मेषा राशि पर संस्थित सूर्य के रहने के समय में स्नान करके प्रातःकाल में जो भयना साहसिक कृत्य करने वाला है वह महान पापों से विमुक्त होकर भगवान् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त कर लिया करता है । वंशाख मास में स्नान करने के लिए यदि एक कदम भी चरण करता है तो वह पुरुष मयुत (दस हजार) भस्ममेष यज्ञो का फल प्राप्त कर लिया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है । यथवा कूट चित्त वाला होकर ऐसा करने का सङ्कल्प-भार कर लेता है वह भी सौ क्रतुओं के करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जो मेष राशि पर सूर्य के घाने पर स्नान करने के लिए घनुष्याम की जाता है वह इस सावागमन के सर्ग के बन्धन से विमुक्त होकर विष्णु भगवान् के सायुज्य की प्राप्ति कर लेता है । त्रैलोक्य में जो भी तीर्थ हैं और जो इस ब्रह्माण्ड के मन्तगत तीर्थ हैं हे राजेन्द्र ! वे सभी वाह्य पीड़े से जल में होते हैं । ११५—२२।

तानि सर्वाणि राजेन्द्र ! सन्ति बाह्येऽरूपके जने ।

तावल्लिखितपापानि गर्जन्ति यमशासने ॥२३॥

यावत्त कुर्वते जन्तुर्वंशाखे स्नानमम्भति ।

तीर्थादिदेवताः सर्वा वंशाखेमाप्तिभूमिषु ॥२४॥

बहिर्जलं समाश्रित्य सदा सन्निहितानृषः ।
 सूर्योदयं समारभ्य यावत्पङ्कघटिकावधि ॥२५॥
 तिष्ठन्ति चाऽऽज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ।
 तावद्भागच्छतां पुंसां शापं दत्त्वा मुदाकणम् ।
 स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र ! तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥२६॥

उतने समय तक यमराज के शासन में स्थित एवं लिखित पाप
 अपनी गर्जना किया करते हैं जब तक जीव वंशाख मास में जल में
 स्नान नहीं करता है । हे राजन् ! हे भूमिपालक ! तीर्थदि के समस्त
 देवगण वंशाख मास में जन के बाहिर समाश्रय लेकर सदा सन्निहित
 रहा करते हैं और वे सूर्य के उदय से लेकर जब तक ऋषियों की
 प्रवधि होती है तब तक मगवान विष्णु की आज्ञा से मनुष्यों की हित
 करने की कामना से ही वहाँ पर स्थित रहने हैं । उतने समय तक भी
 जो नहीं गमन करते हैं उनको वे मुदाकण क्षाप देकर हे राजेन्द्र ! अपने-
 अपने स्थान को प्रस्थान कर जाया करते हैं । इसलिए सूर्योदय से पूर्व ही
 अवश्य वंशाख मास में स्नान का समावरण करना चाहिये ॥२३-२६॥

३२-ज्ञानस्वरूपनिरूपण

अथ ज्ञानस्वरूपं तैवन्मिसाङ्गस्येन निश्चितम् ।
 क्षेत्रादिजायते येन तज्ज्ञानं हि निश्चयते ॥१॥
 वामुदेवः परं ब्रह्म बृहत्पक्षरघामनि ।
 आदावेकोऽद्वितीयोऽभूत्त्रिगुणो दिव्यविग्रहः ॥२॥
 सकार्यं मूलप्रकृतिः सकलाऽक्षरतेजसि ।
 प्रकाशोऽर्कस्परानीव तिरोभूता तदाऽभवत् ॥३॥
 सिसृक्षाऽथामवदास्य ब्रह्माण्डानां यदा तदा ।
 सकाला विबभूवादी महानाया ततो हिता ॥४॥

सां कालशक्तिभादाय वासुदेवोऽक्षरात्मना ।
 तिसृक्षयैक्षत यदा सा चुक्षोम तदेवहि ।५।
 तस्याः प्रधानपुरुषकोटयोजज्ञिरे मुने ! ।
 युज्यन्ते स्म प्रघनैस्ते पुरुषाश्चेच्छयाप्रभोः ।६।
 पुमानोनिदधुर्गर्भास्तेषु तेभ्यश्चजज्ञिरे ।
 ब्रह्माण्डानिह्यसङ्ख्यानितत्रैकंतुविविच्यते ।७।

भगवान् श्री नारायण ने कहा—सङ्ख्य दर्शन के द्वारा जो निश्चित किया गया है उस ज्ञान के स्वरूप को मैं तुमको बतलाता हूँ । क्षेत्र आदि का जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है वही ज्ञान अब बतलाया जाता है । इस बृहती अक्षर व्यास में वासुदेव परम ब्रह्म है । आदि काल में निर्गुण और दिव्य विग्रह वाला एक ही अद्वितीय हुआ था ।१।२। वह समस्त कार्यों की मूल प्रकृति सकल अक्षर तेज से युक्त सूर्य के प्रकाश में रात्रि के समान उस समय में तिरोभूत हो गई थी ।३। इसके अनन्तर जिस समय में उसकी ब्रह्माण्डों के सृजन करने की इच्छा हुई थी उस समय में आदि में फिर वह महामाया आविर्भूत हो गई थी । ।४। भगवान् वासुदेव ने अक्षरात्मा के द्वारा उस काल शक्ति की लेकर जिस समय में सृजन करने की इच्छा से देखा था उसी समय में उसने क्षोभ किया था ।५। हे मुने ! उससे करोड़ों प्रधान पुरुष समुत्पन्न हो गये थे और वे प्रभु की इच्छा से पुरुष प्रधानों के मुक्त हो गये थे ।६। पुमानों ने उनमें गर्भों को धारण किया था और उनसे समुत्पन्न हुए थे । असङ्ख्य ब्रह्माण्ड हुए थे उनमें से अब एक की विशेष विवेचना की जाती है ।७।

आदौ जज्ञे महास्तस्मात्पुंसो वीर्याद्विरण्मयात् ।
 महद्भारस्ततस्तस्माद्गुणाः सत्त्वादयस्त्रयः ।८।
 तमसः पञ्च तन्मात्रा महाभूतानि जज्ञिरे ।
 दशेन्द्रियाणि रजसा बुद्ध्यासहमहानसुः ।९।

सत्त्वादिन्द्रियदेवाश्च जायन्ते स्म मनस्तथा ।
 सामान्यतस्तत्त्वसञ्ज्ञा एते देवाः प्रकीर्त्तिताः । १०।
 प्रेरिता वासुदेवेन स्वस्वाशौरेश्वरं वसुः ।
 वजीजन्तविराट् सञ्ज्ञं ते चराचरसंश्रयम् । ११।
 सच वैराजपुरुषः स्वमृष्टास्वप्स्वशेत यत् ।
 तेन नारायण इति प्रोच्यते निगमाविभिः । १२।
 तन्नाभिपद्माद् ब्रह्माऽऽमोद्वाजसौज्यं हृदम्बुजात् ।
 जज्ञे विष्णु सत्त्वगुणो ललाटात्तामसो हरः । १३।
 एतेभ्य एव स्थानेभ्यस्ति स्रष्टा संश्रयकृतयः ।
 तन्नासीत्तामसीदुर्गासावित्रीरात्रसीतथा ।
 सात्त्विकी श्रीश्चेति सर्वा वस्त्राऽलङ्कारवोहिताः । १४।

यादि में उस पुरुष के हिरण्यव वीर्य से महान उत्पन्न हुआ था । उसने महद्द्वार उत्पन्न हुआ पर श्रीर फिर उस महद्द्वार से सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण समुत्पन्न हुए थे । १०। तम से पञ्च तन्मायाएँ पञ्च महामूत्र समुत्पन्न हुए थे । रज से दश इंद्रियाँ श्रीर बुद्धि के साथ महान प्रभु उत्पन्न हुए थे । ११। सत्त्व गुण से इन्द्रियो के देवता तथा मन की समुत्पत्ति हुई थी । सामान्य रूप से ये सब देव तत्त्व सज्ञा नामे थे । ऐसा कीर्त्तित किया गया है । १०। नरवान वासुदेव के द्वारा प्रेरित होकर अपने-अपने प्र'सो से ईश्वरीय वसु को उत्पन्न किया था श्रीर वे चंद्र श्रीर श्वरों का संश्रय विराट सज्ञा नामे थे । ११। श्रीर वह वैराज पुरुष अपने द्वारा समुत्पन्न किये हुए जल में स्नान करते थे इसीसे निगम आदि के द्वारा वह नारायण इस नाम से कहे जाये करते हैं । १२। इसके अनन्तर उनके हृदय के अम्बुज में रात्रस ब्रह्मा समुत्पन्न हुये थे, सत्त्व गुण विशिष्ट विष्णु हुए श्रीर ललाट से तमोगुण युक्त हर की उत्पत्ति हुई थी । १३। इन्ही स्थानों से ये तीन शक्तियाँ हुई थी । वहीं

पर तामसी देवी दुर्गा थी, राजसी भगवती सावित्री थी और सात्त्विकी महालक्ष्मी हुई थी ये सभी ब्रह्म और बलद्वारा से विभूषित थीं । १४।

ता वराजाज्ञया श्रीश्च ब्रह्मादीन्प्रतिपेदिरे ।

दुर्गा रुद्रश्च सावित्री ब्रह्माणं विष्णुमग्निमा । १५।

चण्डिकायाश्च दुर्गाया बंशेनाऽऽसन्सहस्रशः ।

त्रयीमुख्याश्च सावित्र्याः शक्तयोऽशेन जज्ञिरे ।

दुस्सहाप्रमुखाश्चासन्नशेनैव श्रियो मुने ! । १६।

तत्रादितो यो ब्रह्माऽऽसीद्वै राजनाभिपद्मतः ।

एकाणवेतदब्जस्यः सकञ्चिदपि नैक्षत । १७।

विसर्गबुद्धिमप्राप्तोनात्मानश्चविवेदसः ।

कोऽहं कुत इति ध्यायन्नदिदक्षरकआश्रयम् । १८।

नाऽल प्रविश्याऽथो यातुस्तन्मूलश्चविचिन्वतः ।

सम्बत्सरशतं यात तस्य नाऽन्तं तु सोऽलभत् । १९।

ऊर्ध्वं पुनरुपेत्याऽथ श्रान्तश्च निपत्ताद सः ।

अदृश्यमूर्तिर्भगवानूचे तपतपेति तम् । २०।

तच्छ्रुत्वा तत्प्रववतारमदृष्ट्वा च स सर्वतः ।

गुरूपदिष्टवत्तेपे दिव्यं वर्षसहस्रकम् । २१।

उत्तने वं राज की आज्ञा से तीनो ब्रह्मा, विष्णु और महेश इनको प्राप्त किया था दुर्गादेवी ने रुद्रदेव की प्राप्त किया था, सावित्री ने ब्रह्म की प्राप्त किया था और महालक्ष्मी ने भगवान विष्णु का समाश्रय ग्रहण किया था । १५। चण्डिका प्रादि अन्य सहस्रों स्वरूप दुर्गा देवी के ही भंश से समुत्पन्न हुए थे । त्रयीमुख्य सावित्री के भंश से उत्पन्न हुए थे । हे मुने ! दुस्सहा प्रमुख श्री देवी के भंश से हुए थे । १६। वहाँ पर प्रादि में जो ब्रह्मा थे वह वंराज की नाभि देश में समुत्पन्न कमल से हुए थे । उस समय में यह सम्पूर्ण विश्व एकाणव स्वरूप था अर्थात् सर्वत्र एक मान समुद्र ही था । उस समय में कमल में स्थित ब्रह्माजी

ने कुछ भी नहीं देखा था । १७। वह विमर्ग की बुद्धि को प्राप्त नहीं हुए थे अर्थात् उस ब्रह्मा में विषेप का से सर्ग करने की बुद्धि बिल्कुल नहीं थी और न वे अपने प्राणके स्वरूप का ही कुछ ज्ञान रखते थे । मैं कौन हूँ और कहाँ है समुत्पन्न होकर यहाँ प्राप्त हुआ हूँ—ऐसा ज्ञान करते हुए उन्होंने कजाप्य को ही देव पाया था । १८। उस भयवान नारायण के नाभि प्रदेश से समुत्पन्न पद्म नाम से ब्रह्मा ने मधोभाग से प्रवेश किया था और उस माल के मूल की खोज करने की इच्छा की थी किन्तु इसी खोज के करने में एक ही वर्ष व्यतीत हो गये थे किन्तु फिर भी वे उसका ज्ञान प्राप्त न कर सके थे । १९। वह ब्रह्मा फिर उगी पद्म के ऊपर आ गये थे और परम शान्त होकर उगी पर बैठ गये थे । उसी समय मैं अत्यन्त बड़े हुए और घबड़ाये हुए ब्रह्माजी से अदृश्य मुक्ति वाले प्रभु की यह भावावृत्ति थी कि उपन्यास करो । २०। ब्रह्माजी ने 'तप-तप' यह श्रुति ही सुनी थी किन्तु इसके कहने वाक्या कौन है यह सभी धोर देखते हुए भी न देख पाये थे । फिर उन ब्रह्माजी ने गुरु के उप-देश को ही मानकर एक महत्त दिव्य वर्षों तक तप किया था । २१।

पथे तपस्यते तस्मै तपः शुद्धात्मने ततः ।
 ससाधौ दर्शयामासघामवेकुण्ठमच्युतः । २२।
 प्राधानिकागुणा यत्र त्रयोपि रजसादयः ।
 न भवन्त्यल्पमपि यत्कालमायानयनं च । २३।
 सहोदिताकार्याद्युतवद्भास्वरेतत्र तेजसि ।
 बासुदेवंददर्शाऽसौ रम्यदिव्यासिताकृतिम् । २४।
 चतुर्भुजं गदापद्मसङ्ख्यचक्रधरं विभुम् ।
 पीताम्बरं महारत्नकिरीटादिविभूषणम् । २५।
 नन्दतादर्यादिभिष्णुंष्टं पापदैश्च चतुर्भुजैः ।
 सिद्धिभिश्चाष्टभिः पङ्क्तिर्वद्भास्वलिपुटंशरीः । २६।

सिंहासने श्रिया साकमुपविष्टं तमीश्वरम् ।

प्रणम्यप्राञ्जलिस्तथीविरञ्चो हृष्टमानसः ।२७।

तं प्राह भगवान्ब्रह्मस्तुष्टोऽर्हतपसा तव ।

वरं वरयमत्तस्त्वंस्वामीष्टंयत्प्रियोऽसि मे ।२८।

उस पक्ष में स्थित होकर तपश्चर्चा करने वाले शुद्धात्मा ब्रह्माजी की समाधि में ही भगवान् भक्ष्युत ने अपना बंकुण्ठ धाम दिखलाया था ।२२। वहाँ पर सत्वादि तीनों प्रधान के गुण थे वहाँ पर अल्प भी काल माया के भय नहीं थे । वहाँ ऐसा तेज विद्यमान था जैसे दश सहस्र सूर्य एक साथ उदित हो रहे हो उस तेज में परम रम्य दिग्ग प्रसिद्ध भाकृति वाले भगवान् वासुदेव का ब्रह्मा ने दर्शन प्राप्त किया था ।२३।२४। भगवान् का चार भुजाओं से युक्त, गदा, शङ्ख, पद्म और वक्र इन आयुधों को धारण करने वाला, पीताम्बर धारी और महारत्नो से समन्वित किरीट आदि भूषणों से भूषित स्वरूप था ।२५। चार भुजाओं वाले तन्द और ताड्य आदि पाषाणों के द्वारा वे वहाँ पर सेवित थे । आठों घण्टिमादि सिद्धियाँ और छँ भाग हाथ जोड़े हुए उनकी सेवा में उपस्थित थे ।२६। एक दिग्ग सिंहासन पर भगवान् श्री देवी के साथ विराजमान थे । ऐंसे ईश्वर का दर्शन प्राप्त करके ब्रह्माजी ने उनकी अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया और इनके आगे परम प्रसन्न मन वाले होकर स्थित हो गये थे ।२७। उस समय में भगवान् ने उन ब्रह्माजी से कहा था—हे ब्रह्मन् ! मैं आपके इस प्रशुभ तप से परम प्रसन्न हो गया हूँ । अब आप मुझसे जो भी आपकी मनीष्ट हो वह वरदान प्राप्त कर लो । मैं आपके प्रिय वरदान को देना चाहता हूँ ।२८।

इत्युवतस्तेन तं जानस्तपसि त्रेरकं प्रभुम् ।

स्वञ्चविश्वसृजं ब्रह्माययाचेऽभिमतंवरम् ।२९।

प्रजाविसर्गशक्ति मे देहि तुभ्यंनमः प्रभो ! ।

तत्रापिचन वदष्येयं यथा कुस्तथाकृषाम् ।३०।

ततस्तं भगवानूचे सेत्स्यते ते मनोरथः ।
 वैराजेन नयात्मैवयनावयित्वा समाधिना ।३१।
 प्रजाः सृजाऽथ स्वसाध्ये जार्ये स्मर्योऽहमिष्टदः ।३१।
 इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्माप्येकसमाधिना ।
 वैराजेनाऽप्य लोकां प्रालीनासर्वान्स्ति ऐदात् ।३२।
 विसर्गशक्तिं सम्प्राप्य सः सर्गाय मनोदधे ।
 ब्रह्मज्योतिर्मथस्तावदादित्यः प्रासुरास ह ।३३।
 स्यादपिवाऽण्डमध्ये तं ततः स मनसाऽमृजत् ।
 तपोभक्तिविशुद्धेन मुनोनाचांश्चतुः सनान् ।३४।

उन प्रभु के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उनही ही प्रपनी तपस्या का प्रेरक प्रभु समझ कर ब्रह्माजी ने अपने भावकी इस विश्व की सृष्टि करने वाला अभिमत्त वरदान उनसे माँग लिया था ब्रह्माजी ने कहा—हे प्रभो ! मुझे भाव प्रजा के विसर्ग करने की महान दिव्य शक्ति प्रदान कीजिए । मैं आपकी प्रणय करता हूँ । उसमें भी मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है सो आप ऐसी कृपा करिये कि मैं विसर्ग का ठीक २ ज्ञान भी प्राप्त कर सकूँ । २६। ३०। इसके अनन्तर भगवान् ने कहा—तुमको प्रजा की सृष्टि करने का ज्ञान प्राप्त हो जायगा और तुम्हारा मनोरथ सफल होगा । वैराज मेरे साथ आत्मा की एकता की समाधि द्वारा भावना करके प्रजा का सृजन करो । प्रपने लिए जब भी यह कार्य प्रसाध्य समझे तभी अभीष्ट प्रदाता मेरा तुमको स्मरण कर लेना चाहिए । ३१। इतना कहकर भगवान् यहीं पर प्रवर्तित हो गये थे और ब्रह्मा ने भी एक समाधि के द्वारा वैराज से प्राकृती सब लोकों को स्वतः ही देख लिया था । ३२। ब्रह्मा ने विसर्ग की शक्ति को प्राप्त करके फिर विश्व की रचना की और अपना लगाया था । तब तब ब्रह्मज्योति से परिपूर्ण आदित्य प्राहुर्मुत् हूये थे । ३३। उसको अण्ड के मध्य में स्थापित करके इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने मन से ही सृजन का कार्य प्रारम्भ किया

था । तप से और भक्ति से परम विशुद्ध मन के द्वारा ब्रह्माजी ने घादि
मे होने वाले सतकादि चार मुनियों का सृजन आरम्भ किया था । ३४।

प्रजाः सृजतचेत्यूचेतास्तदातेनुतद्वचः ।

न जगृहृत्तं श्लिक्केन्द्रास्तेभ्यश्च क्रोध विश्वसृष्ट् ॥ ३५ ॥

क्रद्धस्य तस्य भालाच्च रुद्र आसीत्तमोमयः ।

मण्युं नियम्य मनसा प्रजेशान्सोऽसृजत्ततः ॥ ३६ ॥

मरीचिमत्रि पुलहं पुलस्त्यञ्च भृगुं कनुम् ।

वसिष्ठं कदंमञ्चैव दक्षमङ्गिरसं तथा ॥ ३७ ॥

धर्मं ततः सहृदयादधर्मं पृष्ठतस्तथा ।

मनसः काममास्याञ्च ववाणी क्रोधं भ्रुवोऽसृजन् ॥ ३८ ॥

शौच तपो दया सत्यमिवि धर्मपदानि च ।

चतुर्म्यो वदनेभ्यश्च चत्वारि समृजेततः ॥ ३९ ॥

ऋग्वेदं वदनात्पूर्वाद्यजुर्वेदं च दक्षिणात् ।

ससर्ज पश्चिमात्साम सौम्याञ्चाऽयर्वसञ्जितम् ॥ ४० ॥

उन सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारहन चारों की मन से
सृष्टि करके उनसे ब्रह्माजी ने कहा था प्रजामो का मेरे ही समान तुम
नाम सृष्टि करो । उस समय में उन्होंने ब्रह्माजी के वचन को ग्रहण नहीं
किया था क्योंकि वे नैष्ठिकों में परम शिरोमणि थे । उन पर विश्व के
सृष्टा ब्रह्मा ने बहुत क्रोध किया था । ३५। अत्यन्त क्रोधित हुए उनके
भाल से तमोमय रुद्र हुए थे । उस समय में मन में क्रोध की नियमित
करके उन्होंने प्रजेशों का सृजन किया था । ३६। उन प्रजापतियों के नाम
ये हैं—मरीचि, मत्रि, पुलह, पुलस्त्य, भृगु, कनु, वसिष्ठ, कदंम, दक्ष
और मङ्गिरा, ये दश प्रजापतिपते का सृजन किया था । ३७। इसके अन-
न्तर उन्होंने हृदय से धर्म का और पृष्ठ भाग से अधर्म का सृजन
किया था । मन से काम, मुख से वाणी और भृकुटियों से क्रोध की
सृष्टि की थी । ३८। धर्म के चार पद हैं—शौच, तप, दया, और सत्य

ये चार चरण हैं। ब्रह्माजी ने अपने चार मुखों से हल शीवादिक चारों की रचना की या १३६। इसके अनन्तर चारों वेदों की सृष्टि की थी। ब्रह्माजी ने अपने पूर्व मुख से ऋग्वेद का उच्चारण कर उसे प्राविभूत किया था। दक्षिण दिशा की ओर जो मुख था उससे यजुर्वेद का सृजन किया था। पश्चिमाभिमुख से सामवेद को प्रकट किया और उत्तर की ओर बाले मुख से अथर्व वेद को प्रकट किया था १४०।

इतिहासपुराणानि यजान्निप्रशतं तथा ।
 वस्वादित्यमरुद्विश्वान्साध्यांश्च मुखतोऽसृजत् १४१।
 बाहुभ्यः क्षत्रियशतसूक्त्यां चविंशशतम् ।
 पद्भ्यांशुद्रशतचैमान्ससजमहवृत्तिभिः १४२।
 ब्रह्मचर्यं च हृदयाद्राहस्थ्यं जघनस्थलात् ।
 वनाश्रमंतथोरस्तः सन्यासंशिरसोऽसृजत् १४३।
 वक्षः स्थलात्पितृगणानमुराञ्छघनस्थलात् ।
 सप्त ई च गुदान्मृत्युं निश्च्यति निरयाश्चतः १४४।
 गन्धर्वाश्चारणान्सिद्धान्तपान्विधा राक्षसान् ।
 नगान्मेघान्बिद्युत्तश्च समुद्रान्तरितस्तथा १४५।
 वृक्षात्पशून्पक्षिणश्च सर्वांस्त्वावरजङ्गमान् ।
 स्वाङ्गैभ्य एव सोम्राक्षोद् ब्रह्मा नारायणात्मकः १४६।
 सृष्टिमेता विलोक्याऽपि ताऽतिप्रीतो यदा तदा ।
 हारं घ्यात्वा स ससृजे तपोवद्यासमाधिभि १४७।
 ऋषोन्स्वायम्भुवादीश्च मनूँश्च मनुजानपि १४७।

इतिहास पुराणों का सृजन, यज्ञों का तथा विप्र शत का और ऋषु, प्रादित्य, मरुद्गण और साध्यों की रचना ब्रह्माजी ने अपने मुख से ही की थी १४१। बाहुओं से शत क्षत्रियों को तथा कर्णों से वैश्यगण का एव चरणों के शत शूद्रों को उनकी वृत्तियों के सहित ही निमित्त

किया था १४२। अपने हृदय से ब्रह्मचर्य की, जघनस्थल से गार्हस्थ्य की, उरः स्थल से वनाश्रम अर्थात् वारण प्रस्थ की और शिर से सन्यास की सृष्टि की थी १४३। ब्रह्माजी ने अपने वक्षः स्थल से पितृगणों का सृजन किया था, जघन स्थल से भसुरों की सृष्टि की थी जो सुरों के शत्रु थे, और उतने गुदा से मृत्यु, निश्च्युति और नरकों की सृष्टि की थी १४४। नारायण स्वरूप ब्रह्माजी ने अपने अङ्गों से गन्धर्व, चारण, सिद्ध, सर्प, यक्ष, राजस, पर्वत, भेष, विद्युत्, सब समुद्र, सरिताएँ, वृक्ष, पशुगण पक्षी, समा जन्म और स्यादरो का सृजन किया था १४५-१४६। इतनी सृष्टि की रचना करके जिस समय में उन ब्रह्माजी ने इनका अवलोकन किया था तो उस समय में उनकी अपनी इतनी विराट रचना से भी कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई थी। उस समय श्रीहरि भगवान का ध्यान करके ब्रह्माजी ने तप-विद्या और समाधि से युक्त भयवा तप प्रादि से ऋषियों की, स्वायम्भुव मनु प्रादि की और मनुष्यों की भी सृष्टि की १४७।

ततः प्रोतः स सर्वेषां निवासाय यथोचितम् ।
 स्वर्लोकं च भुवर्लोकं भूर्लोकं समकल्पयत् ॥४८॥
 येषां तु यादृशं कर्म प्राक्कालीनं हि तान् विधिः ।
 सस्थाप्य तादृशे स्थाने वृत्तीस्तेषामकल्पयत् ॥४९॥
 देवानाममृतं नृणामृषीणां चान्नमोषधोः ।
 यक्षरक्षोसुरव्याघ्रसर्पादीनां सुरामिषाम् ।
 चकल्पे गोमृगादीनां वृत्तिं स यवसादि च ॥५०॥
 स देवानां तु विश्वेषां हव्यं वृत्तिमकल्पयत् ।
 अमूर्तानां च मूर्तानां पितृणां कव्यमेव च ॥५१॥
 दुर्गोद्भवानां शक्तानां तदुपासनतत्परैः ।
 दैत्यरक्षः पिशाचाद्यैर्दत्तं मद्यामिषादि च ॥५२॥

तथा सावित्र्युद्भवानां शक्तिनां तदुपासकैः ।
 दत्तमृष्यादिभिर्देवैः मुन्नाश्चासमोषधी १५३।
 श्रीजातानां च शक्तीनां तदुपास्तिपरायणैः ।
 दत्तं देवासुरनरैः पायसाव्यसित्वादिच १५४।

उन समय में इनकी परम प्रसन्नता हुई थी और इन सबके निवाम करने के लिए समुचित स्थानों की रचना करने की इच्छा से स्वर्लोक दुन्दुभक और भूलोक की सृष्टि की थी १५०। प्राक् काल में सर्वादि वहिदेव अर्थात् त्रितला भी जैसा कर्म या विद्याता ने उसी के अनुसार उसी प्रकार के स्थान में उन सबको स्थापित कर दिया था और उनकी कृति की भी रचना कर दी थी १५१। देवों के आहार के लिए घृत का सूत्रन कर दिया था, मनुष्यों और ऋषियों के लिए मद्य मत्त तथा शीपधियों की रचना कर दी थी । यक्ष, राक्षस, धूम्र, व्याघ्र और सर्पदि के लिए सुरा (मदिरा) तथा मांस की सृष्टि कर दी थी तथा गौ और भृग आदि और पशुपदों के आहार के लिए यवम आदि का सूत्रन कर दिया था १५२। ब्रह्माजी ने विश्वे देवताओं के लिए हव्य की सृष्टि निमित्त कर दी थी और घृत तथा मूत्र पित्रुगण के लिए कव्य का सूत्रन किया था १५३। दुर्गा देवी ने उद्भूत होने वाली शक्तियों के और उनकी उपासना करने में परायण देव्य राक्षस विशाच आदि के द्वारा दिया हुआ मद्य और मांस आदि का सूत्रन किया था १५४। सावित्री के उद्भूत होने वाली शक्तियों के उपासकों के द्वारा दिया हुआ यज्ञ में ऋषि आदि के द्वारा मृत्पत्र और शीपधियों की रचना की थी १५५। यही से समुत्पन्न शक्तियों के उपासना में परायणों के द्वारा दिया हुआ जोकि देवासुर नर ये, पायस, माज्य और सित्त आदि की रचना की थी १५६।

प्रजापतीनां सपत्तिस्ततः प्राहाऽखिलाः प्रजाः ।
 इज्या देवाश्च पितरो ह्येव कव्यारमकर्मणैः १५५।

इष्टाः सम्पूरयिष्यन्ति ह्येतेयुष्मन्मनोरथान् ।
 एतान्मेनाऽर्चयिष्यन्तितेवैनिरयगामिनः । १५६।
 इत्थं कृता हि मर्यादा तेन नारायणात्मना ।
 ईवं विद्म्यमत्तो नित्यं जनैः कार्यं यथाविधि । १५७।
 ततो ब्रह्मा स सर्वेषाधर्मसेत्ववनाय च ।
 तत्तज्जातिपुत्रेमुखप्रास्तान्मनूँश्चाप्यतिष्ठिपत् । १५८।
 वासुदेवेच्छ्रयैवेत्यं वैराजाद्बह्वारूपिणः ।
 कल्पेकल्पे भवत्येव सृष्टिर्वहुविधा मृते । १५९।
 प्राक्कल्पे यादृशी सञ्ज्ञा वेदा शास्त्राणि च क्रियाः ।
 कल्पेऽन्ये तादृशाः सर्वे धर्माः स्युश्चाऽधिकारिणः । १६०।
 विष्णुपुर्यं कथितः सोऽपि वैराजपुरुषपरमकः ।
 पोषयत्यखिलाल्लोकान्मर्यादाः परिपालयन् । १६१।
 मन्वादिभिः पाल्यमानाः सेतवस्त्वसुरैर्यदा ।
 कामरूपैर्विभिद्यन्ते वासुदेवस्तदा स्वयम् ।
 ब्रह्मादिभिः प्रार्थ्यमानः प्रादुर्भवति भूतले । १६२।

प्रजापतियो के स्वामी उन ब्रह्माजी ने समस्त प्रजापतियों से कहा था कि यजन किए हुये देव और इन्द्र्य कर्मात्मक मलो के द्वारा इष्ट पितर ये सब आप सब लोगों के मनोरथों को पूर्ण करेंगे । ओ लोग इनकी भर्चना नहीं करेंगे वे नरक के गमन करने गाले होंगे । १५६। इस प्रकार से उन नारायण स्वरूप ब्रह्माजी ने मर्यादा की रचना कर दी थी । इसलिए मनुष्यों के द्वारा यथाविधि नित्य ही देव कार्य और विद्म्य कार्य करने चाहिए । १५७। इसके अनन्तर उन ब्रह्माजी ने धर्म सेतुकी रक्षा के लिये उन-उन जातियों में जो मुख्य थे उन मनुष्यों की प्रतिष्ठा की थी । हे मूनिवर ! भगवान वासुदेव की इच्छा ही से ब्रह्मरूपी वैराज से इस प्रकार से बहुत प्रकार की सृष्टि प्रत्येक कल्प में हुमा करती है । १५८। १५९। प्रथम कल्प में जैसी भी संज्ञा होती है तथा वेद, शास्त्र और

जो भी क्रियाएँ होती हैं अन्य कला में भी सभी धर्म उसी तरह के होते हैं और अधिकारी भी वैसे ही हुआ करते हैं ।६०। जिसको विष्णु कहा गया है वह भी वैराज पुरुष स्वरूप है क्योंकि वह सर्वात्मों का पूर्णरूप से पालन करता हुआ समस्त लोको का पोषण किया करता है ।६१। मनु आदि महापुरुषों के द्वारा पालन करने के योग्य धेतुओं का जिस समय में कामरूप असुरों ने विधेःन किया तो उस समय में स्वयं भगवान् वासुदेव ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा प्रार्थना की जाने पर भूतल में माहुर्मूत हुआ करते हैं ।६१।६२।

अवतारा भगवतो मूलाभावाच्च सन्ति ये ।
 कत्तु नगमयते तेषां सङ्ख्या सङ्ख्याविशारदः ।६३।
 सद्धर्मदेवसाधूनां मुप्यं तद्ब्रह्मिहमृत्यवे ।
 श्रेयसेसर्वभूतानामाविर्भावोऽस्ति सत्पतेः ।६४।
 स वासुदेवः प्रकृतौ पुंसि कार्येषु चैतयोः ।
 अन्वितश्च पृथक् चाऽऽस्ते सर्वाधीशः स्वधामानि ।६५।
 व्याप्य स्वान्तरिमाल्लोकान्यथाग्निवत्क्षणदयः ।
 स्वस्त्यासते स्वस्वलोके तथैव भगवान्मुने ! ।६६।
 सर्गादिप्रावसन्निदानन्दः शुद्ध एकश्च निर्गुणः ।
 यथाऽऽसीत्तादृगेवासावन्वितोऽप्यस्ति निर्मलः ।६७।
 चायुनेज्जलक्षमासु ततत्कार्येषु स यथा ।
 अन्वीयाऽप्यस्ति निलपन्तथा पूर्वतथैवहि ।६८।
 सर्वपास्यो नियन्ता च व्यापकश्च परीक्षितः ।
 जात्यन्तिकेलयेऽवैपाभवत्येव यथापुरा ।६९।

भगवान् के जो अवतार हो चुके हैं या भविष्य में होंगे मयदा इस समय में हैं वे सब बड़े २ संख्या के करने वाले मनोपियों के द्वारा भी गए ना में नहीं लाये जा सकते हैं ।६३। साधु पुरुषों के स्वामी भग-

वान के प्राविर्भाव सद्धर्म और माधु पुरुषों की सुरक्षा करने के लिए और इनसे द्रोह करने वाले दुष्टों के सहार करने के लिए एवं समस्त भूतों के कल्याण का सम्पादन करने के लिये ही हुषा करता है । ६४। यह प्रभु अपने धाम में सबका माधोश प्रकृति में, पुरुष में और इन दोनों के कारणों में अन्वित है और इन दोनों से पृथक् भी है । ६५। हे मुने ! अपने अक्षों से इन समस्त लोको में श्याम होकर जैसे अग्नि और वहण प्रभृति देवगण अपने-अपने लोक में कल्याण पूर्वक हैं वैसे ही यह भगवान भी है । ६६। इस विश्व की रचना के पूर्व सच्चिदानन्द शुद्ध, एक और त्रिगुण जिरा प्रभार से ये वैसे ही अन्वित होने पर भी निर्मल ही उनका स्वरूप है । ६७। त्रिन तरह से वायु और तेज के चिह्न वालों में और उनके उन उन कारणों में साकाश है । वह अन्वित भी है तथा पूर्व की ही भाँति निर्लेप भी होता है । ६८। यह भगवान सधके उपासना करने योग्य हैं, सबने नियन्ता हैं और सबमें व्यापक भी कहे गए हैं और जब प्रायन्तिक प्रलय होता है उस समय में भी यह जैसे पहिले थे वैसे ही रहा करते हैं । ६९।

वैराज. पुरुषो योऽत्र प्रोक्तोऽसावीश्वराभिधः ।

ज्ञेयः स्वतन्त्र सर्वज्जीवशयमायश्चनारदः । ७०।

एतस्यैव स्वरूपाणिब्रह्मविष्णुशिवाख्यः ।

रजआदिगुणोपेताः स्वगुणानुगुणक्रियाः । ७१।

ब्रह्मणो ये समुत्पन्ना देवासुरनरादयः ।

ते जीवसञ्ज्ञा ह्यल्पज्ञाः परतन्त्रा भवन्ति च । ७२।

जीवानामीश्वराणां च तन्त्रः क्षेत्रसञ्ज्ञकाः ।

महदादितस्त्वमध्यः क्षेत्रज्ञारूपास्तुतद्विदः । ७३।

क्षेत्राणां च क्षेत्रविदां प्रधानपुरुषस्य च ।

मायायाः कालशयतेश्चाऽक्षरस्यचपरात्मनः ।

पृथक्पृथक्लक्षणैर्यज्ज्ञानं तज्ज्ञानमुच्यते । ७४।

यहाँ पर जो वैराज ईश्वर नाम वाला पुरुष कहा गया है, वै नारद ! वह जानने के योग्य, स्वयं सब ज्ञ और ब्रह्ममाय है ७०। उस एक ही के ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन स्वरूप हुमा करते हैं । इनके सत्त्व, रज और तम ये गुण हैं जिनमे वे युक्त होते हैं और उन गुणों के अनुसार उनकी क्रियायें भी हुमा करती हैं ७१। ब्रह्मा से जो देव, प्रसुर आदि मनुष्य प्रादि उत्पन्न हुए थे वे सब जीव संज्ञा वाले प्राणी हैं—वे मत्पन्न हैं, पराधीन हैं ७२। जीवों के और ईश्वरों के जो शरीर हैं वे क्षेत्र सज्ञा व ले हैं ये महत् आदि तत्त्वों से परिपूर्ण हैं और उनके ज्ञाता लीग क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं ७३। क्षेत्रों का, क्षेत्रों के ज्ञाताओं का, प्रधान का और पुरुष का, माया का, काल की शक्ति का, अक्षर परमात्मा का वृषक, २ लक्षणों के द्वारा जो ज्ञान है उसा को ज्ञान कहा जाता है ७४।

३३—वैराग्यभक्तिनिरूपण

वैराग्यस्याऽयतेवचिमलक्षणमुनिसत्तम ! ।
 क्षयिष्णुवस्तुष्वरुचिः सर्वथेति तदोरितम् ११।
 आरम्भ मायापुरुषात्सर्वा ह्याकृतयस्तु याः ।
 कालशक्त्या भगवतो नाशयन्ते ताश्च तद्वशाः १२।
 प्रत्यक्षेणाऽनुमानेन शाब्देन च विवेकिभिः ।
 असत्यताकृतीनां च निश्चितासत्यतात्मनाम् १३।
 नित्येन प्रत्येनैव कालो नै नित्तिकेन च ।
 प्राकृतिकेन रूपेण चरत्यात्यन्तिकेन च १४।
 देहिदेहा इमे नित्यं क्षीयन्ते परिणामिनाः ।
 क्रमेण दृश्यते यत्र बाल्यतारुण्यवार्द्धकम् १५।
 सूक्ष्मत्वाद्भेदयते तत्तु गतिर्दीपाचियो यथा ।
 फलवृद्धिर्वाऽनुपदं जायमाना द्रुमे यथा १६।

तस्यांतस्यामवस्थाया दुःखं चमहदीक्ष्यते ।

जाग्रदादिष्ववस्थासुदुःखं च पुनः पुनः ॥७॥

भगवान् श्री नारायण ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! सब मैं भाषको वैराग्य का लक्षण बतलाता हूँ जो क्षय होने के स्वभाव वाली वस्तुयें हैं उन सबमें इति का न होना ही वैराग्य कहा गया है । माया पुरुष से आरम्भ करके जो भी समस्त प्राकृतियाँ हैं वे सब भगवान् की काल-शक्ति के द्वारा विनाश कर दी जाया करती हैं क्योंकि वे सब उनके वश गत होती हैं । १।२। प्रत्यक्ष के द्वारा, अनुमान से और वाच्य प्रमाण से विवेकियों के द्वारा अमृत्य स्वरूप वाली प्राकृतियों की असत्यता निश्चित करली गई है । यह काल नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक रूप से और आत्यन्तिक के द्वारा चरण किया करता है । ३।४। देहधारियों के ये देह परिणामी हैं और नित्य ही क्षीण हुआ करते हैं जिनमें क्रम से बाल्य (शोभावस्था), तरुणता और वाषट्क्य दिखलाई दिया करता है । दीर्घ को अवि (लौ) की गति के समान यह सूक्ष्म होने के कारण दिखलाई नहीं देता है । मथवा जित प्रकार से वृक्ष में फलों की उत्पन्न होने वाली अनुपद वृद्धि होती है । उस-उस अवस्था में महान् दुःख दिखलाई दिया करता है । जाग्रत् आदि जो तीन अवस्थाएँ हैं उनमें भी बारम्बार दुःख ही होता है । ५।६। ७।

दुःखमाप्यात्मिकं भूरि दृश्यते चाऽऽधिभौतिकम् ।

आधिदैविकमप्यत्र दुःखमेवाऽस्ति देहिनाम् ॥८॥

हाहा ममार मत्पुत्रो हा गतनी म्रियते मम ।

तातं मेऽभक्षयद्वयाद्वा दष्टा सर्वेणमेवधूः ॥९॥

महासीधोऽग्निना दग्धो हाहा सोपस्करोऽद्य मे ।

स्वकुटुम्बं कथं पोक्ष्ये नाऽवर्षत्पाकशासनः ॥१०॥

सस्येः समृद्धं मत्क्षेत्रं हाहा दग्धहिमाग्निना ।

ह्रियन्तेतस्करं गविः सर्वस्वममलुण्ठितम् ॥११॥

नृपेण दण्डितोऽयथं शत्रूणां हासतिताडितः ।

किं करोमि च कं ब्रूयां मातां व्याभिचारिणी ॥२॥

विपं पास्यामि हाहाऽथ मत्पत्नी शत्रुराकृषत् ।

हा स्वसा मे हता म्लेच्छैर्हहाऽरिः प्राप मर्मभित् ॥३॥

अत्रिये ज्वरातिव्यथया यमदूता इमे हाहा ।

इत्थं रोह्यमाणा हि दृश्यन्ते सर्वतो जनाः ॥४॥

देहधारियो को अत्यधिक आध्यात्मिक दुःख दिखाई देता है—
 आधिभौतिक दुःख भी होना है और आधिदैविक दुःख है । यहाँ पर
 इस शरीर के धारण करने की दशा में दुःख ही दुःख है । १५। हाय-हाय
 मेरा पुत्र मर गया है, मेरी पत्नी मर रही है, मेरे पिता को व्याघ्र ने
 खा लिया है और मेरी बधू को सर्प ने काट लिया है । १६। मेरा भवन
 आज अग्नि से दग्ध हो गया है जो सभी उपभोग की वस्तुओं से भरा
 पूरा था । अब मैं अपने कुटुम्ब का कैसे पोषण करूँगा । इन्द्रदेव ने
 भी वर्षा नहीं की है । १६। १०। हिम को अग्नि से अर्थात् जाने से मेरा
 अच्छी फसल से भरा पूरा क्षेत्र भी हा हाय ! नष्ट हो गया है अर्थात्
 मेरी खड़ी फसल को पाला मारा गया है । लुटेरों के द्वारा मेरी गाँव भी
 चुरा ली गई है । मेरा सभी कुछ लुट गया है, राजा ने भी मुझे बहुत
 अधिक दण्डित किया है और मेरे शत्रु ने भी मुझे अधिक ताड़ित कर
 डाला है । मैं अब क्या करूँ, किससे अपनी व्यथा को सुनाऊँ ।
 हाय ! मेरी माता भी व्याभिचारिणी हो गई है । ११। १२। हाय-हाय ! मैं
 आज विप का पालन कर लूँगा, शत्रु ने मेरी पत्नी को बलात् कर्षण
 करके छीन लिया है । म्लेच्छों ने मेरी बहिन को भी परहृत कर लिया
 वे, हाय ! मर्म से भेदन करने वाले शत्रु मेरे पास प्राप्त हो गए हैं ।
 १३। मैं ज्वरा की व्यथा से मर रहा हूँ और यहाँ पर ये यम के दूत
 आ गये हैं — इस भाँति वे सभी और सांसारिक मनुष्य अपनी-अपनी

विभिन्न प्रकार की व्यथाओं से प्रपीडित होकर रुदन करते हुए दिखलाई दिया करते हैं । ४।

अवस्थाना शरीरस्यजन्ममृत्यू प्रतिक्षणम् ।
 कालेनप्राप्नुवद्भि स्वप्रारब्धदुःखैः स्वमश्यते ॥१५॥
 प्रारब्धान्ते मृत्युदुःखं भवत्यप्रतिमं हि तत् ।
 मृत्वाऽपि नमद्दुःखं प्राप्यते यमयातना ॥१६॥
 ततो जरायुजोद्भिज्जस्वेदजाण्डजयोनिषु ।
 भूत्वाभूत्वा यथाकर्मम्रियते दुःखितैः पुनः ॥१७॥
 नित्यं प्रलय एव ते कीर्तितः सूक्ष्मया दृशा ।
 स ज्ञेयोऽयं मुने ! वच्मि लयं नैमित्तिकाभिषम् ॥१८॥
 निमित्तिकृत्य रजनी । भवेद्विश्वसृजस्तु यः ।
 नैमित्तिकं सकथितो लयोऽनं दिनश्च सः ॥१९॥
 चतुर्यं गणा साहस्रं दिनविश्वसृजो मुने ! ।
 निशा चतारतीतस्य तद्द्वयं कल्प उच्यते ॥२०॥
 एकैकस्मिन्दिने तस्य चतुर्दश चतुर्दश ।
 भवन्ति मनवो ब्रह्मन्धमंसे त्वभिरक्षका ॥२१॥

शरीर की अवस्थाओं के जन्म और मृत्यु प्रतिक्षण काल के द्वारा प्राप्त करने वाले लोग उस तरह से अपने प्रारब्ध दुःख का भोग किया करते हैं ॥१५॥ प्रारब्ध कर्म के भोग करने के मन्त में इस संसार में मृत्यु का भी अनुभव दुःख होना है । मर कर भी दुःख से छुटकारा नहीं होता है फिर भी यमलोक में यम की नारकीय यातनाओं के भोगने का महान् दुःख होता है ॥१६॥ इसके भी पश्चात् फिर जरायुज, उद्भिज, स्वेदज और जाण्डज इन चार प्रकार की योनियों में अपने २ कर्मों के अनुसार जन्म ग्रहण कर-करके बारम्बार दुःखित होने हुए मृत्यु प्राप्त की जाया करती है ॥१७॥ इस प्रकार ने यह सूक्ष्म दृष्टि से नित्य प्रलय कहा गया है । हे मुने ! इस प्रलय का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये । स्व में

उस नैमित्तिक प्रलय के विषय में तुमको बतनाता हूँ । १९। विश्व के सृजन करने वाले की रजनी को निमित्त बनाकर जो होता है वही नैमित्तिक लय कहा गया है जो दिनों दिन हुआ करता है । १९। हे मुने ! चारो सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, युगों को जब एक सहस्र संख्या पूर्ण हो जाती है तभी विश्व के ब्रह्मा ब्रह्मा का एक दिन होता है । उसकी निशा भी उतनी ही होती है । उस दो का एक कल्प होता है । ऐसा कहा जाता है । २०। उसके एक-एक दिन में हे ब्रह्मन् ! धर्म सेतु के प्रभि रक्षक चौदह-चौदह मनुगण हुआ करते हैं । २१।

प्राद्यः स्वायम्भुवस्तत्रमनुः स्वारीचिपस्ततः ।

उत्तमस्तामसश्चाऽथरैवतश्चाक्षुपस्ततः । २२।

श्राद्धदेवश्च सार्वणिभोत्यो रौच्यस्ततः परम् ।

ब्रह्मसार्वणिनामा च रुद्रसावारेव च । २३।

मेरुसार्वणिसञ्ज्ञोऽथदक्षसार्वणिरन्तिमः ।

चतुर्दशैते मनवः प्रोक्ता ब्रह्मैकवासरे । २४।

एकैकस्य मनोः कालो युगानां चैकसप्ततिः ।

दिव्यैर्द्वादशसाहस्रं युगकालश्च चत्सरैः । २५।

चतुर्दशस्यैव मनोरन्तरेऽन्तमुषेयुषि ।

सायंसन्ध्या विश्वसृजो जायते मुनिसत्तम ! । २६।

दिनावसाने वैराजः शक्तीराकर्षति स्थितेः ।

वैराजात्मा तदा रुद्रखिलोकीर्तुमीहते । २७।

बादोभवत्यनावृष्टिरत्युग्राशतवार्षिकी ।

तदाऽऽप्सरसस्त्वानि क्षीयन्ते सर्वशोभुवि । २८।

उन मनुष्यों में सबसे प्रादि काल में होने वाला मनु स्वायम्भुव मनु था । इसके पश्चात् एशाचिप मनु हुए थे । उसके बाद में उत्तम नामक मनु हुए, फिर तामस, रैवत, चाक्षुप, श्राद्धदेव, सार्वणि, भोत्य, रौच्य, ब्रह्म सार्वणि, रुद्रस्त सार्वणि, मेरु सार्वणि और अन्तिम दक्ष

साधण हुए थे । ये चौदह मनु ब्रह्माजी के एक दिन के समय में होकर अपना काल पूरा कर दिया करते हैं । १२२।२३।२४। एक-एक मनु का उपजोग काल चारों युगों की इकहत्तर चौफड़ी का होता है और दिव्य बारह हजार वर्ष एक युग का होता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! चौदह मनुओं के आहार में अन्त को प्राप्त होने पर विश्व के स्रष्टा की साथ सन्ध्या हुआ करती है । दिवस के प्रथम (आखीर) होने पर वैराज स्थिति की शक्तियों का आकर्षण किया करते हैं । उसी समय में वैराजात्मा भगवान् रुद्र इस त्रिलोकी का हरण करने की इच्छा किया करते हैं । सब कथादि में अनावृष्टि हुआ करती है अर्थात् सृष्टि के संहार काल का समय उपस्थित जब होता है तो सर्वप्रथम वृष्टि का अभाव होता है । वह अनावृष्टि भी ऐसी अत्यन्त उग्र होती है जो सी वर्ष तक बराबर रहा करती है । उस समय में इस भूमण्डल में अल्पल्प बार वाले सत्त्व हैं वे क्षीण हो जाया करते हैं । २२-२८।

साम्बर्त्तिकस्य चाऽर्कस्य रश्मयोऽयुल्बणा रसम् ।

आपातालात्पिबन्त्याशु घरण्यां सर्वमेव हि । २९।

सारस चैव नादेयं सामुद्रं चाऽम्बु सर्वशः ।

शोषयित्वाऽखिलांलोकान्सोऽर्को नयति सङ्क्षयम् । ३०।

ततो भवतिनिः स्नेहा नष्टस्थावरजङ्गमा ।

कर्मपृष्टोपमा भूमिः शुष्कासंकुचिताभृशम् । ३१।

कालाग्निरुद्रः शेषस्य मुखादुत्पद्यते ततः ।

अधोलोकान्सप्तभूमिभुवः स्वश्चदहत्पसो । ३२।

निर्दग्धलोकदशको ज्वालावर्त्तमयङ्कुरः ।

उद्वासितमहलोकः कालाग्निः परिवर्त्तते । ३३।

गताधिकाराखिदशाभुवः स्वर्गनिर्वासिनः ।

महर्लो गज्जनयान्तिवह्निज्वालाभृशादिताः । ३४।

निवृत्तिघर्मा ऋषयः प्राप्ताः सिद्धदशां तु ये ।

भूतलात्तेषितह्यवृष्टिपलोकं प्रयान्ति च ।

उत्तिष्ठन्ति ततो धीरो व्योम्नि साम्बत्तं का घनाः ।३५।

फिर साम्बत्तं क सूर्य की किरणों जोकि अत्यन्त उत्तम (तीक्ष्ण) होती हैं वे शीघ्र ही पातान तक के सब रस का घरणी में पान कर जाया करती हैं ।२६। सूर्य देव ऐसे प्रखर हो जाते हैं कि समस्त नदियों की सरसता को और ममुद के सम्पूर्ण जल को शोषित करके समस्त लोको का संक्षय कर दिया करते हैं ।३०। इसके अनन्तर यह भूमि स्नेह रहित हो जाया करती है जिसके कारण सभी स्यावरो और जगमों का पूर्णतय विनाश हो जाता है । फिर यह पृथिवी कछुग की पीठ के सदृश शुष्क मैदान जैसी दिखलाई दिया करती है । यह एक दम शुष्क और अत्यन्त सङ्कुचित हो जाया करती है । उस समय में जङ्गमों की तो बात ही क्या है पहाड, वृक्ष और नदियाँ यहाँ पर कुछ भी दिखाई नहीं देता है ।३१। तब शेष के मुख से कालाग्नि उद्ग उत्पन्न होते हैं । यह नीचे के लोको को जो तात भूमि वाले हैं और भू-भुव तथा स्व सबको दाघ कर देते हैं ।३२। दश लोकों को निर्दग्ध करके ज्वालाओं के प्रावर्त्त से अत्यन्त भयानक कालाग्नि महर्लोक को उद्दामित कर देने वाला चारो ओर वत्तमान होता है । अधिकार छिन जाने वाले देवगण भुव और स्वर्ग के निवास करने वाले वह्नि की ज्वाला से अत्यधिक अदित होते हुए महर्लोक से जन को जाते हैं ।३३।३४। निवृत्ति घर्म्म वाले ऋषि-गुण जो सिद्ध दशा को प्राप्त हो गये हैं वे भी उस समय में इस भूतल से ऋषिलोक को चले जाते हैं । इसके पश्चात् फिर व्योम में परम धीर साम्बत्तं क मेघ उठते हैं ।३५।

महागजकुलप्रख्यास्तडित्वन्तोऽतिनादिनः ।३६।

धूम्रवर्णाः पीतवर्णाः केचित्कुमुदसन्निभाः ।

लाक्षारसनिभाः केचिच्चापपत्रनिभास्तथा ।३७।

रामयित्वा महाबल्लिशतं वर्षाण्यहृन्निशम् ।
 वर्षमाणाः स्थूलधाराः स्तनन्तस्ते घनाघनाः ।
 ब्रह्माण्डस्यान्तरालञ्च पूरयन्ति ध्रुवावधि ।३२।
 एकार्णवजले तस्मिन्वैराजपुरुषः स तु ।
 अनिरुद्धात्मकः शेते नागेन्द्रशयने प्रभुः ।४०।
 तदा देवाश्च ऋषयो रजः सत्त्वतमोषदाः ।
 ये ते सह विरिश्चैनस्वकीयगुणकषिताः ।
 प्रविश्य तस्य जठरे शेरते दीर्घनिद्रया ।४०।
 ये तु ब्रह्मात्मैवमभावा वशीकृतगुणत्रयाः ।
 निवृत्तेनैव घर्मेण वासुदेवमुपासते ।४१।
 महारादिषु लोकेषु ते चतुषु कृतालयाः ।
 त वैराजं संस्तुवन्तो निवसन्ति यथासुखम् ।४२।
 नारायणः स भगवान्स्वरूपं परमात्मनः ।
 चिन्तयन्वासुदेवाख्य शेते वै योगनिद्रया ।४३।

वे मेघ महान गर्जो के कुन के समान दिखाई देने वाले, बिजली से युक्त घोर घटपन्न घोर गर्जन करने वाले होते हैं ।२६। उन मेघों में कुछ तो धूम वणें वाले हैं, कुछ पीन वणें से युक्त हैं, कुछ कुमुद के सदृश हैं—कुछ साख के रस के तुल्य हैं और कुछ घासपत्र के सदृश हैं ।३७। ब्रह्मनिश परम घोर नभ्रं करके महान उग्र जो बल्लि यो उसका शमन उन्होंने करके वे निरुन्तर घने होते हुए गर्जना करके स्पून जल की धाराओं से वर्षमाणा होते हैं और ब्रह्माण्ड के अन्तराल को ध्रुव की अवधि पर्यन्त पूरित कर दिया करते हैं ।३२। उप समय वे गर्वत्र जलमय हो जाता है । उस एकार्णव जल में वह वैराज पुरुष भावि सुद्धात्मक होकर प्रभु शेष की शय्या पर शयन किया करते हैं ।३६। उस समय में देवता और ऋषिवृन्द रजः सत्त्व और तप के वश वर्त्ती होकर जो भी है वे सब स्वकी गुणाय से कषित होते हुए विरिश्चि के साथ

होकर उसके उदर प्रवेश कर दीर्घ निद्रा से शयन किया करते हैं १४०। जो ब्रह्मा के माय आत्मैक्य भाव वाले हैं और जिन्होंने तीनों गुणों को वश में कर लिया है वे निवृत्त धर्म से ही भगवान् वामुदेव की उपासना किया करते हैं १४१। यह आदि चारों लोकों में वे अपना मालय बनाकर उसी वाराह प्रभु का स्तवन करते हुए सुख पूर्वक वहाँ पर निवास किया करते हैं १४२। वह भगवान् नारायण परमात्मा के वामुदेव नाम वाले स्वरूप का चिन्तन करते हुए योग निद्रा से शयन किया करते हैं १४३।

निशान्ते ब्रह्मणा साकं सर्वे तेतस्य जाठराः ।
उत्पद्यन्तेयथापूर्वयथाकर्मधिकारिणः १४४।
एवं नैमित्तिको नाम त्रिलोकीक्षयलक्षणः ।
प्रलय कथितस्तृम्यंप्राकृतंकीर्त्त्याम्यथ १४५।
य एष कल्प कथितस्तादृशानाशतत्रयम् ।
पष्टचाधिकञ्चयः कालोवैघसः सतुवत्सरः १४६।
पञ्चाशता तैः परार्द्धा ब्रह्मायुस्यद्द्वयंमतम् ।
परास्यकाले सम्पूर्णे महान्भवतिसङ्क्षयः १४७।
सहाररुद्ररूपेण सहत्य स्व विराड्बपुः ।
स्वपर निगुणरूपवराजोयातुमिच्छति १४८।
तदा भवत्यनावृष्टिः पूर्वंवच्छतवापिकी ।
साङ्घर्षणश्च कालाग्निर्दह्यण्डमशेषतः १४९।

उस दिव्य निशा का जिस समय में घन्त हो जाता है तो उस समय में वे सब जो उनके जठर में प्रविष्ट थे ब्रह्मा के ही साथ में पूर्व की भाँति ही उत्पन्न हो जाते हैं और जैसे भी उनके पूर्व संचित कर्म होते हैं उसी के अनुसार वे अविकार प्राप्त करने वाले हुँगा करते हैं । १४४। इस प्रकार से इस त्रिलोकी के क्षय को करने वाला नैमित्तिक लय होता है । मैंने तुमको यह प्रलय का वर्णन का वर्णन करके पतला

दिया है अब प्राकृत प्रलय बतलाता है । ४५। जो यह कल्प बताया गया है उसी प्रकार के तीन सौ साठ वा जो काल होता है वह ब्रह्मा का एक वर्ष हुआ करता है इसको दिव्य वर्ष कहा जाता है । उससे पञ्चाशत् पराद्धं जो वर्ष होते हैं वह ही ब्रह्मा की आयु होती है । यह दो माने गये हैं । जो पर नामक काल सम्पूर्ण हो जाना है तो उस समय में महान सक्षय हुआ करता है । इसी की महा प्रलय कहा जाता है । सहार रुद्र रूप से अपने विराट वधु का सहरण धर वैराज अपने दूसरे त्रिगुण स्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा किया करते हैं । ४६—४८। उस समय में पूर्व की भाँति ही सौ वर्ष तक रहने वाली अनावृष्टि (वर्षा का अभाव) होनी है । और साङ्ख्येण कालाग्नि सम्पूर्ण अण्ड को दाघ कर दिया करता है । ४९।

साम्ब्रतंकास्ततो मेघा वर्षन्प्रतिभयानकाः ।

क्षतवर्षा राघाराभिर्मुं सलाकृतिभिर्मुं ने १५०।

महादीर्घैविकारस्य विशेषान्तस्य सङ्क्षयः ।

सवस्यापि भवत्येव वासुदेवेच्छयाततः १५१।

आपो प्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मक गुणम् ।

आत्मगन्धाततोभूमिः प्रलयत्वाय प्रकल्पते १५२।

असतेऽम्बु गुणं तेजो रसंतल्लीयते ततः ।

रूपं तेजो गुण वायुर्प्रसते गीयतेऽथ तत् १५३।

वायोरपि गुण स्पर्शमाकाशो असते ततः ।

प्रशाम्यतिसदावायुः खन्तुतिष्ठत्यनावृतम् १५४।

भूनादिस्तद्गुण शब्दप्रसतेलीयतेचक्षुम् ।

इन्द्रियाणिविलीयन्तेतेजसाहङ्गुतीततः १५५।

बहङ्कारे विलीयन्तेसात्त्विके देवता मनः ।

यद्यद्यस्मात्समुत्पन्नं तत्तत्तस्मिन्ल्लीयते १५६।

अहङ्कारो महत्तत्त्वे त्रिविधोऽपि प्रलीयते ।

तत्प्रधाने त तत्पुंसि स मूलप्रकृतौ ततः ।५७।

इसके अनन्तर अत्यन्त भयानक साम्बर्त्तिक मेघ घोर वर्षा किया करते हैं । हे मुनिवर ! ये मेघ सौ वर्ष तक निरन्तर मुमल के प्रकार जैसी मोटी जल की धाराओं से वर्षा किया करते हैं ।५७। इसके उपरान्त महत् आदि जो विकार होते हैं वहाँ से लेकर विशेष के अन्त पर्यन्त सम्पूर्ण का भगवान् वासुदेव की इच्छा से सस्य हो जाता है । ५८। सर्वप्रथम जल भूमि के गन्ध स्वरूप वाले गुण का ग्रसन किया करते हैं । फिर वह गन्ध रहित पृथ्वी प्रलय के लिए ही हो जाया करती है । ५९। फिर तेज जन का गुण जो रस है उसे ग्रस लेता है और रस विहीन जनहीन हो जाता है । वायु तेज के गुण रूप को ग्रस लेता है और वह वायु भी गुण हीन होकर लय को प्राप्त हो जाया करता है । वायु का गुण स्पर्श है उसको आकाश ग्रस लेता है । उसी समत में वायु प्रशान्त हो जाया करता है और आकाश अनावृत होकर स्थित रहता है । ६०। ५९। ६०। उस आकाश के गुण शब्द को भूतादि ग्रस लेते हैं और आकाश फिर लय को प्राप्त हो जाता है । इन्द्रियगण तेज के द्वारा अहङ्कृति में विलीन हो जाया करती हैं । ६१। सात्त्विक अहङ्कार में देवता मन विलीन हो जाया करते हैं । जो-जो जिस-जिस से समुत्पन्न हुआ है वह-वह उसी-उसी में विलीन हो जाया करता है । ६२। तीन प्रकार का अहङ्कार महत्त्वं में प्रलीन हो जाता है । वह महत्त्वं प्रधान में और प्रधान मूल प्रकृति पुष्प में लीन हो जाता है । ६३।

एष प्राकृतिको नाम प्रलयः परिणीयते ।

तिरोभवन्ति जीवेशायद्ग्यक्तेहरीच्छया ।६३।

यदा च मायापुरुषो कालोऽत्यक्षरतेजसि ।

तदिच्छया तिरोयाति स त्वेको वर्तते प्रभुः ।

तदा स प्रलयो ज्ञेयो नारदात्यन्तिकाभिधः ।६४।

इत्यप्रभोः कालशक्त्यान्वयैरेतैश्चतुर्विधैः ।
 असद्वद्बद्धाऽखिलत्राऽर्हाचर्वैराग्यमुच्यते ।६०।
 वासुदेवेतरान्देवान्कान्मायावशोऽकृतान् ।
 विदित्वा तेषु च प्रीतिं हित्वा तस्यैव नि-यदा ।
 गाढस्नेहेन या सेवा सा भक्तिरिति गीयते ।६१।
 श्रवणं क्लृप्तं तस्यस्मृतिश्चरणसेवनम् ।
 पूजाप्रणामोदास्यश्च सत्यचात्मनिवेदनम् ।६२।
 इत्येतन्त्रैर्विभक्तिर्विभक्तैः सेवेत तमाश्रयान् ।
 वान्यया घिषणया च हि भक्त इतीयते ।६३।

यही प्राकृतिक पक्ष के नाम से माया या कहा जाया करता है । जिसमें अज्यकन से हरि की इच्छा से ये जीवेश तिरोभूत होते हैं । १५५। जिस समय में माया गौर पुण्ड्र से शीतो घोर काल अक्षर तेन से उसी इच्छा से तिरोभूत हो जाया करने हैं तो उन समय में केवल एक प्रभु ही वर्तमान रहा करते हैं । हे नारद ! उस समय में घात्यन्तिक नाम वाला यह प्रलय जान सेना चाहिये अर्थात् यही महा प्रलय कथा जल है जिसमें कहीं भी कुछ भी शेष नहीं रहा करता है एक-मात्र प्रभु ही वर्तमान रहा करने हैं । ५६। इस प्रकार में प्रभु की बाल शक्ति के द्वारा इन चारों प्रकार के लपो में इस सब मृष्टि को घसतु ममभ्रकर उनमें जो महर्च होती है वही वैराग्य कहा जाया करता है । १६०। व मुदेव भगवान ने इनर जो भी ममस्त देवगण हैं वे सभी काल की माया क बलीकृत हैं—यह भती-भाति समझकर घोर उन देवनाभो से प्रीति नष्ट परित्याग करके वम भगवान वासुदेव की जो निरत्य प्रति पर्यन्त गाढ स्नेहने सेवा की जाया करती है वही भक्ति वही जाया करती है ॥६१॥ भगवान क गुण, नाम आदि का अक्षण करना, भगवान के गुणों और चरितों का कीर्तन करना, भगवान के ही नाम और गुरुओं का स्मरण करना, भगवान के निरत्य नियम से चरुओं की सेवा

कृपणा, भगवान को प्रतिभा की पूजा भयवा ध्यानावस्थित होकर मान-सिक्र शर्बेता करता, भगवान को प्रणाम करता, भगवन का हाथ अपने आपकी समझकर, भगवान की तेज एवं ज्योति का ही अपने आपकी एक छोटा अंश समझकर उनके साथ सत्सामाज का व्यवधान करता, भगवान के पौ घरणो की सेवा में अपने आपकी सर्वतोभाव से समर्पित कर देता, ये ही प्रकार की भक्ति का एक रीका या स्वरूप है जो नी जियसके वत पडे या सभी प्रकारो की भक्ति करने के लिए अनन्य मन-क भाव में युक्त रहने वाला पुरुष ही भगवान का भक्त कहा जाया करता है । ६२।६३।

त्रिमि स्वधर्मप्रमुनीपुंक्ताभक्तिरियंमुने ! ।

मयं एकान्तिकडति प्रोक्ताभामयतश्चतः । ६४।

साक्षाद्भगवत् सद्भासद्भगवतानाश्च वेदशाम् ।

धर्मो ह्यकान्तिक पुम्भिः प्राप्य तेनाऽन्यथा क्वचित् । ६५।

नैतादृश पर किञ्चिदसाधनहिमुमुक्षताम् ।

निःश्रेयसकर पुंसा सनाभिद्रविताननम् । ६६।

एकान्तधर्ममिद्व्यर्थाक्रियायोगपरोभवेत् ।

पुमान्स्वार्त्तनैःकर्यकर्मणामुत्तिसत्तम ! । ६७।

एतन्मया वेदपुराणमुह्यं

तरत्रं पर प्रोक्तमधर्मप्रतासम् ।

एकाग्रया शुद्धाधियावधार्यं

सच्छ्रद्धया चेतसि ते महर्षे ! । ६८।

न वासुदेवात्परमस्ति पावन

न वासुदेवात्परमस्ति मङ्गलम् ।

न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं

न वासुदेवात्परमस्ति वाञ्छितम् । ६९।

यन्नामद्येय सकृदप्यबुद्ध्या

देहावसानेऽपि गृणाति योऽत्र ।

स पुष्कसोऽप्यागु भवप्रवाहा-

द्विमुच्यते त भज वासुदेवम् ।३०।

हे मुनिवर ! तीन प्रकार के करने प्रमुख धर्मों से युक्त जो भगवान की यह भक्ति है वही एकान्तिक भागवत धर्म कहा गया है । ६४। भगवान के साक्षात् होने वाले परम सौभाग्य के सङ्ग से प्रयत्न उद्युक्त सब लक्षण सम्पन्न परम भक्तों के सङ्ग या सम्पर्क के ही पुरुषों के द्वारा इस प्रकार का एकान्तिक भागवत धर्म प्राप्त किया जाता करता है प्रयत्न किसी भी प्रकार से कही भी यह नहीं बिना करता है । ६५। जो मुनि पाने के इच्छुक हैं उनको इस प्रकार का कोई अन्य साधन है ही नहीं जो परम निःश्रेयस के करने वाला और मानवों के सम्पूर्ण धनदों का विनाश करने वाला है । ६६। इस एकान्तिक धर्म की सिद्धि के लिये क्रिया योग में परायण होना चाहिये । हे मुनिपते परम श्रेष्ठ ! जिसके करने से मनुष्य कर्मों की निष्कर्मण का स्थिति प्राप्त हो जावे । भगवान की भक्ति के लिए जो क्रिया योग की परायणता है वही निष्काम कर्म की सिद्धि है । ६७। हे महामुनि ! यह जो मैंने आपके समक्ष में वर्णन किया है यह तत्त्व की बात है और वेदों तथा पुराणों में भी यह तत्त्व परम गोपनीय होता है । यह परम तत्त्व पापों के समुदाय का विनाश करने वाला होता है यर्थात् इस तत्त्व के ज्ञान प्राप्त करने पर सम्पूर्ण पाप मनुष्य के विनष्ट हो जाया करते हैं । इस तत्त्व को एकान्त शुद्ध बुद्धि से और भाव करने वित्त में सद् श्रद्धा से धारण करिये । ६८। भगवान श्री वासुदेव से परम पावन (पवित्र बना देने वाला) धन्य कुछ भी नहीं है और भगवान वासुदेव से अधिक मङ्गल भी कुछ अन्य नहीं होता है । भगवान वासुदेव सर्वोपरि विराजमान देव हैं इसे धन्य कोई श्रेष्ठतम देव नहीं है । भगवान वासुदेव ही सर्व सौभाग्य से प्रसीद्ध हुए करते

हैं इनसे भग्य कुछ भी वाञ्छित नहीं होता है । ६६। यहाँ सत्कार में अपने ब्रह्म के त्याग करने के अवसर पर जो कोई भी एक बार भी जिस भगवान के परम शुभ नाम को प्रथम बुद्धि में भी ग्रहण या स्मरण कर लेता है वह चाहे किता भी पापों और विकृतियों से ही ब्रह्म ही इस सत्कार के बन्धन से विमुक्त हो जाता करता है अर्थात् बारम्बार जन्म-मरण पहण करते हुए अपने कर्मों से छुटकारा पा जाता है । अतएव वही भी वासुदेव प्रभु का भजन करो । ७०।

३४—क्रियायोगाधिकारादिवर्णन

एकान्तधर्मविवृति श्रुत्वा भगवतोदिताम् ।
 प्रहृष्टमानसो भूयस्तं पप्रच्छ म नारदः । १।
 धर्मं एकान्तिकः स्वामिन्द्या सम्पद्दीरितः ।
 तमाश्रुत्य सदान्तर्यो ज तोऽस्ति मम मानसे । २।
 सिद्धयेतस्म भवता क्रियायोगोप उच्यते ।
 तमहवोद्घुमिच्छामि भगवंस्तवमममत् । ३।
 पूजाविधिः क्रियायोगो वासुदेवस्य कीर्त्यते ।
 स तु वेदेषु न्येषु बहुषु वास्ति वर्णितः । ४।
 भक्तानां हृषिर्ध्वज्यास्तथा बहुविधस्वयम् ।
 वासुदेवस्य मूर्त्तिना बहुधा तोऽस्ति विस्तृतः । ५।
 साकल्पेनोक्तमानस्य पारो नाऽऽप्यति तम्य वै ।
 अतः सद्भक्षे प्रनरत्तुर्मयं वक्षि मक्तिविवर्द्धनम् । ६।
 प्राप्तयेर्वेण्णाघोदोक्षावर्णाञ्चस्वारजाश्रमाः ।
 चातुर्वर्ण्यंश्च यवचंते प्रोक्ता अत्राधिकारिणः । ७।

श्री स्कन्द ने कहा—भगवान (पापके) द्वारा वर्णित एकान्त धर्म की विवृति का श्रवण करके परम प्रसन्न मन बने वेदपि श्री नारदजी ने पुनः उनसे पूछा या । १। श्री नारद जी ने कहा—हे स्वा-

मिन् ! आपने जो एकात्मिक धर्म का भली-भाँति वर्णन किया है उसको सुनकर मुझे मन में अत्यधिक प्रसन्नता हुई है । २। आपने उसकी सिद्धि के लिए जो क्रिया योग कहा है हे भगवन ! उस आपके सम्मत क्रिया योग को मैं जानने की इच्छा रखता हूँ । ३। श्री नारायण भगवान ने कहा—भगवान वासुदेव की जो पूजन करने की विधि है वह ही क्रिया योग की तत्त्व किया जाता है । वह अर्चन करने का विधान वेदों में तथा ग्रन्थों में जो कि तनज शास्त्र के हैं बहुत से प्रकारों वाला बतलाया गया है । ४। भक्तों की रुचियों की विचित्रता होने से तथा वासुदेव भगवान की प्रतिमाओं के बहुत से प्रकार होने से वह क्रिया योग अर्थात् अर्चन विधान भी अनेक प्रकार वाला विस्तृत बनाया गया है । ५। सम्पूर्ण रूप से बड़े जाने का तो उसका कोई पार ही ही नहीं सकता है अर्थात् पूर्णतया उ का बतला देना तो सम्भव ही नहीं हो सकता है अतएव मैं संक्षेप से ही उसका विषय में आपको यहाँ पर उसे बतला देता हूँ जिसके करने से भक्ति का विशेष अर्घन होता है । ६। चारों तरह के वर्णों वाले पुरुष अ कि चारों आश्रमों का पालन किया करते हैं वह चातुर्वर्ण्य और स्त्रियाँ भी उसके करने के अधिकारी हुमा करते हैं जोकि वैष्णवी दीक्षा को प्राप्त कर लेते हैं । ७।

वेदसम्प्रपुराणावनेमन्त्रैर्मूलेन च द्विजाः ।
 पूजयेदुदीक्षितायायाः सच्छूद्रा मूतमन्त्रतः ।
 मूलमन्त्रस्तु विज्ञेयः श्रीकृष्णस्य पङ्कशरः । ८।
 स्वस्वधर्मं पातयद्भिः सवरेतैर्मथाविधि ।
 पूजनीयोवासुदेवोभक्त्यानिष्कपटान्तरैः । ९।
 आदौ तु वैष्णवी दीक्षां गृह्णीयात्सद्गुरोः पुमान् ।
 सदैकान्तिकधर्मं स्थाद् ग्रह्यजातेर्दयानिधोः । १०।
 सम्प्रज्ञो ज्ञानभक्तिभ्यास्वधर्मं रहितस्तु यः ।
 सगुरुर्नैव कदाप्यः स्त्रीहृतात्मा चर्काहचित् । ११।

प्राप्ता स्त्रैणाद् गुरोर्दीक्षा ज्ञानं भक्तिश्च कहिचित् ।

फलेष्वैव यथाऽपत्य युवतिः पण्डसङ्गिनो ॥१२॥

प्राप्याऽनः सद्गुरोर्दीक्षां तुलसीगालिका गले ।

लनाटादौ चोदध्वपुण्ड्रं गोपीचन्दनतो धरेत् ॥१३॥

विष्णुपूजाश्चिभक्तो गुरोरेवागमोदितम् ।

पूजाविधिं सुविज्ञाय ततः पूजनमारभेत् ॥१४॥

वेद और तन्त्र तथा पुराणों में कहे गए मन्त्रों के द्वारा एवं मूल मन्त्र से दीक्षा द्विज और स्त्रियाँ मत्र ही पूजा करनी चाहिये । जो सत् गुरु हैं वे भी केवल मूल मन्त्र से पूजा करें । मूल मन्त्र तो श्रीकृष्ण भगवान का ही मन्त्रो वासा ही होता है । (१) अपने २ धर्मों का पालन करने वाले इन मन्त्रों द्वारा विधि-विधान के साथ निष्कण्ठ हृदय बानी को भगवान वासुदेव का पूजन करना चाहिये । (२) जो पुरुष वासुदेव भगवान के भक्त बनने का इच्छुक हो उसे यदि में ही किसी पोष्य गुरु से वैष्णवी दीक्षा का ग्रहण करना चाहिये जो गुरु सदा एकात्मिक धर्म में स्थित हो, ब्राह्मण जाति का हो और दया का निधि होना चाहिए ऐसे ही गुरु से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये । (३) गुरु ज्ञान और भक्ति दोनों से सम्पन्न होना चाहिये । जो गुरु अपने धर्म में रहित हो और स्त्रियों के द्वारा जितना हुन्य भगहन हो उसे कभी भी अपना गुरु कब नहीं बनाना चाहिये भर्मानु स्तोत्र और अपने धर्म का पालन न करने वाले से दीक्षा ग्रहण न करे । (४) जो गुरु स्त्रीण हो भर्मानु स्त्रियों के साथ बिलास क्रीडा करने वाला हो उससे श्रास को हुई दीक्षा ज्ञान और भक्ति का फल देने वाली कभी भी नहीं हुषा करनी है त्रिम तरह से मन्त्र और मन्त्रिक पुरुष के साथ संग करने वाली युवती फल सुख होती है । (५) मन्त्रिक किसी अच्छे सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त करके गले में तुलसी की कण्ठी धारण करे और गोपी चन्दन के लनाट में च वि द्वाश्रय धारी ने मंगो के लम्ब, पुण्ड्र (तिलक) धारण करे । (६) भगवान विष्णु की पूजा में रुचि रखने वाले भवत वैष्णव

की प्रपत्ते गुरुदेव से ही माग्य में वर्णित पूजा के विधान को मन्त्रो
रोति से जानकर इसके अनन्तर भगवान् के पूजन का आरम्भ करना
चाहिये । १४।

रात्र्यन्तयामउत्यागभक्तोग्राहोक्षणेऽथवा ।
गृहूर्त्ताद्वं हृदि ध्यायेत्केशववलेशनाशनम् । १५।
कीर्त्तयित्वाऽभिधानस्य तदोयानाश्च नाडिकाम् ।
ततः शौचविधिं कृत्वा दन्तधावनमाचरेत् । १६।
अङ्गशुद्धिस्नानगादौ कृत्वा स्नायात्समम्भ्रकम् ।
गृहीत्वाशुचिसृत्स्नादीन्कुर्वात्स्नानाङ्गतर्पणम् । १७।
परिघायाऽशुकैधौने उपविश्यासनैशुचौ ।
कृत्वोदुष्वपुण्ड्रकुर्वीतसन्ध्यांहोमंजपादिच । १८।
वस्नचन्दनपुष्पादीनुपहारास्ततोऽखिलान् ।
अहरेग्मामम देराद्यशुचिस्पर्शवर्जितान् । १९।
देवेभ्यो वा पितृभ्यश्चाऽप्यन्येभ्यो न निवेदितान् ।
भनाघ्राताश्च मनुजैः केशकीटादिवर्जितान् । २०।
सस्याप्यतान्दक्षपाश्र्वं पूजोपकरणातिच ।
उद्वर्त्य दीपमाज्येनकुर्वात्तिलेन वा ततः । २१।
कोशेवीर्णं च वस्त्रादौ विक्राष्टे शुद्ध आसने ।
उपाविशेद्वासुदेवप्रतिमासन्निधौ ततः । २२।

वैष्णव भक्त को रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर ही प्रथवा
ग्रह गृहूर्त्त में शयन से उठकर सर्व प्रथम बाधे गृहूर्त्त तक (दो घड़ी
के समय को गृहूर्त्त कहा गया है) कोशों के नाश करने वाले भगवान्
केशव का ध्यान करना चाहिये । १५। भगवान् के नामों का कीर्त्तन
करके घोर तदीय प्रथान् विष्णु भक्तों को माडि का कीर्त्तन करके
फिर शौच विधि करके दन्त धावन करे । १६। प्रादि में अङ्ग की शुद्धि
के लिए स्नान करे घोर मन्त्रों के सहित ही स्नान करना चाहिये ।

फिर घुचि मृत्नादि का ग्रहण कर स्नान के अंग स्वरूप तर्पण को करना चाहिये । १७। इसके उपरान्त घोंत वस्त्रों को धारण करके घुचि आसन पर उपविष्ट होवे । उर्ध्वं पुण्ड्र करके सन्ध्या की वन्दना, होम और जप आदि जो परमावश्यक नित्य कर्म है उसे सर्व प्रथम सम्पादित करना चाहिए । १८। इनके पश्चात् मौस-मदिरा आदि अशुचि पदार्थों के स्पर्श से रहित वस्त्र, चन्दन और पुष्प आदि पूजन के सम्पूर्ण उपचारों का आहरण करे । १९। ये पूजन के उपचार ऐसे ही होने चाहिये जो अन्य देवताओं, पितृगणों को समर्पित न किये हुए हो । ये उपचार ऐसे ही हों कि मनुष्यों के द्वारा भी आधात न होवे तथा केश और कीट आदि से रहित होने चाहिये । २०। इन समस्त पूजा के उपचारों अर्थात् साम-ग्रियों के अपने आसन के दाहिने ओर ही रखना चाहिये । फिर सर्व-प्रथम घृत से अथवा घृतमात्र में तैल से दीपक को मरकर जला देवे । बैठने का जो आसन हो वह भी परम सुन्दर होना चाहिए वह कह कोशेय (रेवती) हो, ऊन का हो, वस्त्र आदि का हो अथवा विक्राष्ट हो उसी पर भगवान् वासुदेव की प्रतिमा के समीप में उपविष्ट होना चाहिये । २१। २२।

शैली घातुमया दावो लेख्या मणिमयी च वा ।

प्रतिमा स्यात्सिता रक्ता पीता कृष्णाऽथ वा मुने ! । २३।

कृष्णस्य सा तु कर्तव्या द्विभुजावाचतुर्भुजा ।

मुरली धारयेत्तत्र द्विभुजायाः करद्वये । २४।

अथवा दक्षहस्तेऽस्याश्चक्रं शङ्खं तथेतरे ।

पद्मं वा धारयेद्दक्षे पाणात्रभयमुत्तरे । २५।

द्वितीयायास्तु हस्तेषु दक्षिणाधः करकमात् ।

गदावजदरचक्राणि धारयेन्मुनिमत्तम । २६।

द्विविधाया अपि हरेर्मुर्तेर्वमिश्रियं न्यसेत् ।

मुरलीधरवामे तु राधारोत्तरीन्यसेत् । २७।

कप्येषा द्विविधा सूर्तिारर,ण्डा शुभलक्षणा ।
 सर्वावयवसम्पन्ना भवेदच्चंकसिद्धिदा ॥२८॥
 तक्ष्मोस्तु द्विभुजाकार्यावासुदेवस्यसन्निधौ ।
 दधतीपङ्कजहस्ते वञ्जालङ्कारशोभना ॥२९॥
 लक्ष्मोवद्वाधिकाऽपि स्याद् द्विभुजा चारुहासिनी ।
 पङ्कजं पुष्पमाला वा दधती पाणिपङ्कजे ॥३०॥

हे मुनिवर ! भगवान् की प्रतिमा पापाण की हो, धनुमयी हो,
 हो, काष्ठ की हो, निखी हुई पर्याप्त चित्रमयी हो, मणि (रत्न निमिता)
 मयी हो, इन पाँच छ्द प्रकार की रचित मूर्तियों में से किसी भी एक
 प्रकार की मूर्ति होनी चाहिए । उस प्रतिमा का वर्ण सफेद, रक्त, पीत
 अथवा कृष्ण किसी भी प्रकार का होवे ऐसी ही एक प्रकार की भग-
 वन्मूर्ति होनी चाहिए जिसका अर्चन करना है ॥२३॥२४॥ भगवान्
 श्रीकृष्ण की प्रतिमा या तो दो भुजाओं वाली अथवा चार
 भुजाओं में युक्त बनानी चाहिए । जो दो भुजाओं वाली प्रतिमा हो
 उसके दोनों हाथों में वशो धारण करानी चाहिये । अथवा जो चार
 भुजाओं वाली प्रतिमा हो उस प्रतिमा को उसके दाहिने हाथ में चक्र
 और इतर (बाँये) हाथ में शङ्ख और उत्तर दोनों हाथों में पद्म एवं
 अमय धारण कराना चाहिये । ॥२५॥ दूसरी जो चतुर्भुजा मूर्ति है उसके
 हाथों में दक्षिण और मध्य पर क्रम से यश कमल और चक्र हे मुनि-
 श्रेष्ठ ? धारण कराने चाहिये ॥२६॥ दोनों ही प्रकार की श्री हरि की
 मूर्ति के वाम भाग में लक्ष्मी देवी की विराजमान करे । जो मुरलीधर
 भगवान् वासुदेव की मूर्ति के वाम भाग में राशेश्वरी श्री राधादेवी की
 मूर्ति का न्यास करना चाहिए ॥२७॥ ये दोनों ही प्रकार की मूर्तियाँ
 अलम्ब और शुभ लक्षण वाली होनी चाहियें । ये मूर्तियाँ समस्त अद-
 र्श्यों से सम्पन्न और पूजा करने वाले व्यक्ति को सिद्धि प्रदान करने वाली
 होनी चाहियें । भगवान् वासुदेव के समीप में लक्ष्मी देवी की जो प्रतिमा

विराजमान की जावे वह दो ही भुजाओं वाली होनी चाहिये । लक्ष्मी की प्रतिमा के हाथ में कमल होवे और वह परम दिव्य वस्त्र तथा माल-
झूरी से शोभित होनी चाहिए । लक्ष्मी देवी के ही सदृश श्री राधा देवी की मूर्ति भी दो भुजाओं वाली और सुन्दर हास से युक्त होवे जोकि कमल और पुष्पों की भाना हस्त कमल में धारण करने वाली होवे । २८—३०।

अचलाचचलाचेति द्विविधाप्रतिमाहरेः ।
 तत्राऽऽद्याथा न कर्तव्यमावाहनविमज्जनम् । ३१।
 तदङ्गदेवतानाञ्च कार्येनावाहनाद्यपि ।
 नच विदङ्गनियमोऽर्वाधानस्याः स्येयतु सम्पुषे । ३२।
 क्षालनमेऽप्येवमेव कार्ये नावाहनादि च ।
 अन्यत्र चलमूर्त्तौ तु कर्तव्यं तराश्चकैः । ३३।
 तत्रापि दार्ढ्यां लेख्यायाजलस्पर्शोऽनुलेपनम् ।
 नच कार्यम्पूजकेनकर्तव्यपरिमाज्जनम् । ३४।
 उदङ्मुखः प्राङ्मुखोवाचनाधामग्न्यूखोऽप्यवा ।
 यथाशक्तिथयालब्धौहरहार्यजेद्धरिम् । ३५।
 श्रद्धानिशङ्कश्रमन्तिश्रामपितेनाऽऽश्रुताऽपि साः ।
 प्रीतस्तुष्यति विभ्रात्मा किमुताऽऽस्त्रमपूजया । ३६।
 पुंसां श्रद्धादिहीनेन रत्नहेमाञ्जलङ्क्रियाः ।
 चतुर्विधं चाप्यस्तायं दर्शं गृह्णतिनीमुदा । ३७।
 तस्ताद्भक्तिमता कार्यं पुंसां स्वश्रेयसे भुवे ।
 श्रीकृष्णस्यार्चनं नित्यं सर्वामीष्टाद्युदायितः । ३८।

भगवान् श्रीहरि की मूर्तियाँ दो प्रकार की दृष्टा करनी हैं । कुछ घना और कुछ अचला होती हैं । जो चला प्रतिमा है उनमें आवाहन और विसर्जन नहीं करना चाहिये । उनके जो भग्न देखता है उन सबका आवाहन, विसर्जन आदि करे । इस अर्चना में कोई भी दिशा विशेष से

स्वित होने का नियम नहीं है केवल उस मूर्ति के सम्मुख में ही स्वित होता चाहिये । शान ग्राम की पूजा के विषय में भी प्रावाहन और विसर्जन आदि नहीं करना चाहिये । अन्यत्र चतुर्मुख वाले प्रतिमाओं में प्रर्चना करने वालों को प्रावाहनादि करना चाहिये । ३१ - ३३। उनमें जो जो प्रतिमाएँ काष्ठमयी हों, लोहा आदि चित्रमयी हों उनमें जल का स्पर्श और चन्दनादि का अनुचरन ही करना चाहिए । जो पूजन करने वाला व्यक्ति है उसे उनका क्षेत्र परिमार्जन करना चाहिए । उदङ्मुख प्रयत्न प्राङ्मुख प्रयत्न चतुर्मुख मूर्ति के सम्मुख में स्वित होकर यथाशक्ति और जो भी समय पर उपलब्ध हो उन उपकरणों से श्री हरि का यजन करे । ३४। ३५। शूला, कपट का अभाव और अशुद्धि से अर्पित केषल जल से भी वह त्रिधात्मा प्रसन्न होकर लुप्त हो जाते हैं पर्यन्त पूजा की तो बात ही क्या है । ३६। जो शूलाहीन हो ब्रह्म के रत्नादि के अलङ्करण को और चारों प्रकार के अशुद्धि को वह ग्रहण नहीं करते हैं । इनसे अशुद्धिमान् होकर अपने धर्म के लिए श्रीकृष्ण का प्रार्थन करना चाहिए जो सब अशुद्धि के प्रदान करने वाले हैं । ३७ - ३८।

॥ वैष्णव खंड समाप्त ॥

स्कन्द-पुराण

३-ब्रह्म खण्ड

सेतु महात्म्य खण्डेन

- शुक्लाम्बरधर विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये । ११।
नेमिपारण्यनिलये श्रुपयः शौनकादयः ।
अष्टाङ्गयोगनिरता ब्रह्मज्ञानं कतरपराः । १२।
मुमुक्षुबोहमहात्मानो निमंभा ब्रह्मवादिनः ।
घर्मज्ञा जनसूयाश्च सरथप्रनपरायणाः । १३।
जितेन्द्रिया जितक्रोधाः सर्वमूतदयालवः ।
भक्त्या परमया विष्णुमर्चयन्तः सनातनम् । १४।
उपस्तेषुर्महापुण्ये नेमिषे मुक्तिदायिनि ।
एवाशतेमहात्मानः सभाञ्चक्रुस्तमम् । १५।
कथयन्तो महापुण्या कथाः पापप्रणाशिनीः ।
शुक्तिमुक्तेरुपायश्च जिज्ञासन्तः परस्परम् । १६।
पडिनिशितिसहस्राणामृषीणाम्भावित्वात्मनाम् ।
तेषां दिव्यप्रविष्याणां सङ्ख्या कर्तुं न शक्यते । १७।

मङ्गला चरण पत्तोरु—समस्त विघ्नों की शांति के लिए
अत्यन्त शुक्ल बर्णों के धारण करने वाले, चन्द्र के समान बर्ण से समुद्र
चार भुजाओं से सम्पन्न, परम प्रसन्न मुख वाले भगवान विष्णु का
ध्यान करना चाहिये । नेमिपारण्य के स्थान में शौनक आदि ऋषिगण
जो अष्टाङ्ग योग से पुरत एवं साठ जिसके यम, निघम, ध्यान, धारणा

मादि पाठ शंग होते हैं ऐसे योग के प्रत्यास में सर्वदा निरत रहने वाले, ब्रह्म के ज्ञान में ही एकमात्र पराधरण, जो मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं, ममता से रहित, महान आत्मामो वाले ब्रह्मशादी धर्मों के ज्ञाता, भसूया से रहित, सत्य व्रत में पराधरण, इन्द्रियो को जीत लेने वाले, क्रोध पर विजय प्राप्त किए हूये, समस्त प्राणियों पर दया करने वाले थे । वे परमोत्तम भक्ति से सनातन प्रभु विष्णु का भजन करते हुए उस महान पुण्यमय नैमिष क्षेत्र में जो मुक्ति का प्रदान करने वाला था तपश्चर्या किया करते थे । एक बार उन सब महारमाओं ने उत्तम समाज किया था ।१-५। उस समाज में वे महान पुण्य से परिपूर्ण मयाओं को कह रहे थे जोकि महान पापों का विनाश कर देने वाली हैं और वे सब परस्पर में भुक्ति तथा मुक्ति के उपायों को भी जानने की इच्छाएँ कर रहे थे । वे भाविन आत्मामो वाले ऋषिगण एश्वीम सहस्र थे । उनके जितने शिष्य एवं प्रशिष्य (शिष्यों के भी शिष्य) थे यह सख्या तो की ही नहीं जा सकती ।६।७।

- अश्रान्तरेमहाविद्वान्व्यासशिष्योमहामुनिः ।
 अगमन्नैमिपारण्य सूतः पौराणिकोत्तमः ।८।
 तमागतमुनिदृष्ट्वा ज्वलन्तमिवपावकम् ।
 अधर्षाद्यैः पूजयामासुमुनयः शौनकादयः ।९।
 सुत्रोपविष्टं त सूतमासने परमेशुभे ।
 पप्रच्छु परमगुह्यं लोकानुग्रहकाङ्क्षया ।१०।
 सूतघर्मार्थतत्त्वज्ञसवागतमुनिपुङ्गव ।
 धृतवास्त्वपुराणानिव्यासात्सत्यवसीमुतात् ।११।
 अतः सर्वपुराणानामर्थज्ञोसिमहामुने ।
 कानिक्षेत्राणपुण्याणकानितीर्थानिभूतले ।१२।
 पथवालप्स्यतमुक्तिर्जीवानाम्भवसागरात् ।
 कथहरेहरीवाप नृणाभक्तिः प्रजायते ।१३।
 केनसिद्धमेतच्चत कर्मणस्त्रिविघात्मनः ।
 एतच्छाऽन्यच्चतत्सर्वं कृपया वद सूतज ! ।१४।

इस अन्तर में पुराणों के ज्ञाताओं में परम उत्तम—महान् मनीषी—
 व्यासदेवजी के शिष्य—महामुनीन्द्र श्री सूतजी वहाँ पर नैमिषारण्य में
 समागत हो गये थे ॥ ८ ॥ पावक (अग्नि) की भक्ति जाज्वल्यमान
 उनकी वहाँ पर समागत हुए देखकर समस्त शौनक प्रभृति ऋषियों ने
 विधि पूर्वक अर्घ्य आदि के द्वारा उनका पूजन किया था ॥ ९ ॥ परम
 सुम सुन्दर आसन पर सुख पूर्वक उनके समुपविष्ट हो जाने पर उन सबने
 सोचो पर अनुग्रह करने की इच्छा से परम गुरु भक्त श्री सूतजी से
 पूछा था ॥ १० ॥ हे मुनियो मे परम करिष्ठ सूतजी ! आपका हादिक
 स्वागत हम करते हैं । आप तो धर्मार्थ के तत्त्वों के पूर्ण ज्ञान रखने वाले
 हैं । आपने समस्त पुराणों को सत्यवती के पुत्र श्री व्यासदेव जी के
 मुखारविन्द से ही श्रवण किया है । अनन्व हे महामुनिवर ! आप तो
 सभी पुराणों के अर्थों को पूर्णतया जानने वाले हैं । आप अब कृपा करके
 हम लोगों को यह बतलाइये कि कौन से परम पुण्यमय क्षेत्र हैं और इस
 शूतल पर कौन-कौन से तीर्थ स्थल हैं ? यह भी बतलाने का आप हम
 सब पर अनुग्रह कीर्तिष्णा कि इस भव सागर में जीवों को मुक्ति कर्म
 प्राप्त की जाया करती है ? ऐसा कौन सा साधन है जिससे इन माया-
 मुग्ध मानवों की श्री हरि में श्रवण श्री हरि में भक्ति समुत्पन्न हो जावे ?
 इन तीन प्रकार के कर्म का फल किसके द्वारा सिद्ध होता है—यह सब
 तथा अन्य भी जो हम नहीं पूछ सके हैं सभी कुछ हे सूतजी ! आप कृपा
 करके हमको बतलाइये ॥११-१४॥

शृणु जिन-धायशिष्याय गुरवोगुह्यमध्युत ।

इतिपृष्टस्त्वदा सूतो नैमिषारण्यवामिभिः ॥११

बन्धु प्रवक्ष्ये नत्वा व्यास स्यगुर्भारितः ।

सम्भवपृष्टमिदं विप्रा । युष्माभिःजगतो हितम् ॥१२

रहस्यमेतद्यत्माक वक्ष्यामिशृणु वभक्ति पूवकम् ।

भयानोक्तमिदपूव कस्यार्जपि मुनिपुङ्गवा ! ॥१३

मनोनियम्यविप्रन्द्रा शृणुध्वंभक्तिःपूर्वम् ।
 भस्तिरामेश्वरं नामगमसेतुपवित्रितम् ॥१८
 क्षेत्राणामपिसर्वेषा तीर्थानामपिचोत्तमम् ।
 दृष्टमाद्योणतत्सेतुं मुक्तिं ससारसागरात् ॥१९
 हरे हरी च भक्ति स्यात्तथा पुण्यसमृद्धिता ।
 कर्मणस्त्रिविधस्यापि सिद्धिः स्यान्नाऽत्र सशयः ॥२०
 योनरोजन्ममध्येतु सेतु भक्त्याऽवलोकयेत् ।

तस्यपुण्यफलवक्ष्येशृणुध्वन्मुनिपुङ्गवा ॥२१

श्री गुरुवृन्द जो स्नेह का परम पात्र शिष्य होता है उसको गोपनीय से भी गोपनीय बात बतला दिया करते हैं । इस तरह से जब सूतजी से पूछा गया तो उन नैमिषारण्य वासियो से आदि में अपने गुरुदेव व्यासजी को प्रणाम करके उन्होंने वर्णन करने का समारम्भ किया था ॥१५॥ श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! आपने इस जगत् की भलाई को दृष्टि में रखकर भय बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । यह हम लोगो का परम रहस्य है । मैं आप लोगो को इसे बतलाता हूँ । आप समादर पूर्वक इसका श्रवण कीजिए । हे मुनियो मे परम थोठो ! इसके पूव मे अभी तक मैंने इस रहस्य को किसी को भी नही बतलाया था । इसलिये आप लोग अपने मन को नियम नियन्त्रित करके हे विप्रन्द्र वृन्द ! इसका भक्तिभाव से परिपूर्ण होमे हुए श्रवण करिये । एक श्री रामेश्वर नाम वाला परम पवित्र श्रीराम का सेतु है । यह समस्त क्षेत्रो मे प्रौर सम्पूर्ण तीर्थो मे परमोत्तम स्थल है । इस सेतु की ऐसी अद्भुत महिमा है कि इसके केवल दशत मात्र से ही इस ससार रूपी सागर से मुक्ति हो जाया करती है तथा श्री हरि और श्री हर दोतो मे पुण्यो से समृद्धि वासी मुहृढ भक्ति हो जाया करती है । त नो प्रकार क कर्मो की सिद्धि भी प्राप्त ही जाती है—इस विषय मे कुछ भी सशय नही है । हे मुनियो मे परम थोठो ! जो मनुष्य अपने इस मानव जीवन के मध्य मे दस

सेतु का भक्ति भाव पूर्वक व्यवहार कर लेता है उसका जो महान् पुण्य-फल होता है उसे मैं आपको बतलाता हूँ आप अवश्य करिये !
॥ १६-२१ ॥

मातृतः पितृतश्चैव द्विकोटिकुलसयुतः ।
निर्विंश्यशम्भुनाकल्प ततोमोक्षत्वमश्नुते ॥२२
गण्यन्ते पांसवांभूमेगण्यन्तेदिवितारकाः ।
सेतुदर्शनंजं पुण्यं दोसेणाऽपि न गण्यते ॥२३
समस्तदेवतारूपः सेतुबन्ध प्रकीर्तितः ।
तद्दर्शनवतः पुंसां क.पुण्यंगणितु क्षम ॥२४
सेतुं दृष्टवानरोविप्राः सर्वयागरुः स्मृतः ।
स्नानश्चसवतीर्थेषु तपात्तज्ज्यतचाश्लिषम् ॥२५
सेतुं गच्छेतिप्रोश्नुयाद्यकम्वापिनरद्विजाः ।
सोऽपतत्कलमाप्नातिकिमन्यं बहुभाषणः ॥२६
सेतुस्नानकरोमर्त्यः सप्तकोटिकुलान्वितः ।
सम्प्राप्यविष्णुभवनं तत्रैव परिमुच्यते ॥२७
सेतुं रामेदवरलिङ्गं गन्धमादनपर्वतसु ।
चिन्तयन्मनुजः सत्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२८

मातृकुल और पितृकुल दोनों दो कुलो ने ही करोड़ से सयुत होकर शम्भु के द्वारा कल्प ने निर्दिष्ट हो जाता है और फिर वह मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है । इस भूमि के धूलि के कण भी गिने जा सकते हैं और आकाश में स्थित असीम नारो की गणना की जा सकती है अर्थात् ये दोनों ही अपरिमित हैं वो भी ऐसी सम्भावना हो सकती है कि इनकी गणना हो जावे किन्तु सेतु के दर्शन से समुत्पन्न पुण्य भगवान् शेष के भी द्वारा नहीं गिना या धणित किया जा सकता है—यह इतना असीमित होता है । यह सेतुबन्ध सम्पूर्ण देवता के स्वरूप माना जाता है—ऐसा कीर्तित किया गया है । उसके दर्शन करने वाले पुरुष के पुण्य को कौन

गिनते में समर्थ हो सकता है ? जिस मनुष्य ने इस सेतु का दर्शन कर लिया है हे विप्रो ! वह तो समस्त यज्ञों के करने वाला कहा गया है । उसको तो फिर यही समझ लेना चाहिए कि सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है और सम्पूर्ण तप का तपन भी वह कर चुका है । सात्यय यह है कि उसको शेष करने का कुछ भी रह ही नहीं जाता है । हे द्विजगण ! जो जिस किसी भी मनुष्य से यह कहदे कि सेतुदग्ध के दर्शन प्राप्त करने के लिये जाइये । वह भी उसी फल को प्राप्त कर लिया करता है फिर इससे अधिक अन्य भाषणों के करने से क्या प्रयोजन है । सेतु में स्नान करने वाला मनुष्य सात करोड़ कुलों से मुक्त होकर श्री विष्णु भगवान् के भवन को प्राप्त कर लेता है और वही पर वह मुक्त हो जाया करता है । सेतु श्री रामेश्वर लिङ्ग—गन्धमादन पर्वत—इनका चिन्तन करने वाला भी पुरुष समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥ २२-२८ ॥

मातृतः पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वितः ।
 कल्पत्रयशम्भुपदे स्थित्वा तत्रैव मुच्यते ॥२६
 मृपावस्थावसाकूप तर्षार्धतरणीं नदीम् ।
 श्वभक्षमूत्रपानञ्च सेतुस्नायी न पश्यति ॥३०
 तप्तशूलन्तप्तशिला पुरीषहृदमेव च ।
 तथाशोणितकूपञ्च सेतुस्नायी न पश्यति ॥३१
 शत्मल्यारोहणरक्तभोजनकृमिभोजनम् ।
 स्वमासभोजनञ्च वह्निज्वालाप्रवेशनम् ॥३२
 शिलावृष्टिवह्निवृष्टि नरक कालसूत्रकम् ।
 चारोदकंचोष्णतोय नेयात्मेत्ववलोककः ॥३३
 सेतुस्नायी नराविप्रा पञ्चपातकानपि ।
 मातृतःपितृतश्चैव शतकोटिबुलान्वितः ॥३४
 कल्पत्रयविष्णुपदे स्थित्वा तत्रैव मुच्यते ।

अधःशिरःशोषणं च नरकंक्षारसेवनम् ॥३५

मातृ कुल तथा पितृ कुल—इन दोनों के एक लक्ष कोटि कुलों से समन्वित होकर तीन कल्प पर्यन्त भगवान् श्री शम्भु के पद से स्थित रह कर वही पर मुक्त हो जाता करता है । मूलावस्था—वसा क्षुप—वैतरणी नदी—ववमल—मूत्रपान इन महान् घोर पातनाएँ देने वाले नरको को सेतुबन्ध क्षेत्र में स्नान करने वाला कभी कभी देख ही नहीं सकता है । तप्त दूध—तप्त जिला—पुरीष हृद—गोणित कूर—इन नरको को भी सेतु में स्नान करने वाला नहीं देखा करता है ॥ २६, ३०, ३१ ॥ सत्सलारोहण—रक्त भोजन—कृमि भोजन—स्वमास भोजन—घट्टिन पवासा प्रवेशन—शिला वृष्टि—दहिन वृष्टि—काल सूत्रक नरक—क्षारोदक—उप्यतोष—इन नरको में सेतुबन्ध के अवलोकन करने वाला पुरुष कभी भी समन नहीं किया करता है । हे विप्रगण । सेतुबन्ध क्षेत्र में स्नान करने वाला पुरुष पाँच पातको वाला भी हो ली भी मातृ एव पितृ दोनों के सठकोटि कुलों से समन्वित होकर तीन कल्प पर्यन्त श्री विष्णु के पद में समन्वित रहकर वही पर ही मुक्त हो जाता करता है । अधशिर—शोषण—क्षार सेवन नरक में सेतु में स्नान करने वाला कभी नहीं जाता है ॥ २-३५ ॥

पापाण्यन्त्रपीडाञ्च मरुत्प्रपतन तथा ।

पुरीषलेपनञ्च तथा क्रकचदारणम् । ३६

पुरीषभोजनरेतः पानसन्धिपुदाहनम् ।

अङ्गारशय्याभ्रमण तथामुसलमर्दनम् ॥३७

एतानि नरकाण्यद्वा सेतुस्नायो न पश्यति ।

सेतुस्नान करिष्येऽहमिति बुद्ध्या विचिन्तनम् । ३८

गच्छेच्छतपदंयस्तु समहापानकोऽपिसन् ।

बहूनाकाष्ठाद्यन्त्राणाकपण शस्त्रसेदनम् ॥३९

पतनोत्पतन चैव गदादण्डनिपीडनम् ।

गजदन्तश्च हननं नानाभुजगदशनम् ॥४०
 घूमपानपाशदन्ध नानाशूलनिपीडनम् ।
 मुखेच नासिकायाचक्षादोदः निषेचनम् ॥४१
 क्षाराम्बुपाननरक तप्तपयः सूचिभक्षणम् ।
 एतानि नरकाण्यद्धा नयाति गतपातकः ॥४२

पापाण यन्त्र पीडा — मरुत्प्रयतन — पुरीषलेपन — ककच क्षारण —
 पुरीषमोचन — रेत. पान — शिथिलपुटाहन — अङ्गार शय्या भ्रमण मुसलमर्दन —
 इन महायन्त्रणा प्रद नरको मे सेतुबन्ध मे स्नान करने वासा कभी नहीं
 जाता है तथा इनको कभी भी नहीं देखता है । मैं सेतुबन्ध मे स्नान
 करूँगा — यह इतना भर अपनी बुद्धि से चिन्तन ही परम पुण्य प्राप्त
 करने के लिये पर्याप्त है ॥ ३६, ३७, ३८ ॥ जो एक ही कदम गमन
 करता है वह चाहे महापातको वासा भी क्यों न हो, मुक्त हो जाता है ।
 बहुत से काष्ठ यन्त्रों का कर्षण — शस्त्र भेदन — पतनात्पतन — गदादण्ड
 निरीडन — गजदन्तो से हनन — अनक भुजङ्गों के द्वारा वशन — घूमपान —
 पाशदन्ध — नाना शूलों से निपीडन — मुख मे और नासिका मे क्षारोदक का
 निषेचन — क्षाराम्बुपान नरक सप्तपान. — सूचि भक्षण — इन उपर्युक्त नरको
 को वह सेतुबन्ध मे स्नान करने वासा प्राणो समस्त पातको से शुद्ध
 हो जाने के कारण कभी भी गमन नहीं किया करता है ॥ ३६ । ४०
 ४१ । ४२ ॥

सेतुस्नानमोक्षदं च मन शुद्धिप्रदं तथा ।
 जपाद्योमात्तयादानाद्यागाश्च तपसोऽपि च ॥४३
 सेतुस्नानं विशिष्टं हि पुराणेषु विद्यते ।
 अकमनाकृतस्नानं सेतो पापविनाशने ॥४४
 अपुनर्भवदप्रोक्तं सत्यमुक्तं द्विजोत्तमा ।
 य. सम्पद समुद्दिश्य स्नातिसेतो नरोमुदा ॥४५
 स सम्पदमवाप्नोति विपुला द्विजपुङ्गवाः ।

शुद्धयर्थं स्नाति चैत्सेतौ तदा शुद्धिम गप्नुयात् ॥४६
रत्नार्थं यदि च स्नायादप्सरोभिनरादिवि ।

तदारतिमवाप्नोति स्वर्गलोके परीजनैः ॥ ४७

मुक्त्यर्थं यदि च स्नायात्सेतौ मुक्तिप्रदायिनि ।

तदामुक्तिमवाप्नोति पुनरावृत्तिवजिताम् ॥४८

मेतु स्नानेन घर्मं स्यात्सेतुस्नानादघक्षयः ।

सेतुस्नानं द्विजश्रेष्ठाः सर्वकामफलप्रदम् ॥४९

यह सेतुबन्ध क्षेत्र का स्नान मन की शुद्धि करने वाला और मोक्ष प्रदान करने वाला है । अर्प—होम—दान—याग और तपस्या—इन सबसे भी विशिष्ट सेतुबन्ध का स्नान होता है जिसका कि पुराणों में परिग्रहण किया जाता है । इस पापी के विनाश करने वाले सेतु में बिना किसी कामना के भी किया हुआ स्नान अयुत भव का अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाला कहा गया है । हे द्विजोत्तमो ! यह सर्वथा सत्य ही कहा गया है । जो कोई मनुष्य इस सेतु में प्रव्रतता के साथ सम्पदा की वृद्धि का उद्देश्य लेकर स्नान किया करता है वह सम्पदा को प्राप्त करता है और बहुत बड़ी सम्पत्ति उसे मिलती है । हे द्विजपुङ्गवो ! जो केवल अपनी शुद्धि का उद्देश्य लेकर ही सेतु में स्नान करता है वह शुद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥ ४३, ४४, ४५, ४६ ॥ यदि कोई रति की कामना लेकर ही स्नान करता है तो वह दिवलोक में अप्सराओं के साथ पुनरावृत्ति में रहन उस समय में रति की प्राप्ति किया करता है और स्वर्ग लोक में परिजनो के साथ रहता है । यदि कोई मुक्ति के लिए ही वहाँ पर स्नान करता है जो कि सेतु मुक्ति के प्रदान करने वाला है तो फिर जन्म न ग्रहण करने वाली मुक्ति का प्राप्त कर लेता है ॥४७॥४८॥ इससे तुबन्ध महान् क्षेत्र में स्नान करने से घर्म होता है और सेतु-स्नान से अघो का भी क्षय होता है । हे द्विज श्रेष्ठो ! यह सेतुबन्ध का स्नान समस्त कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाला है ॥४९॥

सर्वघ्नताधिकंपुण्य सर्वज्ञोत्तरंस्मृतम् ।
 सर्वयोगाधिकप्रोक्त सर्वतीर्थधिकंस्मृतम् ॥५०
 इन्द्रादिलोकभोगेषु रागोश्लेषा प्रवर्तते ।
 स्नातव्यतद्विजश्रेष्ठाः सेतो रामकृतेसकृत् ॥५१
 ब्रह्मलोकेचवैकुण्ठे कैलासमपिशिवालये ।
 रन्तुमिच्छामवेद्येपातेसेतोस्नान्तुसादरम् ॥५२
 आयुरारोग्यसम्पत्तिमतिरूपगुणाढ्यताम् ।
 चतुर्णामपिवेदानासाङ्गानाम्पारगाभिनाम् ॥५३
 सबशास्त्राधिगन्तृत्व सर्वमन्त्रेष्वभिज्ञताम् ।
 समुद्दिश्य तु यः स्नायात्सेतो सर्वाधिंसिद्धिदे ॥५४
 तत्तत्सिद्धिमवाप्नोति सत्य स्यान्नाऽत्र सशयः ।
 दारद्रव्यान्नरकाद्ये च बिभ्यन्ति मनुजा भुवि ॥५५

यह सेतुबन्ध समस्त घनों से अधिक पुण्य वासा है और सभी
 ऋणों से अधिक कहा गया है । उसको समस्त योगों से अधिक ही
 बतलाया गया है तथा यह अन्य सभी तीर्थों से भी अधिक है—ऐसा ही
 माना गया है ॥५०॥ इन्द्र आदि के लोकों के उवभोगों में जिन मानवों
 का राग प्रवृत्त होना है हे द्विजों में श्रेष्ठो ! उनको धीरराम द्वारा किये
 गये इस सेतुबन्ध में एक बार स्नान करना चाहिए ॥५१॥ ब्रह्मलोक में तथा
 वैकुण्ठलोक में कैलाश में और शिव के निवास स्थान में भी जिनकी रमण
 करने की इच्छा रहती है वे बड़े ही सम्पादर के साथ इस सेतुबन्ध में
 स्नान अवश्य करें । आयु—आरोग्य—सम्पत्ति—मति—रूपलाक्षण्य—गुणगण
 की सम्पन्नता—चारों साङ्गवेदों की पारगाभिना—समस्त शास्त्रों का
 अधिगमन—सभी मन्त्रों का अभिज्ञान—इन सबका अथवा इसमें से किन्हीं
 यस्तुओं का जो उद्देश्य ग्रहण करके सब अर्थों की सिद्धियाँ प्रदान करने
 वाले सेतु में स्नान करता है वह उन्हीं सिद्धियों को प्राप्त कर लिया
 करता है—यह सोलह आने सत्य है—इसमें किञ्चिन्ममात्र भी सशय नहीं

है । इस मूत्रशुद्धि में मनुष्य दरिद्रता से और नरक आदि में भयभीत रहा करते हैं ॥ ४२-४५ ॥

३६—ब्रह्मकुण्ड प्रशंसा

स्नात्वा त्वमुतवाप्यां वं सेषित्वंकान्तराधवम् ।
जितेन्द्रियो नर. स्नातुं ब्रह्मकुण्ड ततो ब्रजेत् ॥१॥
सेतुमध्ये महातीर्थं गन्धमादनपर्वते ।
ब्रह्मकुण्डमितिल्यातं सर्ववारिद्र्यभेषजम् ॥२॥
विद्यते ब्रह्महत्यानामयुतायुतनाशनम् ।
दर्शनं ब्रह्मकुण्डस्य सर्वपापीघनाशनम् ॥३॥
किन्तस्य बहुभिस्तीर्थैः किन्तपोभिः किमध्वरैः ।
महादानैश्च किन्तस्य ब्रह्मकुण्डविलोकिनः ॥४॥
ब्रह्मकुण्डे सकृत्स्नानं वैकुण्ठप्राप्तिकारणम् ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूत भस्मयेतधृतं त्रिजाः ॥५॥
तस्यानुगास्त्रया देवा शृङ्गाविष्णुमहेश्वराः ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनायस्त्रिपुण्ड्रकम् ।६॥
करोतितस्य कंवलयकरस्थनाऽत्र सशयः ।
तद्भस्मपरमाणुर्वायुबीललाटे घृतोऽभवत् ॥७॥

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—अमृत बापी में स्नान करके और एकान्त श्री रामक का सेवन करके इन्द्रियों को जीत लेने वाले मनुष्य को स्नान करने के लिये फिर ब्रह्मकुण्ड पर गमन करना चाहिए ॥ १ ॥ सेतु के मध्य में गन्धमादन पर्वत पर ब्रह्मकुण्ड इस नाम से विख्यात स्थल है जो सभी प्रकार की दरिद्रताओं का भेषज (घोषघ) है । अमृतयुत ब्रह्महत्याओं के नाश करने वाला श्री ब्रह्मकुण्ड का दर्शन

होता है और यह समस्त पापों के समूह का भी विनाश कर देने वाला है । फिर अन्य बहुत से तीर्थों के अटन करने से तथा तपश्चर्या करने से और अष्टवदो क करने से उस मनुष्य को कोई भी आवश्यकता ही नहीं रहती है । जिसने ब्रह्मकुण्ड का विलोकन कर लिया है उसको महा-दानों के करने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती है ॥ २, ३, ४ ॥ ब्रह्मकुण्ड में एक ही बार स्नान करने का पुण्य ब्रह्मकुण्ड सोक की प्राप्ति का कारण होता है । हे द्विजो ! इस ब्रह्मकुण्ड से समुद्भूत भस्म जिस मानव ने धारण करली है उसके अनुगामी तीर्थो देव हो जाया करत हैं जो कि ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर नाम धारी है । ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म से जिसने त्रिपुण्ड्र किया है उसके हाथ में ही कवचस्थ विद्यमान रहा करता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है । उसकी भस्म का परमाणु वायु के ललाट में घाग्ण किया गया था उतने ही से इसकी मुक्ति होगई थी । अतएव इसमें कोई भी विचारण नहीं करनी चाहिए । उस कुण्ड की भस्म से जो मनुष्य उद्धूलन करता है उसका महान् पुण्य फल होता है ॥ ५, ६, ७ ॥

तावत्तैवाऽस्थ मुवितः स्यान्नाऽत्र कार्या विचारणा ।

तत्रुण्डभस्मना मर्त्यं कुर्यादुद्धूलनन्तु यः ॥८

तस्य पुण्यफलवक्तुं शङ्करा वेत्ति वा न वा ।

ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मपीनं वधारयेत् ॥९

रोरवे नरके साऽप्यपतेदाचन्द्रतारकम् ।

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रवा ब्रह्मकुण्डस्थभस्मना ॥१०

नराद्यमो न कुर्याद्यः सुखपास्य कदाचन ।

ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनिन्दारतस्तुयः ॥११

उत्पत्तीतस्य साङ्कर्यमनुमेयं विपश्चिता ।

ब्रह्मकुण्डसमुद्भूत भस्मैस्तलोकपावनम् ॥१२

अन्यभस्मसमं यस्तु नूनं वा वक्ति मानवः ।

उत्पत्ती तस्य साङ्ख्यं मनुमेय विपश्चिता ॥१३

ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतेऽप्यस्मिन्भस्मनि जाग्रत ।

भस्मान्तरेण मनुजो धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥१४

जो मनुष्य ब्रह्मकुण्ड की भस्म से उद्भूत करता है उसके पुण्य-फल को जानना और उसका वर्णन करना साधारण मानव की तो चर्चा ही क्या की जावे प्रत्युत ऐसा सन्देह होता है कि भगवान् शङ्कर भी उसे कथन करना जानते हैं अथवा नहीं जानते हैं । जो पुष्य ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म को कमी भी धारण नहीं करता है वह रौरव नरक में जाकर जब तक चन्द्र और तारे रहते हैं नारकीय यातनाएँ भोगता है । ब्रह्मकुण्ड में स्थित भस्म में उद्भूत या त्रिपुण्ड्र जा नरों में अधम नहीं करता है उसको कमी भी सुख नहीं मिलता है । जो ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म की बुराई करने में रत रहता है उसकी उत्पत्ति में सङ्कट दोष होने का विद्वान् पुष्य को अनुमान कर लेना चाहिए । ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न हुई भस्म इस लोक को पावन करने वाली है । अन्य भस्म के समान ही उसको जो मानव बतलाता है या उससे भी कम कहता है उसकी भी उत्पत्ति में साङ्ख्य दोष के होने का विद्वान् पुष्य को अवश्य ही अनुमान कर लेना चाहिए । जब ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न हुई भस्म वहाँ पर विद्यमान हो और उसमें रहते हुए जो मनुष्य अन्य भस्म से त्रिपुण्ड्र को धारण किया करता है उसके भी उत्पन्न होने में विभिन्न माता-पिता के होने वाला वर्ण शङ्कर दोष समझ लेना चाहिए ।

॥ ६-१४ ॥

उत्पत्ती तस्य साङ्ख्यं मनुमेय विपश्चिता ।

कदाचिदपियोमर्त्यो भस्मैतत्तुन धारयेत् ॥१५

उत्पत्ती तस्य साङ्ख्यं मनुमेय विपश्चिता ।

ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्म दद्याद् द्विजाय यः ॥१६

चतुर्णवपयन्ता तेनदत्ता वसुधरा ।

सन्देहो नाञ्ज कर्तव्यस्त्रिर्वा शपथयाम्यहम् ॥१७
 सत्य सत्यपुन सत्यमुद्धृत्यभुजमुच्यते ।
 ब्रह्मकुण्डोद्भव भस्मधारयध्वद्विजोत्तमाः ॥१८
 एतद्धि पावन भस्म ब्रह्मव्रजसमुद्भवम् ।
 पुरा हि भगवान्ब्रह्मा सव्रलोकपितामहः ॥१९
 सन्निधौ सवदेवामा पवते गन्धमादने ।
 ईशशापनिवृत्त्यर्थं ऋतून्सर्वान्समातनोत् ॥२०
 विधायविधिबत्सर्वाध्वरान्वहुदक्षिणान् ।
 मुमुचेसहसाब्रह्माशम्भुशार्पाद्विजोत्तमाः ॥२१
 तदेतत्तीर्थभासाद्य स्नान कुर्वन्तिये नराः
 ते महादेवसायुज्यं प्राप्नुवन्ति न शशयः ॥२२

ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न भस्म को जो कभी भी धारण नहीं करता है वह मनुष्य भी अपनी उत्पत्ति से वर्जनापूर दोष वाला ही होता है—
 ऐसा विद्वान् पुरुष को अनुमान कर लेना चाहिए । जो ब्रह्मकुण्ड से
 समुत्पन्न भस्म को द्विज को देना है उसको यही समझना चाहिए कि
 उसने चारों मागगे पर्यन्त समग्र वसुन्धरा का ही दान दे दिया है ।
 इन विषय में लेश मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए । मैं तीन बार
 इसके लिए शपथ लेकर कहता हूँ । यह सत्य है—यह पुनः सत्य है और
 मैं अपनी भूजा उठाकर कहता हूँ कि यह सर्वथा सत्य है । हे द्विजोत्तमो !
 आप सभी लोग इस ब्रह्मकुण्ड से समुद्भूत भस्म को धारण करिये । यह
 भस्म परम पावन है क्योंकि यह ब्रह्मव्रज से समुत्पन्न हुई है । पहिले
 भगवान् श्री ब्रह्माजी ने जो इन समस्त लोकों के पितामह है गन्धमादन
 पर्वत पर सब देवगणों की सन्निधि में ईश से प्राप्त शाप की निवृत्ति
 के लिए सब ऋतुओं को किया था । उन समस्त अध्वरों को विधि—
 विधान के साथ बहुत-सी दक्षिणाओं से युक्त सङ्ग समाप्त करके
 हे द्विजोत्तमो ! वे ब्रह्माजी सहसा शम्भु के शाप से मुक्त हो गये थे ।

इमीलिये इस तीर्थ पर पहुँच कर जो नर स्नान किया करते हैं वे श्री महादेव जी के सायुज्य को प्राप्त होते हैं—इसमें संशय नहीं है ॥ १५-२२ ॥

३७—लक्ष्मीतीर्थ प्रशंसा वर्णन

जटातीर्थभिधेतीर्थं सर्वपापकनाशने ।
 स्नानकृत्वाविशुद्धात्मानलक्ष्मीतीर्थं सतीव्रजेत् ॥१॥
 य य कापसमुद्दिश्यलक्ष्मीतीर्थे द्विजोत्तमाः ।
 स्नानसमाचरेन्मत्यस्तत कामसमश्नुते ॥२॥
 महादारद्रथशमन महाधान्यसमृद्धिदम् ।
 महादुःखप्रशमन महासम्पद्विवर्धनम् ॥३॥
 अथ स्नात्वा धर्मपुत्रो गृहदश्वयमाप्तवान् ।
 इन्द्रप्रस्थे वसन्पूर्वं श्रीकृष्णेन प्रचोदितः ॥४॥
 यथैश्वर्यं धर्मपुत्रो लक्ष्मीतीर्थे निमज्जनात् ।
 आप्तवान्कृष्णवचनात्तत्रो ब्रूहिमहामुने ॥५॥
 इन्द्रप्रस्थे पुरा विप्रा घृतराष्ट्रेण चोदिताः ।
 पृथक्सन्पाण्डवाः पञ्चमहाबलपराक्रमाः ॥६॥
 इन्द्रप्रस्थं ययौ कृष्ण कदाचित्ताभिरिक्षितुम् ।
 तमागतमभिप्रेक्ष्य पाण्डवास्ते समुत्सुकाः ॥७॥

महामहर्षि धी सूतजी ने कहा—समस्त पापको के विनाश करने वाले जटातीर्थ नाम वाले तीर्थ में स्नान करके फिर लक्ष्मी तीर्थ में गमन करना चाहिए । हे द्विजोत्तमो ! उस लक्ष्मी तीर्थ में जिस-जिस कामना का उद्देश्य ग्रहण करके मनुष्य यहाँ पर स्नान किया करता है उन्ही-उन्ही कापना को प्राप्त कर लिया करता है ॥ १, २ ॥ यह महान्

तीर्थं महान् दरिद्रता वा शमन करने वाला है—महान् धान्य और समृद्धि का प्रदान करने वाला है—महान् दुःखों के प्रशमन करने वाला है और महती सम्पदा के वर्धन करने वाला है ॥ ३ ॥ इसमें धर्मपुत्र स्नान करके महान् ऐश्वर्य के प्राप्त करने वाला हो गया था । भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके वह इन्द्रप्रस्थ में पहिले निवास करता था ॥४॥ ऋषिवृन्द ने कहा—हे महामुने ! जिस प्रकार से श्रीकृष्ण के वचन से प्रेरित होकर धर्म पुत्र ने सक्षी तीर्थ में निमज्जन करने से ऐश्वर्य की प्राप्त किया था वह सम्पूर्ण आख्यान आप हम लोगों को बतलाइये ॥५॥ श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! पुराणन समय में धृतराष्ट्र के द्वारा प्रेरित हुए पांच महायज्ञ पराक्रम वाले पाण्डव इन्द्रप्रस्थ में निवास करते थे । किसी समय में उन पाण्डवों को देखने एवं मिलने के लिए श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में गये थे । उनको वहाँ पर समागत हुए देखकर पाण्डव अत्यन्त ही उन्मुक्त हुए थे ॥ ६, ७ ॥

स्वगृहं प्रापयामासुमुदापरमयायुताः ।
 कञ्चित्कालमसौकृष्णस्तत्रावात्सीत्पुरोत्तमे ॥८
 कदाचित्कृष्णमाहूयपूजयित्वा युधिष्ठिरः ।
 पप्रच्छ पुण्डरीकाक्षं वासुदेवजगत्पतिम् ॥९
 कृष्ण ! कृष्ण ! महाप्राज्ञ ! येन धर्मेण मानवाः ।
 लभन्ते महदैश्वर्यं तस्माद्ब्रूहि महामते ॥१०
 इत्युक्तो धर्मपुत्रेण कृष्णः प्राह युधिष्ठिरम् ।
 धर्मपुत्र ! महाभाग ! गर्धमादनपवते ॥११
 लक्ष्मीतीर्थमितिहयात्तमस्त्यैश्वर्यैककारणम् ।
 तत्र स्नानं कुरुष्वत्वमैश्वर्यं ते भविष्यति ॥१२
 तत्र स्नानेन वर्धन्ते धनधान्यसमृद्धयः ।
 रथे सपत्न्या नश्यति क्षेत्रे मेघाविषट्कंते ॥१३
 तीर्थेसन्तु पुरादेवा लक्ष्मानानि पुष्यदे ।

अलभन्सर्वमैश्वर्यं तेन पुण्येनधर्मज ॥१४

वे सब पाण्डव परम प्रसन्नता से खुबन होते हुए उन भगवान् श्रीकृष्ण को अपने घर में अन्दर ले गये थे । यह श्रीकृष्ण भी पहिले इस उत्तम स्थल में कुछ समय पर्यन्त वहाँ पर रहे थे । किसी समय में धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का समाह्वान कर उनका अर्चन किया था और जगद् के स्वामी पुण्डरीक के तुल्य नेत्रों वाले वासुदेव भगवान् से युधिष्ठिर ने पूछा था ॥ ८, ९ ॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! हे श्रीकृष्ण ! आप तो महनी प्रजा से सम्पन्न हैं और आपको मति भी परम महती है । आप हमको यह बतलाइये कि वह कौन सा धर्म है जिसके द्वारा मानव महान् ऐश्वर्य का लाभ किया करते हैं ? इस रीति से धर्मपुत्र के द्वारा पूछे गये भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से बोले—श्री कृष्ण ने कहा—हे धर्मपुत्र ! हे महान् भाग वाले ! इस गन्धसादन पर्वत पर सहस्री तीर्थ—इस नाम से विख्यात एक तीर्थ है जो ऐश्वर्य की प्राप्ति का एक ही कारण है । वहाँ पर आप स्नान कीजिए ! आपको भी महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जायगी । १०, ११, १२ ॥ वहाँ पर स्नान करने से घन-घान्य और समृद्धियाँ बढ जाया करती हैं । स्नान करने वाले पुरुष के सभी शत्रु स्वतः ही विनष्ट हो जाया करते हैं और फिर इनका क्षेत्र बधित हो जाता है ॥ १३ ॥ हे धर्मज ! इस सहस्री नाम वाले तीर्थ में जो परम पुण्य के प्रदान करने वाला है पहिले देव-गणों ने स्नान किया था और उन्होंने उस पुण्य से ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ॥ १४ ॥

असुरांश्चमहावीर्यान्समरेजघ्नुरञ्जसा ।

महानक्ष्मीश्च धर्मश्चततीर्थस्नायितान्णाम् ॥१५

भविष्यत्यचिरादेव सशयं मा कृथा इह ।

तयोभिः प्रतुभिर्दानं राशीर्वादेश्चपाण्डव ॥१६

ऐश्वर्यं प्राप्यते यद्वत्सहस्रीतीर्थनिमञ्जनात् ।

सर्वपापानिनश्यन्ति विघ्नायाग्नितलयंसदा ॥१७
 व्याधयश्च विनश्यन्ति लक्ष्मीतीर्थनिषेवणात् ।
 श्रेयः सुविपुल लोके लभ्यते नात्रसशयः ॥१८
 स्नानमन्त्रेणवैलक्ष्म्यास्तीर्थेस्मिन्धर्मनन्दन । ।
 रम्भामप्सरसाम्रेष्ठालब्धवान्नल कूबरः ॥१९
 स्नात्वाऽत्रतीर्थेषुष्ये तु कुबेरोनरवाहनः ।
 समहापद्ममुग्यानाग्निधीनाम्नायकोऽभवत् ॥२०
 तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र लक्ष्मीतीर्थेशुभप्रदे ।
 स्नात्वा वृकोदरमुखीरनुर्जरपि सवृतः ॥२१
 लप्स्यसे महती लक्ष्मी जेष्यसे च रिपूनपि ।
 सन्देहोनात्रकतंभ्य, पैतृस्वस्त्रो यधमंज । ॥२२

देवो ने रण मे महान् वीर्यं धाले अमुरो को यो ही बड़ी आसानी
 से मार डाला था । उस तीर्थ मे स्नान करने वाले मनुष्यो को महा-
 लक्ष्मी और धर्म दोनो ही प्राप्त होते हैं । ये दोनो भी ही प्राप्त हो
 जायेंगे—इसमे कुछ भी सशय मत करो । हे पाण्डव ! बड़ी बड़ी
 तपश्चर्याओ से—ऋतुओ से—दानो से—और आशीर्वादो से जो ऐश्वर्य
 प्राप्त किया जाता है वह लक्ष्मी तीर्थ के निमज्जन करने से ही प्राप्त
 हो जाता करता है । समस्त पाप विनष्ट हो जाया करते हैं और
 सभी विघ्न सदा लय को प्राप्त हो जाते हैं । सभी व्याधियाँ नष्ट होनी
 हैं । इस लक्ष्मी तीर्थ के सेवन करने से लोक मे अत्यधिक श्रेय प्राप्त
 किया जाता है—इसमे कुछ भी सशय नहीं है ॥ १५, १६, १७, ८ ॥
 हे धर्मनन्दन ! लक्ष्मी के इस तीर्थ मे स्नान मात्र से ही नल कूबर ने
 अप्सराओ में परम श्रेष्ठ रम्भा को प्राप्त कर लिया था । इस पवित्र
 पृष्य तीर्थ मे नर वाहन कुबेर स्नान करके वह महापद्म मुख्य तिथियो
 का नायक हो गया था । हमपिये हे राजेन्द्र ! इस शुभप्रद लक्ष्मीतीर्थ
 मे स्नान करके महती लक्ष्मी को तुम भी वृकोदर प्रमुख भाइयो से युक्त

प्राप्त कर लीगे और अपने शत्रुओं को भी जीत लीगे । हे पैतृस्व-
स्तेय धर्मज्ञ ! इसमें किञ्चिद्मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये ।
॥ ११-२२ ॥

इत्युक्त्वो धर्मपुत्रोऽयं कृष्णेनाद्भुतदर्शनः ।
सानुजः प्रथमो शीघ्रं गन्धमादनपर्वतम् ॥२३
लक्ष्मीतीर्थं ततो गत्वा महदैश्वर्यकारणम् ।
सस्त्री युधिष्ठिरस्तत्र सानुजो नियमान्वितः ॥२४
लक्ष्मीतीर्थस्यतोये मसर्वपातकनाशने ।
सानुजोमासकेनन्तुसस्त्रीनियमपूर्वकम् ॥२५
गोभूतिलहरिण्यादीन्ब्राह्मणैर्गोदक्षोबहून् ।
सानुजोधर्मपुत्रोऽमायिन्द्रप्रस्थमयीत्ततः ॥२६
राजसूयप्रत्युक्तुं तत्तए=छत्रुधिष्ठिरः ।
कृष्ण समाह्वयामास पियसुधर्मनन्दनः ॥२७
कृष्णोद्यमंजदूतेन समाहूतः ससम्भ्रमः ।
चतुर्भिरश्वैः सयुक्त रथमारुह्य वेगिनम् ॥२८

इस प्रकार जे भगवान् द्योकृष्ण के द्वारा कहे गये इस अद्भुत
दर्शन वाले धर्म पुत्र ने अपने छोटे भाइयो के सहित शीघ्र ही गन्धमादन
पर्वत पर प्रस्थान कर दिया था । इसक अनन्तर महान् ऐश्वर्य के कारण
स्वरूप लक्ष्मी तीर्थ पर गये थे । वहाँ पर अपने छोटे भाइयो के सहित
नियमो मे अन्वित होकर युधिष्ठिर ने स्नान किया था ॥ २३, २४ ॥
जस लक्ष्मीतीर्थ के अन्त में जो समस्त पातको के नाश करने वाला है
अपने छोटे भाइयो क साथ नियम पूर्वक धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने एक मास
तक स्नान किया था और ब्राह्मणों के लिए अत्यधिक माया मे जी-
भूमि—निल और सुवर्ष आदि का दान दिया था । इसके पश्चात् वह
धर्म का पुत्र युधिष्ठिर अपन अनुओं के सहित इन्द्रप्रस्थ को गये थे ।
इसके उपरान्त राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ क करत की मतमे इच्छा

की थी । यज्ञ करने की इच्छा वाले धर्मनन्दन ने भगवान् श्रीकृष्ण का आह्वान किया था । धर्म पुत्र के दूत के द्वारा समाहूत हुए भगवान् श्रीकृष्ण सम्भ्रम से युक्त होगये थे और चार अश्वो से युक्त वेग गमन करने वाले रथ पर समाकूट होगये थे ॥२५-२८॥

सत्यभामासहचर इन्द्रप्रस्थ समाययो ।

समागत ममालोक्य प्रमोदाद्धर्मनन्दन ॥२६

न्यवेदयत्सकृष्णाय राजसूयोद्यमन्तदा ।

अन्वमन्यत कृष्णोपि तथैव क्रियतामिति ॥३०

वाक्य च युक्तिसयुषत धर्मपुत्रमभापत

पंतृस्वस्त्रेय धर्मात्मञ्छ्रेणु पथ्यवचोमम ॥ १

दुष्करो राजसूयोऽय सर्वैरपि महीश्वरैः ।

अनेकशतपादातिरथकुञ्जरवाजिमान् ॥३२

महामातरिम यज्ञं कर्तुमहति नेतरः ।

दिशो दश विजेतव्या. प्रथम वालिना श्रया ॥३३

पराजितेभ्य शत्रुभ्यो गृहीत्वा करमुत्तमम् ।

तेन काञ्चनजातेन कतव्योऽय ऋतूत्तमः ॥३४

रोचयेमुवितसदन न हित्वा भीषयामि भोः ।

अत. ऋतुसमारम्भात्पूव दिग्बिजय कुरु ॥३५

अपनी परम प्रिय सत्यभामा को माथ मे लेकर श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ मे समागत हो गये थे । उनको वहाँ पर आये हुए देखकर धर्मनन्दन को बड़ा भारी हृष हुआ था । फिर युधिष्ठिठ अपने किये जाने वाले रथसूय यज्ञ का उद्यम श्रीकृष्ण की सभा मे निवेदित किया था । उस समय मे श्रीकृष्ण ने भी उसकी अनुमति दे दी थी कि ऐसा ही करिये । श्रीकृष्ण भगवान् ने युक्ति स गुमङ्गत वाक्य धर्मपुत्र से कहा था—हे पंतृस्वस्त्रेय ! भाप तो धर्मात्मा है, मेरे परम पथ्य वचन का धरण करिये । यह राजगुप यज्ञ परम दुष्कर हुआ करता है और सभी महीपतियो के लिए

इसकी दुष्करता होती है । अनेक अथ पैदान-रूप-हाथी और बख्खो पासा महान् मति से युक्त ही इस यज्ञ को करने के योग्य हुआ करता है अन्य कोई भी नहीं होता है । सर्व प्रथम छोटे दमो विशाले बलधानी भद्रकी भीत लेनी होनी । जो मय पराश्रित हो जावे उनमें उत्तम कर पहच करना होगा उस सध सुवर्ण से यह उत्तम कृतु करना चाहिये । ये स्वयं युक्ति के सदन को पठन् करछा है और ये पापको विभीषिका उत्पन्न नहीं कर रहा है । अतएव धनने इस यज्ञ के आरम्भ करने के पूर्व से आप विविधय करिये ॥२६-३१॥

ततोषमत्तिजःश्रुत्वा कृष्णस्य वचनहितम् ।
 प्रशसदेवकीपुत्रमाजुह्वनिजानुजान् ॥२६॥
 आहूय चतुरो भ्रातृन् धमजःप्रहृष्टपयन् ।
 अपि भीम । महाबाहो बहुवीर्यधनञ्जय ॥३०॥
 यमी च सुकुमाराङ्गी शत्रुसंहारदीपिता ।
 विकीर्षामि महायज्ञ राजसूयमनुत्तमम् ॥३२॥
 स च शत्रन् रणे जित्वा कर्तव्यः पृथिवीपतीन् ।
 अतो विजेतु भूपालाश्चत्वारो प मर्षनिकाः ॥३६॥
 विश्वश्चतस्रोप-छन्तु मवन्तोवीर्यवत्तरा ।
 मुष्माभिराहृष्टैर्द्रव्यै करिष्यामिमहाकृतुम् ॥४०॥
 इत्युक्त्वाः सादरं सर्वे वृकोदरमुखास्तदा ।
 प्रसन्नवदना भूत्वा धर्मपुत्रानुजाः पुरात् ॥४१॥

 ॥४२॥

इसके अनन्तर धर्मपुत्र ने भीष्म के दिव्य वचन का धरण किया था । देवरी पुत्र की अतीव प्रशंसा करते हुए फिर दूधितिर म अपने छोटे भाइयों को अपने पास बुलवाया था । अपने छोटे चारों भाइयों को बुलाकर प्रसन्न होते हुए भाइयों से यह कहा था— आप भीम ।

हैं महान् बाहुओं वाले ! हैं बहुत अधिक बोंबे वाले ! हे धनत्रय ! हे
 दानत्रयों के सहार करने में परम कुशल तथा सधुमार अस्त्रों वाले दोनों
 नकुल और सहदेव ! मैं सर्वोत्तम राजसूय यज्ञ के करने की इच्छा करता
 हूँ जो एक महान् यज्ञ होता है । वह राजसूय यज्ञ रणक्षेत्र में समस्त
 राजाओं को जीतकर ही करने के योग्य हुआ करता है । इस लिये समस्त
 राजाओं को जीतने के लिए आप चारों भाई अपने २ सैनिकों के सहित
 चारों दिशाओं में गमन करो । आप सब योग महान् बलवीर्य शाली हैं ।
 आप लोगों के द्वारा सम्ये हुए द्रव्यों से ही मैं इस महान् ऋतु को करूँगा
 ॥ ३६।३७।३८।३९।४० ॥ इस प्रकार से आदर के सहित जब कृकोदर
 प्रमुख सब भाइयों से कहा गया था तब उस समय में वे धर्मपुत्र के छोटे
 भाई परम प्रमथ मुख होतेहुए पुरसे राजा के विजय के लिये सब दिशाओं
 में पाण्डव निकल कर चले गये थे । वे सब चारों दिशाओं में राजाओं को
 जीत लिया था जोकि बहुत से स्थित थे ॥४१। ४२॥

स्ववशेस्थापयित्वा तान्पुत्रीन्पाण्डुनन्दनाः ।
 तदत्तम्बहुधा द्रव्यमसस्यातमनुत्तमम् ॥४३
 आदाय स्वपुरं तूर्णमायम् कृष्णसभया ।
 श्रीमसमाययौ तत्र महाबलपराक्रमः ॥४४
 शतभारमुवर्णानि समादाय पुरोत्तमम् ।
 सहस्रं भारमादाय सुवर्णानि ततोऽर्जुन ॥४५
 दत्तप्रस्थं समायातो महाबलपराक्रमः ।
 जयभारं सुवर्णानि प्रगृह्य नकुस्तथा ॥४६
 समागतो महावेजाःशक्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ।
 दत्तान्विभीषणेनाथ स्वर्णतालाश्चतुर्दश ॥४७
 दक्षिणात्यमहापाना गृहीत्वा धनमञ्जयम् ।
 महद्वीर्यपि महमा समादाय निजाम्पूरीम् ॥४८

उन पाण्डु नन्दनों ने उन गमस्त नृपों को अपने यज्ञ में ग्याहित

करके उन्हें छोड़ा था । उन्होंने अपने एक चरण बहुत सा दण्ड दिया था । उस सब को लेकर वे भगवान् श्रीकृष्ण के समाश्रय प्राप्त करने वाले शोच ही अपने पुर के वापिस लौट कर समागत हो गये थे । वही पुर महान् बल विक्रम धारिणी भीम जाये वे जो कि अन्ततः सुवर्ण लेकर उस उत्तमपुर में प्रवेश करने वाले हुए थे । उनके पश्चात् एक बहुत भार सुवर्ण लेकर अर्जुन समागत हुए । महाबल पराक्रम ने समन्वित नहुन एक ही भार सुवर्ण ग्रहण करके इन्द्रप्रस्थ में प्रविष्ट हुए । महा शैबस्वी महर्षेय भी उस उत्तम पुर इन्द्रप्रस्थ में विभीषण के द्वारा दिये हुए शीवहर्षण तातां की तथा दाक्षिणात्य महीगतिथी के पुत्र के सन्धय को ग्रहण करके बहुतसा धनही कृता में समागत हुए थे ॥१४३—१४४॥

लक्ष्मीदीर्घप्रज्ञेता वनेन ।
 सुवर्णानि ह्यसौ कृष्णाद्यमपत्राययादिव ॥४३॥
 स्वान्जंराहृतंरेवमन्दयशातेसंहावनं ।
 कृष्णवन्तरसहृद्यैश्चैवर्गपि धूमिष्ठिर ॥४०॥
 कृष्णाद्ययोऽथ ज्ञेया राजसूयेन गण्डवः ।
 न स्मन्यागेन्द्रोद्भव्य द्वाद्वाणेश्या यथेष्टतः ॥४१॥
 अक्षानिप्रददीतस्र द्वाद्वाणेश्या यथेष्टतः ।
 चरुप्राणिगाश्च भूमिष्ठिव भयणानिददी तमा ॥४२॥
 अथिन परिशुष्यन्तियावताकाञ्चनानिना ।
 सताप्रपि द्विभुगन्तेभ्योद्वापयासासघमन्दः ॥४३॥
 इर्यान्तदत्ताभ्यायिभ्यो घनानि विविधान्मपि ।
 इतीयत्ताम्भारच्छेतु नशस्तावहाकोटयः ॥४४॥
 कथिभिर्दोषमनानि दृष्ट्वा तत्र घनानि वै ।
 सर्वस्वमप्यहो राजादत्तमित्यद्वीज्जनः ॥४५॥
 दृष्ट्वा कोशास्तथानन्तानन्तमणिकाञ्चनान् ॥४६॥
 च त्व हि दत्तमपिभ्य इत्ययाचञ्जनास्तदा ।

दृष्ट्वैव राजसूयेनधर्मपुत्रःसहानुजः ॥५७

यादव भगवान् श्री कृष्ण ने एक सट्ठ स्राष्ट करोड तथा एक सौ साष्ट करोड सुवर्ण धर्म पुत्र के लिये दिया था । इस प्रकार से अनुजों के द्वारा समाह्वन असंख्यात महान् धनो स तथा श्रीकृष्ण भगवान् के द्वारा प्रदत्त असंख्यात् धनो से श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करने वाले राजा युधिष्ठिर ने हे विप्रगण ! उस रात्रसूय यज्ञ के द्वारा यजन किया था । उस यज्ञ मे ब्राह्मणों के लिये षषेष्ट द्रव्य दिया था ॥ ४९, ५०, ५ ॥ उसमे युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों के लिये अन्नो का भी दान किया था । उसी मति वस्त्र-गीऐ -भूमि और मूषणों का भी दान दिया गया था । याचक गण जिनने भी सुवर्ण आदि से परितुरट होत थे धर्मपुत्र ने उतने से भी दुगुना उनको दिसवा दिया था । अशियो के लिये विविध मति के इतने धनो का प्रदान किया गया था कि उसकी इयत्ता (इतना है- इसको) को करोडो ब्रह्मा भी कहने मे समर्थ नहीं हुए थे । वही पर अशियो के द्वारा दीयमान धनो को देखकर जनगण यही कह रहे थे कि राजा ने अपना सर्वस्व ही दान कर दिया है । जिस समय मे लाग उन अनन्त कोशो को तथा अनन्त मणियो और काष्ठवनो को देखते थे तो उस समय मे मही कहते थे कि अशियो के लिये तो बहुत थोडा ही दिया गया है क्योंकि वही तो अभी भी अनन्त राशि विद्यमान थी । इस प्रकार मे धर्मपुत्र ने अपने छोटे भाइयो के साथ राजसूय यज्ञ का यजन किया था ॥५२-५७॥

वटुवित्तसमृद्धसन् रेमे तत्र पुरोत्तमे ।

लक्ष्मातीर्थस्य महारम्पद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥५८

लेमे सवमिद विप्रा अहोनीधस्य वंभवम् ।

इद तीर्थं महापुण्यं महाशरिद्रघनाशनम् ॥५९

धनधान्यप्रद्र पृसा महापातकनाशनम् ।

महानरकसंहर्तुं महादुःखनिवर्तकम् ॥६०

मोक्षद स्वर्गदन्नित्यं महाऋणविमाचनम् ।

सुकलत्रप्रद पुंसांसुपुत्रप्रदमेव च ॥६१॥

एतत्तीर्थसमं तीर्थं न भूतघ्नं भविष्यति ।

एतद्भक्तियुक्तं विप्रा लक्ष्मीतीर्थस्य वैभवम् ॥६२॥

सुस्वप्ननाशनं पुण्या सर्वाभीष्टप्रसाधकम् ।

यः पठेदिममध्यायीशृणुतेवासभक्तिकम् ॥६३॥

घनघान्यममृद्धस्स्यात्स शरो नाम्नि सशयः ।

भुक्तवेद्द सकलान्भोगान्देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥६४॥

बहुत पित्त से युक्त होता हुआ समृद्ध होकर वहाँ पर उस उत्तम पुर इन्द्रप्रस्थ में युक्तिशिर रमण किया करते थे । यह सब उसी लक्ष्मी तीर्थ का ही महा महात्प्य था ॥ ५८ ॥ हे विप्रगण ! मही उस तीर्थ का वैभव है कि सर्व पुत्र ने यह सब प्राप्त किया था । यह तीर्थ महान् पुण्य वाला है और महान् कारिदय के विनाश को कर देने वाला है । गुरुओं को घन-घान्य क प्रदान कर देने वाला तथा महापातकों को नष्ट कर देने वाला है । यह बड़े से भी बड़े तरकों का मिहनत करने वाला तथा महान् दुश्मों से निवृत्त कर देने वाला है । मोक्ष का देने वाला—स्वर्ग प्रदान करने वाला और नित्य ही महान् शरणों से मोचन करा देने वाला है । सुन्दर स्त्री और परम सुपुत्र का दाता है । यह ऐसा महा महिमा मय तीर्थ है कि इसके समान रूप तथा अद्भुत तक न तो कोई जगह थीर न भविष्य में ही कोई होगा । हे विप्रों ! यह आप लोगों को मैंने लक्ष्मीतीर्थ का वैभव कहकर बताया है जो कि दुश्मनों का नाश करने वाला—परम पुण्यमय और समस्त लक्ष्मीओं का साधक होता है । जो कोई भी इस अध्यायका पठन करता है अथवा इसका श्रवण ही भाक्तभाव के सहित कर लेता है वह घन-घान्य से समृद्ध मनुष्य हो जाता करता है इसमें कुछ भी सशय नहीं है । इस लोक में समस्त भोगों

का उपभोग करके देह के बन्त में वह मुनि को प्राप्त कर लिया करता है । ५६-६४॥

३८—गायत्री सरस्वती तीर्थ प्रशंसा

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मुनयो लोकपावनम् ।
 गायत्र्या च सरस्वत्या माहात्म्यं मुक्तिद नृणाम् ॥१॥
 शृण्वती पठती चैव महापातकनाशनम् ।
 महापुण्यप्रद पु सा नरकक्लेशनाशनम् ॥२॥
 गायत्र्या च सरस्वत्या ये स्नान्ति मनुजा मुदा ।
 न तेषा गर्भवासःस्यात्किन्तु मुक्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥३॥
 सरस्वत्याश्च गायत्र्या गन्धमादनपवते ॥४॥
 ब्रह्मपत्न्यो सन्निधानत्तस्मान्ना कथिते इमे ॥५॥
 गायत्र्याश्च सरस्वत्या गन्धमादनपवते ।
 किमर्थं सन्निधान वे सूताभूत्तद्वदस्य नः ॥६॥

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिगण ! इसके अनन्तर अब मैं लोको को पावन कर देने वाला तथा मनुष्यों को मुक्ति के प्रदान करने वाला गायत्री और सरस्वती तीर्थों का माहात्म्य बतलाता हूँ ॥ १ ॥ जो इस माहात्म्य को पढ़ते हैं अथवा इसका श्रवण किया ही करते हैं उनके महापातकों का बुराह माण कर देने वाला है । महापुण्यों को महान् पुण्य को प्रदान किया जाता है तथा नरकों के क्लेशों का विनाश कर देने वाला है । गायत्री तीर्थ में और सरस्वती तीर्थ में जो मनुष्य स्नान के साथ स्नान किया करते हैं उनको फिर गर्भ का दास कभी भी नहीं होता है किन्तु निश्चित रूप से उनकी मुक्ति ही जाया जाती है ॥ २, ३ ॥ गन्धमादन पवन नर गायत्री और सरस्वती इन दोनों ब्रह्मा की

पत्नियों के सन्निधान से उन्हीं के नाम से ये प्रसिद्ध हुए हैं। श्रुतियों ने कहा—हे सूतजी ! गन्धमादन पर्वत पर गायत्री और सरस्वती इन दोनों का सन्निधान किन लिये हुआ था ? यह घाप हमको बतला दीजिए ॥ ४, ५, ६ ॥

प्रजापतिः पुराधिप्राःस्वापेदुहितरमुदा ।
 वाङ्नाम्नीकामुकोभूत्वास्पृहयामासमोहनः ॥७
 इतिनिन्दन्ति तं विप्राः स्पृष्टारं जगता पतिम् ।
 निपिद्धकृत्यनिरततं दृष्ट्वापरमेष्ठिनम् ॥८
 हरः पिनाकमादाय व्याघररूपधरः प्रभुः ।
 आकर्णपूर्णकृष्टेन पिनाकधनुषा शरम् ॥९
 सयोज्य वेधसन्तेन चिव्याघ्र निशितेन स ।
 क्षिपुरान्तकबाणेन विद्धीऽसौन्यपद्भुवि ॥१०
 तस्य देहादथोत्थाय महज्ज्योतिर्महाप्रभम् ।
 आकाशेमृगनापीत्यंनस्रमभवत्तदा ॥११
 आर्द्रनिक्षत्ररूपी सन्हरोऽप्नुजगामनम् ।
 पीडयन्मृगशीर्षित्य नक्षत्र ब्रह्मरूपेणम् ॥१२
 अधुनाऽपि मृगव्याघररूपेणत्रिपुरान्तकः ।
 अम्बरे दृश्यते स्पष्ट मृगशीर्षान्तिकेद्विजा ॥१३
 एव विनिहितस्मिञ्छम्भुना परमेष्ठिनि ।
 वनन्तरन्तुगायत्रीसरस्वत्यौशुचादिते ॥१४

श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! पहिले पुरातन समय मे प्रजा-पति अपनी पुत्री जिसका नाम वाङ् है उसी पर कामुक होकर मोहित हो गया था और उसके प्राप्त करने की इच्छा की थी ॥ ७ ॥ विप्रयण जगत् के पति—मृजन करने वाले—निपिद्ध कृत्य को करने वाले उन प्रह्लादाजी को देखकर परमेष्ठी की सब निन्दा करते थे। भगवान् हरि ने व्याघ्र का स्वरूप धारण करके प्रभु ने पिनाक घट्टा किया प

घोर कार्यों तक पूरा खींचकर पिनाक धनुष से शर को संधोजित करके उस तीक्ष्ण बाण से उन्होंने ब्रह्माजी को धेज दिया था । त्रिपुरान्तक के उस बाण से विद्ध होकर यह ब्रह्माजी भूमि पर गिर गये थे । उस समय मे उनके देह से महती प्रमा वाली एक महान् ज्योति उठकर आकाश मे मृगशीर्ष नाम वाला मक्षत्र हो गया था । ८, ९, १०, ११ ॥ आर्द्रा मक्षत्र के रूप वाले होकर भगवान् हर भी उसके ही पीछे चले गये थे । वहाँ पर आकाश मे भी उस ब्रह्मरूपी मृगशीर्ष नामक मक्षत्र को पीडा दे रहे थे ॥ १२ ॥ इस समय मे भी मृग और व्याघ्ररूप से त्रिपुरान्तक भगवान् अम्बार मे हे द्विजो ! मृगशीर्ष के ही समीप मे स्पष्ट दिखलाई दिया करते हैं । इस प्रकार से शम्भु के द्वारा परमेष्ठी के विनिहित होने पर इसके उपरान्त मे गायत्री और मरस्वती दोनों ही चिन्ता से अत्यन्त पीडित होगई थी ॥ १३. १४ ॥

सर्वाभीष्टप्रद पुंसां तपः कर्तुं समुद्यते ।
जग्मतुनियमोपेत तपः कर्तुं शिष प्रति ॥१५
स्नानार्थमात्मनाधिप्रा गायत्री च सरस्वती ।
तीयद्वयस्वनाम्नार्थंचक्रतु पापनाशनम् ॥१६
तस्य शिषवणस्नान प्रत्यह चक्रतुमुंदा ।
बहुकालमनाहारे कामक्रोधादिवर्जिते ॥१७
अत्युग्रानियमोपेते शि ध्यानपरायणे ।
पञ्चाक्षरमहामन्त्र जपेनियते शुभे ॥१८
तयोरथ तपस्तुष्टो महादेवो महेश्वरः ।
सन्निधत्ते महामूर्तिस्तपसा फलादत्सया ॥१९
ततःसन्निहितशम्भु पावंतीरमणशिवम् ।
गणेशकार्तिकेयागाम्यांवाश्वयोःपरिसेवतम् ॥२०
दृष्ट्वासन्तुष्टचित्तं तेगायत्रीचसरस्वती ।
स्तार्त्रस्तुष्ट्वतुश्शम्भु महादेवघृणानिधिम् ॥२१

ये दोनों पुत्रियों के सगस्त अमीष्टों के प्रदान करने वाले तप को करने के लिये समुद्यत होगई थी और शिव के प्रति नियमों से समुपेक्ष तपश्चर्या करने के लिये चली गयी ॥१५॥ हे विप्रो ! इन दोनों महा-देवियों ने अपने स्नान करने के लिए गायत्री और सरस्वती इन दो अपने ही नामों से पापों के नाश करने वाले तीर्थ बनाये थे । १६॥ वहाँ पर तीनों समयों में प्रतिदिन परम प्रसन्नता से ये स्नान किया करती थी । बहुत समय पर्यन्त चिन्ता आहार के और काम-क्रोध आदि में रहित होकर अत्यन्त उग्र नियमों में ये दोनों समवन्वित रहती थी । निरन्तर भगवान् शिव के ध्यान में परायण होकर परम सुख इन्होंने पञ्चाक्षर महामन्त्र का जाप नियत होकर किया था । इसके अनन्तर उन दोनों के तप से महेश्वर महादेव परम सन्तुष्ट हो गये थे । उन्होंने इन दोनों की तपस्या का फल देने की इच्छा से उन दोनों के समीप में अपनी महामूर्ति का सन्निधान किया था ॥ १७, १८, १९ ॥ इसके अनन्तर पार्वती रमण शिव शम्भु को अपने मन्त्रिहित उन दोनों ने देखा था । इनके दोनों ओर स्वामि कार्तिकेय और गणेश परिसेवन करने वाले विद्यमान थे । वहाँ पर भगवान् शम्भु का दर्शन करके वे गायत्री और सरस्वती दोनों पर सन्तुष्ट चित्त वाली हो गई थी । उन दोनों ने वरणा की निधि महादेव शम्भु का स्तोत्रों के द्वारा स्तवन किया था ॥२०, २१॥

नमोदुर्वारससारश्वात्तध्वसंकहेतवे ।

ज्वलज्ज्वालाबलोभीमकालकटविपादिने ॥२२

जगन्मोहनपञ्चास्त्रदेहनाशंकहेतवे ।

जगदन्तकरक्रूर ! यमान्तरु ! ननाऽन्तु ते ॥२३

गङ्गातरङ्गसम्पृक्तजटामण्डलधारिणे ।

नमस्तेऽन्तु विरूपाक्ष ! बानशीतांगुधारिणे । ॥२४

पिनाकभीमटङ्कारश्रासितत्रिपुरीकसे ।

नमस्तेविविधाकार ! जगदक्ष्ण्णिरिच्छदे ॥२५

शान्तामलकृपादृष्टिसंरक्षिमृगण्डुज ! ।
 नमस्ते गिरिजानाथ ! रक्षाऽऽवा शरणागते ॥२६
 महादेव ! जगन्नाथ ! त्रिपुरान्तक ! शङ्कर ! ।
 वामदेवमहादेव ! रक्षाऽऽवा शरणागते ॥२७
 सहानेनब्रह्मलोक यात मा भूद्विलम्बता ।
 इति साध्या स्तुत शम्भुर्देवदेवोमहेश्वरः ।
 अत्रवीत्प्रोतिसमुक्तोगायत्रीवसरस्वतीम् ॥२८

गायत्री और सरस्वती दोनों ने कहा—इस परम दुःख से निवारण किये जाने वाले ससार के अन्धकार के ध्वंस करने के एक मात्र कारण स्वरूप आपके लिये हम दोनों की नमस्कार समर्पित है । जलर्ता हुई ज्वालाओं की पवित्रयो वाला महान् भयानक कालकूट विष का भक्षण करने वाले आपके लिये हमारा प्रणाम है । २२ ॥ समस्त जगत् को मोहने वाले कामदेव के देह को मस्मीभूत करने के एक मात्र हेतु आप के लिये नमस्कार है । हे जगत् के अन्त कर देने वाले परम क्रूर ! हे यम के भी मन्त करने वाले देव ! आपकी सेवा में हम दोनों का नमस्कार अर्पित है । २३ ॥ भागीश्वो देवी गङ्गा की तरङ्गों से सम्भूत जटाओं के मण्डल को धारण करने वाले । हे विष्णुपाद ! आप बालबन्ध को धारण करने वाले हैं आपको हम दोनों का नमस्कार है । पिनाक धनुष की टङ्कार में त्रिपुरासय को त्रामित करने वाले—त्रिविध आकार धारी और जगत् के सृष्टा ब्रह्मा के भी शिर का छेदन करने वाले आपको हमारी नमस्कार है ॥ २४, २५ ॥ परम शान्त एव प्रमल कृपा दृष्टि से मृगण्डुज का संरक्षण करने वाले गिरिजा के नाथ आपके लिये हमारा प्रणाम है । हम दोनों ही आपकी शरण में समागत हुई हैं । आप हम दोनों की रक्षा कीजिए । हे महादेव ! हे जगन्नाथ ! हे त्रिपुर के अन्त कर देने वाले । हे शङ्कर ! हे वामदेव महादेव ! शरण में समागत हम दोनों की आप रक्षा कीजिए ॥ २६, २७ ॥ इस भाँति उन दोनों ने द्वारा

स्तवन किये जाने पर देवों के भी महेश्वर सम्मुख प्रीति से समुत्त होकर गायत्री और सरस्वती से बोले—॥२८॥

भोःसरस्वति ! गायत्रि ! प्रीतोऽस्मियुवयोरहम् ।

वरं वरयत मत्तोयद्वांमनसि वतंत ॥२९

इत्युक्ते ते तु गायत्रीसरस्वत्यौ हरेण वै ।

अन्नतां पार्वतीकान्तं महादेवघृणानिधिम् ॥३०

त्वमावयोः पितादेव ! तवाप्यावां सुते उभे ।

रक्षावापत्तिदानेनतस्मात्स्वत्रिपुरान्तक ॥३१

स एव प्रापितः शम्भुस्ताभ्यां ब्राह्मणपुङ्गवाः ।

एवमस्त्विति सप्रोच्य गायत्री च सरस्वतीम् ॥३२

सहानेनब्रह्मलोकं यात मा भूद्विलम्बता ।

युवतो सान्निधानेन सदाकुण्डद्वयेऽत्र वै । ३३

भविष्यति नृणां मुक्तिं स्नानात्सायुज्यरूपिणी ।

युष्माञ्चाम्नां च गायत्रीसरस्वत्याविति द्वयम् ॥३४

इदतीर्थं सवलोके ख्यातिं यास्पतिश्चाश्वतीम् ।

सर्वपापपितीर्थानामिदतीद्वयसदा ॥३५

शुद्धिप्रदन्तया भृषान्महापातनाशनम् ।

महाशान्तिकरं पुसा सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥३६

ममप्रसादजननं विष्णुप्रीतिकरन्तया ।

एतत्तीर्थंद्वयसमं न भूतं न भविष्यति ॥३७

अत्रस्नानाद्धि सर्वेषां सर्वभीष्टं भविष्यति ।

ऋदंकुण्डद्वयलोके भवतीभ्यां कृतमहत् ॥३८

श्री महादेवजी ने कहा—भो सरस्वति ! हे गायत्रि ! मैं आप दोनों से अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ । जो भी आपके मनमें हो आप दोनों मुझसे वरदान की याचना करलो । इस तरह—से जब वे दोनों गायत्री और सरस्वती भगवान् हर क द्वारा कही गयीं तो वे दोनों कल्याण के सागर पार्वती के स्वामी महादेवजी ने बोली—गायत्री और सरस्वती ने कहा—

हे भगवान् ! हे देव ! आप तो सबके ईश हैं और करुणा के आकर हैं । अब आप कृपा करके हमारे भर्ता चतुरानन को प्राणा से युक्त कर दें । हे देव ! आप तो हमारे पिता हैं और हम दोनों भी आपकी ही पुत्रियाँ हैं । पति के प्रदान के द्वारा हम दोनों की आप रक्षा कीजिए । आप तो त्रिपुर के अन्त करने वाले हैं ॥ २९, ३०, ३१ ॥ इस प्रकार से उन दोनों के द्वारा प्रार्थना किये गये भगवान् शम्भु—हे ब्राह्मणों ! 'ऐसा ही होगा'—यह गायत्री और सरस्वती से कहकर भगवान् शम्भु ने कहा—अब इसके साथ ही आप दोनों ब्रह्मलोक की चली जाओ और यहाँ पर विलम्ब मत करो । आप दोनों के सन्निधान से ये सदा ही दोनों कुण्ड मनुष्यों को स्नान करने से मुक्ति एवं सायुज्य प्रदान करने वाले होंगे । ये दोनों ही कुण्ड आप दोनों के ही नाम से गायत्री कुण्ड और सरस्वती कुण्ड विख्यात होंगे ॥ ३२, ३३, ३४ ॥ यह तीर्थ समस्त लोक में शाश्वती प्रसिद्धि को प्राप्त होंगे और अन्य सब तीर्थों से भी अधिक महत्त्वशाली सदा ये दोनों तीर्थ होंगे ॥ ३५ ॥ ये बुद्धि के प्रदान करने वाले और महान् पातकों के नाश करने वाले होंगे । मनुष्यों के लिये ये अत्यधिक शान्ति प्रदान करने वाले तथा सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं के देने वाले होंगे । ये तीर्थ मेरी प्रसन्नता के करने वाले और भगवान् श्री विष्णु की परम प्रीति उत्पन्न करने वाले होंगे । इन दोनों तीर्थों के समान अन्य कोई भी तीर्थ न तो अथवा सब इस भूमण्डल में हुआ और न भविष्य में भी होगा । यहाँ पर स्नान करने से सबको समस्त अभीष्टों की प्राप्ति होगी । ये दोनों कुण्ड आप दोनों ने एक महान् वस्तु बना दी ॥ ३६ ३७ ॥ ३८ ॥

३६ — धर्मारण्य-माहात्म्य

पृथ्वीपुरन्ध्र्यास्तिलकं ललाटे लक्ष्मीलतायाः स्फुटमालवानम् ।

वाम्देवताया जलकेलिरम्यं धर्माट्वी संप्रति वणयामि ॥१

साधु पृष्टं त्वया राजन्वाराणस्यधिकाधिकम् ।

धर्मारण्यं नृपश्रेष्ठ ! शृणुष्व्वाऽवहितो भृशम् ॥२

सर्वतीर्थानि तलैव ऊपर तेन कथ्यते ।

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यं रिन्द्राद्यं परिसेवितम् ॥३

लोकपालेश्च दिवपालमृतृभिः । शिवशक्तिभिः ।

गन्धर्वेश्चाप्सरोभिश्च सेवितं यज्ञकर्मभिः ॥४

शाकिनीभूतवेतालप्रहृदेवाघिदवतैः ।

ऋतुभिर्लासपक्षैश्च सेवितं सुरासुरं ॥५

तदाद्य च नृप ! स्थान सर्वसौख्यप्रद तथा ।

यज्ञश्च बहुभिश्चैव सेवितं मुनिसत्तमैः ॥६

सिंह्याद्यं द्विपैश्चैव पक्षिभिविचिघस्था ।

गोमहिष्यादिभिश्चैव सारमेर्मृगशूकरैः ॥७

महा महर्षि प्रवर श्री व्यासदेव जी ने कहा—प्रब हम धर्माट्वी का वर्णन करते हैं जो पृथ्वी पुरन्ध्री के ललाट में तिलक के समान है तथा लक्ष्मी रूपिणी लता का आलवाल (याचना) है और वाम्देवता देवी सरस्वती की रम्य जल केलि है ॥ १ ॥ हे राजन् ! आपने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । यह वाराणसी से भी अधिक से अधिक है । हे नृप श्रेष्ठ ! अब आप इस धर्मारण्य के विषय में अत्यन्त सावधान होकर श्रवण कीजिए ॥ २ ॥ वही पर समस्त तीर्थ विद्यमान रहते हैं इससे ऊपर कहा जाता है । यह ब्रह्मा—विष्णु और महेश आदि के द्वारा परि-
उचित होता है । सब नारूपाल—दिग्पाल—मातृगण—शिवशक्तिवर्ग—
गन्धर्व—यज्ञकर्म और अप्सराओ के द्वारा भी सेवित रहता है अर्थात् ये

सभी वहाँ पर रहा करते हैं ॥ ३ । ४ ॥ शाकिनी—भूत—वेताल—ग्रह—
देवाधि—देवता—ऋतु—लासिपक्ष और सुरासुरो के द्वारा यह घर्मागण्य
सेव्यमान होता है ॥ ५ ॥ हे नृप ! यह आद्य स्थान है तथा सब प्रकार
के सोस्यो क प्रदान करने वाला है । बहुत से यज्ञो और अष्ट मुनिवृन्दो
द्वारा भी यह सेवित होता है । सिंह—श्याम—हाथी तथा अनेक प्रकार के
पक्षिगण से और गौ—महिषी आदि एव सारस—मृग धूमरो से भी यह
सेवित होता है ॥ ६, ७ ॥

सेवित नृपशार्दूल श्वापदैर्विविधैरपि ।

तत्र ये निघन प्राप्ताः पक्षिणः कोटकादयः ॥८

पशवः श्वापदाश्चैव जलस्थलचराश्च ये ।

खेचरा भूचराश्च वडाकिन्यो राक्षसास्तथा । ९

एकोत्तरशतसाद्धं मुक्तिस्तेषां हि साश्वती ।

ते सर्वे विष्णुलोकाश्च प्रायान्त्येव न सशयः ॥१०

सन्तारयति पूवज्ञान्दश पूर्वान्दशापरान् ।

यवप्रोहिनिर्लं सर्पिवित्त्वपत्नीन दूवया ॥११

गुह्येश्च बोदकं नाय तत्र पिण्डं करोति यः ।

उद्धरेत्सुप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तर शतम् ॥१२

वृक्षैरनेकधा युक्त लतागुल्मैः सुशोभितम् ।

सदा पुण्यप्रदं तच्च सदा फलसमन्वितम् ॥१३

निर्वोर निभयं चैव घर्मागण्यं च भूपते ।

गा माघ्रं, कीडयते तत्र तथा माज्जरिभूपकेः ॥१४

हे नृपशार्दूल ! विविध भाँति के श्वपदो के द्वारा यह सेवित
होता है । वहाँ पर जो भी पक्षी और कोटक प्रभृति निघन को प्राप्त
हुए हैं । पशुगण और श्वापद आदि—जलकर स्थलचर—खेचर—भूचर—
शाकिनी—राक्षस जो भी निघन को प्राप्त होते हैं उनको एकोत्तरशत साद्धं
मुक्ति दाश्वती हुआ करती है । वे सभी विष्णुलोको को प्रयाण किया

किया करते हैं—इसमें नेशभात्र, श्री संघय नहीं है ॥८, ६, १०॥ वह अपने दश पहिले पुरखाओं को और दस-बाये होने वाली पीढियों को सबो प्राणि तार दिया करता है । जो कोई बी-ब्रीहि-नित-भूत-चित्त्वपद्-दूर्वा—बुद्ध और उदक में वहाँ पर-पिण्ड प्रदान किया करता है वह एतौत्तरगत हुन को और सान भोजो का उद्धार कर दिया करता है । यह धर्मोपनिषद् अनेक प्रकार के ब्रह्मों और कला गुणों से सुनीमित है । यह धर्मोपनिषद् प्रदान करने वाला और पदों से समन्वित रहा करता है । हे भूपते ! वर रहित—मयहीन धर्मोपनिषद् है वहाँ पर गौ और व्याघ्र तथा मूपक और भावार्थ मिलकर लीजा करते हैं ॥११-१४॥

येकोर्द्धिना क्रीडते च मानुषा रान्तमं सह ।

निर्भय वसते सत्र धर्मोपनिषद् चभूतले ॥१५

महानन्दमय दिव्य पावनात्पावन परसु ।

कलकण्ठः कलौत्कण्ठमनुगुञ्जति कुञ्जग ॥१६

ध्यानस्य धोष्यति तदा पारावत्येति वाच्यते ।

कोकः कोकी परित्यज्य मौन तिष्ठति तद्भयान् ॥१७

चकौरचद्विकामोक्तानक्त व्रतमिवस्थितः ।

पठन्ति सरिका मारशुकं सत्वोद्भवन्त्यहो ॥१८

अतः पर प्रवक्ष्यामि धर्मोपनिषदनिवासिना ।

अपरवारमसार मित्पुपाग्रद सिदः ।

अन्तस्येतापि यो पायाद्गृहाद्धमेवम प्रप्ति ॥१९

अथमेवाधिको धर्मोपनिषदस्य न्यायः सपदेपदे ।

शापानुग्रहमयुक्ता शरण्यास्तत्र सन्ति वै ॥२०

सम धर्मोपनिषद् में श्रेष्ठ , श्रेष्ठ , मर्त्य के साथ मिलकर श्रीका मैत्री के भाव में किया करता है और मनुष्य गण उत्तमों के साथ मिल-जुलकर मानन्द किया करते हैं । इस धर्मोपनिषद् में वह ऐसा धर्मोपनिषद् स्वयं स्वयं है कि जहाँ पर भय का भाव उत्पन्न नहीं है । सभी निर्भय होकर

निवास करते हैं । यह महान् भ्रानन्द से परिपूर्ण एव परम दिव्य है तथा पावन से भी परम पावन है । कुञ्ज में गमन करने वाला कलकण्ठ (कोयल) अपने परम मधुर कण्ठ से सदा अबुगुञ्जन किया करता है । ॥ १५, १६ ॥ ध्यान में स्थित होकर सुभोगे उस समय में पारावती के द्वारा धारण किया जाता है । उसके मय से कोक अपनी प्रिया कोकी का परित्याग करके भौन होकर स्थित रहा करता है ॥ १७ ॥ षड्र की किरणों का भोग करने वाला चकोर नवत (रात्रि) द्रत करने वाले के समान परम शान्त होकर समास्थित रहा करता है । सारिकाएं सार बचनों का पाठ किया करती हैं और शुक (तोता) को सम्बोधित किया करती है ॥ १८ ॥ बिना पारावार बाला यह ससार रूषी सागर है इसमें सिन्धु के पार का प्रदान करने वाला भगवान् शिव ही है । जो कोई आलस्य करके भी अपने घर से इस धर्मारण्य की ओर चला जाया करता है उसका पद-पद में अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक धर्म होता है क्योंकि वहाँ पर शाप देने की तथा परम अनुग्रह करने की सामर्थ्य रखने वाले ब्राह्मण निवास किया करते हैं ॥ १९, २० ॥

अष्टादशसहस्राणि पुण्यकार्येषु निर्मिताः ।
 पट्त्रिंशत्सहस्राणि भूत्यास्ते वणिजो भुवि ॥२१
 द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते त्वयोनिजाः ।
 पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिकाः शुद्धबुद्धयः ॥
 स्वर्गो देवा प्रशसन्ति धर्मारण्यनिवासिनः ॥२२॥
 धर्मारण्यति त्रिदशैकदा नामप्रतिष्ठितम् ।
 पावनभूतलेजातकस्मात्तेन विनिमित्तम् ॥२३
 तीर्थभूतस्त्रिम्भान्चाकारणात्तद्वदस्वमे ।
 ब्राह्मणा तस्मिन्पर्याका वनस्थापितापुरा ॥२४
 अष्टादशसहस्राणि किमर्थस्थापितानिब ।
 कस्मिन्वशेषमुत्तमा ब्रह्मणा ब्रह्मसत्तमा ॥ ५

सर्वविद्यामु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
 ऋग्वेदेषु च निष्णाता यजुर्वेदकृतश्रमाः ॥२६
 सामवेदाङ्गपारजास्त्रैविद्या धर्मवित्तमाः ।
 तपोनिष्ठाः शुमाचाराः सत्यव्रतपरायणाः ॥२७
 मासोपवासं कृशितास्तथा चान्द्रायणादिभिः ।
 सदाचाराश्च ब्रह्मण्याः केन नित्योपजीविनः ॥
 तत्सर्वमावित्तः कृत्स्नं ब्रूहि मे वदताम्बर ॥२८
 दानवास्तत्र ईतेया भूतवेतालसभवाः ।
 राक्षसाश्च पिशाचाश्च उद्वेजन्ते कथं न तान् ॥२९

पुष्प काशी में भठारह सहस्र निर्मित किये हैं । छत्तीस हजार भूमण्डल में मृत्यु वाणिज्यो की बनाया है । वे द्विजों की भक्ति से मुक्त ब्राह्मण्य और अमीनिष्ठ हैं । पुराणों के ज्ञाता—सत् आचार वाले—परम धार्मिक और शुद्ध बुद्धि वाले हैं । स्वर्ग में देवगण की इन धर्मरिष्य के निवासियों की प्रशंसा किया करने है ॥ २१ । २२ ॥ मुषिठिर ने कहा— देवगणों ने 'धर्मरिष्य'—यह नाम किस समय में प्रतिष्ठित किया है जो यह परम पावन मूल्य में हुआ था—यह उसने किस कारण से निर्मित किया गया है ? हे भगवन् ! यह तीर्थ का स्वरूप धारण करने वाला किम हेतु से हो गया है—यह आप मुझे बतलाने की कृपा कीजिये ? ब्राह्मण रितनी सख्या वाले हैं और पहिले किसके द्वारा ये स्थापित किये गये हैं ? ॥२३, २४॥ अष्टादश सहस्र किञ्च प्रयोजन की सिद्धि के लिये स्थापित किये गये? किस वय में ये ब्रह्मथेठ ब्राह्मण समुत्पन्न हुए थे ? ॥२५॥ समस्त विद्यामी में परम कुशल—वेदों और वेदाङ्गों के अत्यन्त ज्ञाता जो कि पूज्यतया पारगाभी हैं—ऋग्वेदों में निष्णात यजुर्वेदपूर्ण श्रम करने वाले—सामवेदाङ्ग के पारगाभी इस तरह से संदिष्टा वाले—धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ—रपञ्जर्षी में परमनिष्ठ—शुभ आचार वाले—मृत्यु के व्रत में पारवण—मास पर्यन्त उपवास करके वृद्ध शरीर वाले जो वन चान्द्रायण

जादि मास व्यापी हुआ करते हैं । सद्माचार से सुसम्पन्न ब्रह्मन्व के
द्विस्तसे नियम उनजीवी हुआ करते हैं—यह सभी मास आरम्भ से ही हे
बोने वाले में परम वरिष्ठ ! मुझे बतलाइये ! वहाँ पर दानव—देव—
सूत—वैताल सम्भव—राक्षस और पिशाच के सभी उनकी उद्विग्न क्यों नहीं
क्रिया करते हैं ? ॥२६-२६॥

४०—सदाचार वर्णन

अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना ।
यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुतिष्ठन्नाः ॥१॥
धर्मारण्येषु ये जाता ब्राह्मणाः शुद्धवशजाः ।
अष्टादशमहस्रात्राजेशैश्च विनिर्मिताः ॥२॥
सदाचारा पवित्राश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ।
तेषा दर्शनमात्रेण महापापैर्विमुच्यन्ते ॥३॥
पाराशय ! नमस्याहिसदाचार च वैप्रभो ! ।
आचाराद्धर्ममप्नोतिआचारात्लभतेफलम् ॥
आचाराच्छ्रममप्नोति सदाचार वदस्व मे ॥४॥
स्यावरा क्रमयाज्जगत्सु पक्षिणः पनको नराः ।
क्रमेण धार्मिकास्त्वेत एतेभ्यो धार्मिकाः नुराः ॥५॥
सहस्रमागात्त्रयमे द्वितीयानुक्रमास्तथा ।
सर्वे एतेमहामागा पापान्मुक्तिसमाश्रयाः ॥६॥
चतुर्णामपि भूताना प्राणिनाऽनीव चोत्तमाः ।
प्राणिभ्योऽपि मुनि (नृप) अष्टा सर्वे शुद्धयुवजीवतः ॥ ७

महामहिम महाप थी व्यामस्व जी न रहा—इनसे आगे अब हम
मह बतलायेंगे कि धर्मारण्य के निमाण करन वाले तथा गार्हस्थ्य आश्रम

ये सस्मित'पुरुष को यहाँ पर जो कुछ करता चाहिए ! इस धर्मरिष्य में जो कुछ धर्म में समुत्पन्न प्राज्ञान हुए हैं वे मठाच्छ सहम् है और कार्योर्षो के द्वारा निर्मित हुए हैं । ये सब आचार वाले ज्ञान के पूर्ण एव श्रेष्ठ ज्ञाना तथा पवित्र प्राज्ञान हैं । उनके केवल दर्शन से ही मनुष्य महापापी से छुटकारा पा जाया करते है । मुनिष्ठिर ने कहा—हे पाराशर्य देव ! हे प्रभो ! अब आर सदाचार का वर्णन कीजिए क्योंकि आचार एक महान् पश्यु है । इस आचार से ही मनुष्य धर्म की प्राप्ति किया करता है और आचार से फल पाता है । आचार से भी का लाभ होता है इसलिये आप सब आचार को मुझे बतलाइये ॥ १, २, ३, ४ ॥ जो व्यासजी ने कहा—
 स्यावर-कृमि-अन्व-पद्मी-पणु और मानव-य यम से धार्मिक होते हैं और इनसे विशेष धार्मिक मुर हुआ करते हैं ॥ ५ ॥ प्रथम सहम् भाग से द्वितीयानुक्रम वाले हैं । ये सब महाभाग हैं जो पाप से मुक्ति के समाधान वाले होते हैं । चारों प्रकार के भूत न जो प्राणी होते हैं वे अतीव उत्तम हुआ करते हैं । इन प्राणियों से भी श्रेष्ठ मुनिमन होते हैं । ये सभी बुद्धि के द्वारा उपजीवी हुआ करते हैं ॥ ६, ७ ॥

मनिमद्भ्यो नरा श्रेष्ठास्तु वाहवाः ।
 विप्रैर्भ्यार्जप च विद्वांसो विद्वद्भ्यश्च कुतबुद्धय ॥८
 कुतधीभ्योऽपि कर्तारि कर्तृभ्यो ब्रह्मतापरा ।
 न तेभ्योऽभ्याधिक कश्चित्त्रिपु लोकेषु भारत ॥९
 अर्न्योन्ध पूजकारते वं तपोवशावयोपत ।
 वाह्वानो ब्रह्मणा सृष्ट सर्वमतेश्वरोयत ॥१०
 अता जगन्निश्चतसर्वब्राह्मणोऽर्हतितापर ।
 सदाचारोहिमवर्हिताचागद्विच्युत पुन ॥११
 तस्माद्विप्रेण सतत भाव्यमाचारमोसना ।
 विद्वेषरगरहिता अनुतष्ठन्ति य मुने ॥१२
 सिद्धयस्त सदाचार धममूल विद्वेषुधाः ।

अक्षयं परिहीनोऽपि नम्यशाचारतत्परः ॥१३

अद्भ्यस्तुन्ननृपुञ्च नरो जीवेत्समाः शतम् ।

श्रुतिस्मृतिन्यामुदितस्वेपुञ्चैपुत्रकर्मनु ॥१४

मतिमानों से परम श्रेष्ठ नर होते हैं । उनसे भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हुआ करते हैं । विप्रों ने जो श्रेष्ठ विद्वान् जो होते हैं वे हुआ करते हैं और विद्वानों से भी अधिक श्रेष्ठ कृत्तबुद्धि हुआ करते हैं ॥ ८ ॥ उन बुद्धि वालों में भी श्रेष्ठ कर्त्ता और कर्त्ताओं से अधिक ब्रह्म तत्पर श्रेष्ठ होते हैं । हे भारत ! इनमें अधिक श्रेष्ठ कोई भी इन तीन लोकों में नहीं हुआ करता है ॥ ६ ॥ तप और विद्या की विशेषता से ये एक दूसरों के पूजक हुआ करते हैं । ब्रह्मा के द्वारा ही ब्राह्मण सृष्ट हुआ है क्योंकि यह तो सब जूनो का ईश्वर होता है । अनएव यह सब स्थित जगत् है और ब्राह्मण ही इसकी अहंता रखता है अन्य दूसरा कोई भी नहीं है । सदाचार ही तब अहंताओं से पूर्ण होता है जो आचार से विष्णुन होता है वह कुछ भी नहीं है । इसीलिए विप्र को सर्वदा आचार के शील (स्वभाव) वाला होना चाहिए । हे मुने ! विद्वेष और राग से रहित होने हुए जिनको अनुष्ठित किया करते हैं बुधगण उनकी ही जो धर्म का मूल सदाचार होता है निन्दित करते हैं । लज्जों से परिहीन भी पुरुष मत्तो भाँति आचार में तत्पर रहने वाला होता है और अद्भ्यस्तुन्न तथा किमी को भी असूया न करने वाला हो वह सौ वर्षों तक जीवित रहा करता है । अपने २ कार्यों में श्रुति और स्मृति उन दोनों के द्वारा जो कहनाया है उसी आचार का मेहनत करना चाहिए ॥ १०, ११, १२, १३, १४ ॥

सदाचारं निषेवेत धर्ममूलमतन्द्रितः ।

दुराचाररतो लोके गहंणीय पुमान्मवेत् ॥१५

त्याग्निभिश्चाग्निभूयेत सदात्पायुः मृदु त्रभाक् ।

त्याज्यं कर्म परार्थीन तार्पमात्मवश सदा ॥१६

दुःखी यतः परधोन.सर्वदात्मवशःसुखी ।
 यस्मिन्कर्मण्यंतरात्माक्रियमाणेप्रसीदति ॥१७
 तदेव कर्म कर्त्तव्यं विपरीतं न च क्वचित् ।
 प्रथमधर्मसर्वस्व प्रोक्तं यन्नियमा यमाः ॥१८
 अतस्तेष्वेव वं यत्नः कर्त्तव्याधर्ममिच्छता ।
 सत्यदमार्जवधाममानानृशरयमहिंसनम् ॥१९
 दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति धमा दश ।
 शौच स्नानतपोदान मोनेज्याध्ययन व्रतम् ॥२०
 उपोषणोपस्थदण्डो दशैतेनियमाः स्मृताः ।
 काम क्रोध दम मोहमात्सर्यलोभमेवच ॥२१
 अमन्यडवरिणोजित्वासर्वत्रविजयी भवेत् ।
 शर्मेःसञ्चिनु गार्हर्मवल्मीकशृङ्गवान्यथा ॥२२

तन्नाम सै रहित होकर धर्म के परम मूल सदाचार का संवद
 अयश्य ही करे । जो दुराचार में रति रखने वाला पुरुष होता है वह
 लोक में मदान् निर्दा का पाव हो जाया करता है ॥ १५ ॥ दुराचारी
 पुरुष होता है वह व्याधियों से अभिभूत हो जाया करता है अर्थात् उसे
 शत्रुत्व-से रोग घेर लिया करते हैं- वह सदा ही थल्प आयु वाला होता
 है और हमेशा दुःखों के भोगने वाला रहा करता है । जो पराये लचीन
 कार्य हो उसको परित्यक्त कर देवे और सदा जो आत्मवश हो उसे ही
 करना चाहिए ॥ १६ ॥ क्योंकि जो परधोन होता है वह दुःखी रहा
 करता है और जो आत्मवश होता है वह सुखी हुआ करता है । जिस
 कर्म के करने पर मा किये जाने पर अन्तरात्मा प्रसन्न होता है उसी
 कर्म को सदा करना चाहिए । इसमें विपरीत धर्म को कभी भी न
 करे । सबसे प्रथम तो धर्म का सर्वस्व नियमों और यमों को बतलाया
 गया है । इसलिये जो भी कोई धर्म की इच्छा रखता है उसका उन्हीं
 में पूर्ण यत्न करना चाहिए अर्थात् यम और नियमों का पूर्ण पालन करे ।

यम दस सरया वाले होने हैं—सत्य—क्षमा—जाबंद (सीषापन)—
 ध्यान—आनुशस्य (दूरता का अनाथ)—अहिंसा—दम—प्रसाद—
 माधुर्य—मदुना ये दस यम होते हैं। शीघ्र—हानत—तप—दान—
 मोन—इज्जा—अश्रयत—वृत्त—उदीपन—उरस्य दण्ड—ये दस नियम
 कहे गये हैं। काम—शोच—दम—मोह—मात्सर्य और सोम इन छँ मनुष्यों
 को जीत कर मनुष्य सर्वत्र विजयी हो जाया करता है। धर्म का धर्म—
 धर्म सञ्चयन करना चाहिए जिस तरह से शृङ्गवार मात्मीरु को विना
 करता है ॥१७-२०॥

परपीडामकुर्वाण परलोकसहायिनम् ।

धम एव सहायो स्यादमुत्र परिरक्षितः ॥२१

पितृमातृमृतभ्रातृयोपिद्वन्द्वेषुजनाधिकः ।

जायते चकलः प्रापी ज्जिमते च तथोत्तल ॥२४

एकल मुहृत्तमुहृत्ने भुङ्गते दुष्टतमेकलः ।

देहे पञ्चत्वमापन्नो ह्यवत्त्वंनाप्लोठवत् ॥२५

वाग्धवाविनुस्त्रायान्तिधर्मोधान्तमनुव्रजेत् ।

अत सञ्चिन्नुयाद्धम्ममनाऽमुत्रसहायिनम् ॥२६

धर्मसहायिनलब्ध्वा सन्तरेद्दुस्तर तमः ।

सम्बन्धानाचारेश्चित्यमुत्तमैरुत्तमैः सुधीः ॥२७

अधमानधमास्त्यक्त्वा वृत्तमृत्कपंता नयेत् ।

उत्तमानुत्तमानेव गच्छेद्धीमाश्चव्रजयेत् ॥

ब्राह्मणःश्रेष्ठतामेति प्रत्यन्तायेत धूर्तताम् ॥२८

परलोक में सहायता करने वाला एक मात्र धर्म ही हुआ करता
 है। दुमरी की पीडा को न करता हुआ रहे और इन लोक में जिसकी
 अती भाँति सुरक्षा की गई है वह धर्म ही परलोक में सहायक होता है
 क्योंकि सुरक्षित धर्म ही रक्षक होता है। मिता—जाना—वृद्ध—छाना—न्दी
 और वग्धु जन से अधिक केवल वह प्राणी एक ही समुत्पन्न होजा है

और अकेला ही भरता है । उपर्युक्त सोमों में कोई भी साथी नहीं रहा करता है । किये हुए सुकृत को भी अकेला ही भोगता है तथा दुष्कृत का फल भी अकेले को ही भोगना पड़ता है उन दोनों का भाखीदार कोई भी नहीं होता है । इस वेद के पञ्चत्व प्राप्त हो जाने पर इन अकेले को ही काषु तथा वेने के समान त्याग कर सभी प्रियतम वान्धव गण भी निमुख होकर चले जाया करते हैं । उस परलोक यात्रा में गमन करने वाले प्राणी के साथ एक धर्म ही व्याप्य करता है । इसीलिये धर्म का संकल्प करना चाहिए जो इस लोक और परलोक में सहायता करन वाला हुआ करता है । सहायक धर्म को प्राप्त करके प्राणी इस परम दुस्वर तम की तरफ जाया करता है । सुखी पुरुष का कर्तव्य है कि उत्तम उत्तमों से सम्बन्धी का समाधरण करे । जो अधम-अधम हो उनका परित्याग करके कुल को उत्कर्षना को प्राप्त करे । क्षीमान पुरुष को चाहिए कि उत्तम से उत्तम जो पुरुष हो उनको सङ्गति करे और सबको बलिष्ठ कर देना चाहिए । साहाय्य तभी परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ करता है तथा प्रत्यक्षाम से बनी वदता को भी प्राप्त हो जाया करता है ॥ २३-२८ ॥

धनधन्यपनशील च सदाचारिवनदिधनम् ।

सालस च दूरसाद ब्राह्मण वाद्यतेऽन्तक ॥२४

अताऽभ्यस्येत्प्रयत्नेन सदाचार मश द्विज ।

तीर्थान्यप्यभित्तरं गन्ति सदाचारिसमागमम् ॥२०

रजनीप्रान्तयामाहर्त्त ब्राह्म समयउच्यते ।

स्वाहितचिन्तयेत्प्राज्ञरतन्मिश्चोत्थायसर्वदा ॥२१

गजास्य सस्मरेदादी तत ईश सहाम्बया ।

धीरङ्गु श्रीसमेत नु ब्रह्माण कमनोदभवम् ॥२२

इन्द्रादीन्तकलान्देवान्बसिष्ठादीन्मुत्तानपि ।

गङ्गाया सरित सर्वाः श्रीशलाघखिलान्गिरीन् ॥२३

क्षीरोदादीन्समुद्रांश्च मानसादिसरासि च ।

वनानि नन्दनादीनिघेनूः कामदुघादयः ॥३४

कल्पवृक्षादिवृक्षाश्च घातून्काञ्चनमुरयतः ।

दिव्यस्त्रीन्वशीमुख्याः प्रह्लादाद्यान्हरेः प्रियान् ॥३५

जो ब्राह्मण अव्ययनशील नहीं होता है—जो सदाचारो का विलङ्घन करने वाला होता है—जो आलसी होता है और दुष्ट अन्न का खाने वाला होता है ऐसे ब्राह्मण को यमराज साधा दिया करता है । इसलिये प्रयत्न पूर्वक द्विज को सदा ही सदाचार का ध्यान करना चाहिए । जो सदाचारी होता है उसके समागम प्राप्त करने के लिये तीर्थ की अभिलाषा किया करते हैं । रात्रि के प्रान्तयामाष्टे ब्राह्म समय कहा जाया करता है । उसी समय में शय्या से उठकर प्राज्ञ पुष्प को अपने हित के विषय में सदा चिन्तन करना चाहिए । सबसे प्रथम उठ कर गजानन (श्री गणेश) का ध्यान करे फिर इसके उपरान्त भगवती अम्बा क सहित विराजमान श्री राम्भु का चिन्तन करना चाहिए । श्री के सहित श्रीरङ्ग प्रभु और कमलोद्भव ब्रह्माजी का ध्यान करे ॥ २६, ३० ३१, - २ ॥ इसके अनन्तर इन्द्र प्रभृति समस्त देवगण तथा वसिष्ठ प्रभृति मुनिगण-भागी-र्षी गङ्गा आदि सरिताएँ—श्री शैल आदि समस्त शैल-क्षीरोदाद्य प्रभृति समुद्र-मानस आदि सरोवर-नन्दन आदि वन-कामदुघा आदि घेनु-कल्प वृक्ष आदि वृक्ष-काञ्चन आदि मुख्य घातु उर्वशी प्रमुख दिव्य स्त्री और प्रह्लाद आदि श्रीहरि के परम प्रिय भक्तो का क्रमशः ध्यान करना चाहिए ॥ २३, ३४, ३५ ॥

जननीचरणीन्मृत्वासर्वतीर्थोत्तमोत्तमो ।

पितरत्रगुरूंश्चापिहृदिध्यात्वा प्रसन्नधीः ॥३६

ततश्चावश्यक कर्तुं नैच्छंती दिशमाव्रजेत् ।

ग्रामादनुशत गच्छेन्नगरान्श्चतुर्गुणम् ॥३७

तृणंराज्छाद्य वसुधा शिरः प्रावृत्य वाससा ।

कर्णापवीत उदग्बन्धनो विमले सन्ध्ययोरपि ॥३८
 विष्मये विसृजेन्मौनी निशयां दक्षिणामुखः ।
 न तिष्ठन्नाशु नो विप्रगोमह्नद्यनित्त सम्पुष्टः ॥३९
 न फालकृष्टे भूभागे न रथ्यासेष्यभूतले ।
 नाऽऽलोकयेद्विशो भागाऽऽज्योतिद्वचक्र नभोमलम् ॥४०
 वामेन पाणिना शिश्न घृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान् ।
 अथो मृद समादद्याज्जन्तुककर्करसर्जिताम् ॥४१

समस्त तीर्थों से भी परमोत्तम अपनी माता के घरणों का स्मरण करके फिर पिता तथा श्री गुरुदेव का हृदय में ध्यान करके प्रसन्न बुद्धि वासा होवे । इसके अनन्तर आवश्यक शारीरिक कृत्य करने के लिये मैत्रस्थ दिशा में गमन करना चाहिए । प्रातः से सौ घण्टा दूर जाना चाहिए और यदि नगर हो तो इससे सौगुने काससे एक दमन करे । भूमि को तुम्हों से सम्प्राप्तचित्त वाक्य तथा बस्त्र से अपने शिर को ढाँप करके—कानों पर तपवीत की चढ़ा कर उत्तर की ओर मुख करके दिन में तथा दोनो सन्ध्या कालों में पुरीष और मूत्र का विसर्जन करना चाहिए । मल त्याग के समय से मौन रखना चाहिए । यदि निष्ठा काल में मल-मूत्र का विसर्जन करना हो तो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करे । कभी भी खड़े होकर मल-मूत्र का त्याग नहीं करे । विम—मौ—मन्त्रि—वायु—इनके सामने मल-मूत्र का त्याग कभी नहीं करना चाहिए ॥ ३६, ३७, ३८, ३९ ॥ जो भूमि का भाग हम से जुना हुआ हो उसमें—रथ्या (मत्ती या मार्ग) में तथा संन्य भूतल में कहीं भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए । मल विसर्जन करने के समय में दिशाओं की ओर नहीं देखना चाहिए । उपोविद्वचक्र और नयोमल की भी नहीं देखे । काम पाणि (हाथ) से शिश्न (मूत्रेन्द्रिय) को पकड़ कर प्रयत्न वासा होता हुआ उठना चाहिए । इसका पश्चात् जीव जन्तु और बस्त्रर से से सहित मिट्टी ग्रहण करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

विहायमूपकोत्खाताचोच्छिष्टाकेशसंकुलाम् ।
 गुह्येदद्यान्मृदचंकाप्रक्षालयचात्रुनाततः ॥४२
 पुनर्वामकरेणेति पञ्चधा क्षालयेद्गुदम् ।
 एकैकपादयोदद्यात्तिस्रः पाण्यामृदस्तथा ॥४३
 इत्य शौचं गृहो द्रव्याद्गन्धलेपक्षयावधि ।
 क्रमाद्गुण्यत कुयद्ब्रह्मचर्यादिषु त्रिषु ॥४४
 दिवाविहितशौचाच्च रात्रावद्धं समाचरेत् ।
 परग्रामे तदर्धं च पथि तस्याधमेव च ॥४५
 तदर्धं रागिराणां चापिमुस्थेन्यूनं नकारयेत् ।
 अपि सवनदीतोयैर्मृत्कूटश्चाप्यगोभसैः ॥४६
 आपातमाचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुद्धिभाक् ।
 धार्द्रघाशोफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिताः ॥४७
 सर्वाश्चादृतयोऽप्येव ग्रासाश्चान्द्रायणेपिच ।
 प्रागास्म जदगास्यो वा सूर्पाविष्टः शुचौ भुवि ॥४८
 उपस्पृशेद्विहीनाभिस्तुपागारास्थिभस्मभिः ।
 अतिस्वच्छाभिरदिशश्च यावद्घृद्गामिरत्वरः ॥४९

जो मृत्तिका मूपको से उखाड़ी या खोदी हुई हो या जो उच्छिष्ट
 हो एवं केशों में संकुल हो उसका परित्याग कर देवे । एक धार जल से
 प्रक्षालन करके गुह्य भाग से मिट्टी लगावे और जल से प्रक्षालन करे ।
 फिर वाम हस्त से गुदा को पाँच बार प्रक्षालित करना चाहिए । एक-एक
 बार पंरो में मिट्टी लगावे और तीन बार दोनो हाथों में मृत्तिका लगानी
 चाहिए । इस तरह से गृहस्थी मनुष्य का अपनी शुद्धि करनी चाहिए ।
 जब तक गन्धलेप का क्षय न हो तब तक मट्टियाना आवश्यक है ।
 ब्रह्मचारी आदि अन्य तीन आश्रमों वालों को क्रम न वैगुण्य भाव से
 अपनी शुद्धि करनी चाहिए । अर्थात् क्रम से एक-एक गुना बड़ा करके
 करे ॥४२॥४३॥४४॥ दिन में जो शौच किया जाता है उससे रात्रि के

समय में आधा ही कग्ना चाहिए ॥४५॥ जो रोगग्रस्त मनुष्य हो उनकी भी इससे आधा ही शौच करना पर्याप्त होता है किन्तु जब स्वस्थता हो तो आत्मन्य या प्रमाद से न्यून नहीं करे । समस्त तद्विषयों के जस से और आप्यगोपम मुत्कृष्टों से भी आपात शौच करे । जो भाव दुष्ट होता है वह कभी भी शुद्धि वाला नहीं होता है । शौच कर्म में आठ घण्टी के फल (कण्ठे आँवना) के समान मिट्टी बतलायी गयी है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार से सभी घातुतियाँ तथा पात्रायण यत में सास भी होने चाहिए । पूर्व की ओर मुख वाला होकर या उत्तर दिशा की ओर मुख वाला होकर किसी शुचि सू भाग में बैठकर विहीन घुपाङ्गाराम्भि मम्म से उपसर्ग न करना चाहिए । प्रत्येक जस से जब तक पूर्ण शुद्धि हो उस तक शापित पुनर्क करना चाहिए ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

घ्राह्यणोऽह्वासी येणदृष्टिपूताभिराचमेन ।

कण्ठगाभितुं प शुभ्येत्तालुगार्भस्तयोरुजः ॥४०

स्त्रीशुद्रावथ सस्पर्शमालेणामि विगुन्मतः ।

स्त्रि शब्द सकण्ठ वा जने मुक्तद्विष्टाऽपि या ॥४१

अक्षानितपदद्वन्वाचान्तोऽप्यशुचिर्मतः ।

विः पीत्वाऽम्बु विद्युद्ययर्गतत. क्षानि विशोधयेत् ॥४२

वङ्ग प्ठमूनवेधो ह्यधगाष्टो परिमृजेत् ।

स्पृष्ट्वाऽग्नेन हृदय समन्ताभिः शिरःस्पृजेत् ॥४३

वङ्ग स्यग्रंस्थथा स्वन्धो साम्बु सर्व्वंस्त सस्पृशेत् ।

आचान्तः पुनराचामेत्कृत्वा रथ्योपसर्पणम् ॥४४

स्नात्वा शुक्त्वा पयः पीत्वा प्रारम्भे शुभकर्मणाम् ।

मुष्टवा वास परोधाय दृष्ट्वा तथाप्यमङ्गलम् ॥४५

प्रमादादशुचिःशृत्वाद्विराधान्त शुचिर्भवेत् ।

दन्तघावन प्रमुर्वीतयथोक्तधर्मशास्त्रत. ॥४६

आचान्तोऽप्यशुचियस्मादकृत्वा दन्तघावनम् ४५६

ब्राह्मण को ब्रह्मतीर्थं दृष्टि पूत जल से आघमन करना चाहिए ।
 नूप. कण्ठगामी जल से शुद्ध होता है । वैश्य तालु पर्यन्त जल से और शूद्र
 तथा स्त्री जल के सस्पर्श मात्र से ही शुद्ध हो जाया करते हैं । शिर
 शब्द सकण्ठ अथवा जल में मुक्त शिखा वाला भी बिना दोनो पैर धोये
 हुए आचान्त होने पर भी अशुचि ही माना गया है । विशुद्धि के लिये
 तीन बार जल का पान करके इसके पश्चात् छनों का विशोधन करे ॥५०
 ॥५१॥५२॥ अंगूठे के मूल देश से अद्यरोष्ठो का परिमार्जन करे । जल
 से हृदय का स्पर्श करके फिर रोय समस्त से शिरका स्पर्श करना चाहिए ।
 अंगुलियों के अग्रभागों से तथा दोनो स्कन्धों को सर्वत्र जल के सहित
 सस्पर्श करे । यदि रथ्या का उपसर्पण किया हो तो भी आघमन करना
 चाहिए ॥५३॥५४॥ स्नान करके—भोजन करके—पय.पान करके—शुभ कर्मों
 के आरम्भ काल में—सोकर उठने पर—बस्त्रों का परिधान करके । किसी
 अमङ्गल को देखकर—प्रमाद से अशुचि होने पर या किसी अशुचि का
 स्मरण करके दो बार आघमन करके ही शुचि होता है । धर्म शास्त्र में
 जिस विधि-विधान से बतलाया गया है उसी भाँति दन्तधावन (दंतून)
 करनी चाहिए । क्योंकि आचान्त होने वाला पुरुष भी जब तक दन्त
 धावल नहीं किया करता है अशुचि ही रहा करता है । दंतून करना भी
 शुचिता का एक प्रधान अङ्ग माना गया है ॥५५॥५६॥

प्रतिपद्दर्शपिष्ठीपु नवम्या रविवासरे ।

दन्ताना काण्ठसयोगो दहेदासप्तम कुलम् ॥५७

अलाभे दन्तकाष्ठाना निषिद्धे वाथ वासरे ।

गण्डूपा द्वादश ग्राह्या मुखस्य परिशुद्धये ॥५८

कनिष्ठाग्रपरीमाणसत्त्वच निब्रंणारुजम् ।

द्वादशाङ्गुलमानं च साद्धं स्याद्दन्तधावनम् ॥५९

एकंकागुलमानं च चयेद्दन्तधावनम् ।

प्रातः स्नान चरित्वाचशुद्धयर्थं तीर्थे विशेषतः ॥६०

प्रातः स्नानाद्यतः शुद्धये त्काषोऽयं मलिनः सदा ।
 यन्मलं नवमिदिच्छद्रीः स्रवत्येव दिवानिशम् ॥६१
 उत्साहमेघासीभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्द्धकम् ।
 प्राजापत्यसमपाहुस्तन्महाधविनाशकृत् ॥६२
 प्रातः स्नानं हरेस्वापमलदमौग्लानिमेव च ।
 अशुचित्वंचदुःस्वप्नतुष्टिपुष्टिप्रयच्छति ॥६३

प्रतिपदा—दश—पक्षी—नवमी तिथियो मे और रविमार मे दाँती से काष्ठ का संयोग करना मातकुम्भो को दहन कर दिया करता है । दन्त काष्ठो के लाभ न होने पर अथवा इन उपर्युक्त निषेध किये हुए दिनों मे बारह कुल्ले को मुख की गुदिके के लिये प्रदहन करने चाहिये । अपनी कनिष्ठिका अङ्गुली के बराबर प्रमाण वाली - छिलके के महित—दिना घण वाली और द्वापरहित बारह अगुल मान से युक्त—आर्द्र (गीली) दन्तधावन (दंतूत) प्रदहन करनी चाहिए । एक एक अगुल प्रमाण तक उसका चर्चण करे । प्रातः काल मे शुद्धि के लिए विशेष रूप से तीर्थ मे स्नान करे । क्योंकि यह मलिन शरीर सदा प्रातः काल के स्नान से ही शुद्ध हुआ करता है । रात दिन जो मल शरीर मे रहने वाले उस को छिद्रो मे क्षयित होता रहा करता है । इस प्रातःकाल के स्नान को उत्साह—मेघा—सौभाग्य—रूपलाक्षण्य—और सम्पत्ति का प्रवर्धक प्राजापत्य के समान ही महान् अघो का विनाश करने वाला कहा गया है । प्रातः काल किया हुआ स्नान पाप—असह्यी और ग्लानि का हरण करने वाला होता है तथा अशुचित्ता और दुःस्वप्न का भी विनाशक होता है एव मशतुष्टि और पृष्टि को प्रदान किया करता है ॥६७—६३॥

नोपसर्पन्ति वै दुष्टाः प्रातःस्नायजनं नवचित् ।
 दृष्टादृष्टफल यत्नात्प्रातःस्नान समाचरेत् ॥६४
 प्रसङ्गवत् स्नानविधिं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम । ।
 विधिस्नानं यतः प्राहुः स्नानाच्छतगुणोत्तरम् ॥६५

विशुद्धां मृदमादाय बहिंपस्त्रिलगोमयम् ।
 शुची देशे परिस्थाप्य ह्याचम्य स्नानमाचरेत् ॥६६॥
 उपग्रहीवद्धशिखोजलमध्येसमाविशेत् ।
 स्वशाखोक्तविधानेनस्नानं कुर्याद्यथाविधि । ६७
 स्नात्वेत्था वस्त्रमापीड्य गृहणीयादौतवाससी ।
 आचम्य च ततः कुर्यात्प्रातः सन्ध्यां कुशान्वितः ॥६८॥
 प्राणायामांश्चरन्विष्णो निम्यमानसंहृदम् ।
 आहोरात्रवृत्तं पार्ष्णमुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥६९॥
 दश द्वादशसख्या वा प्राणायामाः कृता यदि ।
 नियम्य मानस तेन तदा तप्त महत्तप ॥७०॥

प्रातः काल में स्नान करने वाले मनुष्य को कभी भी कुछ जन उपसर्पण नहीं किया करते हैं क्योंकि इस प्रातःकाल के समय में स्नान का दृष्टादृष्ट फल हुआ करता है अतएव सर्वदा प्रातःकाल में ही स्नान का समाचरण करना चाहिए ॥ ६४ ॥ हे नृपोत्तम ! अब स्नान का प्रसंग प्राप्त हो गया है इसलिए मैं अब इस स्नान की विधि आपको बतलाता हूँ क्योंकि स्नान से रात-भुण उत्तर विधि स्नान को कहते हैं ॥ ६५ ॥ परम विशुद्ध मूलिका—बहि—तिल और गोमय लेकर किसी शुचि स्थल में प्रतिष्ठापित करके आचमन करे और फिर स्नान करना चाहिए ॥ ६६ ॥ उपग्रही—शिखा को बद्ध करने वाला जल के मध्य में प्रवेश करे । अपनी वेद की शाखा के अनुसार ही विधि के अनुसार शास्त्रोक्त विधान से स्नान करे । इस तरह में स्नान करने बस्त्र को समापीडित करके धुने हुए अर्थात् शुद्ध वस्त्रों को ग्रहण करना चाहिए । फिर आचमन करके कुशाद्यो को लेकर प्रातःकाल की सन्धयोपासना करे । ॥ ६७ । ६८ ॥ अपने मन को दृढता के साथ नियमित करके त्रिप्र को प्राणायाम करने चाहिए । दिन रात में त्रिप्र हुए पापों से प्राणायामों के करने पर मनुष्य उगी क्षण में मुक्त हो जाता करता है ॥ ६९ ॥ दश

अमना बरहृ इहया जाने यदि प्राणायाम किये मये हैं और मन को मत्तो भाँति से नियमन मे कर लिया है तरे उस समय मे महान् उपस्था बनती है ॥ ७० ॥

सन्धाहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु योऽहः ।
 अपि भ्रूणहन मासास्थुनन्त्यहरहृ.कृता. ॥७१
 मथा पाथिवघातुर्ना दह्यन्ते धमनाम्भला ।
 तथेन्द्रियैः कृता दोषा क्वास्त्यन्ते प्राणसममात् ॥७२
 एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
 गायत्र्यास्तु पर नान्ति पावन च नृपोत्तम ॥७३
 कर्मणा मनसावाचायद्रापोकुर्वते त्वयम् ।
 उत्तिष्ठन्पुवस्रध्यायाप्राणायामैर्विशोद्यमेन् ॥७४
 यदहना कुर्वतेपापमनोवाककामकपभिः ।
 व्यासीत पश्चिमासव्याप्राणायामैर्व्यपोहति ॥
 पश्चिमां तु समासीतो मल हन्ति दिवाकृतम् ॥७५॥
 नोपतिष्ठेन्नु यः पूर्ववै नोपास्ते मस्तु पश्चिमायम् ।
 स शूद्रवद्वह्निष्कार्यं सवस्माद्द्विजकमणः ॥७६
 अपा सर्मापमासाद्य नित्यकर्म समाचरेत् ।
 तत आचमनं कुर्याद्यथाविध्यनुपूर्वम्. ॥७७
 आपोहिष्ठेतिमृभिमर्जितं तु ततश्चरेत् ।
 भूमौ शिरसिवाक्काश आकाशेभुवि मस्तके ॥७८

७०हृतिमो के सहित तथा प्रणव से युक्त योऽहः (सोपह) प्राणायाम भूव का हनन करने वाले पुस्त्य को भाँ प्रति दिन करने पर एक भाग मे पश्चिम कर दिया करते हैं ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार मे पाथिव घातुओ के मन धामन करने से दग्ध हो जाया करते हैं वसी भाँति इन इन्द्रियो के द्वारा किये गये दोष प्रायो के समय से मना दिये जाया करते हैं ॥ ७२ ॥ एकाक्षर प्रणव परम ब्रह्म होता है और प्राणायाम परम तप

हुआ करता है । हे नृपोत्तम ! इत गायत्री मन्त्र से अधिक परम पावन अग्न्य कोई भी मन्त्र नहीं होता है ॥ ७३ ॥ कर्म के द्वारा—मन के द्वारा तथा वचनों के द्वारा जो भी कुछ रात्रि में अथ (पाप) किया करता है उन सबको उठकर पूर्व सन्ध्या की उपासना के समय में किये गये प्राणायामों के द्वारा विनोदित कर डालना चाहिए ॥ ७४ ॥ जो दिन में मन—वाणी और शरीर के कर्मों के द्वारा पाप मानव किया करता है उन सबको पश्चिम अर्थात् सायंकाल में की गयी सन्ध्योपासना में समासीन होकर किये गये प्राणायामों के द्वारा ध्यपोहित कर दिया करता है ॥ ७५ ॥ पश्चिम सन्ध्या में समासीन पुरुष दिन में किये हुए मल का हनन कर दिया करता है । जो मनुष्य पूर्व सन्ध्या की उपासना नहीं करता है और जो पश्चिम सन्ध्या की उपासना नहीं किया करता है वह विष एक शूद्र की मूर्ति बहिष्कृत कर देना चाहिए क्योंकि उसमें एक द्विज का कोई कर्म दिष्टमान ही नहीं हुआ करता है अतएव एक द्विज कर्मों में उसको कभी भी नहीं लेना चाहिए ॥ ७६ ॥ अस के समीपता को प्राप्त करके नित्य कर्म का समाचरण करना चाहिए । इसके पश्चात् यथाविधि आनुपूर्वशः आधमन करना चाहिए । इसके अनन्तर 'आपोदिष्ठा भयोमुख ' इन तीन मन्त्रों के द्वारा शरीर का मार्जन करना चाहिए । भूमि में—शिर में और आकाश में तथा आकाश में—भूमि में—और मस्तक में मार्जन करे ॥ ७७ । ७८ ॥

मस्तकेन तथाकाशेभूमौ च नवधाधिपेत् ।

भूमिशब्देन चरणावाकाश हृदयस्मृतम् ॥

शिरस्येव शिरःशब्दो मार्जनं तैःकदाहृतम् ॥७६॥

वारणादपि चाग्नेमाद्वापव्यदपि चेन्द्रतः ।

मन्त्रस्नानादपिपर ग्राह्यं स्नानमिदं परम् । ८०

ग्राह्यस्नानेन यः स्नातः स ग्राह्याभ्यन्तरं शुचिः ॥८०॥

सद्यश्च चाहतामेति देवपूजादिकमणि ।

नक्तं दिनं निमज्ज्याप्सु कौवर्तं किमुपायताः ॥८१॥

अतश्चोऽपितथास्नातानमुद्धाभाद्द्रुपिताः ।
 अन्तःकरणशुद्धाश्चतान्विभूतिःपवित्रयेत् ॥८२
 किम्पावना. प्रकीर्त्यन्ते रासमा भस्मधूसराः ।
 ॥८३

तदेव निर्मलं चेतो यथा स्यात्तन्मुने ! शृणु ॥८४

इत एति से अस्वक-आकाश और भूमि में नीवार जल को क्षिप्त करना चाहिए । भूमि शब्द से यहाँ पर चरणा का अर्थ है और आकाश से हृदय को कहा गया है । इस तरह से उनके द्वारा मार्जित कहा गया है ॥ ७९ ॥ वरुण-भ्राम्नेय-वायव्य-इन्द्र-इम दिशाओं से भी और मन्त्र स्नान से भी परम ब्राह्मण स्नान कहा गया है । ब्राह्मण स्नान जो स्नान किया हुआ पुरुष है वह वाह्य और आन्तरिक दोनों में शुद्ध हो जाता करता है ॥ ८० ॥ देव-पूजा आदि कर्मों में बठ बड़ा स्नान पुरुष अर्हतर को प्राप्त हो जाता है । रात दिन जल में निमग्न करने वाले कर्मों जाति वाले लोभ क्या पावन हो जाता करते हैं ? अर्थात् जल में ही स्नान मात्र से कभी पावनता नहीं हुआ करती है । एकदो बार भी स्नान किये हुए पुरुष यदि मादद्रुपित होते है तो ये शुद्ध नहीं होते हैं । जो अन्तःकरण में शुद्ध होत हैं वही जो विभूति पवित्र किया करती हैं । घटर्निगमनम स घूसर रहने वाले गसभ (गधे) क्या पावन कहे जाया करते हैं ? अर्थात् नहीं कहे जाते हैं । बही यूस्य समस्त तीर्थों में स्नान हैं जो सब तरह के यन्त्रों से रहित होता है । यहाँ सप्तर में जिसका चित्त निर्मल है उसने माना सो श्रुतियों का यजन कर लिया है । हे मुनिवर ! जिन तरह से चित्त निर्मल होता है या जो मन रहित चित्त कहा गया है उसके विषय में आप सब यत्न करो ॥ ८३-८४ ॥

विश्वेशश्चेत्प्रसन्नः स्यात्सदा समाप्तान्यथा ववचित् ।

तस्मान्चेतोविशुद्धयर्थं काशीनाथं समाश्रयेत् ॥८५
 इदं शरीरमुत्सृज्य परं ब्रह्माधिगच्छति ।
 द्रुपदान्तं ततो जप्त्वा जलमादाय पाणिना ॥८६
 कुर्याद्वृत्तैवमन्त्रेण विधिज्ञस्त्वघमर्षणम् ।
 निमज्ज्यात्सुचयोविद्वाञ्जपेत्सिरघमर्षणम् ॥८७
 जले वापिस्थले वापि यः कुर्यादघमर्षणम् ।
 तस्याघोघो विनश्येत् यथासूर्योदयेतमः ॥८८
 गायत्री शिरसा हीना महाध्याहृतिपूर्विकाम् ।
 प्रणवाद्या जपस्तिष्ठन्क्षिपेदम्भोजलिप्रयम् ॥८९
 तेन वज्रोदकेनानु मन्देहानाम राक्षसाः ।
 सूयतेज प्रलोपन्ते शैला इव विवस्वत ॥९०
 सहायार्थंचसूर्यस्ययोद्विजोनाञ्जलिप्रयम् ।
 क्षिपेन्मन्देहनाशायसोऽपि मन्देहताग्रजेत् ॥९१

यह मानव का चित्त तभी निर्मल होता है जब भगवान् विश्व
 के स्वामी इस पर पूर्ण प्रसन्नता किया करते हैं अन्यथा यह कभी भी
 निर्मल नहीं होता है । इसीलिये अपने चित्त की विन्दुद्वि के लिये भगवान्
 काशीनाथ का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥ ८५ ॥ इनका समाश्रित
 मनुष्य इस शरीर का त्याग करके परम ब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता
 है । हाथ से जल ग्रहण करके द्रुपदान्त का जाप करे और चित्त के
 ज्ञाना पुरुष को “ शूतच ” इत्यादि मन्त्र से अघमर्षण करना चाहिए ।
 जो विद्वान् पुरुष जल में डुबकी योग्य हो तीन बार इस उक्त अघमर्षण
 मन्त्र का जाप करता है । जल में या स्थल में जो अघमर्षण किया करता
 है उस पुरुष के अघो का समुदाय विनष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदय के
 होने पर अन्धकार विनष्ट हो जाता है । तिर से हीन महा ध्याहृतियों
 को पूर्व में लगाकर चित्तके आदि में प्रणव हो ऐसी गायत्री का जाप
 करते हुए स्थित होकर तीन अञ्जलियाँ जल की प्रक्षिप्त करे ॥ ८६ ।

८७। ८८। ८९॥ उस बज्रोदक से बहुत ही शीघ्र मन्वेहा नाम वाले राक्षस सूर्य के तेज को प्रलुप्त किया करते हैं जिस तरह से पर्वत विन्-स्वान् को छिपा लेते हैं ॥ ९० ॥ सूर्यदेव को सहायता के लिए जो द्विज तीन मञ्जलियाँ जल की प्रक्षिप्त नहीं किया करता है जोकि मन्वेह राक्षस के ताम्र के लिए ही क्षिप्त की जाया करती है उसे यह द्विज भी मन्वेहता के स्वल्प को प्राप्त कर लेता है ॥९१॥

प्राठस्तावज्जपस्ष्टेधावत्सूर्यस्यदशैतम् ।
उपविष्टी त्रपेत्सायमुक्षाणामाक्ल्लोकनात् । ९२
काललोपोतऋत्तंश्चो द्विजेनस्वहितेषुना ।
अर्द्धोदयास्तसमये तस्माद्वज्रोदकक्षिपेत् ॥९३
विधिनाऽपि कृत्वा सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत् ।
अयमेव हि दृष्टान्ता बन्ध्यास्त्रीमेषुन यथा ॥९४
जलेवामकरं कृत्वा योसन्ध्याऽऽचरित्ता द्विजैः ।
वृषल्लोसापरिज्ञेया रक्षोगणमुदावहा ॥९५
उपस्थानंततः कुर्यात्-छाप्लोक्तविधिनाततः ।
सहस्रकृत्योगासन्ध्या शतकृत्योऽयवापुनः ॥९६
दशवृत्त्वोऽथदेव्यंच कुर्यात्सौमीमुपस्थितिम् ।
सहस्रपरमा देवीशतमध्यादशावराम् ॥९७
गामत्री यो अपेद्विप्रो न स पापैः प्रलिप्यते ।
रक्तचन्दनमिश्रागिरदिमण्य कुसुमैः कुशीः ॥९८
वेदोवतेरागमांनतेर्वा मन्वेरर्धं प्रदापमेत् ।
अचितः मधिता येन तेन लौलोवधच्चितम् ॥९९

प्रातःकाल की बेला में जब तक जाप करता हुआ स्थित रहना चाहिए जब तक भयवान् मास्कर का दर्शन प्राप्त होवे । शामकाल में उपविष्ट होकर ही मन्मथी के देखने के पूर्व एक जाप करना चाहिये । अपने हित की चाह रखने वाले द्विज को काल का लोप नहीं करना

चाहिए । अर्द्ध उदय और अस्त के समय में इसीलिये उस बभ्रुदक का ध्यान करना चाहिए । विधिपूर्वक कभीको गई सन्ध्योपामना यदि कासातीत हो तो वह फलशून्य ही हुआ करती है—इसमें यही दृष्टान्त परम उपयुक्त होता है जैसे किसी वन्या स्त्री के साथ किया हुआ मंगुन निष्फल हुआ करता है ॥ ६२, ६३, ६४ ॥ जल में अपना बाया हाथ करके जो सन्ध्या द्वित्री के द्वारा समाचारित होती है वह राक्षसों के समुदाय को प्रयत्नता प्रदान करने वाली वृषली सन्ध्या समझी जाती है ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर धास्र में कही हुई विधि में उपस्थान करना चाहिए । एक सहस्र अथवा एक सौ या दस बार ही देवी के लिये सोरी उपस्थिति करे । एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप परम श्रेष्ठ होता है । एक सौ बार जाप मध्यम श्रेणी का होता है । केवल दश ही बार जाप करना निम्न कोटि का जाप है । इस प्रकार इन तीनों प्रकार के जापो में किसी भी एक प्रकार का जाप जो विप्र किया करता है वह कभी भी पापो से प्रसिद्ध नहीं हुआ करता है । रक्त चन्दन से मिश्रित जल में—जुग और कुसुमी से विमिश्रित जल में वेदोक्त तथा आगमों में कहे हुए मन्त्रों से जो अर्घ्य मूयदक को देना है और त्रिसने मगद नू मदिता का अर्चन कर लिया है उसने सम्पूर्ण पैलात्रय का ही समन्तन कर लिया है—ऐसा ही समझ लेना चाहिए ॥ ६६-६३ ॥

अचित्तमविता दत्ते मूतान्पशुवसूनि च ।

व्याधीन्हरेद्दद्यात्पु. पुरयेद्वाञ्छितान्यपि ॥१००

अथ हि रुद्र आदित्यो हरिरेष दिवाकरः ।

रविहिरण्यरूपोऽग्नौ त्रयोऽप्योऽयमयंमा ॥१०१

सतन्तु तपणं कुर्यात्स्वशास्त्राक्तविधानतः ।

ब्रह्मादीनखिलान्देवान्मगीचरादीस्तापामुनीन् ॥१०२

चन्दनागुन्कपर्णं रगन्धवत्कुसुमैरपि ।

तपये. छुच्चिमिस्तीर्थैस्तृप्यन्तिवति समुच्चरेत् ॥१०३

सनकाद्योन्मनुष्योश्च निवीती तपयेद्यवः ।
 यज्ञं षष्ठ्यमध्ये तु कृत्वा दमर्निजून्दिभः ॥१०४
 कथं वाहनलादीश्च पितृन्दिव्यान्प्रतप्स्येत् ।
 प्राचीनावीतिको यर्भद्विगुणंस्तित्त मयितः ॥१०५

मनी भक्ति समर्पित सविता देव मुन-पद्य और घनी को प्रदान
 किश करते हैं । वह षषाधियों का हरण करते हैं—आयु देते हैं और
 मनोवाञ्छितो को भी पूर्ण कर देते हैं । यह रत्न-आदित्य-रि-दिवकर-
 रवि—द्विरप्यस्व—प्रवीश्य—धर्मसा है । इसके अनन्तर अपनी वैदिक
 पाखा में समाविष्ट विद्या के अनुधार तर्पण करना चाहिए । ब्रह्मादि
 समस्त देवों का तर्पण करे तथा मर्गीवि आदि सब मुनिशो का तर्पण
 करना चाहिए । अग्नि अशुह—कर्पूर—सुगन्धित आदि से मिश्रित परम
 शुद्ध जल “सुयन्न” —इसका समुच्चारण करते हुए तर्पण करे । यवों के
 द्वारा तवीगो होकर सनकादिको का -मनुष्यो का तर्पण करना चाहिए ।
 द्विज को चाहिए कि दोनों अगुयो के मध्य में सीपोकुलो को रखे । कथ्य
 नाउतल आदि । दिव्य पितृगण को तर्पण करे । प्राचीना वीती होकर

१०४ निश्चित दुगुन कुशाभो मे तर्पण करे । १००—१०५॥

रवो शुक्ले त्रयोदश्या सप्तम्या निशि सन्धयोः ।
 श्रेयोर्भो ब्राह्मणो जातु न कुर्यात्तिलतपणम् ॥१०६
 यदि कुर्यात्ततः कुर्याः शुक्लरेव तिलं कृती ।
 घतुदंश यमान्पश्चात्तपयेन्नामरु-चरन् ॥१०७
 ततः स्वगोत्रम् चार्थं तपयत्स्वान्पितृभ्युदा ।
 सव्यजान्निपातेन पितृतीर्थेन वारमतः ॥१०८
 एकैकमन्त्रं स्रिदेवा द्वीद्वीतुसनकादिकाः ।
 पितरस्थोन्मवाञ्छन्तिस्त्रियएकैकमध्वनिम् ॥१०९
 मङ्गलधरेण वै देवमापंमङ्गलित्मूलगम् ।
 ब्राह्मणमङ्गलम्ले तु पाणिमध्ये प्रजापतेः ॥११०

मध्वेङ्गुल्लप्रदेशिन्योः पित्र्यं तीर्थं प्रचक्षते ।

आब्रह्मन्तम्बपयन्तं देवपिपितृमानवाः ॥१११

तृप्यतुनर्वे पितरोमातृगातामहादयः ।

अग्न्येचमन्त्राः प्रोक्तयिवेदोक्ताःपुराणसम्भवाः ॥११२

मास के शुक्लपक्ष में रविवार त्रयोदशी विधि में—सप्तमी विधि में—निगा में और दशैं में सुव्या कालों में श्रेष्ठ के सम्नादन करने की इच्छा वाला पुरुष (ब्राह्मण) किसी भी दशा में तिलों के द्वाग तर्पण नहीं करे ॥११०६॥ यदि तिलों से तर्पण भी करे तो शुक्ल तिलों से ही कृती ब्राह्मण को तर्पण करना चाहिए । चौदह यमों के नामों का समुच्चारण करते हुए पीछे तर्पण करना चाहिए । इसके पश्चात् अपने गोल का उच्चारण करत हुए अपने पितृगणों को तृप्त करना चाहिए । सुव्या-जानु तिथि में पितृनाथ से मानी होकर देवों को एक-एक अञ्जलि देवे और मन्त्रादिकों की दो-दो अञ्जलियाँ देनी चाहिए । पितृगण तीन-तीन अञ्जलियों की इच्छा रखते हैं । स्त्रियों को एक-एक ही अञ्जलि देवे । अग्नि के अग्रभाग में दैव नो—जयं अर्वात् ऋषिगण को अगुलि के मूल से—ब्राह्मण की अगुलि के मूल में और प्रजापति को पाणि के मध्य में देना चाहिए । अथान् वे ही भयन इनष्ट उन्मुक्त होते हैं । अंगुलि और प्रादेशिनी के मध्य नग में विध्य तीर्थ कहा जाता है । घन में ब्रह्म से स्वम्ब पयन्त ओ भी देव—ऋषि—पितृ एव मानव हो वे सभी पितृ-मातृ और माना महादिक मेरे समपितृ इम जलाञ्जलि से सन्तुष्ट हो जावे—यह उच्चारण उनके ही जलाञ्जलि देनी चाहिए । इस तर्पण के लिये अन्य मन्त्र वेदोक्त कहे गये हैं और पुराणों में उक्त भी कहे गये हैं ॥११०७-११२॥

साङ्गं चतुर्ष्वण कुर्यात्पितृणाचनुषप्रदम् ।

अभिचार्यं ततः कृत्वावेदाम्यास सतश्चरेत् ॥११३

धृत्यभ्यासः पञ्चधा स्यात्स्वीकारोऽथंविचारणम् ।

अभ्यासश्च तपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम् ॥११४
 लब्धस्य प्रतिपालार्थमलब्धस्यच लब्धये ।
 प्रातःकृत्यमिदप्रोक्त द्विजातीनांनृपोत्तम ! ॥११५
 अथवा प्रातःकृत्याय कृत्वावश्यकमेव च ।
 शौचाचमनमादाय भक्षयेद्दन्तघ्रावनम् ॥११६
 विशोध्य सर्वगात्राणि प्राःसन्ध्यां समाचरेत् ।
 वेदार्थान्नाद्यगच्छेद्द्वै शास्त्राणि विविधान्यपि ॥११७
 अध्यापयेच्छुचोऽच्छिष्यान्हितान्मेधामन्वितान् ।
 उपेयादीश्वर चापि योगक्षेमादिसिद्धये ॥११८
 ततो मध्याह्नसिद्धयर्थं पूर्वोक्त स्नानमाचरेत् ।
 स्नात्वा माभ्याह्निकी सन्ध्यामुपासीत विचक्षणः ॥११९

इस प्रकार से पितृगण के लिये साङ्ग एव सुखप्रद तर्पण करना चाहिये । इसके अनन्तर अग्नि कार्यं यथा होम करे और इसके पश्चात् वेदों का अभ्यास करना चाहिए । श्रुति का अभ्यास पाँच प्रकार का होता है—स्वीकार करना—अर्थ का विचार करना—केवल अभ्यास करना—तपश्चर्या करना और अपने शिष्यों के लिये प्रतिपादन करना ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ जो लब्ध है उसके प्रतिपादन करने के लिये तथा जो अलब्ध है उसकी लब्धि के लिये यह प्रातःकाल का कृत्य कहा गया है जो है नृपोत्तम ! द्विजातीयों के लिये ही होना है । अथवा प्रातःकाल में ध्याया से उठकर आवश्यक शारीरिक कृत्य का सम्पादन करके शौचाचमन लेकर दन्त घ्रावन का भक्षण करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ अपने समस्त अङ्गों का विशोधन करके प्रातःकालीन सन्ध्या का समाचरण करे । फिर वेदार्थों का ज्ञान प्राप्त करे और अनेक शास्त्रों का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥ ११७ ॥ जो परम पवित्र एव हित तथा मेधा से संयुक्त शिष्य हो उनका अभ्यापन करे । और ईश्वर की भी योग क्षेम आदि की सिद्धि सम्प्राप्त करने के लिये उपासना करनी चाहिये ॥ ११८ ॥ इसक

उपरान्त मध्याह्न की सिद्धि के लिये पूर्वोक्त स्नान करे । विलक्षण पुष्ट को स्नान करके माध्याह्न की संध्या की उपासना करनी चाहिये ॥११६॥

देवता परिपूज्याथ विधिर्नैमित्तिक चरेत् ।
 पयनाग्निं समुज्ज्वाल्यर्वश्वदेवसमाचरेत् ॥१२०
 निष्पावान्कोद्रवान्मापान्यलपाश्चणगास्त्यजेत् ।
 तैलपक्वमपक्वान्न सर्वं लक्षणयुक्त्यजेत् ॥१२१
 आढक्यन्न मसूरान्न वतुंलधान्यसम्भवम् ।
 भुक्तशेषपयुं पित वंश्वदेवे विवर्जयेत् ॥१२२
 दर्भपाणि समाचम्य प्राणायामविधाय च ।
 पृषोदिवीति मन्त्रेण पयुंक्षणमथाचरेत् ॥१२३
 प्रदक्षिणत्रपयुंक्ष्य द्विपरिस्तीमवंकुशान् ।
 रापोद्धं देवमन्त्रेण कुर्याद्विहितस्वसन्मुखे ॥१२४
 वंशवानर समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतेस्तथा ।
 स्वदाखोक्त प्रकारेण होमकुर्याद्विचक्षणः ॥१२५
 अध्वग क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुगोपकः ।
 यतिश्च ब्रह्मचारो च पडेतेधमभिक्षुका ॥१२६

देवता का अर्चन करके नैमित्तिक विधि को करे । पयनाग्नि को प्रज्वलित करके वैश्वदेव करे । निष्पावा—को द्रव—म प—अन्यत्पाप धीर घणक—इनका परित्याग कर देवे । तैल से परिपक्व—अपक्वान्न और सब लक्षण से युक्त स्थाग देवे ॥ १२० । १२१ ॥ आढक्यन्न—मसूरान्न वतुंल धान्य समुत्पन्न—भुक्त शेष—पयुं पित (वासी) इन सबको वैश्वदेव में वर्जित कर देना चाहिये । हाथ में कुश ग्रहण करके भली भाँति आधमन करे और प्राणायाम करके “पृषोदवि”—इत्यादि मन्त्र के द्वारा पायुंक्षण करे । प्रदक्षिण और पयुंक्षण करके दो कुशाओं का परिस्तरण करके ‘रापोद्धं देव’—इत्यादि मन्त्र से बहिन को अपने सामने

करे । गर्वाक्षत पुष्पादि के द्वारा वंशवानर की समर्चना करके विचक्षण पुरुष को अपनी वैदिक शाखा के प्रकार से होम करना चाहिये । घघ्वा में गमन करने वाला—क्षीण वृत्ति वाला—विद्यार्थी—गुरु का पोषण करने वाला—यनि और ब्रह्मचारी—ये छः घम्मं भिक्षुक होते हैं ।
॥१२२-१२६॥

अतिथिः पान्थिको ज्ञेयोऽनूचानः श्रुतिपारगः ।
मान्यावेतो गृहस्थानां ब्रह्मलोकमभीप्सताम् ॥१२७
अपिश्वपाकेशुनिवा नैवाघ्नं निष्फलभवेत् ।
अत्राथिनि समायातेपाघ्नापाञ्जनचिन्तयेत् ॥१२८
घृणां च पतितानाञ्चश्वपचा पापरोगिणाम् ।
काकानां च कृमीणां च वहिरन्नं किरेद्भुवि ॥१२९
ऐन्द्रवारुणवायव्याः सौम्यावेनैः श्रुताश्चाये ।
प्रतिगृह्णत्विमपिहकाराभूमौ मयापितम् ॥१३०
इत्थ भूतबलिं कृत्वा कालगोदोहमासकम् ।
प्रतीक्ष्यातिथिमायात विशेद्भोज्यगृहततः ॥१३१
अदत्त्वा वायसबलिं नित्यश्राद्धं समाचरेत् ।
नित्यश्राद्धे स्वसामर्थ्यात्त्रीन्द्वावेकमद्यापि वा ॥१३२
भोजयेत्पितृयज्ञार्थं दद्यादुदुषृत्य वारि च ।
नित्यश्राद्धं देवहीननिथमादिविवर्जितम् ॥१३३

जो गृहस्थ ब्रह्मलोक की चाह रखने वाले है उनके लिये अतिथि-पान्थिक-अनूचान-और श्रुति पारगामी ये मान्य हुआ करते हैं ॥१२७ । श्वपाक और श्वान में भी अन्न निष्फल नहीं हुआ करता है । यहाँ पर अर्थी के समायात होने पर पात्र है या अपात्र है—इसका चिन्तन नहीं करना चाहिए । कुत्तो को—पतितों को—श्वपचो को—पाप रोगियों को—काकों को तथा कृमियों को भी भूमि में बाहर अन्न का विकिरण कर देना चाहिए । भूत बलि करने के लिये ऐन्द्र-वारुण—वायव्य-सौम्य—

और जो नैर्घृत हो वे सभी और वाक भूमि में मेरे द्वारा समर्पित इस पिण्ड का प्रतिग्रहण करे—गृह कहते हुए भूत बलि गोदोहन मात्र काल पर्यन्त इस प्रकार से भूत बलि करके किसी भी भाये हुए अतिथि की प्रतीक्षा करे फिर भोज्य गृह में प्रवेश करना चाहिए । वायस बलि को न देकर नित्य श्राद्ध का समावरण करना चाहिए । नित्य श्राद्ध में अपनी सामर्थ्य से तीन-दो अथवा एक को ही भोजन करावे । यह पितृ यज्ञ के लिये ही भोजन देवे और जल को उद्धृत करके देना चाहिये । नित्य श्राद्ध देवहीन और नियम आदि से विवर्जित होता है ॥१२८-१३३॥

दक्षिणारहित त्वेतद्दाभोवतृमुत्तृप्तिकृत् ।
 पितृयज्ञ विधायेत्य स्वस्थबुद्धिरनातुरः ॥१३४
 अदुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभिः सह ।
 सुगन्धि सुमनाः स्रग्वी श्चिवाप्तोद्वयान्वितः ॥१३५
 प्राणास्य उद्गास्यो वा भुञ्जीतपितृसेवितम् ।
 विधायान्नमन-नतदुपरिष्ठादधस्तथा ॥१३६
 आयाशानविधानेन कृत्वाऽऽनीयात्सुधीद्विजः ।
 भूमौ बालप्रथ कुर्यादपोदद्यात्तदोपरि ॥१३७
 सकृ चाप उपस्पृश्य प्राणाद्यहृतिवञ्चकम् ।
 दद्याज्जठरकुण्डान्नोदभंपाण. प्रसन्नधी ॥१३८
 दभपाणिस्तुयो भुङ्क्तैतस्यदोषो नविद्यते ।
 केशकोटादिसभूतस्तदानीयात्सदभंकः ॥१३९
 ततो मीनेन भुञ्जीत न कुर्याद्दन्तघर्षणम् ।
 प्रक्षालितव्यहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः ॥१४०

यह दक्षिणा से रहित यह दाता और भोक्ता की सुतृप्ति का करने वाला है । इस प्रकार से पितृयज्ञ को न करके अनातुर होते हुए स्वस्थ बुद्धि वाला है । दोष रहित असन पर भ्रमिष्ठित होकर शिशुओं के

साम स्वयं भोजन करे । सुन्दर गन्ध वाला—सुन्दर मन से गुनन—
माला धारण किये हुए और दो शुद्ध वस्त्र धारण करके भोजन करना
चाहिए ॥ १३४ । १३५ ॥ पितृ मथित पदार्थ को पूर्व की ओर मुख
वाला होकर अथवा उत्तर की ओर मुख करके खाना चाहिए । अन्न को
ऊपर और बीच खान्न करके आयोगान विधान से सुधी द्विज को भोजन
करना चाहिए । भूमि में तेल बलि करे और उसके ऊपर जल देवे ।
॥ १३६ । १३७ ॥ एक बार जल से उपस्पर्शन करके “प्राणाय स्वाहा”
इत्यादि मन्त्रों से पाँच माहृतियाँ देवे फिर प्रसन्न बुद्धि होकर हाथ
में कुशा ग्रहण कर अठर रूपी कुण्ड में देना चाहिए । हाथ में साम
लेकर जो भोजन किया करता है उसका कोई भी शेष नहीं होता है ।
केश कीटादि से सम्भूत दर्भ के सहित भजन करे । इसके अनन्तर मौन
रह कर भोजन करे और दाँतों का घर्षण नहीं करना चाहिए और
प्रक्षालन करने के योग्य हाथ के दक्षिणागुष्ठ मूल से न करे ॥ १३८ ।
१३९ । १४० ॥

रौरवेऽपुण्यनिलये अघोलोकनिवासिनाम् ।
उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षम्यमुपतिष्ठताम् ॥ १४१
पुनराचम्य मेघावी शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः ।
मुखशुद्धिं ततः कृत्वा पुगणश्रवणादिभिः ॥ १४२
अतिवाह्य दिवाशेष ततःसन्ध्यासमाचरेत् ।

१४३

अनुत् मद्यगन्ध च दिशाम्युनमेव च ॥
पुनाति वृषलस्थानं सन्ध्या बहिरुपासिता ॥ १४४
चक्षुदेशतः समाख्यातएष नित्यतनोविधिः ।
इत्थ समाचरन्विप्रोनावसीदति न हिचित् ॥ १४५

अपुण्यो वा निलय रौरव नरक में अघोलोको के निवासी और

उच्छिष्ट जल की इच्छा रखने वालों का अक्षय्य उपस्थित होवे ॥१४१॥
 फिर मेघाधी को आचमन करके शुचि होकर प्रयत्न पूर्वक मुख की शुद्धि
 करे और इसके उपरान्त दिन के शेष भाग को पुराणों के श्रवण आदि
 के द्वारा व्यतीत करे और इसके अनन्तर फिर सायं सन्ध्या की उपासना
 करती चाहिए । गृहो मे की हुई सन्ध्या की उपासना प्राकृत होती है
 यही उपासना यदि गोष्ठ मे की जावे तो दशगुने फल वाली हो जाती है ।
 नदी पर की हुई सन्ध्योपासना दश सहस्र गुनी होती है तथा भगवान्
 की सन्निधि मे की गयी सन्ध्या की उपासना अनन्त गुनी बही गयी है ।
 मिथ्या भाषण — मंदिरा की गन्ध — दिवा मंथुन और वृषल स्थान इन
 सबको बाहिर की गयी सन्ध्योपासना पवित्र कर देती है ॥ १४२ । १४३
 । १४४ ॥ यह नित्य ही की जाने वाली विधि उद्देश्य से समाप्त की
 गयी है । इस प्रकार से समाचरण करने वाला विप्र किसी भी समय मे
 दुःखित नही हुमा करता है ॥१४५॥

४१—हयग्रीवाख्यान वर्णन

नपश्यन्तियदाशीर्षब्रह्माद्यास्तुसुरास्तदा ।
 किमुमदितिहेत्युक्त्वाज्ञानिनस्तेव्यचिन्तयन् ॥
 उवाच विश्वकर्माण तदा ब्रह्मा सुरान्वितः ॥१
 विश्वकर्म्मस्त्वमेवासि कार्यकर्तासदाविभो ।
 शीघ्रमेव दुरु त्ववैक्यं सान्द्रघघन्वितः ॥२
 नमस्कृत्यतदातस्मै स्तुतोऽसौदेववद्वर्किः ।
 उवाचपरयाभवत्या ब्रह्माणकमलोद्भवम् ॥३
 यज्ञकार्यं (अश्वकाय) निवृत्त्याशु ।
 (निवृत्ताऽऽशु) वदन्ति विविधाः सुराः ॥४

यज्ञभागविहीनं मां किं पुनर्वच्मि तेऽग्रतः ।
 यज्ञभागमहं देव लभेयैवं सुरैः सह ॥५
 दास्यामि सर्वयज्ञेषु विभागं सुरवर्द्धके ! ।
 सोमे त्वं प्रथम वीर पूज्यसेभ्रुतिकोविदः ॥६
 तद्विष्णोश्च शिरस्तावत्सभ्यस्त्वाऽमरवर्द्धके ! ।
 विश्वकर्माऽन्नवीद्देवानानयद्यं शिरस्त्वात् ॥७

महा महर्षि श्री व्यासदेव जी ने कहा—जिस समय मे ब्रह्मादि सुरगणों ने शीर्षं नहीं देखा था तो उस समय मे हम इस समय में क्या करें—यह कहकर वे सब ज्ञानी गण विदोष रूप से चिन्तन करने लगे थे । उस समय मे समस्त सुरगणों से समन्वित ब्रह्माजी ने विश्वकर्मा से कहा था—॥ १, २ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे विष्णो ! विश्वकर्मा सारा आप ही कार्यों के करन वाले हैं । अनएव अब आप बहुत ही शीघ्र घन्वी के वक्त्र को सान्द्र बनादो । उस समय में यह देववर्द्धकि नमस्कार करके स्तुति के द्वारा स्तुत किया गया था । तब परम भक्ति से वह कमलोद्भव ब्रह्माजी से बोला था । यज्ञ कार्य के शीघ्र ही निवृत्त कर के अनेक सुरगण मुझको यज्ञ के भाग मे विहीन कहा करते हैं । फिर मैं इस समय में आपके आगे क्या कहूँ । हे देव ! इस प्रकार से मैं भी सुरों के साथ यज्ञ के भाग को प्राप्त किया कहूँ ॥३, ४, ५॥ ब्रह्माजी ने कहा— हे सुर वर्द्धके ! मैं आपको समस्त यज्ञों मे विभाग दूँगा । हे वीर ! श्रुति के कोविदों (विद्वान्) के द्वारा प्राय सोम मे सबसे प्रथम पूजे जाओगे । हे अमर वर्द्धक ! तो भव आप तब तक भगवान् विष्णु के शिर का अनुमन्त्रान करो । विश्वकर्मा ने देवों मे कहा—शिर ले जाओ ॥ ६, ७ ॥

तन्नास्तीति सुराः सर्वेवदन्तिनृपसत्तम ।
 मध्याह्नेनैतुसमुद्भूते रथस्थोर्दिवचाणुमान् ॥८
 दृष्ट तटा सुरैः सर्वे रथादश्चमथानयन् ।

षित्त्वा शीर्षं महीपाल कबन्धाद्वाजिनोहरेः ॥६
 कबन्धे योजयामास विद्वन्नर्मातिचातुरः ।
 दृष्ट्वा तं देवदेवेशं सुराः स्तुतिमकुर्वत ॥१०
 नमस्तेऽस्तु जगद्बीज ! नमस्तेनमलापते ।
 नमस्तेऽस्तुसुरेशान ! नमस्तेनमलेक्षण ! ॥११
 त्व स्थिति सर्वभूताना त्वमेव कारण सदाम् ।
 त्वं हन्ता सर्वदुष्टाना हृद्यग्रीव ! नमोऽस्तुते ॥१२
 त्वमोङ्कारोवषट्कारस्वाहास्वधा चतुर्विधा ।
 आद्यस्त्व चसुरेशानत्वमेवरक्षण सदा ॥१३
 यज्ञो यज्ञपतिर्षण्वा द्रध्य होता हृतस्तथा ।
 त्वदर्थं हूयते देव त्वमेव शरणं सखा ॥१४

हे नृप सतम ! समस्त सुरो ने कहा—वह नहीं है । मध्याह्न
 के समुद्रमत्त होने पर शिवलोक में अशुमान् रूप में स्थित थे । उस
 समय में सुरगणों ने सबने देखा था और उस रथ से भरव को ले आये
 थे । हे महीपाल ! हरि के घोड़े का कबन्ध में फिर काट करके अत्यन्त
 घुर विद्वन्कर्मा ने उसे कबन्ध में योजित कर दिया था । उस देवदेवेश्वर
 को देखकर समस्त सुरो ने उसका स्तवन किया था । देवो ने कहा—
 हे इस जगत् के बीज ! हे कमला के स्वामिन् ! आपको हमारा नमस्कार
 है । हे सुरो के ईशान ! आपकी सेवा में हमारा नमस्कार समर्पित है ।
 हे कमल के समान नेत्रो वाले ! आपको हमारा प्रणाम है । आप तो
 सनस्त भूतो की स्थिति हैं और आप ही सबके कारण (रक्षक) हैं ।
 सब दुष्टों के आप ही हनन करने वाले हैं । हे हृद्यग्रीव ! आपकी सन्निधि
 में हन सबका प्रणाम अपि है ॥ ८, ९, १०, ११, १२ ॥ आपके चार
 प्रकार के स्वरूप हैं—आप ही ओंकार है—आप ही षट्कार हैं—आप
 ही स्वाहा हैं और आप ही स्वधा हैं । आप सबके आद्य हैं । हे सुरेशान !
 आप ही सदा सबके कारण हैं ॥ १३ ॥ आप ही यज्ञ—यज्ञो के पति—

यथा—द्रव्य—होता तथा आप ही हुत भी हैं । हे देव ! आपके ही लिये प्राकृतियाँ दी जाया करती हैं और आप ही सब्बा एवं सबके शरण अर्थात् रक्षा करने वाले हैं ॥१४॥

कालःकरालरूपस्त्वन्व वाक् शीतदीधितिः ।

त्वमग्निर्वरुणश्चैव त्वचकालक्षयङ्कर ॥ ५

गुणत्रय त्वमेवेह गुणहीनस्त्वमेव हि ।

गुणानामालयस्त्वं च गोप्ता सर्वेषु जन्तुषुः ॥१६

स्त्रीषुंसोश्चद्विधात्वं चपशुपक्ष्यादिमानवैः ।

चतुर्विध कुल त्वह्चतुराशोतिलक्षणः ॥१७

दिनान्तश्चैव पक्षान्तो मासान्तो हायन युगम् ।

कल्पान्तश्च महान्तश्च कालान्तस्त्वं च वी हरे ! ॥१८

एवंविधोमहादिव्यैः स्तूयमानः सुरैर्नृप ।

सन्तुष्टः प्राह सर्वेषां देवानां पुरतः प्रभुः ॥१९

किमर्थमिह सम्प्राप्तासर्वे देवगणाभुवि ।

किमेतत्कारणा देवाः किनु दैत्यप्रपीडिताः ॥२०

हे भगवन् ! आप विकराल स्वरूप बाने काल हैं । आप हीसूर्य तथा शीत किरणों वाले चन्द्र हैं । आप ही अग्नि हैं—वरुण और आप ही काल के क्षय करने वाले हैं ॥ १५ ॥ मत्स्य-रज और तम ये तीनो गुण भी आपका ही स्वरूप हैं और आप स्वयं गुणों से हीन भी हैं । आप इन गुणों को आलय हैं और समस्त जन्तुओं में आपही गोप्ता रक्षा करने वाले हैं ॥१६॥ आप स्त्री और पुरुष दो प्रकार के रूप वाले हैं । पशु-पक्षी आदि मानवों के द्वारा चार प्रकार के कुल आप ही हैं और चौराशी लक्षणों वाले हैं । दिनान्त—पक्षान्त—मासान्त—हायनयुग कल्पान्त—महान्त और हे हरे ! कालान्त भी आप ही हैं । हे नृप ! इस तरह से महादिव्य मुरों के द्वारा स्तवन किये गये प्रभु परम सन्तुष्ट होकर उन समस्त देवों के प्रागे वाले— ॥१७—१९॥ श्रीभगवान् ने कहा—आप समस्त देवगण इस भूमण्डल में किस लिये सम्प्राप्त हुए हैं । हे देवगणों ! इस आपके यहाँ पर समाममन करने

का क्या कारण है ? क्या आप लोग दैत्यो के द्वारा प्रपीडित हुए हैं ? ॥ २० ॥

न दैत्यस्य भय जात यज्ञकर्मोत्सुका वयम् ।
 त्वद्दर्शनपरा सर्वे पश्यामोर्वदिशेदिश ॥२१
 त्वन्मायामोहिताः सर्वे व्यग्रचित्ता भयातुराः ।
 योगाद्दृढस्वरूप च द्रुष्ट तेऽम्भाभिहृतमम् ॥२२
 वञ्ची च नोदितास्माभिर्जागराय तवेश्वर ।
 ततश्चापूवमभवच्छिरश्छिन्न वभूव ते ॥२३
 सूर्याश्वशीपमानीयविश्वकर्मतिचातुर ।
 समघ्नन्शिरोविष्णोह्यग्रीवोऽस्यतः प्रभो ! ॥२४
 तुष्टोऽह्नाकिनः सर्वोददामिवरमोप्सितम् ।
 ह्यग्रीवोऽन्म्यह जातोदेवदेवोजगत्पतिः ॥२५
 न रौद्र न विरूप च सुरैरपि च सेवितम् ।
 जातोऽह वरदो देवा हयाननेति तोपितः ॥२६
 कृते सत्रे ततो वेधा धीमान्सन्तुष्टचेतसा ।
 यज्ञधाग ततो दत्त्वो वञ्चीभ्यो विश्वकर्मणे ॥२७
 यज्ञान्ते च सुरश्रेष्ठनमस्कृत्य दिव ययौ ।
 एतच्च कारण विद्धि हयननो यतो हरिः ॥२८

देवा ने कहा—हमको इस समय मे दैत्यो का कोई भी भय नहीं हुआ है । हम सब लोग यज्ञ कर्म करने के लिये समुत्सुक हैं । हम सब आपके दर्शन करने के लिये परामण हैं और दशो दिशाओ को देखते हैं । आपकी माया से जब मोहित हो जाते हैं तो उसी समय मे हम सब व्यग्र चित्त भास तथा भय से आतुर हो जाया करने है ॥ २१ ॥ हमने आपका अतीव उत्तम योगाद्दृढ स्वरूप देखा है ॥ २२ ॥ हे ईश्वर ! आपके जागरण करान के लिये वञ्ची से हमने नहीं कहा था । इसके गृह अपूर्व घटना हुई कि आपका शिर छिन्न हो गया था । फिर अत्यन्त कुशल विश्वकर्मा

ने सूर्यदेव के अक्ष का मस्तक लाकर विष्णु के वक्ष पर घण दिया था । इसीलिये हे प्रभो ! आप इस समय मे हमप्रोव हो गये हैं । २२ । २३ ॥ २४ ॥ भगवन् विष्णु ने कहा—हे स्वर्ष भातियो ! मैं आप सबसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ । मैं आपको अभीष्ट करदान हूँगा । अब मैं देवों का देव जगत्पति ह्यप्रीव हूँ । न तो यह रौद्र है और न विल्व ही है और मुगों के द्वारा सेवित भी है । देवी ! मैं दम ह्य के ध्यान से तोषित हो गया हूँ और अब बरद हो गया हूँ ॥ २५, २६ ॥ श्री व्यास-देवजी ने कहा—इसके अनन्तर धीमान वेधा ने कृत युग मे सत्र मे सन्तुष्ट चित्त से धर्मियों से विश्वकर्मा के विष्णु का मान दिलाया था । यज्ञ के अन्त मे वह सुर भेष्ट को नमस्कार करके विश्वलोक को चले गये थे । जिस कारण से श्री हरि ह्यातन हुए—उसका यही कारण आन सेना चाहिए ॥ २७— ८ ॥

येनाकान्तः। मही सर्वा क्रमेणकेन तत्त्वतः ।
 विवरे विवरे रोम्णावतन्तेचपृथक्पृथक् ॥२६
 ब्रह्माण्डानिमहस्राणि दृश्यन्तेचमहाद्युते ।
 नवेत्तिवेदोयत्पार शीपघालोहिवंकयम् ॥२७
 शृणु त्व पाण्डवश्रेष्ठ कथा पौराणिकी शुभाम् ।
 हृदयरस्यचरित्तं हिनैववेत्तिचराचरे ॥२८
 एकदा ब्रह्मसभायां गता देवाः सवासवाः ।
 भूल्लोकाद्याश्च सर्व हि स्थावराणि चराणि च ॥२९
 देवाप्रह्लापय सर्वे नमस्कन्तुं पितामहम् ।
 विष्णुरध्यागतस्तत्र सभायामन्त्रकारणात् ॥३०
 ब्रह्माचारिण विगविष्ठ उवाचेद्वचस्तदा ।
 भीमोदेवाः शृणुष्व कश्चयाणां कारणमहत् ॥३१
 सत्यं युवन्तुर्वे देवा ब्रह्मज्ञविष्णुमध्यतः ।
 तावान् चममाकप्यदेवा विस्मय मागताः ॥३२

ऊचुच्छैव ततो देवा न जानीमोवयं सुराः ।

ब्रह्मपत्नी तदोवाच विष्णुं प्रतिसुरेश्वरम् ॥

अयाणामपि देवानां महान्तं च वदस्व मे ॥३६

महाराज युधिष्ठिर जी ने कहा—जिससे तात्त्विक रूप से एक ही धरण से क्रम से सम्पूर्ण मही को आक्रान्त कर लिया था और विवट-विवर में रोमों के पृथक् २ भाग बतमान हैं। हे महाद्युते ! जिसके रोमों के विवरों में सहस्रों ब्रह्माण्ड दिखलाई दिया करते हैं और जिसके पार को वेद भी नहीं जानते हैं उनके शीर्षों का घात कैसे हो गया था ? श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे पाण्डव श्रेष्ठ ! परम धुभा एक पौराणिकी कथा को इस समय में आप अध्वण कीजिए। इस ईश्वर के चरित्र को कोई भी नहीं जानता है। एक समय की बात है कि ब्रह्मा सभा में इन्द्र-देव के सहित समस्त देवगण गये थे। भूलोक आदि सब स्थावर तथा चर सभी थे। देवपि और ब्रह्मपि सब पितामह को नमस्कार करने के लिए ही वहाँ पर पहुँचे थे। वहाँ पर सभा में मन्त्र के कारण से भगवान् विष्णु की समागत हो गये थे ॥२६।३०।३१।-२॥ उस समय में ब्रह्माभी भी विशेष रूप में गविष्ठ होने हुए यह वचन बोले थे—हे हे देवगण ! आप सब मुनिगण मीन का जल में महत् वारण कौन हैं ? हे देवकुन्द ! आप इस समय में ब्रह्मा—विष्णु और इन्द्र इनके मध्य में बड़ा कौन है ? यह विस्तृत सत्य मैं आप बतला दूँ। इस ब्रह्माजी की वाणी को सुनकर देवगण परम विस्मित हो गये थे ? इसका परवात् समस्त मुनिगणों ने कहा—हम यह नहीं जानते हैं। उस समय में ब्रह्माजी की पत्नी ने गुरुों के ईश्वर श्री विष्णु में बोली—आप ही यह बतलाइये कि इन देवों में मन्त्र बड़ा देव कौन-सा है ? ॥३३-३६॥

विष्णुमायावलेनय माहितं भुवनत्रयम्

ततो ब्रह्मोवाच चेद न त्व जानासि भो विभोः ॥३७

नव मुह्यन्ति ते मायावलेन नैवमेव च ।

गवहिमापरो देवा जगद्गूर्ता जगत्प्रभुः ॥३७

ज्येष्ठं त्वां न विदुः सर्वे विष्णुमायावृत्ताः खिलाः ।
 ततो ब्रह्मा स रोषेण क्रुद्धः प्रस्फुरिताननः ॥३६
 तवाच वचनं कोपाद्धे विष्णो शृणुमेवचः ।
 येन वक्रोण सभायां वचनं समुदीरितम् ॥४०
 तच्छीर्षं पततादाशु चाल्पकासेन वं पुनः ।
 ततो हाहाकृत सर्वं सेन्द्राः सपिपुरोगमाः ॥४१
 ब्रह्माण क्षमयामासुविष्णु प्रति सुरोत्तमाः ।
 विष्णुश्च तद्वचः श्रुत्वा सत्यं सत्यं न विप्यति ॥४२

भगवान् श्री विष्णु ने कहा— विष्णु की माया के बस से ही यह निभुवन मोहित हो रहा है । इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने कहा— हे विभो ! क्या इसको आप नहीं जानते हैं ? इस प्रकार से वे इस माया के बल से भी कर्मी मोहित नहीं हुआ करते हैं । आप भगवत् के भर्ता और इस जगत के प्रभु हैं अतएव यह गर्व और हिंसा में परायण हैं ये समस्त विष्णु की माया में समावृत्त आपको ज्येष्ठ नहीं समझा करते हैं । इसके अनन्तर वह ब्रह्माजी रोष से प्रस्फुरित मुख वाले अत्यन्त क्रुद्ध होकर कोप से यह वचन बोले— हे विष्णो ! आप मेरा वचन श्रवण करिये । जिस मुख से सभा में वचन कहा था वह शीर्ष बहुत ही शीघ्र अल्पकाल ही में गिर जायेगा । इसके पश्चात् सभने इन्द्र के नाहित ऋषिवृन्द ने उस समय में हाहाकार किया था । सुरोत्तमों ने भगवान् विष्णु की ओर बहमाजी से क्षमा प्रार्थना की थी और विष्णु ने कहा था कि यह सत्य-सत्य हीगा ॥३७-४२॥

ततो विष्णुमंहातेजस्तीर्थस्योत्पादनेन च ।

तपस्तेपेतु च तत्र घर्मारण्ये सुरेश्वरः ॥

अश्वशीपम्मुख दृष्ट्वा हयग्रीवो जनार्दनः ॥४३

तपस्तेपे महाभाग ! विधिनासह भारत ।

न शक्यं केनचित्कर्तुं मात्मानात्मवनुष्टवान् ॥४४

ब्रह्मापि तपसा युक्तस्तेषु वपश्नतत्रयम् ।
 तिष्ठन्नो षपुरोविष्णोर्विष्णुमायाविमोहितः ॥४५
 यज्ञार्थमवदत्तुष्टो देवदेवो जगत्पतिः ।
 ब्रह्मस्ते मुक्ताद्यास्ति मममायाप्यदु सहा ॥४६
 ततो लब्धवरो ब्रह्मा हृष्टचित्ता जनार्दनः ।
 उवाचमधुर्गं वाच सर्वेषां हितकारणात् ॥४७
 अत्रामबन्महाक्षेत्रं पुण्यपापप्रणाशनम् ।
 विधिविष्णुमयं चतद्भूषस्वेतन्न संशयः ॥४८
 तीर्थस्य महिमाराजन्हयशीपस्तदा हरिः ।
 शुभाननो हि सञ्जात पूवर्णवाननेन तु ॥४९

इसके अन्तर भगवान् विष्णु ने जो कि स्वयं ही महान् तेजस्वी थे तीर्थ के उत्पादन में वही धर्मार्थ में सुरेश्वर तप करने लगे थे । अश्वत्थीर्थ मुख की देखकर जनार्दन हयग्रीव हो गये ॥४३॥ ह महान् भाग वाले भारत ! 'विधि' व साथ तपश्चर्या का तपन किया था । किसी के द्वारा भी अपनी आत्मा से ही आत्मा को गृहवान् नहीं किया जा सकता है । ब्रह्माजी ने भी तपस्या से मुक्त होने की वर्ष तक तप किया था । विष्णु की माया में विमोहित होकर विष्णु के आगे स्थित होते हुए तपस्या की थी । देवों के भी देव इस जगत् के स्वामी परम तुष्ट होकर बोले— हे ब्रह्मन् ! आज तुम्हारी मुक्ता है । यह मेरा माया भी अदु सहा है । इसके पश्चात् ब्रह्माजी वर प्राप्त करने वाले हुए थे और भगवान् जनार्दन भी प्रसन्न चित्त वाले हो गये थे । सबके हित करने के कारण से परम अधुर वाली बोल—यही पर परम पुण्यमय पापों के विनाश करने वाला महाक्षेत्र हो गया है । यह विधाना भी विष्णुमय हो गया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । हे राजन् ! उस समय में श्री हरि ने स्वयं हयग्रीवं ने की थी । पहिले ही इससे वह परम शुभ भ्रान्त वाले हो गये थे ॥ ४४-४९ ॥

कन्दर्पकोटिलावण्यो जातःकृष्णस्तदा नृप ।
 ब्रह्मापि तपसा युक्तो दिव्य वर्षस्तत्रयम् ॥ १०
 सावित्र्या च कृतं यत्र विष्णुमाया न बाधते ।
 मायया तु कृतं क्षीपं पञ्चमं शार्दूलस्य वा ॥११
 धर्माश्रमे कृतं रम्यं हरेण कछेदितं पुरा ।
 तस्मै दत्त्वा वरं विष्णुर्वज्रामादधनं ततः ॥१२
 स्थापयित्वा विधिस्तत्र तीर्थञ्चैवत्रिलोचनम् ।
 मुक्तेश्च नामदेवस्यमोक्षतीर्थमरिन्दम ॥१३
 गतःसोऽपि सुरश्रेष्ठः स्वस्यानं भुङ्क्षेवितम् ।
 तप्तपेतादिव यान्तिवर्षणेनप्रतपिताः ॥१४
 अश्वमेधफलस्नाने पानेगोदानज फलम् ।
 पुष्कगद्यानितीर्थानिगङ्गाद्या सरितस्तथा ॥१५
 स्नानार्थमप्रागच्छन्ति देवता पितरस्तथा ।
 कार्तिवयाकृत्तिकायोगेमुक्तेणपूजयेत्तु यः ॥१६
 स्नात्वा देवसूरे रम्ये नस्वा देव अनादृतम् ।
 यः करति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१७

हे नृप । उक्त समय में भयवान् श्रीकृष्ण करोड़ों कामदेवों के मुख्य रूप लावण्य वाले हो गये थे । ब्रह्माजी भी तपस्या में युक्त हुए जो कि दिव्य क्षीर सी वर्ष पर्यन्त की थी ॥ १० ॥ जहाँ पर सावित्रीदेवी ने तप किया था वहाँ विष्णु जी माया माया नहीं देती है , माया से किया हुआ क्षीर का अथवा शार्दूल का पा ॥ ११ ॥ पहिले हर के द्वारा छेदित धर्माश्रम में सुरेश्वर किया था । उनको वरदान प्रदान करके भयवान् विष्णु वहाँ में मदर्शन को प्राप्त हो गये थे ॥ १२ ॥ हे अरिन्दम ! विधि में वहाँ पर त्रिलोचन तीर्थ की स्थापना करके जो नामदेव का मुखेश्वर मोक्ष तीर्थ है ॥ १३ ॥ वह भी सुरश्रेष्ठ मुने से सेवित अपने स्वान को चले गये थे । वहाँ पर तर्पण के द्वारा तपित हुए प्रेत भी दिवलोक को

प्रयाण किया करते हैं ॥ ५४ ॥ वहाँ पर स्नान करने से एक अश्वमेध यज्ञ के करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है । वहाँ के जल का पान करने से गोदान से समुत्पन्न फल मिला भरता है । पुष्कर आदि तीर्थ तथा भागोरधी गङ्गा आदि सरिताएँ स्वयं स्नान करने के लिए यहाँ पर आया करती हैं और सब देवता तथा पितर भी समागत होते हैं । कार्तिक मास में वृत्तिका नक्षत्र के योग में जो कोई मुक्नेत्र भगवान् की पूजा किया करता है और उस सुरम्य देदसर में स्नान करके अनादन देव को नमस्कार करना है । ऐसा जो नर भक्ति की भावना से करता है वह सब प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाता है ॥ ५१ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

भुवत्रा भोगान्यथाकामं विष्णुलोकं स गच्छति ।
 अपुत्रा काकवन्ध्या च मृतवत्सा मृतप्रजा ॥५८
 एकाम्बरेण मुन्नाती पतिपत्न्यौ यथाविधि ।
 तद्दापनाशयेन्नूनप्रजाप्तिप्रतिबन्धम् ॥५९
 मोक्षेश्वरप्रसादेन पुत्रपौत्रादि वर्द्धयेत् ।
 दद्याद्द्वयं चित्तौ फलानि सत्यरायुता ॥६०
 निघात्र वज्रपालोऽपि नागोदापात्प्रमुच्यते ।
 प्राप्नुवन्ति च दवाश्च जग्मिष्टोमफल नृप ॥६१
 वेधाहृग्निहंश्चैव तप्यन्ते परम तपः ।
 धर्मारण्ये त्रिसन्ध्य च स्नात्वादेवसरस्यथ ॥६२
 तत्र मोक्षेश्वरः शम्भुः स्थापितो वै ततः सुरैः ।
 तत्र साङ्गं जप कृत्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥६३

वह प्राणी स्वर्गीय सर्वोत्तम सुख के उपभोगों का भोग करके यथा नाम विष्णुलोक को चला जाता है । जो पुत्रहीना हो—काकवन्ध्या हो—मृतक्या हो और मृत प्रजा स्त्री हो तो वहाँ पर यथाविधि दोनों पति-पत्नी एकाम्बर से सम्पक् रोति से स्नान करे तो वह जो उन्में

सन्तान की प्राप्ति का प्रतिबन्धक दोष उत्तम है वह निम्बव ही मष्ट हो
 जाया करता है । मोक्षेश्वर के प्रसाद से उसके पुत्र पोत्रादि की वृद्धि
 हो जाती है । अथवा एकवित्त होकर सत्य से सयुता होकर फलो का
 दाप करे और उन्हे मरु पत्र मे रखकर देवे तो वह नारी वीर्य से विमुक्त
 हो जाती है । हे नृप ! वही देवगण अग्निष्टोम नाम का फल प्राप्त किया
 करते हैं ॥ ५८, ५९, ६०, ६१ ॥ वेदा (ब्रह्मा)—भीर्हारि—भगवान्
 शम्भु भी परम तप किया करते हैं । तीनों सन्मार्गों मे देवसरोवर में
 वसतिरथ में स्नान करके भुरो ने मोक्षेश्वर भगवान् शम्भु की स्थापना
 की है । वहाँ अङ्ग सविष्ठ पाप करके फिर यह प्राणी जन्म ग्रहण करके
 स्वतः का पान मही किया करता है ॥६२, ६३ ॥

एव ज्ञेयं महाराज प्रसिद्धं भुवनत्रये ।
 यस्तत्र कृष्णे श्राद्धं पितृणां धृष्टयान्वितं ॥६४
 उदरेत्सप्तगोत्राणि कुलभेकोत्तरं सतम् ।
 देवसरो महारम्यं नानापृष्णैः समन्वितम् ॥
 ध्याम सकं कल्हारेषिर्षजलमन्तुभिः ॥६५
 ब्रह्मविष्णुमहेशादीं सेवितं सुरमानुषैः ।
 सिद्धं यैकीञ्च मुनिभिः सेवितं सर्वतः शुभम् ॥६६
 कीदृशं तत्सरो, स्थितं तस्मिन्स्थाने द्विजोत्तम ।
 तस्य रूपं प्रकारञ्च कथयस्व यथावयम् ॥६७
 साधुसाधु महाभ्रातृ ! धर्मपुत्र ! युधिष्ठिर ! ।
 यस्मत्सङ्करोतेनानूनं सर्वपापं प्रमु-यते ॥६८
 अतिस्वच्छतरं सीतं सङ्कोदकममप्रमम् ।
 पवित्रं मधुरं स्वादु जलं तस्य नृपोत्तमः ॥६९
 महाविद्यालं गम्भीरं देवखातं मनोरमम् ।
 सहस्रादिभिर्गम्भीरैः फेनावर्तसमाकुलम् ॥७०
 आयमपद्रुकमठमंकरंश्च समाकुलम् ।

शङ्खशुक्त्यादिभिर्युक्तं राजहंसैः सुशोभिवम् ॥७१

हे महाराज ! इस प्रकार से यह क्षेत्र तीनों भुवनो में प्रसिद्ध है । जो कोई वहाँ पर ध्यात् किया करता है और तितूगण को भ्रष्टा से युक्त सृष्ट करता है वह अपने सात गोत्रों का उद्धार कर दिया करता है और एकोत्तर शत अर्थात् एक सौ एक कृत्न का उद्धार कर देता है । यह देवमर महान् मुख्य है और अनेक प्रकार के पुष्पो से समन्वित है । सब तरह के कल्हारो से श्याम तथा अनेक जल के जन्तुओं से युक्त है ॥६४॥ ६५ ॥ ब्रह्मा—विष्णु और महेश आदि के द्वारा तथा सुरो एवं मनुष्यो के द्वारा यह नेवित है । सभी और यह परम शुभ सर सिद्ध—यज्ञ और मुनिवन्दो के द्वारा सेविन है ॥ ६६ ॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! उम स्थान में वह सर किस प्रकार का विस्थात है ? उसका स्वरूप कसा है और किम प्रकार का है ? आप कृपया ठीक ठीक यह बतलाइये । ६७ ॥ श्री ध्यामदेव जी ने कहा—हे धर्मपुत्र ! आप तो अत्यधिक प्रज्ञा वाले हैं । हे युधिष्ठिर ! यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है— यह अन्युत्तम है । इसक तो सङ्कीर्तन मात्र स ही मनुष्य निश्चित रूप से समस्त पापो से विमुक्त हो जाया करता है ॥ ६८ ॥ हे नृपोत्तम ! क्या वर्णन किया जावे, उमका जल अत्यन्त ही स्वच्छ है—अधिक ठण्डा है—और गङ्गा क जल के समान प्रमायुक्त है—परम पवित्र—महामधुर तथा स्वादयुक्त है ॥ ६९ ॥ यह देवघात सरोवर) महान् विशाल है—अत्यन्त गम्भीर है और परम मनोरम है । गम्भीर सहरियो के आने के कारण कैतों के प्रावर्तो से समानुल रहता है । इसमें अय-मण्डूक कमठ और मकर निवास किया करत हैं और उनसे समानुल है । यह सरोवर शख और शुक्ति आदि से भी सयुक्त रहता है तथा राज-हम इसके समीर में निवास किया करते हैं उनसे इसकी विशेष शोभा रहा करती है ॥७०, ७१ ॥

वटप्लक्षः समायुक्तमश्वत्थाम्रश्च वेष्टितम् ।

धक्रवाकसमोपेतं वकसारसट्टिभिः ॥७२
 कमनीयप्रगन्धाच्छ- छत्रपट्टीः सुसोमितम् ।
 सेव्यमानं द्विजं सर्वैः सारसाद्यं सुसोमितम् ॥७३
 सदेवंमुनिभिश्चैव विप्रमंत्यैश्च भूमिप ।
 सेवितं दुःखहं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥७४
 अनादिनिघ्नोपेतं सेवितं सद्धमण्डलं ।
 स्नानादिभिः सर्वदेवतत्सरोनुपसत्तम ! ॥७५
 विधिना कुरुते यस्तु नीलात्सगञ्ज्व तत्तटे ।
 प्रेता नैव कुले तस्य यावद्रिन्द्राश्चतुदश ! ॥७६
 कन्यादानं च ये कुर्युर्विधिना तत्रभूपते ! ।
 ते तिष्ठन्ति प्रह्लालोके यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७७
 महिषी गृहदासी च सुरभी सुतस्यूताम् ।
 हेमविद्या तथा भूमि रणाश्च गजवासमी ॥७८
 इदाति श्रद्धया तत्र सोऽक्षय स्वर्गमश्नुते ।
 देवघातस्य माहात्म्यमपठेत् छवसन्निधौ ॥
 दीर्घमायुरतथा सौख्यं लभते नात्र सशयः ॥७९
 यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वा त्विदमद्भुतम् ।
 कुले तस्य भवेच्छ्रेयः कल्पान्तेऽपि युधिष्ठिर ! ॥८०
 एतत्सर्वं मया स्यात् हृयग्रीवस्य कारणम् ।
 प्रभावस्तस्य तीर्थस्य सर्वपापानुत्तये ॥८१

हमके चारो ओर बट वृक्ष—प्लव (पाखर) अश्वता और वास
 के वृक्ष समे हुए हैं इनसे नेष्टित—सा रहा करता है । धक्रवा—धक्र—
 सारस और टिट्टिभि आदि अनेक पक्षीगण से यह सर समोपेत है ॥७२॥
 परम रम्य प्रकृष्ट गन्ध से युक्त अतीव स्वच्छ उत्तमधो से सुन्दर सोमा
 वाला है । सारस आदि पक्षियों के द्वारा यह निरन्तर सेव्यमान रू
 करता है ॥७३॥ हे राजन् ! देवगण-मुनिवृन्द-विषय वर्ग और मानव

के द्वारा सेवित है । यह परम दुःखी के हनन करने वाला और सभी तरह के पापों का नाशक है ॥ ७४ ॥ अनादि निघ्न से उपेत तथा सिद्धों के मण्डलों के द्वारा सेवित है । हे नृपश्रेष्ठ ! सर्वदा ही वहा पर स्नानादि करने वाले बने ही रहा करते हैं ऐसा वह देवमर है । जो कोई उसके सट पर विधि के सहित नीलोत्सर्ग किया करता है उसके कुल में जब तक पीढ़ी इन्द्र होते हैं प्रेत कभी भी नहीं रहते हैं । हे राजन् ! वहा पर जो विधि विधान के साथ कन्या का दान किया करते हैं वे मनुष्य जब भूत संस्रव होता है तब तक ब्रह्मलोक में निवास प्राप्त करते हैं । जो कोई वह महिषी—गृहदासी—सुरभी जो सुत से समन्वित हो—हेमविद्या—भूमि—रथ—गज—वस्त्र आदि का श्रद्धा से दान दिया करता है वह अक्षय स्वर्ग का निवास प्राप्त किया करता है । इस देवघात (सरोवर) का माहात्म्य भगवान् शम्भु के समीप में बैठकर पढ़ा करता है उसकी वायु दीर्घ हो जाती है और वह परम सीस्य प्राप्त करता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥ ७५, ७६, ७७, ७८, ७९ ॥ जो नर या नारी भक्ति भाव से इस अद्भुत माहात्म्य का श्रवण किया करता है । उसके कुल में परम श्रेय कल्पान्त तक रहे युधिष्ठिर होता है । यह इसमें सम्पूर्ण भगवान् हयग्रीव का कारण वर्णित कर दिया है । इस तीर्थ का ऐसा ही प्रभाव होता है कि उससे समस्त पापों का अपनोदन हो जाया करता है ॥ ८०, ८१ ॥

४२—कलि धर्म वर्णन

अतः पर किनभवत्तन्मे कथय सुव्रत ! ।

पूर्वं च तदशेषेण दास मे वदताम्बर ! ॥१॥

स्थिरोभूत च तत्स्थानं कियत्कालं वदस्व मे ।

केन च रक्ष्यमाणं च कस्याऽऽज्ञा वतते प्रभो ! ॥२॥

जेतानो ह्यापरागतं च यावत्कलिसमागमः ।
 तावत्सुगन्धर्वैको हनुमान्पचमात्मजः ॥३॥
 ममर्षो नान्यथा कोऽपि विनाहनुमतासुत ! ।
 लंकाविध्वंसितायेनराक्षसा प्रवसपत्ताः ॥४॥
 स एव रक्षतेतत्र रामादशेम पुत्रक ।
 द्विजस्याज्ञा प्रवर्तत श्रीमातायास्तयैव च ॥५॥
 दिनेदिनेप्रहृषोऽमूज्ज्वलानातश्चासिनः ।
 पठन्तिस्मद्दिजास्तत्रशुग्धजु.सामसप्तगान् ॥६॥
 व्यर्द्धणञ्चापि तत्र पठन्ति स्म दिवानिष्टम् ।
 वेदान्विर्षोपज शब्दस्तौलोवयेसचराचरे ॥७॥
 चरस्रवान्तत्र जायन्तेग्रामे ग्रामे पुरेपुरे ।
 माना यज्ञाःप्रवर्तन्तेनानाधर्मसमाश्रिताः ॥८॥

देवपि श्री गारुडजी ने कहा—हे सुभन ! इससे आगे क्या हुआ या
 इसे अब आप मेरे सामने वर्णन कीजिये । हे वीरक बानो मे परम धेनु ।
 और इसके पूर्व में क्या हुआ या वह सभी कृपा कर बतसाइये । वह
 स्थान कितने समय तक स्थिरीभूत रहा—यह मुझे बतलाइये । हे प्रभो !
 उसी गथा किसके द्वारा की गयी थी और वहाँ पर किसकी आज्ञा है ?
 ॥ १ । २ ॥ श्री गारुडजी ने कहा—श्रीगणेश देवपर युग के अन्त पर्यन्त
 जब तक कालियुग का समागम हुआ या उतने काल तक उसके सरक्षण
 करने से कबच एक पचम के पुत्र श्री हनुमान रहे थे । हे सुभ ! हनुमान्
 के बिना अन्य कोई दूसरा इस संरक्षण के कार्य को करने से समर्थ भी
 नहीं था । जिसने सङ्कापुर को विध्वंस कर दिया और बड़े २ समकान्
 राज्यों का इनत कर दिया था, हे पुत्र ! भगवान् श्रीगणेश के आदेश से
 वही वहाँ पर इसका मन्त्रण किया करते हैं । द्विज की आज्ञा प्रवृत्त
 राज कर्त्री थी और श्री माता की भी आज्ञा रहती थी । वहाँ पर जनो
 को बड़ा ही हय होता था और वहाँ के जनका द्विजसगु सुभ—शु

और साम लक्षणों वाले वेदों का पाठ किया करते थे । अथर्ववेद का भी रात्रि दिन पाठ किया करते थे । वेदों के उच्चारण की ध्वनि धराचर लोकोत्थ में फैलती रहा करती थी । वहाँ पर ग्राम-ग्राम में और नगर-नगर में अनेक उत्सव हुआ करते थे । अनेक यज्ञ भी नाना प्रकार के धर्मों के समाहित होते ही रहा करते थे ॥ १-८ ॥

कदापि तस्यस्थानस्यभङ्गोजातोप वा नवा ।

दंत्यैजितकदास्थानभयवादुष्टराक्षसं ॥९

साधुदृष्ट त्वया राजन्धर्मंजस्त्वं सदा शुचिः ।

आदौ कल्पियुगे प्राप्तो यद्वृत्तं तच्छृणुष्व भोः ॥१०

लोकानां च हितार्थाय कामाय च सुखाय च ।

यदहं कथयिष्यामि तत्सर्वं शृणुभूपते ! ॥११

इदानीं च वलौप्राप्तोऽमोनाम्ना वभूवह ।

कान्यकुब्जाधिपःश्रीमन्धर्मज्ञोनीतितत्परः ॥१२

दान्तो दान्तं सुशीलश्च सत्यधर्मंपरायणः ।

द्वापरांतेनपश्चेष्ट अनागते कलौ युगे ॥१३

भयात्कल्पिविशेषेण अधमस्य भयादिभिः ।

सर्वेदेवाः क्षितिं त्यक्त्वा नैमिषारण्यमाश्रिताः ॥१४

रामोऽपि सेतुवन्धं हि ससहायो गतां नृप ! ॥१५

महाहाय मुद्दिष्टिर ने कहा— जिसी भी समय में उस स्थान का भङ्ग भी हुआ था अथवा मही हुआ था ? उस स्थान को देखो ने अथवा दुष्ट राक्षसों ने कब जीत लिया था ? थी क्यासुदेवजी ने कहा—हे राजन् ! आपने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न पूछा है । आप तो परम धर्म के जाता है और सदा ही शुचि रहा करने है । हे राजन् ! आदि में कल्पियुग के प्राप्त होने पर जो भी कुछ हुआ था उसका आप सब ध्वन कोत्रिए । ॥ ९ । १० ॥ रामस्य लोको के हिन के लिये—कामनाएँ पूर्ण होने के लिये और सुख के लिये जो भी मैं कुछ कहूँगा हे भूपते ! उस सबको

आप सुनिचे ॥ ११ ॥ इन समय में कलिपुत्र की प्राप्ति होने पर आम—
इस काम काका कान्धकुञ्ज देव का स्वामी हुआ था । वह परम धीमान्
घर्म का आता और शक्ति में परम परामण था ॥ १२ ॥ अत्यन्त शान्त
स्वभाव वाला—दमनशील सुशील और सत्य तथा धर्म में परायण था ।
हे नृप द्रापद—मृग के अन्त में और कनिद्युग के त आगत होने पर इस
कलिपुत्र के विशेष भय से और घर्म के भय आदि से सब देवता
इस क्षिति का परित्याग करके नैविपारण्य में समाश्रित हो गये थे ।
हे नृप ! श्रीराम भी सब सहायको के सहित सेतुबन्ध पर चने गये थे ।
॥ १३-१५ ॥

कीदृश हि कालो प्राप्ते भयलोकेसुदुस्तरम् ।
पस्मिन्पुरं परित्यक्तारत्नगर्भासुन्धरा । १६
शृणुष्व कलिघर्मास्त्व भविष्यन्ति यथा नृप ! ।
असत्पवादितो लोकाः साधुनिन्दापरामणाः ॥१७
दस्युकर्मरताः सर्वे पितृभक्तिविवर्जिताः ।
स्वगोत्रदारभिरता नील्यध्यानपरायणाः ॥१८
ब्रह्माद्विद्वेषिणः सर्वे परस्परविरोधिनः ।
शरणागतहन्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ॥१९
बंश्याचारता विप्रा वेदभ्रष्टाश्च मानिनः ।
भ्रातृपार्श्व कलौ प्राप्ते सन्ध्यालोचकरा द्विजा ॥२०
शान्तो शूरा मयदीना आदृतपणवर्जिताः ।
असुराचारनिस्ता विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥२१

मुष्मिष्ठर ने कहा—हे भगवन् ! इस कलिपुत्र के प्राप्ति हो जाने
पर किस प्रकार का सुदुस्तर सब लोक में व्याप्त हो गया था जिसमें कि
सुरासुरों ने यह बतनी की सर्व धारण करने वाली असुन्दरा का भी परि-
त्याग कर दिया था ? भी व्यापक जो न कहा—हे नृप ! सब आप इस
कलिपुत्र के घर्मों का भ्रमाण कीविए जिस प्रकार से ये भविष्य में होम ।

सभी लोक असत्य बोलने वाले और साधुओं की निन्दा में परायण रहा करेगे ॥ १६ । १७ ॥ सब लोग दस्युओं (दूसरों के धन का हरण करने वाले) के कर्म में रति रखने वाले और माता—पिता की भक्ति में निरत न रहने वाले तथा अपने ही गोत्र की दारा (स्त्रियों) में रति रखने वाले और लौल्य (चञ्चलता) के ध्यान में परायण—ब्राह्मणों से विद्वेष रखने वाले—परस्पर में विद्वेष रखने वाले और क्षरण में समागत लोगों का हनन करने वाले कलियुग में होंगे ॥ १८, १९ ॥ इस कलियुग में विप्रलोक वैश्यों के आचार बाने ही जायेंगे । वेदों से भ्रष्ट—मानी और सन्ध्योपासना के विलोप करने वाले विप्र कलियुग में होंगे ॥ २० ॥ शान्ति के समय में शूरता दिखाने वाले—भय प्राप्त होने पर दीन ही जाने वाले तथा श्राद्ध और तपण से राहत—असुरों के समान आचार में निरत एव भगवान् विष्णु की भक्ति से रहित हुआ करेगे ॥ २१ ॥

परवित्ताभिलाषाश्च उत्कोचगहणे रताः ।

अस्नातभोजिनो विप्राः क्षत्रियारणवर्जिताः ॥ २२

भविष्यन्तिकलौप्राप्ते मलिनादुष्टवृत्तयः ।

मद्यपानरताः सर्वेऽप्ययाज्यानां हियाजकाः ॥ २३

भर्तृद्वेषकरा रामाः पितृद्वेषकराः भूताः ।

भ्रातृद्वेषकरा क्षुद्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २४

गव्यविक्रयिणस्ते व ब्राह्मणावित्ततत्पराः ।

गावो दुग्धं न दुहन्ते सम्प्राप्ते हि कलौ युगे ॥ २५

फलं ते नैव वृक्षाश्च कदाचिदपि भारत ।

कन्याविक्रयकर्तारोगाजाविक्रयकारकाः ॥ २६

विपविक्रयकर्तारो रसविक्रयकारकाः ।

वेदविक्रयकर्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २७

नारोगं समाद्यत्ते हायनेनादयेन हि ।

एकादस्युगवागस्य चिरताः सर्वतो जनाः ॥ २८

विनास्नानंतु यत्कर्मपुण्यकार्यमयं शुभम् ।
 क्रियते निष्फलं ब्रह्म स्तत्प्रगृह्णन्ति राक्षसाः ॥२४॥
 स्नानेन सत्त्वमाप्नोति स्नानं धर्मः सनातनः ।
 धर्मान्मोक्षफलमप्राप्य पुनर्नैवाज्वसीदति ॥२५॥
 ये चाध्यात्मविदः पुण्या ये च वेदाङ्गपारगाः ।
 सर्वदानप्रदायै च तेषां स्नानेशुद्धता ॥२६॥
 कृतस्नानस्य च हरिर्देहमाधित्यतिष्ठति ।
 सर्वक्रियाकलापेषु सम्पूर्णफलदो भवेत् ॥२७॥
 सर्वपापविनाशाय देवतातोषणाय च ।
 चातुर्मास्ये अत्रस्नान सर्वपापक्षयावहम् ॥२८॥

चातुर्मास्य में भगवान् नारायण देव जल में ही निवास किया करते हैं । इसीलिए भगवान् विष्णु के तेज के अन्त से सङ्गन स्नान समस्त लोको से भी अधिक हुआ करता है ॥ २२ ॥ दस प्रकार का स्नान करना चाहिए । भगवान् विष्णु क नाम का महान फल होता है । देव के मुक्त होने पर त्रिलोक रूप से मनुष्य देवत्व को प्राप्त हो जाता है । स्नान के बिना कोई भी शुभ एवं पुण्यमय कर्म किया जाता है तो वह ही बहाना ! विष्णु ही निष्कर्म हो जाता करता है और उसकी राक्षस गण ग्रहण कर लिया करते हैं । स्नान से ही महत्त्व को प्राप्त किया करता है । यह स्नान सनातन (सर्वदा से चले आने वाला) धर्म से मोक्ष के फल को प्राप्त करके फिर यह प्राणी कभी भी अवगन्त लक्ष्मी दु खित नहीं हुआ करता है ॥ २३, २४, २५ ॥ जो अध्यात्म ज्ञान के ज्ञाता—पुण्यात्मा है और जो वेद-वेदाङ्गों के पारगामी विद्वान् है तथा जो सब प्रकार के दानों के प्रदान करने वाले हैं उन सबकी स्नान करने से ही शुद्धता हुआ करती है । जो स्नान किये हुए मनुष्य होता है उसके देह का समाश्रय ग्रहण करने का आह ममकान् श्री हरि स्थित रहा करते हैं और समस्त त्रिया कलापों में वे सम्पूर्ण फलों के प्रदान करने वाले होते हैं । सभी प्रकार के

पापों के विनाश के लिए और देवों के तोषण करने के लिए चातुम में सब पापों के क्षय को करने वाला जल का स्नान करना चाहिए ॥ २७ । २८ ॥

निशायाञ्चैव न स्नायात्सन्ध्यायां ग्रहणम्बिना ।
उष्णोदकेन न स्नानं रात्रौ शुद्धिनं जायते ॥२६
भानुसन्दर्शनाच्छिवहिता सर्वकमंसु ।
चातुर्मास्ये विशेषेणजलशुद्धिस्तुभाविनी ॥३०
अशक्त्या तु शरीरस्य भस्मस्नानेन शुष्यति ।
मन्त्रस्नानेन विप्रेन्द्र ! विष्णुपादोदकेन वा ॥३१
नारायणग्रतःस्नानं क्षेत्रतीर्थेनदीपुत्र ।
यः करोतिविशुद्धात्माचातुर्मास्ये विशेषतः ॥३२

निशाकाल में और सन्ध्या के समय में कभी भी ग्रहण के अवस को छोड़कर स्नान नहीं करना चाहिए । उष्ण जल से रात्रि में नहीं करे । इससे कभी शुद्धि नहीं हुआ करता है ॥ २६ ॥ समस्त कर्मों में भानुदेव के दर्शन मात्र से ही शुद्धि कही गयी है । चातुर्मास्य विशेष रूप से जल के द्वारा होने वाली शुद्धि होती है । यदि जल से शुद्धि करने की शरीर में शक्ति ही न हो तो भस्म द्वारा स्नान करने से भी शुद्धि हो जाती है । हे विप्रेन्द्र ! मन्त्रों के द्वारा स्नान से शुद्ध होना है और केवल भगवान् के चरणामृत से भी शुद्धि होती है । जो विशुद्ध आत्मा वाला विशेष करके चातुर्मास्य में नारायण के आगे क्षेत्र-तीर्थ और नदियों में स्नान करता है वह परम शुद्ध हो जाता है ॥ ३०-३२ ॥

॥ स्कन्ध पुराण (प्रथम खण्ड) समाप्त ॥